भारत,
चीन और उत्तरी सीमाएँ

रामनोहर लोहिया

भारत, चीन और उत्तरी सीमाएँ

न व हि न्द

हैदराबाद

अनुक्रम

उर्वसीअम्

नेपाल

तिब्बत

नीति

दस्तावेज़

नक्शे

नोट : १. सूची में निम्नलिखित क्रम-संख्याओं की सामग्री अनूदित है :—
१, २, ३, ७, ८, १२, १४, २१, २३ से २६, २८, २९, ३०, ३२, ३३, ३४, ३५, ३८, ३९, ४०, ४१, ४२, ४४, ४६, ४७, ४९, ५०, ५१, ५४, ५८, ५९, ६०, ६३, ६५, ६६, ६८ से ७३, ७५, ७६, ७७, ८६, ९३, ९५, ९६ ।
२. पृष्ठ ४३५ से ४४४ तक के नक्शे, भारत सरकार द्वारा प्रकाशित "चीनी आक्रमण नक्शों में" से साभार लिये गये हैं ।

प्रस्तावना

इस पुस्तक में भारत की उत्तरी सीमाओं, और खास कर काश्मीर, उर्वसीअम् नेपाल और तिब्बत पर, मेरे कुछ भाषणों और लेखों का संकलन है। इनमें से कोई भी १९४९ से पहले का नहीं है। इससे पहले के लेखो को इसलिए नहीं लिया गया कि किताब फिर बहुत बड़ी हो जाती। इसका यह मतलब नहीं है कि वे किमी मानी में कमतर महत्त्व के हैं। असल में तो उनमें से कुछ से यह पता चलता है कि मेरे, जैसे दूसरे लाखो व्यक्तियों के सोचने के ढंग में सम्भवतः ग़लती रही।

मुझे याद नहीं है कि मैंने कभी हिमालय को देश का संतरी समझा है। मुझे जयजयकार वाला यह गीत पसंद नहीं है, और शायद यही भाव शुरू जवानी के दिनों में रहा हो। लेकिन निश्चित तौर पर मुझे याद है कि सन् १९४८ के आसपास जब कि चीन कम्युनिस्ट हो गया और इसीलिए मेरी दृष्टि में प्रबल और जंगली दोनो हिमालय के बारे में मेरे मन में शंकाएँ पैदा हो गयी थीं। ये शंकाएँ मेरे मन में असल में और पहले सन् १९३८-३९ के आसपास उठीं जब कि मैंने भारतीय इतिहास को थोडी गहराई से पढ़ना शुरू किया।

विदेश नीति और रक्षा नीति के मामले में सरकार की मूर्खता का कारण इतिहास के बारे में परंपरागत जड धारणाएँ रही हैं, जिनमें एक यह है कि हिमालय भारत का रक्षक है। यह बेहूदा खयाल कहाँ से पैदा हुआ -अपने अज्ञान के कारण या साम्राज्यवादी विचार-विकृति के कारण ?

विदेश नीति और रक्षानीति की ग़लतियाँ, इतिहास की स्थायी और भीतरी शक्तियों के त्रुटिपूर्ण अवलोकन के कारण जितनी हुई हैं, उतनी ही वर्तमान के दोषपूर्ण मूल्यांकन के कारण। मैंने इन दोनों पहलुओं पर विचार किया है। इसके कारण कभी-कभी मेरे पाठकों और श्रोताओं को कठिनाई होती है। लेकिन जीवन की विषम समस्याओं को सुलझाने का यही एक रास्ता है।

अनेकविध कारणों से भारत के वर्तमान मानस के पास दुनिया की सामाजिक, सामूहिक समस्याओं को समझने के लिए, कोई मूल्य-मान नहीं है। काफ़ी लम्बे अरसे तक

यह मानस निर्गुण, पारलौकिक में लगा रहा और दूसरी तरफ़ सगुण, लौकिक में। अस्थिर बुद्धि के कारण ही ऐसा सहअस्तित्व चला।

हिमालय भी चरम पावन का भंडार रहा है। मैंने, अपने, बहुत-कुछ लौकिक ढंग से, इसकी भी खोज की है जब कि गंगा के उद्गम का पता लगाने की मैंने कोशिश की।

घिनौने वर्तमान के विरुद्ध हमारा युद्ध अविराम चलना चाहिए। जब हम इस युद्ध में रत रहें तो अगर पावन चरम हमें प्रेरित करता है तो ठीक, वरना उसे भी खतम करना चाहिए। मुझे आशा है यह संग्रह उन लोगो के लिए कुछ उपादेय होगा जो वर्तमान और चरम के नये रचाव में दिलचस्पी रखते हैं, लेकिन सर्वोपरि उनके लिए, जो देश की विदेश और रक्षानीति को सीधा और सबल बनाना चाहते हैं।

हैदराबाद, अक्तूबर ४, १९६३ —राममनोहर लोहिया

हिमालय

उत्तरी सीमाओं पर ख़तरा

हमारी उत्तरी सीमाओं के उस तरफ़ से कम्युनिस्टों के बढ़ते हुए ख़तरे की ओर मैं ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ।

काश्मीर युद्ध या पाकिस्तान के पख़्तूनिस्तानी क्षेत्र में होने वाली घटनाओं या पूर्व में मार्शल टिमोशंको द्वारा संगठित नयी फ़ौजों की यहाँ मैं चर्चा नहीं करूँगा। नेपाल, सिक्किम और तिब्बत में जो हो रहा है, वह इससे कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है, और हिन्दुस्तान की जनता उसके बारे में बिलकुल अनभिज्ञ है। बड़ी संख्या में चीनी कम्युनिस्ट तिब्बत में चले आये हैं और कई मठों को अपने सैद्धान्तिक प्रभाव में कर लिया है। और, गुप्त ढंग से इस सुन्दर देश में हथियार जमा किये जा रहे हैं। उन कम्युनिस्टों ने नेपाल की तरफ़ भी आँखें लगा दी हैं और उस देश में कम्युनिस्ट क्रियाकलाप बढ़ता जा रहा है।

हिन्दुस्तान से ब्रिटिश सत्ता के चले जाने के बाद यह स्वाभाविक था कि नेपाल, सिक्किम और तिब्बत की अयोग्य सरकारों पर गहरा अन्दरूनी और बाहरी दबाव पड़े। अगर इन उत्तरी और पूर्वी देशों में अन्ततोगत्वा जनतंत्र की हत्या हो जाती है, तो भारत सरकार और अमरीका को उसकी पूरी ज़िम्मेदारी लेनी होगी। जहाँ तक समाजवादी दल का सम्बन्ध है, वह जनतंत्र और स्वाधीनता की रक्षा के लिए हिन्दुस्तान और एशिया की जनता के साथ कन्धा से कन्धा लगा कर उनके साथ रहेगा।

१९४९, जनवरी १४; लखनऊ।

हिमालय नीति

मानव जाति की सुन्दरतम और सर्वाधिक शीतल पहाड़ियाँ गरमा रही हैं। ऐश्वर्यवान् हिमालय पर्वत माला के दोनों ओर के लगभग ८ करोड़ निवासी सचेत हो गये हैं और पुरानी स्थिरता खतम हो चुकी है। युद्धोन्मुख विचार और फ़ौजें उनकी आत्मा पर हावी होने की होड़ में हैं और अगर उनकी आज़ादी छिन गयी अथवा वे दूसरे लोगों के प्रभाव में पड़ गये, तो उनके साथ-साथ दुनिया को भी नुक़सान होगा और हिमालय हिन्दुस्तान का परम्परागत संतरी नहीं रहेगा।

अफ़गानिस्तान से बर्मा तक, ऊपर तिब्बत और नेपाल में ये लोग फैले हैं जो विचार और तलवार के ललचाने वाले 'मिशनरी' हैं। इनके ऊपर हैं रूसी और चीनी और कुछ-कुछ ढुलमुल लोग जैसे कि सिकियांग वाले। ये सब सोवियत विचार और तलवार के वाहक हैं, कम से कम फ़िलवक़्त। इसलिए, अब जो फ़ैसल होने को है, वह है अफ़गानिस्तान, तिब्बत, नेपाल और बर्मा की तक़दीर।

इन इलाक़ों और लोगों के एक खास स्वरूप पर ग़ौर करना चाहिए। हिन्दुस्तान की तरफ़ वाली हिमालय सीमा पर, उनमें से हर एक के तदनुरूप, गहरे सम्बन्धों के इलाक़े और लोग हैं, जैसे, दोनों तरफ़ के आदिवासी इलाक़े और पश्चिम के पठान और पूर्व के तिब्बती-बर्मी और, बीच में, नेपाली और तिब्बती वंश परम्परा के भी हिन्दुस्तानी जैसे कि सिक्किम और भूटान में। हिमालय के दोनों ओर के इन संयुक्त समूहों में आदान-प्रदान का सम्बन्ध विद्यमान है। जो कोई इस या उस समूह को पकड़ लेगा, उसे राज्य की नीति का एक साधन इससे उपलब्ध हो जाएगा।

न हिमालय की बर्फ़, न ही उसकी अलंघ्य चढ़ाई अब हिन्दुस्तान के संतरी का काम कर सकती है। इन ८ करोड़ लोगों की शरीर तुष्टि और मन की दृढता ही हिन्दुस्तान को सुरक्षा प्रदान कर सकती हैं। परराष्ट्र और रक्षा नीतियों की पुरानी धारणाएँ बदलनी पड़ेंगी। अब युद्धनीति ही नैतिकता है, राष्ट्रीयता ही विश्वराष्ट्रीयता

है, और हिन्दुस्तान के, दुनिया के और हिमालयवासियों के हित एक ही हैं। हिन्दुस्तान, उसकी जनता और सरकार को भी, एक हिमालय नीति बनानी चाहिए, जो युद्धनीतिक और नैतिक दोनों हो।

तिब्बत पर चीनी हमले ने, जिसकी तुलना केवल शिशु-हत्या से ही की जा सकती है, उन प्रवृत्तियों और संघर्षों को उघाड़ कर रख दिया है जो कि पैनी दृष्टि रखने वाले के लिए पहले से ही स्पष्ट थे। एशियाई दिमाग़ जैसी कोई चीज़ है नहीं। शायद, एशियाई आवश्यकता जैसी कोई चीज़ है। किन्तु तीन प्रकार के दिमाग़ उसे अभिव्यक्ति देने की कोशिश कर रहे हैं, और उन्होंने परस्पर विरोधी तीन एशिया पैदा कर दिये : यथास्थित एशिया, कम्युनिस्ट एशिया और समाजवादी एशिया। तिब्बत में यथास्थित एशिया टकरा गया है कम्युनिस्ट एशिया से, पर कोई भी, एशिया अथवा तिब्बत की जनता की आवश्यकताओं को अभिव्यक्त नहीं कर सकता।

भ्रष्ट और भीरु नौकरशाही का टकराव हुआ उस प्रतिक्रियावादी साम्यवाद से जो हत्या और शासन करने के लिए कटिबद्ध है और, तिब्बतियों समेत कई एशियावासियों के लिए, दोनों के बीच चुन लेने लायक़ कोई चीज़ नहीं है। यथास्थित एशिया का प्रतिनिधित्व करने वाली तिब्बती सरकार और कम्युनिस्ट एशिया का प्रतिनिधित्व करने वाली चीनी फ़ौजों के बीच की लड़ाई में, तिब्बती जनता की न कोई जगह रह जाती है, न वस्तुतः, किसी एशियाई जनता की, जो सक्रिय बराबरी और स्वस्थ सक्रियता वाली नयी सभ्यता की कामना रखते हैं। समाजवादी एशिया की यह बहुत साफ़ हार है कि वह तिब्बती जनता में समाजवादी चेतना नहीं ला सका। चेतावनी के बावजूद, हिन्दुस्तान की सरकार ने साम्राज्यवादी भाषा में तिब्बती आधिपत्य की बात की या हिन्दुस्तान के साथ तिब्बती सम्बन्धों को भुला दिया जो कि चीन के मुक़ाबले में ज़्यादा घनिष्ट थे। यह घटना दुर्भाग्यपूर्ण हुई।

इस मामले में तिब्बती जनता को लाना क्या अब भी सम्भव हो सकता है? इसका कुछ जवाब तो नेपाल में हुई क्रान्ति में मिलता है जो कि तिब्बत पर हमले के पीछे-पीछे लगी हुई ही हुई। उस समय जबकि दुनिया का मन अतलांतिकी और सोवियत फ़ौजों से आक्रान्त था और कुटिलता इतना गहरा घर कर गयी थी कि मुक्ति और विजय के बीच रेखा खींचना कठिन था, नेपाली जनता जनशक्ति और तीसरे खेमे की, जैसे नाटकीय ढंग पर, साक्षी बन गयी। नेपाल की जनता ने ४ साल तक इस विद्रोह की तैयारी की थी, और इस तैयारी से तिब्बत को भी सीखना चाहिए। एक लम्बे अरसे तक नेपाली कांग्रेस नेपाली वंश परम्परा में हिन्दुस्तानियों के श्रम से पनपी। इसी तरह, तिब्बती वंश की परम्परा के हिन्दुस्तानी भी स्वतन्त्र और समाजवादी तिब्बती की ओर से प्रयत्न कर सकते हैं।

नेपाली विद्रोह से घाघ हिन्दुस्तानी और अतलांतिक खेमा बिलकुल खुश नहीं हैं। वे कहते हैं कि नेपाल में अस्थिर अवस्था सोवियत खेमे को आमन्त्रित करेगी कि वह आए। हर आदमी जानता है कि सत्य इसके विपरीत है। यथास्थिति ज़ुल्मी राज के रहते तो सोवियत वाले नेपाल में ऐसे घुस पड़ेंगे जैसे मक्खन में छुरी। केवल जनतांत्रिक और समाजवादी नेपाल ही, चाहे वह कितना ही अस्थिर हो, हमले और विदेशियों के राज से अपनी रक्षा करेगा। यह सही है कि जनतांत्रिक नेपाल से अब अतलांतिक फ़ौज के लिए गुरखे रंगरूट नहीं मिलेंगे, और शायद उसी से अतलांतिक खेमा घबरा गया है। यह भी सही है कि जनतांत्रिक नेपाल को समाजवाद और भूमि के बँटवारे की दिशा में अधिक बढ़ना चाहिए, और शायद इससे हिन्दुस्तान के ज़मींदार घबरा गये हैं।

हिन्दुस्तान की शासक पार्टी का दिमाग़ अस्थिर रहा। उसने नेपाली विद्रोह की तैयारी में सहयोग तो नहीं ही दिया, उन समाजवादियों को गाली तक दी जिन्होंने नेपाली कांग्रेस के निर्माण में सहायता दी, और नेपाली विद्रोह के प्रति ग़ैरमदाखलत की नीति को उसने अपना लिया। ग़ैरमदाखलत का मतलब है यथास्थिति और ज़ुल्म का साथ देना। हर हालत में, जनता और सरकार की नेपाल-नीतियों में अन्तर होना चाहिए। हिमालय में स्वाधीनता के मामले पर भारत सरकार जब कभी सही या ग़लत तौर पर ग़ैरमदाखलत की नीति अपनाए, हिन्दुस्तानी जनता को अपने पड़ोसी को जनतन्त्र हासिल करने या क़ायम रखने में ज़्यादा दृढ़ निश्चय से सहायता करनी चाहिए। यही युद्ध नीति और नैतिक, दोनों है।

गोवा और नेपाल में ४ बरसों के अनुभव से यह साबित हो गया कि पड़ोसी देशों मे अब जनतंत्र के लिए कोई प्रयास किया जाए तो उसे साफ़ तौर पर समाजवादी प्रयास कहना चाहिए। नाम में क्या धरा है, यह कविता के लिए अच्छा लग सकता है, लेकिन, कांग्रेस और समाजवादी दल के बीच संघर्ष के भारतीय सन्दर्भ में, नाम पर बहुत कुछ निर्भर करता है। चाहे गोवा और नेपाली कांग्रेसों को, हिन्दुस्तान के कांग्रेसियों की अपेक्षा, समाजवादियों से ही मदद मिली हो, उनके नाम घपला पैदा करते हैं, और कुछ प्रतिक्रियाएँ होती हैं, और उन नामों के कारण बुनियादी सुधारों में बाधा पड़ती है। परन्तु दिल्ली में बड़ा आकर्षण है और प्रलोभन है, और हिन्दुस्तान का शासक दल, हमेशा और बिना कुछ किये-धरे, पड़ोसी देशों की जनतांत्रिक शक्तियों से कम से कम एक अंग को अपनी तरफ़ ले कर शरारत कर ही सकता है। भारत सरकार से सहायता की सम्भावना के कारण ये जनतांत्रिक शक्तियाँ पहल लेने से वंचित हो जाती है और इनके आत्मविश्वास और त्याग की भावना में कमज़ोरी आ जाती है और फिर वे मौक़े पर काम करने की बनिस्बत 'लाबी' में प्रभावित करने के फेर में पड़ जाते हैं। सानुराग आशा तो करनी चाहिए कि नेपाली विद्रोह सभी पहाड़ियों और मैदानों में फैलेगा और हर एक झोपड़ी के अन्दर पहुँच जाएगा ताकि अनधिकारियो की सत्ता समाप्त हो जाए, जनता की सत्ता की समितियाँ

स्थापित की जा सकें, और नेपाली कांग्रेस के सभी तत्व मौक़े पर ही काम करेंगे। तब नेपाल में ऐसी व्यापक क्रान्ति होगी जो दुनिया के लिए उतनी ही महत्त्वपूर्ण होगी, जितनी कि हिन्दुस्तान की। उससे नेपाल की जनता को शारीरिक तुष्टि और मानसिक दृढ़ता मिलेगी ज़मीन का न्यायसंगत बँटवारा होगा और गाँव में सत्ता आएगी और इस तरह, दुनिया के मामलों में तीसरा खेमा नाटकीय ढंग पर आगे आएगा।

तिब्बती वंश परम्परा के हिन्दुस्तानी एक महत्त्वपूर्ण काम कर सकते हैं बशर्ते कि वे उसके प्रति जागरूक हो जाएँ। कुछ मात्रा में उन्होंने ऐसा किया भी है। ताशी शेरिंग और समाजवादी सी. डी. राय जैसे लोगों ने, महाराजा के विरुद्ध और लगभग भारत सरकार के विरुद्ध, सिक्किम को हिन्दुस्तान के लिए बचा लिया। लेकिन दिल्ली के लिए ताशी शेरिंग जसे लोगों का कोई उपयोग नहीं। सिक्किम का शासन चलाने के लिए और उस इलाक़े के और तिब्बत के मामलों की निगरानी के लिए उसने 'सिविलियनों' को भेजा है। राजा दोरजे भूटान की अपेक्षा दार्जिलिंग में ज़्यादा रहते हैं, और भूटान के प्रधान मंत्री के रूप में नहीं बल्कि अपनी घुड़दौड़ के लिए ज़्यादा प्रख्यात हैं, और ऐसे लोग भारत सरकार की नीतियों के लिए बहुत अनुकूल जँचते हैं। परन्तु, भूटान बेचैनी अनुभव करने लगा है। प्रासंगिक रूप में, सिक्किम और भूटान दोनों में, नेपाली वंश परम्परा के हिन्दुस्तानियों का बहुमत है, लेकिन सामन्ती दृष्टिकोण इन दोनो इलाक़ों को उनके तिब्बती राजाओं से ही जोड़ता है। बहरहाल, तिब्बती वंश परम्परा के हिन्दुस्तानी तिब्बत के लिए जनतन्त्र का वाहन बन सकें, इसके पहले सिक्किम और भूटान और दार्जिलिंग में जनतन्त्र आना चाहिए। तिब्बत के पश्चिमी द्वार जैसे अलमोड़ा के दुर्गासिंह और पूर्वी द्वार जैसे कालिम्पोंग और गंगटक के ताशी शेरिंग जैसे हिन्दुस्तानी तिब्बती लोगों को ज़मीन के पुनर्विभाजन और प्रशासन में सुधार के साथ-साथ स्वतन्त्र रहने और तीसरे खेमे की नीति का अनुसरण करने की आवश्यकता के प्रति जागरूक कर सकते हैं। तिब्बत के अन्दर, वहाँ की जनता का विशाल समूह और महन्त, जिनमें सुन्डा सम (ल्हासा के तीन बड़े स्तम्भ या तीन बड़े मठ) भी शामिल हैं घर में समाजवाद और बाहर तीसरे खेमे की नीति की हामी भरेंगे।

इस हिन्द-तिब्बत समस्या का कितना महत्त्व है, यह हमारी आसाम सीमा पर जो अस्थिरता है, उससे भी समझा जा सकता है। बलिपाड़ा के उस भूखंड पर, जिसकी चौड़ाई १०० मील के अन्दर ही है, एक रमणीक स्थान है जिसे सदाबसन्त कहते हैं और जो तेजपुर से ६० मील के क़रीब है वहाँ कितने लोग गये हैं। दाफ़ला, अबोर और नागा तीसरे खेमे के सम्भाव्य वाहक हैं, उतने ही जितने कि अतलान्तिक या सोवियत खेमे के, और वे क्या होंगे। हिन्दुस्तान की जनता को यह जान कर आश्चर्य होगा कि नागा वीरांगना, रानी गिलालो को, जिसके कि कांग्रेसियों ने कभी गीत गाये थे, भुला दिया गया था और दो साल तक उसकी आज़ादी छिन गयी थी। जब मैंने आसाम के राज्यपाल का ध्यान उस तरफ़ खींचा तो वह छूटीं। भारत सरकार की कोई नीति नहीं है।

कोई दो बरस पहले, आसाम में आदिवासी क्षेत्रों के बारे में कुछ नीतियों की रूप-रेखा बतलायी गयी थी जिन्हें यहाँ दुहराया जा सकता है। हिन्दू धार्मिक संपत्ति से होने वाली आमदनी का एक बड़ा हिस्सा इन क्षेत्रों में शिक्षा और सामाजिक सुधार के प्रचार कार्य में लगाया जा सकता है, इस क्षेत्र की प्रमुख भाषाओं और साहित्य के लिए गौहाटी विश्वविद्यालय उनके विभाग खोल सकता है, इस अपरिमित परती ज़मीन पर एक अन्न सेना काम शुरू कर सकती है और समूचे देश से बलिपाड़ा तथा सादिया भूखंड पर आमोद और साहसिक भ्रमण की व्यवस्था की जा सकती है।

अपनी रूमानियत की सुगंध के कारण और उतना ही लड़ाइयों के कारण; सरहदें हमेशा बहुत ही उद्दीपक होती हैं। एक सौ मील की नागा पहाड़ियों के बीच से सफ़र करते हुए, इम्फाल में भारतीयता की आखरी चौकी पर पहुँचने में कितना विचित्र अनुभव होता है। वहाँ हिन्दुस्तान का ओज, पहले के आवासो की अपेक्षा, गहरे प्रभावों के लिए उद्यमशील रहा है। लड़ाई की गन्ध हमेशा के लिए मिट जानी चाहिए, किन्तु रूमानियत की गंध मैदानी और आदिवासी जनता, दोनों का भला करेगी। और, मानव जाति के इन महान् पर्वतों ने एक ऐसे मस्तिष्क को जन्म दिया है जो कभी-कभी इन्द्रजाल की ओर जाता है और फिर रहस्यवाद की तरफ़, उस तरफ़ ज्यादा जिसे भूत-प्रेत कहते हैं और फिर भी कभी-कभी गहरे अन्वेषण की ओर। इन्द्रजाल और भूत-प्रेत की बातें खतम होनी चाहिए और विनीत अन्वेषण की सादगी और सहानुभूति सभी प्रयत्नों में रूपान्तरित होनी चाहिए।

आदिवासी क्षेत्रों और सरहदी सूबे में अफ़गान वंश परम्परा के हिन्दुस्तानी भारत के विभाजन से सहज ही खिन्न हैं। ईपी के फ़क़ीर ने एक आरज़ी सरकार बना ली है और सरहदी गाँधी तथा फ़क़ीर के तहत ८० लाख लोग पठान सूबा बनाने के लिए यत्न-शील हैं। इसमें अफ़गानिस्तान गहरी और सीधी दिलचस्पी ले रहा है। इन पठान आन्दोलनों के प्रति अपनी नीति घोषित करने में अगर भारत सरकार को अड़चन पड़ती हो तो भी, हिन्दुस्तान की जनता को और, विशेषत: समाजवादी दल को स्वतंत्रता और जनतंत्र की पठान माँग के साथ होना चाहिए। अतलांतिक या सोवियत प्रणाली के विनाश-कारी आघात से बचने के लिए अफ़गानिस्तान की जनता यदि घर में समाजवाद की और बाहर तीसरे खेमे की नीति अपना ले तो अच्छा होगा।

यथास्थित एशिया में अतलान्तिक खेमा अपने दोस्तों की तलाश करता है और कम्युनिस्ट एशिया में सोवियत खेमा, और दोनों समाजवाद और स्वतंत्रता प्रेमी एशिया को समझ नहीं पा रहे हैं। इस ग़लतफ़हमी के लिए कुछ हद तक भारत सरकार की नीतियाँ जिम्मेदार हैं। केवल उद्दीपन और निष्पत्ति कुछ नहीं से दोनों खेमे उतने ही क्रुद्ध होते हैं जितने कि कभी इसकी और कभी उसकी सेवा से। हिमालयी क्षेत्रों के बारे में तीसरे खेमे की सच्ची नीति से न अतलान्तिक खेमे की और न ही सोवियत खेमे की कोई ठोस सेवा

हो सकेगी पर उससे इस निषेधात्मक फ़ायदे की गारंटी की जा सकती है कि इस क्षेत्र का दोनों के विरुद्ध कोई प्रयोग नहीं होगा।

तीसरे खेमे को हस्तक्षेप और उपेक्षा की सीमा समझ लेनी चाहिए। किसी देश के अन्दरूनी मामलों में वह निःसन्देह हस्तक्षेप नहीं कर सकता न ही वह चीन की तरह मुक्ति सेनाओं के शर्मनाक नाम पर अपनी आक्रमणकारी सेना भेजेगा। इसके साथ ही, अपने किसी क्षेत्र में जनतंत्र और स्वाधीनता की हत्या होते समय वह दर्शक बनने की जुर्रत नहीं कर सकता और, सशस्त्र हस्तक्षेप को छोड़ कर, उसे अपने सभी क्षेत्रों में जनतंत्र और समाजवाद के विकास में सहयोग देने की अपने बूते भर हरचन्द कोशिश करनी चाहिए। उदाहरणार्थ, हिमालय पर्वतमाला में होने वाली घटनाओं के प्रति यदि हिन्दुस्तान की जनता उपेक्षा अथवा ग़ैरहस्तक्षेप की भी नीति अपना ले, तो एक शून्य हो जाएगा जिसे या तो अतलांतिक या फिर सोवियत खेमा पूरेगा ही। विश्व, सम्बन्धित देशों और हिन्दुस्तान, तीनों के हित में दोनों खेमों से हिमालय की रक्षा और जनतांत्रिक और सामाजिक शक्तियों के विकास हिन्दुस्तान की जनता के लिए एक बडी चुनौती है।

भारत सरकार की घरेलू नीतियाँ और वैदेशिक नीतियाँ भी तीसरे खेमे के विकास में स्पष्ट ही आड़े आती हैं। जब हिन्दुस्तान समता के आधार पर जमीन का बँटवारा कर लेगा और विकेन्द्रित सत्ता, आर्थिक और राजनीतिक भी, की खातिर नोकरशाही के प्रशासन को खतम कर देगा, तब उस एक काम से वह उस हिमालय के मन में दृढता और शरीर में आशा का संचार कर सकेगा। हिमालय फिर एक बार दुर्भेद्य होगा और न केवल भारतीय स्वाधीनता का, बल्कि विश्वशान्ति का भी परम्परागत संतरी बन सकेगा।

पिछले तीन बरसो में समाजवादी दल ने ऐसी हिमालय नीति के अनुरूप काम करने का प्रयत्न किया है। वह ऐसी नासमझ आलोचना से परेशान नहीं हुआ कि परराष्ट्र नीति की ऐसी समस्याएँ सरकार की होती हैं न कि जनता की या जनता के किसी राजनीतिक दल की। जब दिल्ली के मालिक हिन्दुस्तान की पैतृक सम्पत्ति का अपव्यय कर रहे हैं, देश की जनता और उसके राजनीतिक दलों को और भी बड़ी शक्ति में क्रियाशील होना चाहिए। हिन्दुस्तान की जनता और समाजवादी दल के सदस्यों और विशेष रूप से उन्हें जो हिमालय पर्वतमाला के दोनों ओर बसते हैं हिमालय नीति के सचेत वाहन होना चाहिए, ऐसी नीति जो घर में समाजवाद और बाहर तीसरे खेमे पर आधारित हो। समाजवादी और स्वाधीनता प्रेमी एशिया को यथास्थित और कम्युनिस्ट एशिया की समान रूप से खतरनाक प्रतिक्रिया को पछाड़ देना चाहिए और, ऐसे, एशियाई आवश्यकता और एशियाई मन की सच्ची अभिव्यक्ति प्रदान करनी चाहिए।

१९५०, नवम्बर।

हिमालयी प्रदेश*

नेपाल

क्षेत्रफल : ५६,००० वर्गमील। एक सीमान्त पर भारत दूसरे सीमान्त पर तिब्बत।

जनसंख्या : १ करोड।

भू-प्रदेश : हिमालयी पर्वतीय प्रदेश।

निवासी : नेवारी, गुरखे, और मैदानी लोग। गुरखे सेना में काम करते हैं, अन्य लोग दस्तकारी और कृषि में लगे हैं। हज़ारों आदमी दरिद्रता और भूख की मार से बचने के लिए देश छोड़ देते हैं। वे सामान्यतः भारतीय सेना में भरती हो जाते हैं, या पूर्वी ब्रिटिश सैन्य दल मे चौकीदारी जैसे कम वेतन वाले काम में लग जाते हैं।

इतिहास : पिछली सदी में, जब कि भारत में ईस्ट इंडिया कम्पनी अंग्रेज़ी हुकूमत को जमाने मे लगी हुई थी, नेपाल ने अपनी स्वतंत्रता बचाये रखने की कोशिश की। लेकिन १८१४–१६ के नेपाल-युद्ध मे नेपाल दरबार के कुछ रईसों की शह पा कर ब्रिटिश सेना नेपाल पर चढ़ आयी। नेपालियों ने उस वक़्त जो मुक़ाबिला किया, उसकी तारीफ़ एक अंग्रेज इतिहासकार ने भी "शौर्य के चरमोत्कर्ष के अनुरूप" कह कर की। सन् १८१६ की संधि के बाद भी महाराजा राजेन्द्र विक्रम ने, सिक्खों और मराठों से मिल कर, अंग्रेज़ों को भारत से निकाल बाहर करने की योजना बनायी। अंग्रेज़ रेज़ीडेंट को जब इसकी खबर लगी, तो उसने एक रईस जंग बहादुर के साथ साजिश करके सत्ता हथियाने की कोशिश की। २५ अक्तूबर, १८४६ को कोट में क़त्लेआम हुआ जिसमें सैकड़ों नेपाली अधिकारी क़त्ल कर दिये गये; जंग बहादुर, प्रथम राणा प्रधानमंत्री बना, उसे तानाशाही

---

* ये विवरण सन् १९५० में सोशलिस्ट पार्टी के कार्यालय में तैयार किये गये थे और पिछले अध्याय की सामग्री के साथ प्रकाशित हुए थे। तब से कई परिवर्तन हो गये हैं, जो हाल-साल की बात है।

के अधिकार मिल गये। बदले में, उसने अंग्रेजों को १८५७ के भारतीय विद्रोह को कुचलने में मदद की। तब से हमेशा गुरखे सैनिकों का प्रयोग अंग्रेज़ बर्मा, इंडोनेशिया, वीयतनाम और यूनान में राष्ट्रवादियों के विरुद्ध करते रहे। १५ अगस्त, १९४७ को भारतीय स्वतंत्रता मिलने के पहले, लंदन और नयी दिल्ली में नेपाली दूतावास थे। हाल-साल में नेपाल और संयुक्त राष्ट्र अमरीका के बीच मंत्री-स्तर पर दौत्य-संबंध थे। अप्रैल १९४७ में संयुक्तराष्ट्र अमरीका के राष्ट्रपति का एक व्यक्तिगत दूत नेपाल आया, और नेपाल और अमरीका ने सर्वप्रथम राजनीतिक-व्यावसायिक संधि-पत्र पर हस्ताक्षर किये। अब तक ब्रिटेन ही एकमात्र मित्र था, नेपाल ने इस स्थिति को समाप्त कर दिया।

प्रशासन : सभी प्रशासनिक अधिकार राणा परिवार के हाथ में हैं, वंशानुगत रूप से वे प्रधान-मंत्री तथा सेनापति हैं; महाराजा तो कठपुतली हैं। वर्तमान महाराजा त्रिभुवन, जब उन्हें राणाओं का वर्चस्व असह्य हो गया, नवम्बर १९५० मे भाग कर काठमांडू-स्थित भारतीय दूतावास में आये और फिर भारतीय दूतावास के प्रयत्न से विमान द्वारा दिल्ली आ गये। राणा प्रधान मंत्री ने तुरन्त घोषणा कर दी कि महाराजा ने गद्दी त्याग दी है; और महाराजा के तीन वर्ष के पौत्र को महाराजा घोषित कर दिया; भारत सरकार ने नये महाराजा को मान्यता देने से इनकार कर दिया, लेकिन साथ ही नेपाल में जन-संघर्ष के प्रति उदासीन बनी रही। दूसरी ओर उसने राणा गुट के साथ नेपाल में प्रशासन के जनतंत्रीकरण के बारे में बातचीत शुरू कर दी। बातचीत चल रही है, लेकिन कोई ठोस परिणाम निकलने की सम्भावना नहीं है।

शिक्षा : पूरे नेपाल में सिर्फ़ ७ हाई इंगलिश स्कूल हैं, एक कालेज है, जिसमें बी. ए. डिग्री तक की पढ़ाई होती है।

संचार-व्यवस्था : नेपाल भर में कुल ४५ मील लम्बी छोटी रेल्वे लाइन और ३६ मील पक्की सड़क है।

जन-संगठन और संघर्ष : राणा परिवार की तानाशाही को समाप्त करने के व्यक्तिगत प्रयत्न अतीत में कई बार हुए, लेकिन वे असफल रहे; सन् १९३४ में प्रजा परिषद् (नेपाल पीपुल्स कानफ़रेन्स) बनी; लेकिन तुरन्त ही उसका काम बन्द हो गया क्योंकि इसके दो प्रमुख कार्यकर्ता फाँसी पर चढ़ा दिये गये, दो को गोली मार दी गयी और अन्य लोगों को १८ साल से ले कर आजीवन कारावास तक की सज़ा दे दी गयी; तब कलकत्ते में डा. राममनोहर लोहिया ने, नेपाल में जनता की लोकतंत्री शासन-व्यवस्था की स्थापना के उद्देश्य से, नेपाल नेशनल कांग्रेस का उद्घाटन किया; सन् १९४७ मे नेपाल के विराट नगर की मज़दूर हड़ताल से, जिसमें नेपाल पुलीस ने तीन हड़ताली महिलाओं को गोली मार दी थी, नेपाल नेशनल कांग्रेस ने राज्य-व्यापी सत्याग्रह किया; नेपाल के प्रधान मंत्री ने शासन-व्यवस्था में सुधार के आश्वासन दिये और भारत के प्रधानमंत्री पंडित नेहरू ने

नेपाली कांग्रेस को सत्याग्रह वापस ले लेने की सलाह दी। सत्याग्रह वापस ले लिया गया, लेकिन सत्याग्रह के सिलसिले में गिरफ़तार १०० से अधिक व्यक्ति अभी भी नेपाल के आदिकालीन जेलों के सीखचों में बन्द हैं; सन् १९४८ की जनवरी में नेपाल सरकार ने संविधानिक सुधार के आश्वासन जनता को दिये लेकिन अब तक एक भी कार्यान्वित नहीं हुआ है; दूसरी तरफ़ प्रधानमंत्री पद्म शमशेर को राणा परिवार के अन्य सदस्यों ने, जिनमें वर्तमान प्रधान मंत्री मोहन शमशेर भी सम्मिलित थे, त्यागपत्र देने को विवश किया। सन् १९४८ के उत्तरार्ध में कुछ नरमपंथी नौजवानों ने, सरकार द्वारा घोषित संविधान के अन्तर्गत काम करने के लिए, प्रजा पचायत की स्थापना की; यद्यपि संविधान ने राणाओं के अधिकार और सुविधाओं को यथावत् सुरक्षित रखा था; लेकिन इस नरम-संगठन के नेता भी गिरफ़तार कर लिये गये, और जब जनता ने बग़ैर किसी नेता के पथप्रदर्शन के सत्यग्रह छेड़ा तो ५०० से अधिक व्यक्ति गिरफ़तार हुए; तब से आन्दोलन और शान्तिपूर्ण जन-संघर्ष समय-समय पर होते रहे हैं, जिनका मुक़ाबला राणा प्रशासन ने हिंसा और दमन से किया है। हाल ही में जब महाराजा त्रिभुवन ने भाग कर काठमांडू के भारतीय दूतावास में शरण ली और वहाँ से भारत चले आये, नेपाल के जन संगठनों ने मिल कर नेपाल में जनतंत्रात्मक शासन की स्थापना की माँग की, जिसमें महाराजा संविधानिक प्रधान बने रहेंगे। नेपाल जन कांग्रेस के हथियारबन्द स्वयंसेवको ने कई नगरों पर अधिकार कर लिया लेकिन राणा सरकार के सैनिक दबाव के कारण उन्हें वे नगर छोड़ने पड़े। राणा हुकूमत के आंतक के बावजूद जानता राणा तानाशाही के विरुद्ध नेपाल कांग्रेस का पूरी तरह समर्थन कर रही है।

तिब्बत

क्षेत्रफल और जनसंख्या : ४ लाख ७५ हज़ार वर्गमील क्षेत्रफल और ३० लाख की जनसंख्या वाले इस हिमालयी प्रदेश ने सदियो तक दुनिया की हलचलों से अलग अपनी परम्परा-गत एकान्तता बनाये रखी है। किन्तु एकाएक अक्तूबर के अन्तिम सप्ताह में यह सारी दुनिया के समाचारों का केन्द्र बन गया—जबकि पीकिंग रेडियों ने घोषणा की कि चीनी जनसेना की सैनिक टुकड़ियों को ३० लाख तिब्बतियों को साम्राज्यवादी आक्रमण से मुक्त करने तथा चीन की पश्चिमी सीमा की सुरक्षा-व्यवस्था को सुदृढ बनाने के लिए तिब्बत में प्रवेश करने का आदेश दे दिया गया है।

संस्कृति : जातीय और भाषा की दृष्टि से तिब्बत कभी भी चीन का अंग नहीं रहा है। लामावाद से संयुत बौद्धधर्म की महायान शाखा का विकास यहाँ की विशुद्ध स्थानीय चीज़ है। सांस्कृतिक दृष्टि से यह अन्य किसी देश की अपेक्षा भारत से अधिक संबद्ध है। आध्यात्मिक, अहिंसाप्रिय और सुरक्षा की दृष्टि से कमज़ोर तिब्बतियों पर हमेशा पड़ोसियों की गृद्ध दृष्टि रही है।

इतिहास : चीन सन् १७२० से तिब्बत पर अपने अधिराजत्व का आग्रहपूर्ण दावा करता रहा है। वर्तमान सदी के प्रारम्भ में रूस और ब्रिटेन तिब्बत में एक दूसरे के प्रभाव को समाप्त करने की दिशा में प्रवृत्त थे। सन् १९०४ के तिब्बत-अभियान के बाद, ल्हासा में हुई संधि के अनुसार ब्रिटेन ने तिब्बत में एक व्यापार-मिशन रखने का अधिकार प्राप्त कर लिया। तब से भारत और तिब्बत के बीच व्यापार-व्यवसाय बढ़ा है। तिब्बत पर चीन के प्रभाव की कई अवस्थाएँ रही हैं—सैनिक नियंत्रण से ले कर लगभग वास्तविक स्वतंत्रता की स्वीकृति तक—जबकि चीन ल्हासा में अपना एक 'अम्बन' रखने मात्र से संतुष्ट रहता। अंतिम चीनी सैनिक क़ब्ज़ा सन् १९११ में समाप्त हुआ जब कि वे वहाँ से निकाल दिये गये और चीन, तिब्बत और ब्रिटेन के बीच एक संधि हुई जिसमें तिब्बत की स्वायत्तता स्वीकार की गयी। सन् १९११ के बाद नवीन जनतंत्रवादी चीन ने इस संधि को मान्यता नहीं दी, लेकिन इसका कारण सीमारेखा संबंधी मतभेद था, न कि तिब्बत की स्वायत्तता का सिद्धान्त।

हाल की घटनाएँ : गत जनवरी माह में पीकिंग ने तिब्बत को जनवादी चीनी गण-राज्य के प्रदेश का एक अंग मान कर उस पर अपना दावा घोषित किया और ल्हासा से कहा कि वह बातचीत के लिए एक प्रतिनिधि मंडल पीकिंग भेजे। यह दुर्भाग्य की बात है कि उस समय भारत सरकार ने अनपेक्षित रूप से आगे आ कर यह स्पष्ट किया कि सैनिक हस्तक्षेप करने का उसका कोई इरादा नहीं है। भारत सरकार के निवेदन का कि तिब्बत के साथ व्यवहार में नरमी बरती जाए पीकिंग ने उत्तर दिया कि बातचीत शान्तिपूर्ण समाधान के लिए की जाएगी। पिछले अप्रैल में एक सात-सदस्यीय प्रतिनिधि मंडल ल्हासा से भारत आया; यहाँ पहुँचने पर प्रतिनिधि मंडल के नेता ने कहा कि हम चाहते हैं कि "हमें अपना जीवन अपने ढंग से बिताने की छूट रहे।" गर्मियों में तिब्बत प्रतिनिधि मंडल और चीनी कम्युनिस्टों ने भारत को बीच में रख कर एक-दूसरे के मन का भेद लिया। अन्ततः २३ अक्तूबर को नयी दिल्ली से घोषित किया गया कि तिब्बती प्रतिनिधि मंडल पीकिंग में दीर्घ-प्रतीक्षित सम्मेलन में भाग लेने के लिए भारत से रवाना हो रहा है। २४ अक्तूबर को घोषणा आयी कि चीनी सेना तिब्बतियों को साम्राज्यवादी दमन से मुक्त करने के लिए तिब्बत में प्रवेश कर रही है।

६ नवम्बर को ब्रिटेन की लोकसभा में विदेशी मामलों के संसदीय अवर सचिव श्री अर्नेस्ट डेविस ने तिब्बत के बारे में क़ानूनी स्थिति इस प्रकार बतायी : "सन् १९४७ में जब भारत को सत्ता हस्तान्तरित की गयी, तब तिब्बत के बारे में चालू संधियों के अनुसार ब्रिटिश सरकार के जो अधिकार और दायित्व थे, सभी भारत सरकार ने ग्रहण कर लिये...तिब्बत को इस परिवर्तन की सूचना देते समय हमने अपना यह इरादा प्रकट किया कि तिब्बत की स्वायत्तता में हमारी मित्रवत् दिलचस्पी बनी रहेगी। लम्बे अरसे से हम तिब्बत पर चीन का अधिराजत्व स्वीकार करते आये हैं लेकिन यह मान कर कि

तिब्बत को स्वायत्तता प्राप्त रहेगी। बहुत वर्षों से चीन का यह अधिराजत्व औपचारिकता से अधिक कुछ नहीं रहा है और असल में सन् १९११ से तो तिब्बत वस्तुतः स्वतन्त्र रहा है।"

पीकिंग-स्थित अपने राजदूत से तिब्बत में चीनी सेना के अभियान की बात मालूम होने पर भारत सरकार ने चीन सरकार के साथ इस विषय पर कुछ लिखा-पढ़ी की। भारत सरकार ने "आश्चर्य और खेद" प्रकट किया और इस बात पर ज़ोर दिया कि घनिष्ठ सांस्कृतिक और व्यावसायिक सम्बन्धों के परिणाम-स्वरूप पड़ोसी तिब्बत और भारत के बीच "व्यवहार और संधियों के कारण कतिपय अधिकार के सम्बन्ध पैदा हो गये हैं। कम्युनिस्ट चीन को राष्ट्र संघ की सुरक्षा परिषद् में स्थान दिलाने के लिए भारत के प्रयत्नों के बावजूद चीन ने तिब्बत के सम्बन्ध में भारत की भावनाओं का ज़रा भी आदर नहीं किया।

तिब्बत ने राष्ट्रसंघ के समक्ष "आक्रमण की इस असंदिग्ध घटना" के विरुद्ध औपचारिक रूप से अपील की है। राष्ट्र संघ के एक सदस्य देश अल् सलवाडर की सरकार ने "विदेशी सेनाओं द्वारा तिब्बत पर आक्रमण" इस विषय को अपनी कार्यावलि में सम्मिलित करने का निवेदन राष्ट्र संघ की जेनरल असेम्बली से किया है।

कश्मीर

हिमालय की मनोरम तराई में स्थित कश्मीर, १५ अगस्त १९४७ को अंग्रेज़ों के भारत छोड कर जाने के पहले, ५६५ देशी रियासतों में एक रियासत था।

निवासी : ७८ प्रतिशत आबादी इस राज्य में मुसलमानों की है; शेष २२ प्रतिशत हिन्दू और सिक्ख हैं; कश्मीर राज्य के तीन प्रमुख भाग हैं—(१) कश्मीर, (२) जम्मू और (३) गिलगिट और लद्दाख़ के सरहदी ज़िले; तिब्बत की सीमा से लगे इन दो सरहदी ज़िलों के पूर्वी अंचलों में लगभग ५० हज़ार बौद्ध हैं; कश्मीर की आधी सीमा-रेखा पाकिस्तान से लगी हुई है।

शासन : राज्य के शासक अर्थात् महाराजा को आन्तरिक प्रशासन के मामलों में सम्पूर्ण अधिकार प्राप्त थे; अंग्रेज़ी सरकार श्रीनगर-स्थित अपने रेज़ीडेंट के मारफ़त देखभाल रखती थी। सन् १९३४ में सीमित अधिकारों वाली एक निर्वाचित विधान सभा का निर्माण हुआ।

जन-संगठन और जन-संघर्ष : अगस्त १९४७ के पहले राज्य में कई राजनीतिक दल और गुट विद्यमान थे—नेशनल कानफ़रेंस, मुसलिम कानफ़रेंस, कश्मीर पंडित कानफ़रेंस, सोशलिस्ट ग्रूप, किसान मज़दूर कानफ़रेंस और कश्मीर राज्य हिन्दू सभा। इनमें से नेशनल कानफ़रेंस एक असांप्रदायिक संगठन था, व्यापक आधार पर संगठित इस कानफ़रेंस

को जनता का काफ़ी सहयोग प्राप्त था; इसने कई बार जनता के जनतंत्री अधिकारों की प्राप्ति के लिए आन्दोलन चलाये।

हाल की घटनाएँ : अगस्त १९४७ में अंग्रेज़ों के चले जाने और देश के भारत और पाकिस्तान में बँट जाने के बाद, अन्य रियासतों की तरह कश्मीर के सामने भी सवाल था कि आया वह भारत या पाकिस्तान में मिल जाए या दोनों से अलग, स्वतंत्र रहे, जिसका उसे क़ानूनी अधिकार प्राप्त था; यद्यपि बड़ी आबादी वहाँ मुसलमानों की है, किन्तु इस सवाल पर तीव्र मतभेद थे; अजीब बात थी कि कई ऐसे मुसलमान थे जो कश्मीर को भारत के साथ मिलाना चाहते थे, दूसरी तरफ़ कई ऐसे हिन्दू थे जो इसे पाकिस्तान में मिलाने के पक्ष में थे; ऐसे लोग भी काफ़ी थे, जो भारत और पाकिस्तान के तनावपूर्ण सम्बन्धों को देखते हुए इसे स्वतंत्र रखने के पक्ष में थे—महाराजा और उनके प्रधान मंत्री भी इसी ख़याल के थे; लेकिन पाकिस्तान की उग्रपंथी मुसलिम लीग इस बात पर आमादा थी कि कश्मीर को पाकिस्तान में मिल जाना चाहिए; कश्मीर की मुसलिम कानफ़रेंस से उसने यह आन्दोलन खड़ा करवाया कि कश्मीर पाकिस्तान में मिले; कश्मीर के पुंछ ज़िले मे, जो पाकिस्तान से लगा हुआ है, एक खुला विद्रोह हो गया, जिसमें हज़ारों उग्रपंथी मुसलमानों ने भाग लिया; पाकिस्तानी समाचारपत्रों ने महाराजा की बड़ी कटु आलोचना की और दावा किया कि कश्मीर पाकिस्तान का अंग है; पाकिस्तानी दबाव से विवश हो कर महाराजा दूसरी तरफ़ मुड़े; उन्होंने, एक के बाद दूसरे, अपने प्रधान मंत्रियों को बदला और नेशनल कानफ़रेंस के नेताओं को, जिनमें अधिकांश भारत से मिलने के पक्ष में थे, प्रोत्साहन देना शुरू किया; दूसरी तरफ़, पाकिस्तान ने उत्तर-पश्चिमी सरहदी सूबे के सीमावर्ती अंचलों के क़बायलियों को कश्मीर की सीमा पर तैयार रहने को प्रोत्साहित किया ताकि वे "अपने मुसलिम भाइयों की रक्षा के लिए" राज्य में घुस पड़ें; राज्य में कई स्थानों पर मुसलिम कानफ़रेंस ने राज्य को पाकिस्तान में मिलाने के लिए दंगे किये; २० अक्तूबर १९४७ को एक बड़ी संख्या में पाकिस्तान के उत्तर-पश्चिमी सरहदी सूबे से क़बायलियों ने कश्मीर पर हमला कर दिया; ये सशस्त्र क़बायली आग लगाते हुए, लूटते हुए और हिन्दुओं-मुसलमानों पर समान रूप से ज़ुल्म ढाते हुए, तेज़ी से राजधानी श्रीनगर की ओर बढ़े; २७ अक्तूबर को कश्मीर अस्थायी तौर पर भारत में मिल गया और उसने भारत से सुरक्षा चाही। दूसरे दिन भारतीय सैनिक श्रीनगर के मुशकिल हवाई अड्डे पर उतरे; इसमें सन्देह नहीं कि हिन्दुओं और मुसलमानों, दोनों ने उनका स्वागत किया—बहुत सारे विदेशियों ने, जिन्होंने अपनी आँखों यह सब देखा, इस बात की पुष्टि की है; नेशनल कानफ़रेंस के नेता शेख़ अब्दुल्ला के नेतृत्व में एक नयी सरकार बनी; भारत के प्रधान मंत्री पंडित नेहरू और शेख़ अब्दुल्ला दोनों ने यह घोषित किया कि कश्मीर की जनता की राय जानने के लिए छह महीने के अन्दर जनमत-संग्रह किया जाएगा, लेकिन इस बीच घमासान लड़ाई चलती रही और

तुरन्त यह बात साफ़ हो गयी कि कश्मीर में भारतीय सैनिकों के विरुद्ध क़बायलियों के साथ-साथ पाकिस्तानी फ़ौजी भी लड़ रहे हैं; भारत ने इस विवाद का मामला राष्ट्र-संघ में पेश कर दिया; पहले तो पाकिस्तान ने भारत और राष्ट्र-संघ दोनों को झूठ कहा कि उसकी सेनाएँ कश्मीर में नहीं लड़ रही हैं; बाद में जब राष्ट्र-संघ आयोग वहाँ पहुँचा तो पाकिस्तान ने असलियत क़बूल कर ली; तब सन् १९४८ में युद्ध विराम समझौता हुआ। कश्मीर घाटी, जम्मू, लदाख और कुछ अन्य क्षेत्र भारतीय सेना के क़ब्ज़े में थे और उत्तरी और पश्चिमी क्षेत्र पाकिस्तानियों के; विवाद के समाधान के लिए राष्ट्र-संघ में अब तक जो प्रयत्न हुए हैं, असफल रहे हैं; जनमत संग्रह के पूर्व उसके लिए आवश्यक स्थिति पैदा करने के संबंध में भारत और पाकिस्तान में कोई मतैक्य नहीं है; राष्ट्र-संघ की ओर से नियुक्त मध्यस्थ श्री ओवन डिक्सन की राय थी कि कश्मीर पर आक्रमण के लिए क़बायलियों के प्रयोग और अनन्तर पाकिस्तानी फ़ौज के इस्तेमाल से अन्तर्राष्ट्रीय क़ानून भंग हुआ है; सर ओवन ने आगे कहा है, "मेरी यह राय बनी है कि अगर कश्मीर के विवाद को भारत और पाकिस्तान की सहमति से निबटाने की कोई संभावना है तो वह व्यापक जनमत संग्रह से नहीं बल्कि विभाजन से, और तराई के बटवारे का कोई रास्ता निकाल कर ही हो सकता है।"

सिक्किम

तिब्बत की सीमा से लगा हुआ, सिक्किम एक दूसरा भारतीय प्रदेश है। भारत से तिब्बत जाने के सभी मुख्य रास्ते सिक्किम हो कर हैं।

निवासी : सिक्किम की १ लाख ५० हज़ार की आबादी में ७५ प्रतिशत पहाड़ी अथवा नेपाली हैं जो कभी नेपाल से यहाँ आ कर बसे हैं; इनमें अधिकांश हिन्दू हैं, और बहुत ही परिश्रमी लोग हैं। १२ प्रतिशत भुटिया हैं, जिनमें अधिकांश बौद्ध हैं; शेष १३ प्रतिशत लेपचा हैं, जो सिक्किम के मूल निवासी हैं, ये भी अधिकांश बौद्ध हैं लेकिन बहुत पिछड़े हुए हैं; हिमालय अंचल के एक काफ़ी बड़े जंगली प्रदेश में ये सिक्किमी लकड़ी और मिट्टी के घरों में रहते हैं।

शासन : सन् १९४७ के पहले, ब्रिटिश अधिराजत्व के अधीन, यह एक भारतीय देशी रियासत था; शासक अर्थात् महाराजा को, जो कि चीनी-तिब्बती वंश के हैं, और बौद्ध हैं, आन्तरिक प्रशासन के मामलों में सम्पूर्ण अधिकार प्राप्त थे; सन् १९४७ तक वहाँ मध्ययुगीन प्रशासन था; बड़े-बड़े इलाक़े सरकार पट्टे पर दे देती थी और पट्टेदारों को अपने इलाक़ों में पूरी सत्ता प्राप्त थी—न्याय संबंधी, राजकर संबंधी और जंगल संबंधी; किसानों से वे जो कुछ वसूल करते थे, सामान्यतः उसका आधा वे राज्य को देते थे; किसान त्रस्त थे लेकिन सुनवाई के लिए पट्टेदारों के सिवाय कोई न्यायालय नहीं थे।

राजनीतिक संगठन : सिक्किम स्टेट कांग्रेस यहाँ का मुख्य राजनीतिक दल है। सिक्किम नेशनल पार्टी और सिक्किम प्रजा सम्मेलन जैसे छोटे-छोटे गुट भी हैं। दिसम्बर १९४७ में सिक्किम स्टेट कांग्रेस की स्थापना हुई। राज्य को भारत में मिलाना, पट्टेदारी की सामंती-प्रथा का उन्मूलन और संविधानिक प्रधान के रूप में महाराजा को रखते हुए जनता का लोकतांत्रिक शासन स्थापित करना, यही इसके उद्देश्य हैं; पहाड़ी, भुटिया और लेपचा लोग कांग्रेस के सदस्य हैं; सिक्किम नेशनल पार्टी में—वह भी हाल ही में बनी है—अधिकांश भुटिया और लेपचा हैं, जो कि बौद्ध हैं; इसे बौद्ध शासक की कृपा प्राप्त है, यह पार्टी सिर्फ़ सुरक्षा, विदेशी मामले और संचार व्यवस्था भारत सरकार के हाथ में दे कर सिक्किम को एक स्वतंत्र राज्य बनाये रखना चाहती है; प्रजा सम्मेलन बौद्ध शासक को हटा करके राज्य को पूरी तरह से भारत में मिला देने के पक्ष में है।

जनसंघर्ष तथा हाल की घटनाएँ : किसान-वर्ग सन् १९४७ से पट्टेदारी प्रथा की अन्यायपूर्णता के प्रति आन्दोलित रहा है। कर-बन्दी आन्दोलन चला; सिक्किम स्टेट कांग्रेस ने ज़मींदारो के विरुद्ध किसानों के इस संघर्ष का समर्थन किया; कई कांग्रेसी गिरफ़तार हुए; दो महीने बाद, जनता के लिए स्व-शासन की माँग करते हुए कांग्रेस ने सत्याग्रह आन्दोलन छेड़ दिया; मई १९४९ में शासक ने जनता की पसन्द के सुधारों का आश्वासन दिया और तुरन्त ही स्टेट कांग्रेस के अध्यक्ष ताशी शेरिंग के नेतृत्व में एक पाँच-सदस्यीय मंत्रिमंडल की स्थापना हुई; कोई वास्तविक अधिकार मंत्रियों को नहीं दिये गये—मंत्रियों में दो मंत्री शासक द्वारा मनोनीत किये गये थे; जनान्दोलन के कुछेक हिंसक विस्फोटों के बाद शासक ने भारत सरकार से अपील की; भारत सरकार ने अपने एक अफ़सर को राज्य का प्रधान मंत्री अर्थात् दीवान बना कर भेजा; चीनी समाचारपत्रों ने भारत सरकार के इस क़दम की बहुत आलोचना की क्योंकि चीन काफ़ी अरसे से सिक्किम पर भी अपने अधिराजत्व का दावा करता रहा है। नये दीवान ने मंत्रिमंडल को भंग कर दिया और दस सदस्यों की एक सलाहकार परिषद् बना दी, जिसमें ३ कांग्रेस के, २ नेशनल पार्टी के, १ सम्मेलन का, एक व्यापारियों और व्यवसायियों का प्रतिनिधि तथा ३ अन्य सदस्य लिये गये; दीवान ने भूमि संबंधी कुछ सुधार शुरू किये, मसलन, पट्टेदारों के अधिकारों में कटौती, भूमि-संबंधी अधिकारों में स्थायित्व आदि, लेकिन सलाहकार परिषद् के जनप्रतिनिधियों ने महसूस किया कि उन्हें कोई अधिकार नहीं हैं, और न ही अहम प्रशासनिक कार्रवाई करने के पहले उनसे मशविरा लिया जाता है; इसलिए तीन कांग्रेसी सदस्यों के सामने परिषद् से त्यागपत्र देने के अतिरिक्त कोई रास्ता नहीं था; निर्वाचित प्रादेशिक पंचायतें बना कर और पंचायतों में से एक निर्वाचित सलाहकार परिषद् बना कर दीवान अब जन संगठनो को चक्कर देने की कोशिश कर रहा है; अगले महीने कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन हो रहा है, जिसमें विचार किया जाएगा कि जनता की सरकार बनाने के लिए क्या क़दम उठाये जाएँ।

भूटान

जनसंख्या : भूटान हिमालय-अंचल का ठेठ पूर्वी राज्य है; ४ लाख की आबादी वाला यह राज्य बहुत पिछड़ा हुआ है। १८ हज़ार वर्गमील क्षेत्रफल के इस राज्य में एक भी मोटर लायक़ सड़क नहीं है, सिक्किम की राजधानी गंगटोक से यहाँ की राजधानी पुनाखा तक पहुँचने का एक ही रास्ता है—खच्चरों का, जिसमें ३ से ६ दिन लगते हैं; असल में भूटान और भारत के बीच जितना आवागमन है, उससे ज्यादा भारत और तिब्बत के बीच है; तिब्बती वंश के भुटिया यहाँ के निवासी हैं; अधिकांश लोग मूलतः नेपाली हैं जो यहाँ आ कर बस गये हैं; पूर्वी ज़िलों में थोड़े से असमिया लोग भी हैं; भुटिया सभी बौद्ध हैं, कुछ तिब्बती बोली बोलते हैं और तिब्बती लिपि में लिखते हैं।

शासन : भूटान में कोई राजनीतिक दल नहीं है; महाराजा, जो भारत सरकार का अधिराजत्व मानते हैं, क़बायली 'काज़ियों' और 'तहसीलदारों' के मारफ़त हुकूमत करते हैं—इनमें से कुछ तो बिलकुल स्वेच्छाचारी हैं; भूटान जाने के लिए अनुमति पत्र आवश्यक है, भूटान सरकार आसानी से अनुमति नहीं देती; सन् १८३२ के वृहत् अग्नि-कांड और १८६९ के भूडोल के कारण पुराने ऐतिहासिक रेकर्ड नष्ट हो गये, अब वे उपलब्ध नहीं हैं। हाल में भूटान के लोगों में थोड़ी हलचल पैदा हुई है।

पख़्तूनिस्तान

पाकिस्तान की उत्तरी और उत्तर-पश्चिमी सीमा पर, गिलगिट से बलूचिस्तान तक, क़बायली क्षेत्र हैं, जिनसे हो कर डूरंड रेखा गुज़रती है; इस रेखा के दोनों ओर एक ही वंश, भाषा और संस्कृति के लोग काफ़ी बड़ी संख्या में रहते हैं। मसलन, पाकिस्तान की कुर्रम एजेन्सी की सिविल आर्म्ड फ़ोर्स में १ लाख तूरी शिया, ५० हज़ार मांगल और ३० हज़ार परचमकानी हैं; खबर एजेन्सी क्षेत्र में १ लाख अफ़रीदी हैं, ये लोग क़बायलियों में सबसे अधिक बढ़े-चढ़े हुए हैं; शिनवारियों की संख्या लगभग १० हज़ार है, और मालाजुरी और शिलमारी लगभग ३-३ हज़ार हैं; तीरा प्रदेश में तीन राज्य हैं—चितराल, स्वात और अम्ब; चितराल और अम्ब बिलकुल पिछड़े हुए हैं; चितराल में, जो कि राजधानी का शहर है, सिर्फ़ एक प्रायमरी स्कूल है; लेकिन स्वात, जिसकी आबादी ४,४६,०४१ है, आगे बढ़ा हुआ है; ये तीनों राज्य पाकिस्तान में मिल चुके हैं; बलूचिस्तान के इन क्षेत्रों और पाकिस्तान के उत्तरी-पश्चिमी सीमांत प्रदेश के कई ज़िलों में रहने वाले ८० लाख लोग, सामान्यतया 'पख़्तून' कहे जाते हैं; क़बायली क्षेत्रों के पख़्तूनों ने कभी भी अंग्रेज़ों का अधिराजत्व क़बूल नहीं किया, अंग्रेज़ लोग कभी बम से और कभी पेंशन से उनसे निबटते रहे; ये अत्यन्त स्वतंत्र प्रकृति के लोग हैं, ये पाकिस्तान का भी अधिराजत्व अपने ऊपर नहीं चाहते; अतः स्वतंत्र पख़्तूनिस्तान की स्थापना के उद्देश्य से पख़्तूनियों ने स्वतंत्रता

आन्दोलन छेड़ रखा है। उनका कहना है कि वंश और संस्कृति की दृष्टि से वे पाकिस्तान के पंजाबी और सिन्धी मुसलमानों से बिलकुल अलग हैं; ईपी के फ़कीर और मूला नूर दाल पख्तूनी आन्दोलन के नेता हैं; खान अब्दुलगफ़ार खाँ और उनके भाई डा. खान साहब, जो भारत के पुराने राष्ट्रीय नेता और महात्मा गांधी के निकट सहयोगी थे, लम्बे अरसे से पाकिस्तानी जेल के सीखचों में बन्द हैं। पख्तून लोग खान अब्दुलगफ़ार खाँ को "सरहदी गांधी" मानते हैं और उन्हें अपना बेताज का बादशाह समझते हैं।

कहा जाता है कि पाकिस्तान इन क़बालियों को शान्त और दबाये रखने के लिए हर साल १२ करोड़ से अधिक रुपये खर्च कर रहा है; पख्तून स्वतंत्रता आन्दोलन के प्रति पाकिस्तानी अधिकारियों का रुख कठोर प्रतिशोध का है; फिर भी आन्दोलन बढ़ रहा है; पड़ोसी अफ़गानिस्तान की इस आन्दोलन के साथ सहानुभूति है।

बर्मा

सन् १८२६ के प्रथम बर्मा-युद्ध के बाद, अंग्रेज़ो ने बर्मा को धीरे-धीरे हथिया लिया। गवर्नमेंट आफ़ इंडिया एक्ट १९१९ के अन्तर्गत बर्मा को सन् १९२३ में एक गवर्नरी प्रान्त बना दिया गया; १ अप्रैल १९३७ को बर्मा भारत से अलग कर दिया गया और वह सीधा लंदन से संबद्ध हो गया। ८ मार्च १९४२ को रंगून पर जापानियों का क़ब्ज़ा हो गया; १६ अक्तूबर १९४५ को फिर वह अंग्रेज़ो के हाथ मे आ गया, जनवरी १९४७ में लंदन में एक सम्मेलन हुआ जिसमे इस बात पर समझौता हुआ कि किस पद्धति से बर्मा कामनवेल्थ में रह कर या उससे अलग हो कर आज़ादा हासिल करे। एक स्वतंत्र गणतंत्र के रूप में ४ जनवरी १९४८ को युनियन आफ़ बर्मा का जन्म हुआ।

बर्मा का क्षेत्रफल २,६१,६१० वर्गमील है जिसमें खास बर्मा—चिन पहाड़ियाँ और काचिन पहाड़ी प्रदेशों समेत—१,९२,१५८ वर्गमील है और शाहकरेनी के राज्य ६२,३३५ वर्गमील। सन् १९४१ में बर्मा की कुल आबादी १,६८,२३,७९८ थी, जिसमें ९० लाख बर्मी, १२ लाख करेन, १० लाख शान, ३ लाख चिन और १॥ लाख काचिन थे; ग़ैर-मुल्की अल्पसंख्यको में ८ लाख ८७ हज़ार भारतीय, १ लाख ५० हज़ार चीनी १ लाख ५० हज़ार भा-बर्मी, ८ हज़ार यूरोपीय हैं। बर्मी लोग तिब्बत-बर्मी नस्ल के हैं, और १००० मे ८४३ बौद्ध हैं। बर्मा मुख्य रूप से खेतिहर देश है, १ करोड़ २० लाख एकड़ भूमि पर खेती होती है और ६५ प्रतिशत से अधिक जनसंख्या कृषि तथा अन्य संबद्ध धंधों में लगी हुई है। खेती लायक़ भूमि के ६० प्रतिशत में चावल पैदा होता है। बर्मा की अर्थ-व्यवस्था चावल के निर्यात पर निर्भर है।

आज़ादी के बाद बर्मा को वामपंथी और दक्षिणपंथी दोनों ही ओर से कठिनाइयों का मुक़ाबला करना पड़ा। आंग-सान मंत्रिमंडल पर बन्दूक़धारियों ने हमला कर दिया

जिसमें प्रधानमंत्री आंग सान और उनके कई मंत्री मारे गये। आंग सान एंटी-फ़ैसिस्ट पीपुल्स फ्रीडम लीग—कई दलों और गुटों का संघ—के संस्थापक और नेता थे। इसके तुरन्त बाद करेन लोगों—एक प्रमुख राष्ट्रीय अल्पसंख्यक समाज—ने स्वायत्त शासन के अधिकार की माँग की और विद्रोह कर दिया। कम्युनिस्टों ने, गृहयुद्ध का लाभ उठाया और करेन लोगों का साथ दिया। लम्बे सैनिक संघर्ष के बाद सरकार, विरोधियों को उनके कुछ खास अड्डों में ही रोके रखने में सफल हो गयी है। तोड़-फोड की कारवाई कम्युनिस्ट अभी भी करते रहते हैं।

बर्मा सोशलिस्ट पार्टी एक सक्रिय और सुदृढ दल है। बर्मा की मिली-जुली सरकार में उसका महत्त्वपूर्ण योग है।

—१९५०, नवम्बर।

'एवरेस्ट' नहीं, 'सरगमाथा'

मैं भारत और विश्व की जनता से अपील करता हूँ कि संसार के सबसे ऊँचे पर्वत शिखर को 'एवरेस्ट' न कह कर, 'सरगमाथा' कहा जाए। तिब्बत, नेपाल तथा भारत की तराई स्थित जनता इस चोटी को 'सरगमाथा' के नाम से ही पुकारती है। हमें हिमालय क्षेत्र के ८ करोड़ निवासियों की भाषा और भावना का आदर करना चाहिए क्योंकि सदियों की गुलामी के बाद अब वे मनुष्यता का दरजा पा रहे हैं।

—१९५०, दिसम्बर

शक्ति और संकल्प का कमज़ोर बिन्दु

शक्ति और संकल्प के सबसे कमज़ोर बिन्दु पर चीन हिन्दुस्तान की भूमि पर चढ़ आया है। साफ़ तौर पर चीन पता लगाना चाहता है कि हिन्दुस्तान में शक्ति और संकल्प का सबसे पोला बिन्दु कहाँ है और जब फिर वह कभी चढ़ाई करे, तो इस जानकारी का फ़ायदा उठा सके। उचित अवसर पर देशी कम्यूनिस्टों को हिन्दुस्तान की गद्दी पर बैठने में मदद पहुँचाने की ग़रज से हिन्दुस्तान पर अन्तर्राष्ट्रीय साम्यवाद ने यह हमला किया है। मुझे इसमें कोई सन्देह नहीं है। अभी वह मौक़ा नहीं आया है। पाँच-दस बरस बाद शायद वह मौक़ा आ जाए। इस बीच, अगर अन्तर्राष्ट्रीय साम्यवाद भूटान या पश्चिमी बंगाल को केरल जैसा बना सके, तो फिर, चीन को हमलावर नहीं, बल्कि मुक्तिदाता बन कर आने का बहाना मिल जाएगा।

चीनियों ने अब तक यह देख लिया होगा कि उनके इस हमले से हिन्दुस्तान के ९० फ़ीसदी लोग तनिक भी चिंतित नहीं हुए। मेरी राय में, देश की शक्ति और संकल्प का सबसे कमज़ोर बिन्दु यही है। जब तक हिन्दुस्तान चीन से कम से कम एक बात नहीं सीख लेता, मैं नहीं समझता कि आज या दस बरस बाद चीन का मुक़ाबला करना आसान होगा। वह बात है शासक वर्ग, नेता वर्ग और जनता में एकरूपता, एकसानियत। हिन्दुस्तान के नेता और जनता भाषा, पोशाक और खर्च के मामले में दो अलग-अलग दुनिया में रहते हैं, जबकि चीन के नेता और वहाँ की जनता इन मामलों में बिलकुल एक-जूट हो गयी है। इससे उन्होंने ताक़त हासिल की है हालाँकि वह ताक़त राक्षसी ताक़त है।

कुछ आदिवासी और पहाड़ी जातियाँ और खास कर आसाम के अहोम लोगों के बारे में एक बिलकुल ग़लत धारणा फैली हुई है कि वे नसल के मामले में चीनियों से मिलते-जुलते हैं। इसलिए, यह बहुत ज़रूरी है, और इसके लिए हर तरह से प्रचार करना चाहिए, कि यह आर्य, मंगोल वग़ैरह की बात बिलकुल अवैज्ञानिक और बेसिर-पैर की है।

मुझे इस बात की सीधी जानकारी है कि पिछले कुछ वर्षों में माओत्से-तुंग पहाड़ियों और पिछड़ी जातियों के नेताओं से खुल कर मित्रवत् मिलते रहे हैं; उनके साथ तस्वीरें खिंचवाते रहे हैं, जब कि दूसरे प्रथम श्रेणी के नेताओं के लिए वे अनुपलब्ध-से रहे हैं।

थाई देश के लोग हिन्दुस्तान के उतने ही नज़दीक हैं जितने कि चीन के। इसमें ज़रा भी सन्देह नहीं। थाई लोगों का रहने का ढंग और सोचने का ढंग निश्चित रूप से अधिकतर हिन्दुस्तानियों के जैसा है। जब उतनी दूर, पूरब के थाई लोगों का यह हाल है, तो उर्वसीअम्, भूटान जैसी जगहों के लोग तो हरगिज़ चीनियों के नज़दीकी नहीं हैं। लेकिन यह एक ऐसा तथ्य है, जिसका कि हर सम्भव तरीक़े से प्रचार करने की ज़रूरत है।

—१९५९, अक्तूबर ३१; कलकत्ता; 'हिन्दू' से भेंट।

भूटान में चीनी प्रचार

भूटान की सीमा पर पहाड़ियों को पार करते हुए मैं और मेरे साथी कल यहाँ पहुँचे। हमें यह बताया गया कि किस तरह इस इलाक़े में एक चीनी बढ़ई जो अब छोटा-मोटा धन्धे वाला आदमी बन गया है, उसके ज़रिये कम्युनिस्ट प्रचार किया जा रहा है। एक चीनी कम्पनी ने नारंगी का रस निकालने का एक कारखाना चमोरची में खोल रखा है और एक लकड़ी काटने की मिल फेप्सू में। ये दोनों इलाक़े भूटान के अन्दर हैं। इस कम्पनी ने सरकारी मकान बनाने के काम का पूरा ठेका भी ले लिया है। साथ ही साथ, भूटानी सिपाहियों में चीनी सिपाही, जिनको भोटिया ज़बान आती है, काफ़ी प्रचार कर रहे हैं। भूटानी सिपाहियों के हथियार मामूली हैं कपड़े नाकाफ़ी हैं और एक चौकी पर एक सिपाही रहता है। चीनियो के पास सब साज़ो-सामान मौजूद हैं और एक-एक चौकी पर कई चीनी सिपाही रहते हैं।

भूटान की आर्थिक और राजनीतिक स्थिति, और मानवीय अधिकारों की समाप्ति भूटान को आसानी से कम्युनिस्ट प्रचार का शिकार बना सकती है। सिर्फ़ वहाँ के राजा और प्रधान मन्त्री का परिवार ही भूटान का शासक वर्ग है। जनता पर मनुष्य-कर (पोलटैक्स) जैसे कर हैं। और जुल्म का यह आलम है कि महासुरसिंह नामी एक व्यक्ति को सकोश नदी में डुबा कर मारा गया।

चाय-मज़दूरों के एक जलसे में मैंने कहा कि अगर वे अहिंसा के तरीक़े से भूटान और हिन्दुस्तान में नाबराबरी खतम नहीं करेंगे तो फिर चीनी और कम्युनिस्ट इस नाबराबरी को खतम करने के बहाने अपना ज़ालिम राज्य क़ायम कर सकेंगे। मज़दूर यूनियनों को क्रान्तिकारी और ईमानदारी के रास्ते पर चलना चाहिए। साथ ही साथ, उरुन और मुन्दा आदिवासियों और राई और लिम्बू पिछड़ी जातियों के नौजवानों को कालेज में पढ़ने के लिए छात्रवृत्ति (वज़ीफ़े) दिया करें। बीबियों को पीटने का जो तरीका है, उसकी रोकथाम करें।

थाल जौला टी इस्टेट की इस सभा में कुछ आदमी समाजवादी दल में शरीक हुए। पन्नालाल सान्याल ने जो जलपाईगुड़ी से गोवा सत्याग्रह में भाग लेने गये थे, जिसमें उनकी तीन पसलियाँ टूट गयी थीं, कहा कि बहुत घूमने के बाद मैं अपने घर आ गया हूँ। मैंने उस पार्टी की सदस्यता स्वीकार की है, जिसके नेता ने गोवा आन्दोलन शुरू किया था। उन्होंने गोवा सत्याग्रहियों से इस पार्टी में शामिल होने की अपील की और कहा कि यही एक पार्टी है, जिसे समता और क्रान्ति की पार्टी कहा जा सकता है। मार्लसिंह ने जो दस साल से जलपाईगुड़ी के चाय-मजदूरों के नेता हैं, सोशलिस्ट पार्टी की सदस्यता स्वीकार कर ली है। उन्होंने उम्मीद जाहिर की है कि सोशलिस्ट पार्टी एक क्रान्तिकारी और ईमानदराना मजदूर संगठन नीति बनाने में मदद देगी।

— १९५९, नवम्बर १७; रपट।

हिमालयी हिन्दुस्तान : कुछ दलविहीन और निर्विवाद सुझाव

पार्टी से परे तथा निर्विवाद कुछ सुझाव मैं सामने रखता हूँ। मैं चाहता हूँ कि इन सुझावों को सभी राजनीतिक दल, प्रचार साधन, विशेषत : रेडियो और समाचारपत्र अपना लें तो अच्छा।

१. हिन्दुस्तान की जनता को आर्य, द्रविड और मंगोल में बाँटना हमेशा के लिए खतम कर देना चाहिए। इस तरह के विभाजन आज बिलकुल नहीं हैं, और न पिछले ३,००० साल में कभी रहा है। मुझे कभी-कभी लगता है कि यूरोप के विद्वानों ने इस झूठ का आविष्कार इसलिए किया कि हिन्दुस्तान को तोड़ सकें। हिमालयी हिन्दुस्तान के डेढ़ करोड़ से अधिक लोगों से यह कह कर कि वे दोनों मंगोल जाति के भाई हैं, चीनी उनकी भावात्मक स्वराजनिष्ठा डिगाने के लिए इस झूठ का इस्तेमाल कर रहे हैं। थाई देश तक की जनता के बारे में जो मेरा निजी अनुभव है और जो मेरा इतिहास का ज्ञान है, उसके आधार पर मैं शर्तिया दावा कर सकता हूँ कि हिन्दुस्तान और उसके नज़दीकी पड़ोसी जैसे तिब्बत, थाई देश और कम्बोडिया चीनी अर्थ में मंगोल नहीं ही हैं, और वे अपने मन के और जाति के हिसाब से भी चीन की अपेक्षा हिन्दुस्तान के ज़्यादा क़रीब हैं।

२. हिन्दुस्तान और सार्वभौम तिब्बत के बीच की सीमा मेकमोहन रेखा हो सकती थी और चीन और हिन्दुस्तान के बीच कैलाश, मानसरोवर और पूर्ववाहिनी ब्रह्मपुत्र, और, वास्तव में, ३०–४० मील हट कर उत्तर में, जहाँ कि भूमि का खड़ा ढलाव है। इस नीति के लिए अब तक मैं सांस्कृतिक, पौराणिक और भौगोलिक प्रमाणों पर निर्भर करता था। किन्तु, जहाँ तक मानसर गाँव का सम्बन्ध है, मैं अब प्रशासनिक प्रमाण प्रस्तुत कर रहा हूँ। चीनी क़ब्ज़े के पहले तक, निश्चित रूप से हिन्दुस्तान को उस गाँव से मालगुज़ारी मिलती थी और उस गाँव के पशु सम्बन्धी आँकड़े हिन्दुस्तानी जनगणना में शरीक किये जाते थे। ऐसा मालूम पड़ता है कि लद्दाख के एक राजा ने मानसर गाँव को छोड़ कर, जिसे उसने हिन्दुस्तान की सार्वभौमता के प्रतीक के रूप में रख लिया था, इस

भूमि को तिब्बत के एक राजा को दे दिया था, और हर हालत में यह उपहार-दस्तावेज़ अवैध था, और यह मान भी लें कि यह वैध था तो चीन की सरकार, किसी भी क़ानून के अन्तर्गत, तिब्बत को दिये गये इस उपहार का फ़ायदा पाने वाली नहीं हो सकती।

३. लिपि, भाषा और रहन-सहन और विचार के सामान्य तौर-तरीक़ों के मामलों में तिब्बत और हिन्दुस्तान मिले-जुले हैं। मैं क़रीब-क़रीब यह कह सकता हूँ कि तिब्बत ८० प्रतिशत हिन्दुस्तान और २० प्रतिशत चीनी है, और नसल की बनावट की दृष्टि से भी तिब्बती हिन्दुस्तान से, निश्चय ही, उतने ही सम्बन्धित हैं, जितने कि चीन से। दो देशों के बीच सीमा-निर्धारण जिन बातों पर होता है, वे हैं जनता की इच्छा, भूमि का ढलान, सामान्य संस्कृति, भूगोल और इतिहास और आर्थिक आवश्यकताएँ। चीनियों से कहना चाहिए कि वे अपने उस्ताद से सीखें कि उसने एक नये और स्वाधीन विश्व की ख़ातिर पुरानी साम्राज्यवादी संधियों को फाड़ डाला था। अगर संधियों को ही आधार माना जाए, तो मानसर की तरह की या महाभारत काल की संधियों को भी मेज़ पर रखना होगा। हिन्दुस्तान को निःसंदेह हमेशा यह साफ़ बतला देना चाहिए कि अगर चीन तिब्बत को सार्वभौम बना दे, तो हिन्दुस्तान कैलाश या उस जैसे क्षेत्रों का दावा नहीं करेगा।

४. 'माउन्ट एवरेस्ट' अथवा 'नेफ़ा' जैसे नामों को फ़ौरन हटा देना चाहिए और उनके बदले 'सरगमाथा' अथवा 'सगरमाथा', जो 'एवरेस्ट' के देशी नाम युगों से प्रचलित हैं, और 'नेफ़ा' के लिए 'उर्वसीअम्' का फ़ौरन प्रयोग होना चाहिए। और, उर्वसीअम् का प्रशासन परराष्ट्र मंत्रालय से ले लेना चाहिए, और, अगर दिल्ली की सरकार उसे गृहमंत्रालय को सौंपने में हिचकती है, तो सीधे प्रधानमंत्री की देखरेख में हिमालयी मामलों का अलग मंत्रालय बना देना चाहिए।

५. हिमालयी हिन्दुस्तान के लिए एक समाकलित आर्थिक और जनसंख्या संबंधी योजना को कार्यान्वित करना चाहिए और उस पूरे क्षेत्र को फलवाटिका से हरा-भरा कर देने के लिए समूचे हिन्दुस्तान के पैसे और आदमियों के भी साधन का उपयोग करना चाहिए।

६. भूटान, सिक्किम और उर्वसीअम् में उत्तरदायी सरकार स्थापित करनी चाहिए, और यहाँ की जनता को हिन्दुस्तान की लोकसभा में अपने प्रतिनिधि भेजने का अधिकार मिलना चाहिए।

आज हिन्दुस्तान चाहे जितना गिरा हुआ हो, उसके अपने लोगों और पड़ोसियों को यह बतला देना बुद्धिमानी होगी कि मनुष्य जाति का यह महानतम महादेश जिसे अंग्रेज़ी में एशिया, जर्मन में आज़ियम या फ्रेंच में आसी कहते हैं, उसका नाम चीनी अथवा और किसी

शब्द से नहीं निकला है, बल्कि हिन्दुस्तानी शब्द उषा या उषस्, बालारुण का देश, या पूर्वी देश, से निकला है।

मैं अपनी भारी असमर्थता को स्वीकार कर लेता हूँ, क्योंकि ये कुछ सुझाव मैं कई बरसों से देता आ रहा हूँ किन्तु कोई नतीजा नहीं निकला। मैं हिन्दुस्तान के प्रधानमंत्री से, जो इस देश में राय बनाने वाले एकमात्र प्रभावशाली नेता हैं, अपील करना चाहूँगा कि वे इन बिलकुल ही दलविहीन और निर्विवाद सुझावों पर गम्भीरतापूर्वक सोचें।

—१९६०, मई; वक्तव्य।

मानसर

I

अभी-अभी तक, मानसरोवर झील के उत्तर में स्थित, मानसर गाँव हिन्दुस्तान को मालगुज़ारी देता था और उसकी आबादी तथा अन्य बन्दोबस्त सम्बन्धी आँकड़े भारतीय जनगणना में शामिल किये जाते थे।

यह सूचना मुझे सरदार रामसिंह से मिली, जो कभी लेह-लद्दाख प्रशासन के अफ़सर थे।

लद्दाख से कैलाश और मानसरोवर का समूचा क्षेत्र किसी लद्दाखी राजा द्वारा कभी तिब्बत को भेंट कर दिया गया था। यह भेंट अवैध है और, हर हालत में, चीनी उससे फ़ायदा नहीं उठा सकते।

—१९६०, मई ९; प्रेस वक्तव्य।

II

वर्तमान सीमा के कोई ७० मील उत्तर, तिब्बत के कैलाश-मानसरोवर क्षेत्र में स्थित एक गाँव मानसर पर भारत सरकार ने हिन्दुस्तान की सार्वभौम सत्ता के अधिकार का इसरार किया उसके लिए मैं उसे धन्यवाद देता हूँ। मेरे राष्ट्रीय औ' अन्तर्राष्ट्रीय हस्तक्षेप के लिए सराहना की न मुझे अपेक्षा थी और न ही उसकी कोई सामयिक चाह है। मैं चाहूँगा कि हिन्दुस्तान की जनता अलमोड़ा के सरदार रामसिंह के प्रति आभारी हो जिनसे पहली बार मुझे इस गाँव के बारे में जानकारी मिली और यह भी जानकारी कि उसकी मालगुज़ारी और जनगणना हिन्दुस्तान में की जाती थी। मैं चाहता हूँ कि जनता बहुत सचेत रहे, क्योंकि मानसर पर भारत सरकार ने पहले अपने सार्वभौम अधिकार छोड़ दिये थे। मानसर के बारे में भारत सरकार द्वारा मेरी स्थिति मान लेने से यह भी साफ़ हो जाता है कि चीन ने भारतीय भूमि का क़रीब एक लाख वर्गमील हड़प लिया है;

लद्दाख और उसके आसपास में ३-४ बरस पहले १५ हज़ार वर्गमील और ११ बरस पहले कैलाश-मानसरोवर के ८० हज़ार वर्गमील। भाषा, लिपि, धर्म, भूमि का ढलान और रहन-सहन से यह बिलकुल प्रमाणित हो गया है कि हिन्दुस्तान अथवा तिब्बत चीन के जितने क़रीब हैं, उससे कहीं ज़्यादा एक-दूसरे के क़रीब हैं हिन्दुस्तान और तिब्बत। और अब मानसर की प्रशासनिक और राजनीतिक स्थिति से यह साफ़ प्रमाणित हो जाता है कि कैलाश और मानसरोवर क्षेत्र कभी हिन्दुस्तान के थे और कि किसी हिन्दुस्तानी राजा ने किसी तिब्बती महन्त को उसे दे दिया था और कि वह चीन के मामले में निश्चय ही हस्तान्तरित नहीं हो सकता और न वैध है। मैं ज़ोर से कहना चाहता हूँ कि मैकमोहन रेखा केवल हिन्दुस्तान और स्वतंत्र तिब्बत के बीच ही वैध सीमा हो सकती है, और कि हिन्दुस्तान और चीन के बीच की सीमा रेखा ७० से १०० मील और उत्तर में हट कर होनी चाहिए।

—१९६०, नवम्बर १६, धनबाद; भाषण।

III

तिब्बत में मानसर गाँव के सम्बन्ध में मेरी खोज के फलस्वरूप संसद में दस्तावेज़ वग़ैरह के बारे में बेवक़ूफ़ी की कई बातें कही गयीं। लेकिन असली सवाल बिलकुल भिन्न है। श्री नेहरू ने दावा किया कि उनके दस्तावेज़ शायद वही हैं, जो मेरे। उन्हें यह जान कर शायद दिलचस्पी होगी कि मेरे पास कोई दस्तावेज़ हैं ही नहीं। सवाल दस्तावेज़ वग़ैरह का नहीं; इस बात का है कि मैकमोहन रेखा के ६० या ७० मील उत्तर मानसर गाँव पर हिन्दुस्तान का अधिकार क्यों था? हम न सिर्फ़ उसकी मालगुज़ारी लेते थे, बल्कि १९४८ के पहले की सभी मर्दुमशुमारियों में वहाँ की आबादी भी हिन्दुस्तान में गिनी जाती थी। सरकार ने तिब्बत पर चीन की सत्ता मान लेने की ग़लती की थी, हालाँकि उस वक़्त 'सत्ता' और 'सार्वभौम सत्ता' के फ़र्क़ का बड़ा ढोल पीटा गया था। और १९४८ से यह ग़लती चली आ रही है। तिब्बत, चीनी से ज़्यादा हिन्दुस्तानी है गो दरअसल तिब्बत तिब्बती है, और हिन्दुस्तान से उसके निकट के सम्बन्ध हैं। अगर हिन्दुस्तान की सरकार तिब्बत को एक विशिष्ट पड़ोसी मानने की ठोस नीति को स्वीकार नहीं कर सकती, तो कम से कम उसे तिब्बत को चीन का तिब्बती क्षेत्र मानने की पिछले तेरह सालों से हो रही ग़लती तो छोड़ ही देनी चाहिए।

मई १९६० तक, जब मैंने मानसर का ज़िक्र किया, श्री नेहरू ने कभी उसकी कोई चर्चा नहीं की, या तो इस कारण कि उन्हें मालूम नहीं था, या इस कारण कि वे इस बात को दबाना चाहते थे।

—१९६१, जून १३; हैदराबाद; प्रेस वार्ता।

२० हिन्दुस्तानी और १७२ चीनी तम्बू

चीन जब चाहे हिमालय को डेढ़ दिन में ले सकता है। बदरीनाथ और हिन्दुस्तान के आखरी गाँव माना में मैंने हिन्दुस्तानी पुलिस और फ़ौज के जो तम्बू गिने वे १५ और २० के नीचे थे। इसके विपरीत, मैंने सुना है कि तिकला कोट मे चीनियों के कुछ दिनों पहले १७२ तम्बू गिने गये थे। चीनियों ने कैलाश के चारों तरफ़ और 'तिकला कोट' तक कच्ची सड़क बना ली है और हवाई अड्डा भी।

हिन्दुस्तान की हालत यह है कि हिन्दुस्तान का सुरक्षा मन्त्री कहता है कि चीन जब मैदान में उतरेगा, तब दाँत खट्टे करेंगे, और प्रधान मन्त्री कहते हैं, जब हमला होगा तो हिन्दुस्तान डट कर मुक़ाबला करेगा। इसके साफ़ मानी यह हैं कि हिन्दुस्तान की सरकार ने हिमालय को चीनी इलाक़ा मान लिया है, चाहे इसे सीधे शब्दों में वह अभी न कहना चाहती हो।

हिन्दुस्तान और उत्तर-प्रदेश की सरकार को जनता से न कोई मुहब्बत है न उसके लिए इज़्ज़त ही है। बदरीनाथ जाते समय एक-एक मील की दो बिलकुल ग़ैरज़रूरी चढ़ाइयाँ चढ़नी पड़ती हैं। एक बलदौरा, दूसरी घाट चट्टी के पास। बलदौरा वाला पुराना रास्ता बहुत बढ़िया था, लेकिन इसमें एक मामूली-सी तोड़ करके इसे मुसाफ़िरों के लायक़ नहीं रखा गया और इसी को सरकार बढ़िया बनाने में लगी है, जबकि १७ या १८ मील के रास्ते पड़े हुए हैं जो गंदे हैं और जिन्हें सुधारना ज़रूरी है।

जिन दिनों हम वहाँ थे १०-१५ व्यक्तियों की मौत की खबर हम तक आ चुकी थी और इसमें हमें कोई सन्देह नहीं है कि बदरीनाथ की एक साल की यात्रा में ४०० आदमी ज़रूर मरते हैं जिसमें एक सौ से ज़्यादा रास्ते की खराबी की वजह से।

लोक निर्माण विभाग से जितना रुपया खर्च होता है उसका आधा या इससे ज़्यादा ठेकेदारों या अफ़सरों की जेबों में जाता है। हालत बहुत खराब है। और ऐसी खराब हालत में चीन के खिलाफ़ मन बनना मुशकिल है। हिन्दुस्तान और उत्तर-प्रदेश की सरकार

को चाहिए था कि इस वर्ष की यात्रा को बिलकुल बन्द कर देती या लाखों लोगों के आराम के लिए रास्तों को कम से कम और ज़्यादा तो न बिगाड़ती या यात्रियों के रास्ते पर २-३ महीने काम बन्द रखती। मैं जानना चाहूँगा कि यात्रियों को हरिद्वार से जोशीमठ बस में ले जाते समय श्रीनगर और 'पीपल कोठी' में दो जगह बस क्यों बदली करायी जाती है ? कितनी तकलीफ़, पैसों की कितनी बरबादी होती है। मालूम होता है, इसमें भी कहीं कुछ राज़ है।

मुझे लगता है कि बाबा बदरीनाथ काफ़ी उदास रहते हैं, क्योंकि उनके दर्शन करने को ज़्यादातर बूढ़े और सूरत से ढले लोग ही जाते हैं। मैं जहाँ तक समझ पाया हूँ, उनकी तबियत है कि नौजवान, ख़ूबसूरत लड़के-लड़कियाँ भी उनके दर्शन करने जाया करें, ताकि वही लोग बड़ी उम्र में दुबारा जाएँ तो ख़ूबसूरत बने रहें।

इसमें कोई दो राय नहीं हैं कि हिमालय मानी हिन्दुस्तान के हैं, लेकिन भारत सरकार की ग़द्दारियों से ऐसी हालत पैदा हो रही है कि हिमालय चीनी है या हिन्दुस्तानी, इस पर शक होने लगा है। मैं १३ वर्ष से चिल्ला रहा हूँ कि हिमालय जाग उठा है, लेकिन २-३ साल पहले तक प्रधान मन्त्री श्री नेहरू शायरी की अफ़ीम पिये हुए थे कि हिमालय उनका सन्तरी है, चीन और हिन्दुस्तान की दोस्ती अटूट है।

जब कभी कोई तरक्क़ीपसन्द और देशभक्त सरकार गद्दी पर बैठेगी तो वह एक हिमालयी मामलों का मन्त्री और महकमा बनाएगी जिसका काम होगा कि वह पूरे डेढ़-हज़ार मील लम्बे और १००-२०० मील चौड़े इलाक़े में फलों की ऐसी खेती कराए कि, एक तरफ़ हिन्दोस्तान के ३०-४० करोड़ लोग दुनिया के सबसे तन्दुरुस्त लोग हो जाएँ, दूसरी तरफ़, हिमालय के लोग एक-एक पार्वती की नस्ल के अनुरूप बनें।

—१९६१, जून; लखनऊ; पत्र प्रतिनिधि भेंट।

उत्तराखंड

बदरी-केदार यात्रा, वास्तव में गंगा यात्रा है। लोगों का मन पथ पर उतना टिकने और रमने लगे, जितना लक्ष्य पर, तब यह यात्रा, वास्तव में, गंगा का घर खोजने की यात्रा हो जाएगी। बड़ा मज़ा आता है गंगा के बदलते हुए रूपों को देखने में; कहीं थिरकती है, कहीं बिलकुल गंभीर है, और कहीं घन-घन करती हुई सदियों से पहाड़ों को तोड़ रही हैं। 'गं गं गच्छति, इति गंगा', जो गं गं करती, हथिनी की, और संगीत की चाल से चले, वह गंगा। यह कितने अफ़सोस और आश्चर्य की बात है कि गंगा पर अभी तक एक अच्छी पुस्तक नहीं लिखी गयी है, जिसमें उसके हर अंग पर दृष्टि पड़ी हो। मिसाल के लिए, गंगा की चाल हर की पौड़ी पर छह-सात मील फ़ी घंटे के आसपास है, पाँच तक भी गिरती है, और ऊपर, पहाड़ों मे २५-३० मील की रफ़तार से चलती है।

अभी तक इसकी दो शाखाएँ ज़्यादा मशहूर और ज़्यादा धर्मप्रिय रही हैं, भागीरथी और अलकनंदा। साधारण तौर पर, गंगोत्री और गोमुख से गंगा का उद्गम माना जाता है। मेरी समझ से, भागीरथी और अलकनंदा दोनों एक ही बरफपुंज या खड्‌द से निकली हैं। साधु और कुछ हिम्मतवर किस्म के जवान लोग गोमुख से बदरीनाथ बरफ़-बरफ़ के ऊँचे रास्ते आने-जाने लगे हैं, जिसके साफ़ मतलब हैं कि दोनों का बरफ़पुंज एक ही है। पूरब के छोर से निकलती है भागीरथी और पश्चिम से अलकनंदा। कैसे रमणीक नाम हैं ये। लक् अर्थात दिखना; अलकापुरी, अर्थात न दिखने वाली पुरी। भीमशिला पर खड़े हो कर, छह-सात मील की दूरी पर इस अलकापुरी को काफ़ी देर तक मैंने निहारा, लेकिन वहाँ कुछ हो तब तो दिखे। जो दिखना है, वह अपने ही दिमाग़ की तरफ़ मुड़ कर।

उत्तराखंड ने तपस्या को प्रायः रोमान्स और इश्क़ बना डाला। जहाँ से बदरीनाथ का रास्ता माना घाटी पर मुड़ता है, उससे अलग, नीती घाटी पर अगर जाया जाए, तो पार्वती के तप-स्थान मिलेंगे। एक है, पर्णा, जहाँ वह पत्ते खाती थी; दूसरा है, अपर्णा, जहाँ उसने पत्ते भी खाने बन्द कर दिये थे। तभी शिव ने आ कर पार्वती से पूछा था,

'अपि स्वशक्त्या तपसि प्रवर्त्तसे', क्या तुम अपनी शक्ति-भर तपस्या कर रही हो। कितना लगाव और कितनी कोमलता और साथ ही, सलाह भी दी थी, 'शरीर माद्यम् खलु धर्म-साधनम्'। उत्तराखंड में सैकड़ों हिस्से इतिहास, किंवदंती, कहानी, संगीत साहित्य इत्यादि से भरे पड़े हैं जो हर एक हिन्दुस्तानी के मन को हिलोरते हैं। और उसी हिमालय के लिए भारत के प्रतिरक्षा मंत्री और प्रधान मंत्री इतने निर्लज्ज हो उठते हैं कि चीनियों को मैदान में आने के लिए ललकारते हैं, जैसे हिमालय चीनियों का हो। बार-बार कहते हैं कि वे आक्रमण का मुक़ाबला करेंगे, जैसे हिमालय पर कभी का आक्रमण हो न चुका हो।

मैंने बहुत सोचा कि बरफ़ और तपस्या का आखिर क्या सम्बन्ध हो सकता है। एक बात तो मुझे यह लगी कि मनुष्य का, और ख़ास तौर से भारतवासी का मन और शरीर, चाहे जितना गरमी को सहे, लेकिन एक हद से गरमी बढ़ जाने पर झुलसने, जलने और मरने के सिवा कोई चारा नहीं। ठंड को वह बड़ा लम्बा खींच सकता है। बरफ़ के अनुरूप अपने शरीर को बना सकता है। अपने मन और शरीर, दोनों को बरफ़ालयों में बैठे-बैठे सुन्न कर सकता है। मैंने कल्पना की कि बदरीनाथ बरफ़ के दिनों में क्या हो जाता होगा। पूरी घाटी, उसके सैकड़ों मकान, पहाड़, पत्थर, घास, दूब, सभी बरफ़ से, एक जैसी दिखने वाली, एक जैसी रसने वाली बरफ़ मे ढक जाते होंगे। सम बनाने वाली, संसार में, मुझे ऐसी और कोई चीज़ नहीं सूझी। बचपन से मेरा मन रहा कि एक ठंड बरफ़ में गंगोत्री-गोमुख में काटूं। वह तो संभव नहीं, लेकिन मन की आँखों ने समता के उस दृश्य को जब देखा, तभी समझ में आया कि शायद शंकराचार्य जैसे लोग सूक्ष्म मानसिक विचारों को किसी एक शरीर की अनुभूति से जुड़ा समझते रहे होंगे। 'तदेको वशिष्ठः शिव केवलोहम्' वही एक वशिष्ठ शिव केवल मैं हूँ, यह अद्वैत की चर्चा करते हुए, आखिर उस चारों तरफ़ समान रूप से फैली हुई बरफ़ को उन्होंने देखा जो होगा।

—१९६१, जून २३; हैदराबाद; प्रेस प्रतिनिधि भेंट।

हिमालय बचाओ सम्मेलन के प्रस्ताव

प्रस्ताव १ : हिमालय बचाओ सम्मेलन चाहता है कि हिन्दुस्तान और दुनिया के मन में यह सच बैठे कि हिमालय का कोई भी अंग चीन का राजकीय हिस्सा तभी रहा है जब चीन की साम्राज्यशाही लिप्साओं को पनपने का मौक़ा मिला है। जब हिमालय के किसी इलाक़े के लोग कमज़ोर पड़े हैं या हिन्दुस्तान दुर्बल हुआ है, तभी चीनी साम्राज्यशाही को मौक़ा मिला है। इस युग में जब सभी लोग चेत रहे हैं और संसार से साम्राज्यशाही का अन्त हो रहा है, सम्पूर्ण हिमालय से साम्राज्यशाही का ख़ात्मा करना हमारा और हर स्वाधीनता प्रेमी का कर्त्तव्य है।

हिमालय के दो अंग हैं, एक, राजकीय भारत में, और दूसरा, स्वतंत्र। भारतीय हिमालय में ऐसे प्रदेश पड़ते हैं जैसे उर्वसीअम्, सिक्किम, कुमायूँ, कश्मीर, लद्दाख वग़ैरह। वे ज़माने लद गये जब इनका अनोखापन और इनकी दूरी इन्हें सुरक्षित रखते थे। या भारत इन्हें शक्तिशाली, आधुनिक और क्रान्तिकारी बनाने में मदद करे, नहीं चीनी साम्राज्यशाही इन्हें हड़पेगी।

स्वतंत्र हिमालय के एक देश तिब्बत को ले कर, चीन ने बड़ा भ्रम फैलाया है। एक सीमित काल के कुछ दस्तावेज़ों को ले कर, जब हिन्दुस्तान गिरा था, चीन ने साबित करने की कोशिश की है कि तिब्बत उसका अंग है। फिर, पिछले ६ सौ बरसों के दस्तावेज़ों को ही क्यों देखा जाए, पूरे ६ हज़ार बरसों के इतिहास और संस्कृति को क्यों न देखा जाए? भाषा, लिपि, रहन-सहन, ज़मीन का ढलाव, धर्म, इतिहास और लोकइच्छा की कसौटियों पर तिब्बत हिन्दुस्तान के ज़्यादा नज़दीक है और स्वतंत्र है। हर हालत में, तिब्बत जैसे बड़े और विशिष्ट देश के लिए लोक इच्छा सर्वोपरि सत्य होना चाहिए। तिब्बत पर चीन की सत्ता मानने वाली संधि जिसे भारत सरकार ने चीनी साम्राज्यवादियों के साथ क़बूलने में सन् '५४ में ग़लती की, इस साल के जून महीने में ख़तम हो गयी। अब भारत सरकार पर किसी भी क़रारनामे का दबाव नहीं रहा कि वह चीन की सत्ता

तिब्बत पर माने। भारत की जनता हमेशा स्वतंत्र रही है और रहेगी, और अब भारत सरकार भी स्वतंत्र है कि वह तिब्बत की स्वतंत्रता माने।

हिमालयवासियों के बारे में एक झूठ और फैली है कि ये मंगोल हैं और चीनी लोग भी। मंगोल, द्रविड, आर्य वग़ैरह के व्यापक खंड शायद हर समय के लिए मनगढ़ंत रहे हैं। पिछले तीन हज़ार बरसों मे, जब रक्तबीज इन इलाक़ों में खूब मिले हैं, ये विभाग बिलकुल झूठे और निराधार हैं। फिर, चीनी आबादी ज्यादातर हान और मन्चू पर आधारित है। यह बात भी नहीं भूलना चाहिए कि अपने से अलग नखशिख वालों के आपसी बड़े अलगाव भी आसानी से नहीं दीखते।

हिमालय बचाओ सम्मेलन जानता है कि भारतीय सेना पर चीनी साम्राज्यशाही की प्राथमिक विजयों ने लोक इच्छा और इतिहास के सभी सत्यों को धूमिल कर दिया है। लेकिन इन हारों के असली कारण कुछ खुल चुके हैं। ये पलटनी उतने नहीं हैं, बुनियादी या स्थायी हैं ही नहीं, जितने राजनीतिक और इच्छा शक्ति से सम्बन्धित। हिमालय की सुरक्षा और स्वतंत्रता के बारे में भारत सरकार की इच्छा कमज़ोर रही है। इसी कमज़ोर इच्छा के कारण सेना अपना काम ठीक तरह नहीं कर पायी। युद्ध और दुविधा साथ नहीं चल सकते यह भी सही है कि आज़ाद भारत के पन्द्रह बरसों की कमियाँ कारण रहे हैं। लेकिन सर्वोपरि कारण है, इच्छाशक्ति की कमी। इसलिए, पहले भारत की जनता में हिमालय की स्वतंत्रता और सुरक्षा के लिए इच्छाशक्ति धधके। फिर, इसी धधकती इच्छाशक्ति का प्रवेश भारत सरकार में हो। इसी ज़रूरत ने हिमालय बचाओ सम्मेलन को जन्म दिया है।

हिमालय बचाओ सम्मेलन निर्णय करता है कि हिन्द-तिब्बत सीमा वही हो जो १५ अगस्त १९४७ को थी। चाहे गोलीबन्दी अधिकृत हो जाए, युद्धविराम इस सीमा के पहले न हो। हर हालत में, हिन्दुस्तान की जनता इस सीमा के बग़ैर तसल्ली न ले। शान्ति तभी हो जब तिब्बत आज़ाद हो।

यह सम्मेलन माँग करता है कि दलाईलामा और तिब्बत की आज़ादी के लिए लड़ने वाले दूसरे लोगों को तिब्बत की निष्क्रान्त सरकार के रूप में काम करने की मान्यता दी जाए और उन्हें तिब्बत के स्वाधीनता संग्राम को चलाने व मार्गदर्शन करने की आज़ादी दी जाए।

प्रस्ताव २ : अपने उद्देश्यों को हासिल करने के लिए हिमालय बचाओ सम्मेलन निर्णय करता है कि उसी नाम का संगठन बनाया जाए। सम्मेलन का सदस्य वह हो जो संकल्प करे :

"इतिहास साक्षी है कि कुछ हिमालय हिन्दुस्तान में रहा है और कुछ स्वतंत्र तथा भारत का भाई। मैं संकल्प करता हूँ कि, भारत सरकार जो भी करे, मैं लगातार प्रयत्न करूँगा कि भारत को १५ अगस्त सन् '४७ की सीमा और तिब्बत तथा बाक़ी हिमालय

को स्वतंत्रता मिले।" सम्मेलन की सदस्यता की फ़ीस चार आने प्रति वर्ष हो। सम्मेलन का कामकाज मातृभाषा या हिन्दी में हो।

कार्यकारिणी का एक हिस्सा सम्मेलन का अधिवेशन चुने। जो दल या संगठन सम्मेलन के संकल्प को मान ले, वह कार्यकारिणी में दो सदस्य भेज सके। सम्मेलन के लिए इतना विधान काफ़ी हो। बहुत जरूरत पड़ने पर कार्यकारिणी नियम बना सके। मुहल्लों और क्षेत्रों के हिसाब से भी समितियाँ बन सकें।

—१९६२, दिसम्बर १५ व १६; दिल्ली।

काश्मीर

काश्मीर

काश्मीर रियासत को, पाकिस्तान के हमले की दृष्टि से असाधारण महत्त्व मिल गया है। काश्मीर के रण क्षेत्रो पर, न सिर्फ़ काश्मीर का भाग्य निर्णय हो रहा है, बल्कि एक बहुत बड़े मानी में भारतीय नियति का भी निर्णय हो रहा है। अगर पाकिस्तान सफल होता है, तो वह अपने द्वि-राष्ट्र सिद्धान्त मे बहुत दूर तक सफल होगा, लेकिन अगर काश्मीर भारत राष्ट्र का भाग बना रहे, जैसे कि पहले था, तो भारत राष्ट्र जनतन्त्र और समृद्ध संस्कृति की ओर प्रगति करेगा। पाकिस्तान और शैतानी द्वि-राष्ट्र सिद्धान्त के विरुद्ध पौरुष से सामना करने के लिए काश्मीर के बहादुर लोगों और उनके नेताओं शेख अब्दुल्ला और मौलाना मोहम्मद सईद का, और भारतीय सेना के जवानों और हवाबाज़ों का, धर्म-निरपेक्ष जनतन्त्र का झंडा ऊँचा रखने के लिए, सोशलिस्ट पार्टी हार्दिक अभिवादन करती है। वह काश्मीर राष्ट्रीय सम्मेलन के हाल के प्रस्ताव का स्वागत करती है जिसमें हिन्दुस्तान के अभिन्न अंग रहने की जनता की इच्छाशक्ति अभिव्यक्त हुई है।

इधर के हफ़्तों मे भारतीय जनता के कुछ भटके हुए या स्वार्थी तबक़ो की यह कोशिश रही कि काश्मीर की लड़ाई को उस महान् प्रसंग से अलग कर दिया जाए जिसमे कि वह लड़ी जा रही है। इस लड़ाई के खर्चे का बहुत शोर मचाया जा रहा है, और काश्मीर के विभाजन की बात की जा रही है। काश्मीर में कम्युनिस्टों और बर्तानिया में कंज़रवेटिवों द्वारा, अरसे से, काश्मीर के घातक विभाजन की बात की जा रही है, लेकिन अब हिन्दुस्तान के एक छोटे तबक़े में इस बात के मज़बूत हिमायती मिल गये हैं। हिन्दुस्तान के लोगों की इच्छाशक्ति को तोड़ने वाली यह शैतानी कोशिशें अब बन्द हो जानी चाहिए। काश्मीर की लड़ाई में निबद्ध जनतंत्र और राष्ट्रत्व के बड़े मसले को पैसे की तुच्छ दृष्टि से नहीं देखना चाहिए या कामचलाऊ समझौतों से धूमिल नहीं करना चाहिए। काश्मीर की जनता और बहादुर हिन्दुस्तानी फ़ौज के साथ विश्वासघात करने के ऐसे सभी प्रयासों की सोशलिस्ट पार्टी निन्दा करती है, और पाकिस्तान के हमले को रोकने और द्विराष्ट्र सिद्धान्त का मुक़ाबला करने के लिए भारत सरकार को बधाई देते हुए, वह उन्हें

सचेत करती है कि काश्मीर में अधूरे मन से काम करने या हट जाने को भारतीय जनता अस्वीकार कर देगी। काश्मीर में पाकिस्तानी प्रचार का खंडन करने में अब भारत सरकार को असावधान नहीं रहना चाहिए।

काश्मीर को हिन्दुस्तान का अभिन्न अंग बनाये रखने के लिए हिन्दुस्तान की जनता पर बड़ी ज़िम्मेदारियाँ आ जाती हैं। काश्मीर की जनता ने बहादुरी से पाकिस्तान को जिस ओजस्विता से ललकारा है, उसकी हर हिन्दुस्तानी के मन में प्रतिध्वनि होनी चाहिए, और हिन्दुस्तान में द्विराष्ट्र सिद्धान्त के जो भी चिह्न बच रह गये हैं वे समाप्त हो जाने चाहिए। हिन्दुस्तान में सभी धर्मों के लिए—हिन्दू, मुसलिम या दूसरा—समान नागरिकता की धारणा हिन्दुस्तानी मन की अभीष्ट वस्तु होनी चाहिए, इतनी उल्लासिनी जितनी कि पवित्र। इसी धारणा के अनुसार और राजाओं के बारे में जनतांत्रिक नीति के अनुसार काश्मीर में स्वेच्छाचारी राजवंश हट जाना चाहिए। इस राजवंश ने अरसे से काश्मीर में समस्याओं को धूमिल किया है और वह कुछ हद तक अब भी वैसा ही करता जा रहा है। इसने काश्मीर की जनता को सम्पूर्ण जनतांत्रिक और उत्तरदायी हैसियत से वंचित रखा; यह हिन्दुस्तान के दुश्मनों और पाकिस्तान के दोस्तों के हाथ में एक हथियार है। अगर हिन्दुस्तान की जनता काश्मीर को प्यार और वफ़ादारी के अटूट बन्धनों से अपने से बाँधना चाहती है, तो उसे भारत सरकार पर दबाव डालना चाहिए कि वह काश्मीर राजवंश को हटा दे और स्वराष्ट्र मंत्रालय को आदेश भी देना चाहिए कि वह जागीरदारों और ज़मींदारों के उन्मूलन जैसे सामाजिक उत्थान की योजनाओं में हस्तक्षेप न करे।

—१९४८; पुरानी सोशलिस्ट पार्टी की राष्ट्रीय समिति द्वारा नियुक्त उपसमिति की रपट का एक अंश।

अखंड काश्मीर

सोशलिस्ट पार्टी की परराष्ट्र समिति के अध्यक्ष राममनोहर लोहिया ने हाल ही में नागपुर के पत्रकारों को बताया कि अखण्ड काश्मीर हमारी मातृभूमि का ही एक अंग है, और वह रहेगा। आपने कहा कि सोशलिस्ट पार्टी की यही नीति है।

पत्रकारों ने डा० लोहिया का ध्यान जयप्रकाश जी द्वारा गत सितम्बर में बम्बई में दिये एक भाषण की ओर दिलाया जिसमें उन्होंने कहा था कि पाकिस्तान से अच्छे संबंध स्थापित करने के लिए हमें काश्मीर का बंटवारा कर देना चाहिए। लोहिया ने कहा कि ये विचार जयप्रकाश जी के निजी हो सकते हैं, पर सोशलिस्ट पार्टी की नीति अखंड काश्मीर को भारत में शामिल करना है।

—१९५०, दिसम्बर।

काश्मीर हिन्दुस्तान का अंग

गुलमर्ग की कड़ाके की सर्दी से ले कर दिल्ली और नागपुर की गर्मी सब एक दिन में, एक अनुभव है, और इससे ज़ाहिर होता है कि हमारा देश कितना विशाल है। शायद इसी विशालता से हिन्दुस्तान को अपने इतिहास के उज्ज्वल काल में सहिष्णुता और समबोध मिला। इस विशालता से कट जाना, सीने में छुरी भोंकने जैसा है. और हर हालत में सहिष्णुता की सम्भावना कम कर देता है।

दूसरे, दुनिया में चारों तरफ़ यह झूठ फैल गयी है कि हिन्दुस्तान और पाकिस्तान के बीच सिर्फ़ काश्मीर का ही मसला आड़े आता है। अब इस झूठ को खतम करना चाहिए। और भी कई मसले हैं जैसे पख्तूनिस्तान, पूर्वी बंगाल का अलगाव और अल्पसंख्यकों से सम्बन्धित सवालों के साथ-साथ आर्थिक बैठ-बिठाव। इनमें से हर एक गड़बड़ मचा सकता है। अगर काश्मीर का मसला पाकिस्तान के मनोनुकूल हल कर भी दिया जाए, फिर भी ये दूसरे मसले उसे बिगाड़ते रहेंगे और वह उसका इलज़ाम हिन्दुस्तान के मत्थे मढ़ेगा। जब तक पाकिस्तान अपनी पुनर्रचना का रास्ता नहीं समझता, तब तक काश्मीर के सवाल का कोई स्थायी, और दोनों के लिए सन्तोषजनक हल सम्भव नहीं है।

तीसरे, धर्म के आधार पर यदि काश्मीर पाकिस्तान को दे दिया जाए, तो इसका मतलब न सिर्फ़ मासूम लोगों को बलिदान कर देना ही होगा, बल्कि इसका मतलब होगा एशिया के शरीर में धर्मान्धता का ज़हर गहरे घुसेड़ देना। ठीक यही धर्मान्धता और धार्मिक अलगाव एशिया के सामने एक मुख्य भय के रूप में खड़े हैं, और काश्मीर के मसले पर पाकिस्तान के सामने झुक जाने का नतीजा होगा कि हिन्दुस्तान और समूचा एशिया धर्मान्धता और टूट की शक्तियों का और बुरी तरह शिकार बन जाएगा।

पाकिस्तान के लोगों के लिए मुझे अफ़सोस है कि उनमें काश्मीर की आकांक्षा की भावना को बुरी तरह से कूट-कूट कर भरा गया है। मैं आसानी से कल्पना कर सकता हूँ

कि ऐसी आकांक्षा पाकिस्तान की सरकार के सामने कितनी झंझटें खड़ी कर सकती है। लेकिन झुक जाने से ऐसी सभी कलुषित आकांक्षाओं का हल नहीं निकलता, बल्कि नये-नये ढंग से उन बुनियादों पर सोचना पड़ता है कि जिन पर जीवन का मार्ग बनाया जा सके।

चौथे, काश्मीर में संयुक्त राष्ट्र संघ के पर्यवेक्षक ठीक काम नही कर रहे हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ के अमले से सम्बद्ध एक मेजर-जनरल का वह क़िस्सा मैंने सुना, जिसने बंगाल के एक मंत्री, डा० आर० अहमद, से कहा कि काश्मीर नेशनल कांफ्रेंस के शानदार जुलूस और सभाएँ सिर्फ़ 'सतही तमाशे' हैं। उस मेजर-जनरल ने शायद सोचा कि वह एक मुसलमान से राज़ की बात कर सकता है, और यह भूल गया कि मुसलमानों और मुसलमानों में भी अन्तर होता है। इससे यही ज़ाहिर होता है कि वह ज़हर संयुक्त राष्ट्र संघ जैसी संस्था के पर्यवेक्षकों के शरीर तक में भी घुस गया है। उस संगठन के अमले को, जो ज़ाहिरा तौर पर शान्ति और न्याय के लिए यत्नशील है, ज़्यादा अच्छी तरह प्रशिक्षित होना चाहिए। लेकिन, शायद, वह मुमकिन नहीं, क्योंकि संयुक्त राष्ट्र संघ अन्तर्राष्ट्रीय चालबाज़ियों की मंडी और 'बड़ी शक्तियों' के दावँपेंचों का रंगमंच बन गया है। बिना गुटों और सम्भाव्य फ़ौजी सहायता की पृष्ठभूमि में रखे, किसी मसले पर विचार नहीं होता। शायद अतलांतिक खेमा पाकिस्तान को सोवियत खेमे के विरोधी के रूप में अपना अच्छा दोस्त समझता है। इससे स्वभावतः अतलांतिक खेमे का पलड़ा पाकिस्तान की तरफ़ झुक जाता है; लेकिन न्याय पर आधारित एक सर्वव्यापी क़ानून के बनाने में ऐसा रुख़ अपनाने के ख़तरनाक नतीजों की कल्पना आसानी से की जा सकती है।

पाँचवें, जब संयुक्त राष्ट्र संघ के बारे में मैंने यह कहा है, तो हिन्दुस्तान के परराष्ट्र मंत्री के बारे में मेरे रुख़ को अलग रखना चाहिए। वे आवेश में अधोमुख हो जाते हैं और हर मसले को, चाहे वह इतवार के दिन डाक बाँटने का हो या काश्मीर का, बहुत ही व्यक्तिगत स्तर पर देखते है। वे किसी सिद्धांत से, चाहे वह विश्व एकता का हो या हिन्दुस्तान के राष्ट्रीय हितों का, चालित नहीं होते।

अगर वे इंग्लिस्तान और अमरीका पर पाकिस्तान को मदद करने और बढ़ावा देने का इलज़ाम लगा सकते हैं, तो उन पर भी, उतने ही वाजबी ढंग से, कभी अतलांतिक और कभी सोवियत खेमे की मदद करने और बढ़ावा देने का इलज़ाम लगाया जा सकता है। उनकी अत्यन्त निरर्थक विदेश नीति के घुमावों और फेरों ने हिन्दुस्तान की स्थिति को बेहद शंकास्पद बना दिया है और कोई भी राष्ट्र उसके तटस्थ होने का भी भरोसा नहीं कर सकता।

हिन्दुस्तान की ढुलमुल हरकतों से अपने-आप को बचाये रखने की दूसरे राष्ट्रों की ख़्वाहिश को मैं भलीभाँति समझ सकता हूँ। देश के अन्दर अपने पीछे किसी सैद्धान्तिक

अथवा भौतिक शक्ति के बिना विश्व मंच पर सर्वश्रेष्ठ 'रोल' अदा करने की अपनी दम्भी ख्वाहिश से हिन्दुस्तान के विदेश मंत्री अगर सिर्फ़ छुटकारा ही पा लें, तो शायद वे बेमतलब टाँग न अड़ाएँ और अतलांतिक और सोवियत खेमों के बीच पक्की तौर पर तटस्थ रह सकें, और तब वे एक प्रकार का विश्वास जमा सकेंगे।

छठवें, संयुक्त राष्ट्र संघ में सिर्फ़ ४ या ५ बड़ी शक्तियाँ ही नहीं हैं, बल्कि अन्य ५६ राष्ट्र भी हैं। ये सभी राष्ट्र भारत-विरोधी नहीं हैं या कुत्सित प्रयोजनों से चालित नहीं होते। कि पाकिस्तान के सन्दर्भ में इनमें से कोई भी हिन्दुस्तान की बात को वास्तविकता से नहीं समझा, इसी में हिन्दुस्तान की विदेश नीति की निन्दनीय असफलता पूरी साबित हो जाती है। केवल घटिया नचनिया ही अपनी त्रुटियों के लिए आँगन को दोषी ठहराता है।

हाल ही में बने की तरह, इन छोटे राष्ट्रों के साथ अपने व्यवहार में भारत सरकार लगातार भोंडी रही। हिन्दुस्तान के विदेश मंत्री ने विश्व को ५ ब्राह्मण और ५६ अछूत राष्ट्रों में विभक्त करने वाली अन्तर्राष्ट्रीय जातिप्रथा के स्वयं विरुद्ध होने की एक बार भी घोषणा नहीं की। अगर वे सिर्फ़ इतना ही करें और इस अन्तर्राष्ट्रीय जातिप्रथा को तोड़ने पर और राष्ट्रों की समता पर अपनी विदेश नीति आधारित करें, तो वे विश्व समता और शान्ति के लिए विशुद्ध और स्वस्थ उद्भाव जागृत कर सकेंगे जो लाज़मी तौर पर हिन्द-पाक समस्या को बेहतर समझने के लिए सहायक होगी। किसी भी अपेक्षाकृत परिपक्व जनतंत्र में, हिन्दुस्तान के विदेश मंत्री को कभी का हटा दिया गया होता।

सातवें, काश्मीर के राजवंश को स्थापित करने और चुनावों की व्यवस्था से ले कर काशमीर के लिए आर्थिक नीति तय करने तक, विभिन्न समस्याओं को हल करने में बहुत ही कष्टप्रद विलम्ब हुआ है। मैं आशा करता हूँ कि राजवंश को हटाने में, विधानसभा चुनने में और सुनियत आर्थिक नीति की शुरूआत में अब और विलम्ब न होगा।

आठवें, शेष हिन्दुस्तान में सत्ता और पैसे के पीछे पड़ने और पक्षपात और भाई-भतीजावाद की दिशाओं में जाने की नक़ल करने से काशमीर की सरकार का काम नहीं चलेगा। मुझे मालूम हुआ है कि ऐसी हरकतों से काशमीर की जनता का मन काफ़ी खट्टा हो गया है। वे बी. ए. पास लोग जिनकी पहुँच नहीं है, उनकी अपेक्षा उन मैट्रिक पास लोगों को नौकरियाँ दी गयी हैं जिनकी पहुँच है; और हर हालत में काश्मीर के वर्तमान प्रशासकों को अपना आचरण कठोरता से विशुद्ध रखना चाहिए ताकि पाकिस्तान को कोई हथियार न मिल जाए।

नौवें, मैं आशा करता हूँ कि हमारे ज्यादा लोग काशमीर जाएँगे और वहाँ अपनी छुट्टियाँ बिताएँगे ताकि काशमीर की आर्थिक स्थिति जमाने में सहायता हो। परन्तु, मैं इन यात्रियों को सावधान कर दूँ कि वे हमेशा याद रखें कि काशमीर शायद द्वि-राष्ट्र

सिद्धान्त का अन्तिम युद्ध-स्थल है, जहाँ कि वह हमेशा के लिए या तो दफ़ना दिया जाएगा या पुन: जीवित हो कर पनपेगा। अगर वे निराशावाद के सामने आत्मसमर्पण कर देते हैं, तो वे यात्री अच्छा करने की बनिस्बत हानि अधिक पहुँच पाएँगे।

दसवें, मैं सोचता हूँ कि यूरोप और दूसरी जगहों के युवक संगठनों के प्रतिनिधि मंडल काश्मीर आते और हिन्द-पाक सम्बन्ध की समस्या पर रपट देते। मानवी मामलों को, कुत्सित प्रयोजनों से अकलंकित रहते हुए, दूर दृष्टि से देखने की आशा युवकों से की जा सकती है। पैसे का अभाव न होता तो हिन्दुस्तान की सोशलिस्ट पार्टी ऐसे युवक प्रतिनिधिमंडलो को बुलाने का प्रयास करती। इसी तरह काश्मीर युवको के एक प्रतिनिधि मंडल को दूसरे देशों का भ्रमण करने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए।

ग्यारहवें, शेख अब्दुल्ला के अतिरिक्त, मौलाना सईद (नेशनल कानफ़रेंस के प्रधान मंत्री), जनाब मोहम्मद शफी और जियालाल तामिरी जैसे बढ़िया लोगों के नामों का उल्लेख भी मैं करना चाहूँगा, जिनके शरीर और मन की बहादुरी के अभूतपूर्व कामो का बाक़ी हिन्दुस्तान में ज्यादा अच्छा पता चलना चाहिए।

इधर कुछ दिनों से जम्मू में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ और कम्युनिस्टों की तरह की तोड़-फ़ोड़ करने वाली शक्तियों का एक विचित्र गठजोड़ रहा है। इसकी वजह से एक बार मौलाना सईद के इस्तीफ़े की नौबत आ गयी थी। मुझे आशा है कि नेशनल कानफ़रेंस ऐसे तत्वों को रोकने का तरीक़ा निकाल सकेगी।

अन्त में मैं अपनी पक्की आशा व्यक्त करना चाहूँगा कि एक स्वतंत्र और समान संसार के हित में, तोड़फोड़ के कट्टर पंथ से रहित नवजागृत एशिया के हित में और अन्ततोगत्वा इसलिए कि हिन्दुस्तान की जनता के अभिन्न अंग होने के कारण काश्मीर की जनता चाहती है कि काश्मीर, जो हिन्दुस्तान का एक अंग है, हिन्दुस्तान का ही अंग बना रहेगा।

—१९५१, जून।

ख़तरनाक चाल

मैं तथा और कई लोग बहुत अफ़सोस और कुछ निराशा के साथ देख रहे हैं कि जनता का ध्यान ज़रूरी राजनीतिक और सामाजिक मसलों से मोड़ कर साम्प्रदायिक मोर्चे पर ले जाया जा रहा है। यह दिखलाने के लिए लगातार बड़ा प्रचार किया जा रहा है कि साम्प्रदायिक भूत के खिलाफ़ कांग्रेस पार्टी बड़ी मेहनत से और अकेले लड़ रही है और प्रजा समाजवादी दल तक उस भूत को बढ़ने में मदद कर रहा है। श्री जवाहरलाल नेहरू और श्री श्यामाप्रसाद मुखर्जी बड़ी नेक-नीयती से काम कर रहे होंगे लेकिन, उनके कामों के नतीजे के तौर पर, वे दोनों समान रूप से मुसलमानों को हिन्दुओं से अलग कर रहे हैं और दोनो जातियों को अभेद्य लोहे की दीवारों के पीछे डाल देने का प्रयत्न कर रहे हैं। कांग्रेस पार्टी की चुनाव चाल से मुसलमान भय की क़ैंची के बीच पकड़े गये, कि हिन्दू सम्प्रदायवाद उन्हें लील जाएगा, और विश्वास का, कि श्री नेहरू और उनका दल ही उनके एकमात्र रक्षक हैं। एक नहीं अनेक क्षेत्रो में. मुसलमानों के वोट से पलड़ा इधर या उधर झुक जा सकता था और उन्होंने, जाति के रूप में, कांग्रेसी उम्मीदवार को वोट दिये। मैं हमेशा श्री नेहरू के अभूतपूर्व कौशल की प्रशंसा करूँगा कि जिसके जरिये उनका दल मज़े में जीत गया जबकि, ऐसा न होता तो वह सिर्फ़ घिसटते-घिसटते जीत पाता। लेकिन मैंने आशा की थी कि उनके अपने देश की ख़ातिर वे अब उस तरकीब का इस्तेमाल नहीं करेंगे। एक राजनीतिक जाति के रूप में अगर मुसलमान जीवित रहते हैं और अगर वे हिन्दुओ की तरह विरोधी राजनीतिक दलों में नहीं बँट जाते, तो राष्ट्र मर जाएगा। श्री नेहरू और श्री मुखर्जी दोनों, मुसलमानो से अपने-अपने ढंग से, हिन्दुओ को अलग करके राज करना चाहते हैं; एक, प्रधान मंत्री की हैसियत से, और दूसरे विशिष्ट विरोधी की हैसियत से। इसके अलावा, श्री नेहरू और उनके आदमी जाति के आधार पर कहीं ज्यादा घातक सम्प्रदायवाद चला रहे हैं। केवल एक सप्ताह पहले, बड़े कांग्रेसियों की अभिभावकता में एक अखिल भारतीय अहीर सम्मेलन बुलाया गया था, और उस चुनाव क्षेत्र में, जहाँ से उत्तरप्रदेश के एक मंत्री हार गये, कांग्रेस पार्टी की ओर से राजपूतों और मुसलमानों की

अलग-अलग टोलियाँ अपनी-अपनी जातियों के वोट फँसाने के लिए निकल पड़ी हैं। जाति-गत वोट फँसाने का यह तरीक़ा इतना गंदा है कि गणतंत्र के राष्ट्रपति तक ने २०० ब्राह्मणों के पैर सार्वजनिक रूप से धो कर ख़ुद को और राष्ट्र को ओछा बना दिया। सार्वजनिक जीवन में कुछ तो ईमानदारी होनी चाहिए। श्री नेहरू मुसलमानों, और जाति के भी मामले में जब तक अपनी नीति नहीं बदलते, जनता को फैसला करना चाहिए कि वह उनकी घायल मासूमियत की तरफ़ नज़र नहीं उठाएगी। चोर कोतवाल को डाँटने और इससे काम पटा लेने के पागलपन से हमारा आध्यात्मिक जीवन-कोष पहले ही विषमय हो गया है।

पूर्वी बंगाल दिवस मनाने के लिए प्रजा समाजवादी दल से जनसंघ के सम्बन्ध के बारे में बहुत-सी बातें बनायी जा चुकी हैं। यह भुला दिया जाता है कि यह दिवस मनाने के कारण पूर्वी बंगाल के मसले को साम्प्रदायिक उत्तेजना से अलग रखने में सहायता मिली और डा० मुखर्जी तक को आबादी के विनिमय वाले उनके अब तक के प्रिय विषय को छोड़ देने के लिए राज़ी किया गया। फिर भी बंगाल के बाहर इस तरह मिल कर काम करना अच्छा नहीं साबित हुआ, अगर और किसी कारण न हो, तो इस कारण कि कांग्रेस पार्टी द्वारा फैलाये गये भ्रम के धुंधलके को साफ़ करने के लिए प्रजा समाजवादी दल के पास साधन नहीं हैं।

जम्मू में प्रजा परिषद् का आन्दोलन, हालाँकि वह स्पष्टतः राष्ट्रीय ध्येय के लिए शुरू किया गया, अपने परिणाम में अवांछनीय है, और कोई भी प्रजा समाजवादी उससे सम्बद्ध नहीं है। एक अवांछनीय आन्दोलन की वाजिब आलोचना का मुखौटा लगा कर, काश्मीर नीति की ग़लतियों को छिपाने का प्रयत्न नहीं होना चाहिए। काश्मीर के हिन्दुस्तान में मिल जाने के तत्काल बाद, राजा को हटा देना चाहिए था। वैधानिक अधि-मिलन को राजनीतिक वास्तविकता का रूप देने के लिए एक केन्द्रीय मंत्री को काश्मीर में ठहरना चाहिए था, और ज़मीन के पुनर्वितरण की योजनाओं में देरी नहीं करनी चाहिए थी। उनके लिए जो इन कामों को अव्यावहारिक मानते थे, मैं महात्मा गाँधी की राय का उल्लेख करूँगा। पाकिस्तानी अतिक्रमण के फ़ौरन बाद जिस दिन मैं श्रीनगर जा रहा था, महात्मा गाँधी ने कहा, "कुछ लोग डरते हैं कि काश्मीर के राजा के हट जाने से हिन्दुस्तान के सभी राजा विद्रोह कर देंगे। अगर वह हो भी जाए, तो अच्छा ही होगा। अगर हम जीतते हैं तो काम करने के लिए हमारे पास ज्यादा साफ़ ज़मीन होगी और अगर वे जीतते हैं, तो हम हमारी स्वच्छ लड़ाई फिर से शुरू कर देंगे।" होना था सो हो गया और कुछ लोग कह सकते हैं कि ढुले दूध पर रोने से फ़ायदा, किन्तु अभी भी दूध ढोला जा रहा है। काश्मीर प्रशासन की नुमाया कमज़ोरियों को दूर करने की कोशिश नहीं हो रही है, और परिषद् से आन्दोलन बन्द करने का आग्रह करते हुए, हम यह भी चाहेंगे कि काश्मीर

प्रशासन जनता की आलोचना सहन करे। अन्त में, मैं चाहूँगा कि हिन्दुस्तान के युवजन सीधे और उलटे दोनों तरह के सम्प्रदायवाद के इस कुत्सित धुंधलके को छाँटें और जनता को ईमानदाराना राजनीतिक बहस के वातावरण में साँस लेने दें।

—१९५३, जनवरी।

काश्मीर का भविष्य

अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक में काश्मीर के बारे में हिन्दुस्तान के प्रधानमंत्री ने जो कुटिल डरावनी बातें बतलायीं, वे इतनी तेज़ी से सही निकल रही हैं कि जनता को फ़ौरन ग़ौर करना चाहिए। 'दी न्यूयार्क टाइम्स' के संवाददाता ने काश्मीर घाटी के एक स्वतंत्र सार्वभौम राज्य के रूप मे निर्माण की पूर्वघोषणा की थी और काश्मीर के प्रधानमंत्री ने एक ऐसे काश्मीर के बारे में एलानिया सोचना शुरू कर दिया जो हिन्दुस्तान से अधिमिलन को खतम कर देगा। हिन्दुस्तान की अगर तकदीर बहुत अच्छी हुई तो वह जम्मू और लद्दाख को रख पाएगा और काश्मीर घाटी के पाकिस्तान में मिल जाने को रोक सकेगा।

संयुक्त राष्ट्र संघ के अफ़सरों के भेस में अमरीकी समूची घाटी में फैल गये हैं और रूसियों के अनेक एजंट तो काश्मीर आन्दोलन में पहले से ही थे। ऐसा कहा जाता है, ये दोनों गोरे देश, जो और कहीं एक दूसरे की जान-लेऊ लड़ाई के लिए तैयार थे, शेख अब्दुल्ला से इस घाटी को कम से कम एक स्वतंत्र प्रदेश बनाने की आवश्यकता पर सहमत हो गये। कोरिया और हिन्दुस्तान और पाकिस्तान में तनाव कम हो जाने के बाद उनके ऊपर अपनी छत से नीचे उतरने के लिए बाहरी प्रभाव डाला जाएगा, और पहले से ही यह बतला देने के लिए किसी मसीहाई अन्तर्दृष्टि की आवश्यकता नहीं कि उन दोनों में से किसे ज्यादा नीचे उतरने के लिए कहा जाएगा।

हिन्दुस्तान के प्रधानमंत्री ने एक तो जिम्मेदारी दूसरों पर उँडेल देने की बेहद चालाक कोशिश की और दूसरे, अपनी करतूतों को उन्होंने शांति के रुपहले आवरण से ढंक देना चाहा। लगातार पाँच बरसों से पूरा मामला उनके तहत था और, अब वे चाहे जितना हिन्दू या मुसलिम सम्प्रदायवाद पर दोष मढ़ने की कोशिश करें, काश्मीर में जो हो रहा है उसके वे ही मुख्यतः उत्तरदायी हैं। हिन्दुस्तान की जनता, सब सतही किन्तु जिम्मेदारी से भागने वाले चालाक राजनीतिज्ञों की बाबा आदम से चली आयी चाल की

शिकार बहुत रह ली। अब वह और नहीं होना चाहिए। जिम्मेदारी की पहचान के साथ यह निश्चय कि काश्मीर के मामले में वह झाँसे में नहीं आएगी, जनतंत्र की यह एक पहली जरूरत है।

इसके अतिरिक्त प्रधानमंत्री ने ऐसा जाहिर किया कि दावत पर हिन्दुस्तानी फ़ौज काश्मीर गयी थी, कि जनता की मरज़ी के बिना उसके वहाँ रहने की अवधि को बढ़ाया नहीं जा सकता, और कि, इसलिए, काश्मीर के बाहर का कोई आदमी हिन्दुस्तान से काश्मीर का अधिमिलन चाहे तो वह शान्ति वाला नहीं है। लगता है, प्रधानमंत्री देश के महान् मामलो को घरेलू भोज-निमंत्रणों के स्तर पर ला पटकना चाहते हैं। हिन्दुस्तान की फ़ौजें, जिनसे दुनिया में सिर्फ़ दो दूसरी ज़्यादा शक्तिशाली हैं, और वह भी अपने साज़-सामान की वजह से, ऐसी सैलानी दावतों पर अपना खून बहाने के लिए नहीं बनी हैं।

अगर यह मान भी लिया जाए कि पहली दावत देने के बाद काश्मीर का मन पलट गया है और कि हिन्दुस्तान के प्रधानमंत्री को ऐसी अस्थिरता के लिए उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता, असल सवाल यह है कि क्या पिछले पाँच बरसों में काश्मीरी मन को दृढ करने के लिए सब सम्भव चीज़ें की गयीं। किसी भी ईमानदार आदमी को यह स्वीकार करना चाहिए कि सब सम्भव चीज़ें नहीं की गयीं और कि वैधानिक अधि-मिलन को मानसिक और राजनीतिक अधिमिलन में परिवर्तित करने की कोई नीति नहीं बनायी गयी। भारत सरकार को कम से कम एक केन्द्रीय मंत्री को काश्मीर में ठहराना चाहिए था। काश्मीर का नागरिक होने से वह अपने आप हिन्दुस्तान का नागरिक नहीं बन पाता। इस अविधान को उसे दूर करना चाहिए था।

किसी को यह नही सोचना चाहिए कि मैं ढुले दूध पर रोने की अथवा दोषी को ढूंढ़ने की कोशिश कर रहा हूँ। मैं भविष्य के बारे में चिन्तित हूँ और वह भविष्य काश्मीर या हिन्द-पाक सम्बन्धों का उतना नहीं है जितना कि हिन्दू-मुसलमान रिश्तों का। आखिर तो, हिन्दुस्तान पाकिस्तान का भी उतना ही है जितना कि पाकिस्तान हिन्दुस्तान का और यह हिन्द-पाक राजनीतिकों की दुःखद असफलता है कि स्वतंत्र काश्मीर घाटी में विदेशी शक्तियाँ शायद जोड़-तोड़ कर सकेंगी। काश्मीर असफलता का हिन्दू-मुसलिम रिश्तों पर जो असर पड़ेगा वह इससे भी कहीं अधिक दुःखद होगा।

हिन्दुस्तान और काश्मीर दोनों के प्रधानमंत्री काश्मीर कांड के बारे में लगातार पाँच बरसों तक डींग मारते रहे कि वह हिन्दू-मुसलिम को एक राष्ट्र में गूंथने की शानदार तरकीब है और कि एशिया के इस भाग में धार्मिक विभेद रहित राज्य की उपलब्धि हुई है। काश्मीर में जो प्रयन्त किये, सब बरबाद कर दिये गये और वह शानदार तरकीब खतरे में पड़ गयी है। मैं हिन्दुस्तानी जनता को एक सहज किन्तु खतरनाक प्रतिक्रिया से सावधान करना चाहता हूँ। काश्मीर में असफलता से उन्हें कभी यह सोचना तक नहीं

चाहिए कि वह एक ऐसा राष्ट्र बनाने में असफल हो गयी जिसमें कि हिन्दू और मुसलमान बिलकुल एक जैसे भाग हों बल्कि उसे अपनी हार के कारण खोजना और दूर करना चाहिए।

एक मुख्य कारण रहा है एक ही व्यक्ति के नेतृत्व की पूजा। हिन्दुस्तान में, और काश्मीर में भी, इस पूजा की वजह से एक ही व्यक्ति के पलटते 'मूडों' पर मजबूरन निर्भर करना पड़ता है और यह सब चीज़ें ऐसी बुद्धि को विकसित नहीं कर सकतीं जो कि राष्ट्र की नैया को तूफ़ान के बीच से भी सुरक्षित खे ले जाए। हिन्दुस्तान की जनता को पर्याप्त मात्रा में चेतावनी दे दी गयी है। काश्मीर में अगर खराब नतीजे निकलें, तो जनता भले ही अपराधियों पर अपना गुस्सा उड़ेल ले, किन्तु हिन्दुओं और मुसलमानों को एक राष्ट्र में गूँथने के काम से कभी भी हाथ नहीं खींच लेना चाहिए।

—१९५३, जुलाई।

काश्मीर से प्राप्त पत्र

काश्मीर के बारे में मुझे कई पत्र मिले हैं जो सम्पादित किन्तु अपरिवर्तित अवस्था में निम्नलिखित हैं।

हिन्दुस्तान विरोधी : "वास्तव में, दिल्ली समझौते की उन क़लमों पर जिन पर अब तक अमल नहीं किया गया, उनके अमल को ले कर झगड़ा शुरू हुआ। बहुमत तो उस पर अमल करने के पक्ष में था जब कि शेख़ अब्दुल्ला, बेग, सोफ़ी महमूद अकबर, उप वित्तमंत्री मुबारकशाह, और अब्दुल ग़नी, गूनी, डोडा सीमित अधिमिलन के पक्ष में थे। इन लोगों ने, सुना कि समझौते की प्रतिकूल क़लमों को हटा देने का ज़िकर किया। बहुमत का जब विरोध डट कर हुआ, तो सीमित अधिमिलन के ख़िलाफ़ तक बोलना शुरू कर दिया। पाकिस्तान का भी उन्होंने नरमाई से वर्णन किया। इसके अतिरिक्त, उन्होंने 'स्वतंत्र काश्मीर' वाले तीसरे विकल्प पर भी ज़ोर दिया। परन्तु, कार्यकारिणी ने उन्हें दिल्ली समझौते पर अमल करने के पक्ष वाले प्रस्ताव पर दस्तख़त करने को राज़ी कर लिया। लेकिन उन्होंने अपने अपमान का बदला लेने में जल्दी की। उन्होंने कई आम सभाओं और कार्यकर्त्ताओं की सभाओं में भाषण दिये, जिसमें उन्होने कार्यकारिणी के प्रस्ताव को नकार देने की कोशिश की। उन्होंने कहा कि जम्मू और काश्मीर राज्य के भविष्य के सम्बन्ध में बन्द कमरों में बैठ कर लिये गये किसी भी फ़ैसले को काश्मीर की जनता पर थोपा नहीं जा सकता। अपने भविष्य का निर्णय करने का काम काश्मीरियों का है न कि उनके नेताओं का। इन्हीं सभाओं में ही तो उन्होंने अपने दल में भ्रष्टता, भाई-भतीजावाद, पक्षपात और अन्य कमज़ोरियों को स्वीकार किया। जनता से उन्होंने साफ़ कहा कि उनके सहयोगियों ने निजी फ़ायदे के लिए सत्ता का इस्तेमाल किया। लेकिन उन्हीं सभाओं में उसी सांस से यह भी कहा कि अपनी जनता की सेवा के लिए उन्होने अपना जीवन अर्पण कर दिया है और कि उन्होंने अपने रिश्तेदारों को फ़ायदा नहीं पहुँचाया है। यह आसानी से समझा जा सकता था कि अपने सहयोगियों को बदनाम

करना और अकेले कर देना और खुद को काश्मीर की जनता के एकमात्र रक्षक के रूप में पेश करना उनकी कोशिश थी, और अब भी है।"

"लेकिन अब पाकिस्तानियों ने कम्युनिस्टों की जगह ले ली है। किन्तु वे उनकी उपस्थिति में पाकिस्तान के पक्ष में नहीं बोलते। बाहर लोगों से वे कहते हैं कि शेख़ अब्दुल्ला पाकिस्तान के पक्ष में हैं, ताकि लोग खुल्लमखुल्ला पाकिस्तान का पक्ष ले सकें। वास्तव में, सिर्फ़ तीन दिन पहले इन तत्वों ने एक आम सभा आयोजित की, जिसमें हज़ारों लोग शरीक हुए और "पाकिस्तान ज़िन्दाबाद" का नारा लगाया। इतना ही नहीं, उसी रात उन्होंने कई जुलूस आयोजित किये और अल्पसंख्यकों, नेशनल कान्फ्रेंस के बख़्शी समर्थक कार्यकर्त्ताओं और हिन्दुस्तानी फ़ौज के आदमियों तक को डराया-धमकाया। यात्रियों में भी दहशत पैदा कर दी। कई फ़ौजी अफ़सरों और संसद सदस्यों के सामने हुल्लड़ मचाया। अगर शहर मे हिन्दुस्तानी फ़ौज की उपस्थिति के कारण वे न सहमते, तो १९४७ की पुनरावृत्ति होती। हालत इतनी बिगड़ गयी कि कई यात्री हिन्दुस्तान लौट गये और अल्पसंख्यकों पर डर छा गया। स्थिति अब भी तनावपूर्ण है। हिन्दुओं और मुसलमानो के रिश्ते खिंच गये हैं। लगभग प्रत्येक मुसलमान पाकिस्तानी बन गया है और लगभग हर एक हिन्दू संघी। डा० मुखर्जी की मौत से हालत और भी बिगड़ गयी। हिन्दू शेख़ अब्दुल्ला पर डा० मुखर्जी को मार डालने का आरोप लगा रहे हैं, और मुसलमान, लगता है, उसे नापसन्द करते हैं। संघियों द्वारा आयोजित शोक सभा मुसलमानों को भायी नहीं। विशेष रूप से, "शहीदे-काश्मीर की जय" वाला नारा मुसलमानों ने नापसन्द किया। इसमें उनका दोष नहीं है। श्री नेहरू को छोड़ कर, हिन्दुस्तान में बाक़ी सबको शेख़ अब्दुल्ला साम्प्रदायिक मानते है। प्रजा परिषद् के आन्दोलन ने उन पर यह असर पैदा किया। कहा जाता है, स्टीवनसन ने भी सम्प्रदायवाद के सिलसिले को उकसाया। शेख़ अब्दुल्ला के ख़िलाफ़ बख़्शी के अनुयायियों और कम्युनिस्टों के सम्मिलित प्रचार से, ऐसा लगता है, नेशनल कान्फ्रेंस के कुछ ही मुसलमान कार्यकर्त्ता प्रभावित हुए हैं। लगता है, शेख़ अब्दुल्ला की धार्मिक बातों ने काश्मीर में प्रत्येक अन्य प्रभाव का सफ़ाया कर दिया है। दुर्भाग्य यह है कि शेख़ अब्दुल्ला इसका खंडन करना टाल जाते हैं कि वे पाकिस्तान के पक्ष में हैं। और, वे अपनी पहले की सभी घोषणाओं की अवहेलना करते जा रहे हैं कि काश्मीर अटल रूप से हिन्दुस्तान के साथ हो गया है। काश्मीर की मुसीबतों के लिए अब वे अंग्रेज़ी-अमरीकी शक्तियों पर भी दोष नहीं मढ़ते।"

"शेख़ अब्दुल्ला ने दो और भी ख़तरनाक भाषण दिये, एक ३-७-५३ को और दूसरा १०-७-५३ को। ये दोनों भाषण उन्होंने मुजाहिद मंज़िल में कार्यकर्त्ताओं की सभा में दिये। किन्तु इन भाषणों की रपटें जो अख़बारों मे दीं वे लगभग पूरी तौर पर भिन्न हैं। पहले के भाषण में शेख़ साहब ने कहा, डा० मुखर्जी की मौत ने बड़े कांग्रेसी नेताओं और कई अन्य कम्युनिस्टों और समाजवादियों का अपना सच्चा रंग दिखला दिया है।

उनको ज़रा-सा खुरेद देने पर उनकी हिन्दू साम्प्रदायिक वास्तविकता प्रकट हो गयी है। दुर्भाग्य है कि हिन्दुस्तान में हिन्दू अपने-आप को जनम से राष्ट्रीय मानते हैं। उनकी राय में सम्प्रदायवाद, या हर प्रकार की धूर्तता, सिर्फ़ मुसलमानों में ही पायी जाती है। लेकिन अब हमें धोखा नहीं दिया जा सकता। इस मसले पर, हिन्दुस्तान में हरेक का मुखौटा, राष्ट्रीयता का मुखौटा, उतर गया है। उन्होंने धमकाया है और माँग की है कि काश्मीरी मुसलमानों के खिलाफ़ फ़ौजी कार्यवाही की जाए। लेकिन उन्हें यह समझ लेना चाहिए कि मुसलमान जानता है कि जान पर कैसे खेला जाता है। ३० लाख काश्मीरी मुसलमान मर जाएँगे और तब हिन्दुस्तानी फ़ौज उनकी लाश पर राज कर सकेगी...अब प्रजापरिषद् अपना आन्दोलन बन्द कर देती है या नहीं, कोई मानी नहीं रखता, क्योंकि उसका जो इरादा था उसके अनुसार नुक़सान तो हो ही गया। हमारी ओर हिन्दुस्तान के इरादे प्रकट हो गये हैं। तीन विषयों में हमने हिन्दुस्तान के साथ अधिमिलन किया था। किन्तु उनके बारे में भी हमारे मन में शंकाएँ उठ गयी हैं। हमें उन पर पुनर्विचार करना होगा। लेकिन वह हमारा दोष नहीं है। उन्होंने इस रिश्ते को तोड़ा है न कि हमने।"

"१० जुलाई को, उन्होंने इससे भी खतरनाक भाषण दिया। उन्होंने कहा, अधिमिलन के संबंध में आप मेरी क़यादत चाहते थे। किन्तु उसके बारे में मैं खुद दुविधा में हूँ। दरअसल, मैं नहीं जानता कि कुछ दिनों बाद मेरा भविष्य क्या होगा। प्रधानमंत्री की हैसियत से इस्तीफ़ा दे देने की बात पर मैं गम्भीरता से सोच रहा हूँ ताकि मुसलिम अधिकारों की रक्षा करने के लिए मैं खुल कर विरोध में आ जाऊँ...उन्हें (हिन्दुस्तान) ऐसा प्रधानमंत्री मुबारक जो इस तूफ़ानी दरिया में खे सके। एक तरफ़ वे चाहते हैं कि मैं राज्य का नेतृत्व करूँ, और दूसरी तरफ़, वे राष्ट्रवादियों—और हिन्दुस्तान के प्रति ग़ैरवफ़ादारी का मुझ पर आरोप लगाते हैं। मुझ पर ओछे हमले किये जा रहे हैं। कभी मुझे साम्प्रदायिक कहा जाता है, कभी पाकिस्तानी। एक ओर मुझे काश्मीर का सुलतान कहते हैं, तो दूसरी ओर, मुझ पर अमरीकी एजंट होने का आरोप लगाया जाता है। मैं कब तक यह सब बर्दाश्त कर सकता हूँ। वफ़ादारी की कितनी परीक्षाएँ मुझे देनी होंगी? वे मुझे परखना चाहते हैं; वे जिनकी खुद की दास्तान काली करतूतों से भरी पड़ी है। उन्हें मुझे परख लेने दीजिए, किन्तु मैं भी उन्हें नहीं छोड़ूँगा। मैं भी निहाई पर उनको परख लूँगा...यह सही है कि हिन्दुस्तान और काश्मीर में सम्प्रदायवादियों ने प्रजा परिषद् के इस आन्दोलन का सूत्रपात या समर्थन किया। किन्तु दूसरों ने भी इस आन्दोलन का सूत्रपात या समर्थन किया। किन्तु दूसरों ने भी इस आन्दोलन का विरोध नहीं किया। मैंने प्रजापरिषद् का सीधे या उलटे समर्थन न करने वाले किसी व्यक्ति को अथवा दल को नहीं देखा। ज़्यादा से ज़्यादा विरोध इसी हद तक हुआ कि प्रजा परिषद् को इस अवसर पर आन्दोलन नहीं करना चाहिए था यानी जब तक कि हिन्दुस्तान काश्मीर को ग़फ़लत में न दबोच ले। प्रजा परिषद् ने आन्दोलन बन्द कर दिया है। लेकिन उसका कोई फ़ायदा

नहीं। उसका धोरण तो अब भी वही है। सम्पूर्ण एकीकरण का नारा उसने बन्द नहीं किया है। इसमें सन्देह नहीं कि प्रत्येक शान्तिप्रिय व्यक्ति हिंसात्मक कार्यवाहियों की समाप्ति का स्वागत करेगा। लेकिन उससे काश्मीरी मुसलमानों को हिन्दुस्तान के वास्तविक इरादों का पता चल गया है। हिन्दुस्तान ने हमारे चारों तरफ़ अपना जाल बिछा दिया है और हमें पहले की तरह ग़ुलाम बन जाने का डर लग गया है...तीन विषयों में हमने हिन्दुस्तान से अधिमिलन किया था और बाक़ी में हमने स्वायत्त रखा था। हिन्दुस्तान के साथ हमारे सम्बन्धों का वह आधार था। हिन्दू हितों की रक्षा करने के लिए उतना काफ़ी था। इसके साथ ही, मुसलमानों को यह आश्वासन मिला था कि उनकी संख्या घटा न दी जाएगी और उन्हें ग़ुलाम नहीं बनाया जाएग। लेकिन इस रिश्ते में अब गड़बड़ हो गयी है। हमने उसमें गड़बड़ नहीं पैदा की। इसमें उनका दोष है। हमने हमारी प्रतिरक्षा हिन्दुस्तान को सौंप दी। इस तथ्य के बावजूद हिन्दू हमारा विश्वास नहीं करते। काश्मीरी मुसलमानों से आप कैसे उम्मीद करते हैं कि वे हिन्दुस्तान का विश्वास करें जहाँ हिन्दू बहुत अधिक छाये हुए हैं। मैं सबसे अपील करूँगा कि वे मेरी स्थिति समझें। ग़ैरमुसलमानों की रक्षा के लिए जब मैं पाकिस्तान के खिलाफ़ उठ खड़ा हुआ, तो मुझे नायक कहा गया, हालाँकि पाकिस्तान ने मुझ पर इसलाम से दग़ा करने का इलज़ाम लगाया। मैं अब भी उनका दुशमन नम्बर एक हूँ। लेकिन जब मैं मुसलिम हितों की रक्षा करना चाहता हूँ, तो मुझ पर हिन्दुस्तान से दग़ा करने का इलज़ाम लगाया जाता है। अब मुझे पाकिस्तानी कहा जाता है। लेकिन उन्हें यह समझ लेना चाहिए कि मैं अन्त तक मुसलिम हितों के लिए लड़ूंगा। भविष्य मुझे मुसलमानों को हिन्दुस्तान के हाथ बेच देने की गाली न दे सकेगा। मैं नहीं चाहता कि वे ग़ुलाम बनें...इन सभी बातो पर मैंने ग़ौर कर लिया और इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि हिन्दुस्तान के साथ हमारे संबंध मुसलमानों के लिए नुक़साम-देह हुए। यह मेरी अन्तिम राय है। इसे उन्होंने कई बार दुहराया। इस मौक़े पर मौलाना सईद ने अपनी टोपी उठायी और दीवार की ओर झुक गये और, ज़ाहिर तौर पर, सन्न रह गये। हमारे हिन्दू दोस्त, हमारी स्थिति को समझने की बनिस्बत, ग़लत अफ़वाहें फैला रहे हैं। मैं अपील करूँगा कि वे हमारी स्थिति समझें। हिन्दुस्तान की हिफ़ाज़त के बावजूद अगर वे हमारा विश्वास नहीं कर सकते, तो उनका विश्वास कैसे करें...अगर आप (मुसलमान) मेरे पीछे एक आदमी की तरह बराबर खड़े रहें तो आपके लिए मैं हँसते-हँसते फाँसी पर चढ़ जाऊँगा। लेकिन अगर आपमें एका नहीं है, तो मैं चुपके-से अलग हो जाऊँगा। और हमें विभाजित करने की कोशिशें हो रही हैं। आपको सावधान रहना चाहिए'।"

स्वतंत्र काश्मीर समर्थक : "यहाँ पर हम लोगो में से कुछ यह महसूस करते हैं कि शेख अब्दुल्ला को स्वतंत्र काश्मीर पर जोर देने की प्रेरणा स्टिवनसन से मिली जो उनसे कम से कम तीन बार मिले। अलावा इसके, अमरीकी राजदूत के राजनीतिक

अफ़सर उससे कई बार मिल चुके हैं। तब से, वे हिन्दुस्तान के खिलाफ़ कुछ-कुछ हवाले देते रहे।"

"यहाँ पर यह माना जाता है कि संयुक्त राष्ट्र संघ की निगरानी अथवा ट्रस्टीशिप के अन्तर्गत काश्मीर घाटी "स्वतंत्र" रहे वाली बात से सहमत हो जाने के लिए शेख़ अब्दुल्ला को राज़ी कर लिया गया है ताकि काश्मीर को अमरीका से उदार सहायता मिल जाए। इसलिए शेख़ अब्दुल्ला ने स्वयं को कम्युनिस्टों के चक्कर से निकाल लिया।"

"मैं डा० मुखर्जी से सहमत हूँ कि जब तक काश्मीर का राजनीतिक भविष्य निश्चित नहीं हो जाता, तब तक अन्दरूनी और बाहरी झंझटें जारी रहेंगी। इसलिए, हमारी यह सर्वसम्मत माँग है कि दोनों प्रधानमंत्रियों की आगे होने वाली भेंट मे वे किसी आख़री फ़ैसले पर पहुँच जाएँ। लेकिन वह समझौता हिन्दुस्तान, पाकिस्तान, और काश्मीर के लिए सम्पूर्ण होना चाहिए। हिन्दुस्तान और पाकिस्तान दोनों इस बात का दावा करते हैं कि वे काश्मीर की जनता की इच्छा से पाबन्द होंगे। लेकिन दोनों उससे मुकर जाने का गुप्त प्रयास कर रहे हैं। दोनों जन-मतगणना को टालने की तरकीबें निकालते रहे। उन्हें यह समझ लेना चाहिए कि काश्मीर कोई लूट का माल नहीं है जिसे कि वे अपनी मरज़ी के मुताबिक बाँट लें...यह दिल्ली समझौता क्या है? वह सब कूड़ा है। हमारे भविष्य का आख़री तौर पर फ़ैसला हो जाना चाहिए..."

"आज यहाँ शहीद दिवस मनाया गया। आज शाम शेख़ अब्दुल्ला ने एक उत्साही भीड़ को सम्बोधित किया। लेकिन उनके भाषण में गड़बड़ाने के चिह्न प्रत्यक्ष दिख रहे थे। यह साफ़ था कि हिन्दुस्तान पर भरपूर वार करने की कोशिश उन्होंने की। लेकिन वह कर नहीं सके। वह पक्के इरादे की तक़रीर न थी। परन्तु, उन्होंने कहा, 'हमारे शहीदों ने हिन्दुस्तान और पाकिस्तान के लिए अपने प्राणों का बलिदान नहीं किया। उन्होंने आज़ादी के मक़सद के लिए खून बहाया, इसलिए नहीं कि वे हिन्दुस्तान अथवा पाकिस्तान के पल्ले से बँधें या न बँधें। इस लक्ष्य को हमें कभी नहीं भुला देना चाहिए। इन बाईस सालों में हमने विरोध का मुक़ाबला किया है। लेकिन हम आगे ही बढ़ते रहे। १९४७ में मैंने आपसे कहा था कि सबसे पहले हमें आज़ादी हासिल करनी है। लेकिन बावजूद इसके कि हम हिन्दुस्तान के साथ अधिमिलन पसन्द करें या न करें, हमें उसके लिए मजबूर कर दिया गया (पाकिस्तान का नाम उन्होंने साफ़ तौर पर नहीं लिया)। यह अधिमिलन सिर्फ़ तीन विषयों के लिए ही है, किन्तु वह भी इस शर्त पर कि जनता बाद में उसकी पुष्टि कर देगी। हिन्दुस्तान ने इस अधिमिलन को कभी भी स्थायी नहीं होने दिया। कुछ समय बाद हिन्दुस्तान ने कहा कि अधिमिलन के दस्तावेज़ से कुछ और चीज़ें स्वभावतः निकलती हैं। हम दिल्ली गये और, जिसे दिल्ली समझौता कहा जाता है, उस पर हस्ताक्षर कर दिये, इसलिए कि हम हिन्दुस्तान से झगड़ा नहीं करना चाहते। जैसे ही

हमने राजशाही समाप्त करके उस पर अमल करना शुरू किया, इस राज्य को पूरी तौर पर हिन्दुस्तान में मिला देने के लिए जम्मू के हिन्दुओं ने हिंसात्मक आन्दोलन छेड़ दिया। दूसरे साम्प्रदायिक संगठनों ने भी इस मांग के पक्ष में आन्दोलन छेड़ दिया। लेकिन दूसरे सभी राजनीतिक दलों और नेताओं ने परिषद् की मांगों का समर्थन किया...तो हिन्दुस्तान हमारे साथ किये गये समझौतों से पीछे हटने लगा। लेकिन, बदले में, हिन्दुस्तान से ग़ैरवफ़ादारी का आरोप वे काश्मीरी मुसलमानों पर लगाते हैं। लेकिन इसमें हमारा दोष नहीं है...हिन्दुस्तान ने हमसे संविधान सभा बुलाने के लिए कहा। लेकिन हिन्दुस्तान ही उसके मार्ग में रोड़े अटका रहा है। मुझ पर पाकिस्तान अथवा आज़ादी का समर्थन करने का आरोप लगाया जा रहा है। लेकिन मैं उनसे साफ़ कह देना चाहता हूँ कि जब मैं दोनों मे से किसी को जनता के लिए अच्छा समझूँगा, तब दोनों में से किसी का भी साथ देने की घोषणा करने से मुझे कोई चीज़ रोक नहीं सकती। आखिर, पाकिस्तान अथवा हिन्दुस्तान से हमें मिल जाने के लिए क्यों मजबूर किया जाता है। हिन्दुस्तान और पाकिस्तान दोनों से अच्छे सम्बन्ध रखने की आज़ादी जनता को क्यों न मिले? मुझे पैसा नहीं चाहिए; मुझे किसी फ़ौज की ज़रूरत नहीं है। (अमरीकी दूतावास के प्रथम सचिव मंच पर आसीन थे, और वे इस भाषण की रपट शेख़ अब्दुल्ला के दामाद से सुन रहे थे। वे तसवीरें भी उतार रहे थे। एक और दाढ़ी वाला अमरीकी भी, जो शेख़ अब्दुल्ला से कई बार मिल चुका था, तसवीरें खींच रहा था)। जनता से अब यह कहने का समय आ गया है कि वह वोट दे। लेकिन हिन्दुस्तान और पाकिस्तान दोनो जन-मतगणना के रास्ते में रोड़े अटकाने की कोशिशें करते रहे हैं...उन्होंने कहा कि मैं बदल गया हूँ। लेकिन उन्हें यह जान लेना चाहिए कि काश्मीरी जनता मे स्वतंत्र रहने की इच्छाशक्ति है, और दुनिया की कोई भी ताक़त हमें ग़ुलाम नहीं बना सकती।"

पाकिस्तान-समर्थक : उनके भाषणों का एक पहलू था हिन्दुस्तान और पाकिस्तान को एक ही पलड़े में रखना। मिसाल के लिए, वे कहते रहे हैं कि हिन्दुस्तान और पाकिस्तान दोनों काश्मीर के लिए फ़ायदेमन्द और ग़ैरफ़ायदेमन्द हैं। आया काश्मीर हिन्दुस्तान से अथवा पाकिस्तान से अधिमिलन करे, इसका फ़ैसला अभी उन्होंने नहीं किया है। पाकिस्तान का विरोध पहले उन्होंने इसलिए किया कि उसने काश्मीर पर हमला किया कि जो कि अन्दरूनी झगड़ों से तबाह था। लेकिन जब से मोहम्मद अली का राज आया है, पाकिस्तान सुधर रहा है। इसके साथ ही, मोहम्मद अली ने घोषणा की है कि पाकिस्तान का संविधान धर्मनिरपेक्ष रहेगा। दूसरी तरफ़, हिन्दुस्तान भी धर्मनिरपेक्ष होने का दावा करता है। लेकिन वहाँ उस पर अमल होते उन्होंने अभी तक नहीं देखा। १९४७ में उन्होंने हिन्दुओं को बचा लिया (इससे वे यह सुझाना चाहते थे कि उन्होंने सिर्फ़ हिन्दुओं को बचाने के लिए हिन्दुस्तानी फ़ौज को न्योता दिया, न कि खुद को बचाने के लिए), लेकिन इसका मतलब

यह नहीं है कि वे मुसलमानों का बलिदान कर देंगे। अगर मुसलमानों के हितों की रक्षा करने से पाकिस्तानी बन जाते हैं, तो वे पक्के पाकिस्तानी हैं।"

"जाहिर है, शेख़ अब्दुल्ला ने जो बातें कीं, उनका मतलब निकाला गया है कि वे पाकिस्तान की ओर झुक रहे है। आम मुसलमानो पर इसका नाटकीय प्रभाव पड़ा है। शेख़ अब्दुल्ला के ख़िलाफ़ वे अपनी सब शिकायतें भुला बैठे, और खुल्लमखुल्ला पाकिस्तान का समर्थन करने लगे हैं। इन सब बुराइयों का वे बख़्शी पर इलज़ाम लगाते हैं। अलावा इसके वे कहते हैं कि वे सब लोग जो शेख़ अब्दुल्ला का विरोध करते हैं, काश्मीर को हिन्दुस्तान के हाथ बेच देना चाहते हैं। ग़रीब जनता यह नहीं जानती कि और कोई उसे अमरीका के हाथ बेच देना चाहता है। आखिर, स्टीवनसन बिना किसी मक़सद के काश्मीर नहीं गये।"

"हर शुक्रवार को एक या दो आदमी पाकिस्तान के समर्थन में गिरफ़्तार कर लिये जाते हैं। मोहिउद्दीन कारा के पाकिस्तान के पक्ष में तथाकथित आन्दोलन का ज़िक्र करते हुए, शेख़ अब्दुल्ला ने कहा, 'क्या वे मुझ पर विश्वास नहीं करते? मैंने उनसे कह दिया है कि इस राज्य का भविष्य जनता की इच्छानुसार ही निर्धारित होगा।' इस पर श्रोताओ ने ज़ोर से तालियाँ बजायीं। जब वे पाकिस्तान अथवा स्वतंत्र काश्मीर के पक्ष में बोले, श्रोताओं ने तालियाँ बजायीं। लेकिन आज़ादी के लिए हमारे संघर्ष को हिन्दुस्तान की जनता की मदद की एक बार जब उन्होंने चर्चा की तो किसी ने ताली नहीं बजायी।"

हिन्दुस्तान समर्थक समेत दूसरी बातें : "इसके अतिरिक्त, कार्यकारिणी की बैठक में, कहा जाता है कि शेख़ अब्दुल्ला ने कहा कि काश्मीर में हिन्दुस्तानी फ़ौज के शस्त्रागार में किसी भी मुसलमान को नौकरी नहीं दी गयी है। हिन्दुस्तानी डाकखानों में भी मुसलमानों को नज़रअन्दाज़ किया गया। दिल्ली समझौते के ख़िलाफ़ शेख़ अब्दुल्ला ने ये उदाहरण दिये। बेग शेख़ अब्दुल्ला के विश्वासपात्र हैं और, लगता है वे पाकिस्तान के पक्ष में दबाव डाल रहे हैं।"

"मैं समझता हूँ, जनमतगणना का विचार हिन्दुस्तान को हमेशा के लिए छोड़ देना चाहिए। या तो काश्मीर को पाकिस्तान के हवाले कर देना चाहिए या फिर हिन्दुस्तान से काश्मीर के अधिमिलन को अन्तिम मान लेना चाहिए। मेरा सुझाव है कि वर्तमान गोली-बन्दी रेखा को हिन्दुस्तान और पाकिस्तान के बीच अन्तिम सीमा रेखा मान लेना चाहिए।"

"उपर्युक्त लोगों को छोड़ कर, बख़्शी, सईद, सादिक़ और अन्य व्यक्ति हिन्दुस्तान के समर्थक हैं। हाल ही में कारा तथा अन्य कुछ लोगों को गिरफ़्तार किया गया था। शेख़ अब्दुल्ला ने उनकी गिरफ़्तारी की हामी इसलिए भरी कि हालत क़ाबू से बाहर हो जाती। लेकिन शेख़ अब्दुल्ला ने कहा कि वे पाकिस्तान अथवा हिन्दुस्तान के पक्ष में

शान्तिपूर्ण प्रचार का विरोध नहीं करते। कल शेख़ अब्दुल्ला मुजाहिद मंज़िल में कार्यकर्त्ताओं की एक और सभा में बोले। डा० मुखर्जी की मौत का हवाला देते हुए उन्होंने कहा कि हिन्दुस्तानी हलक़ों की काश्मीर को हिन्दुस्तान में पूरी तौर पर मिला कर डा० मुखर्जी की मौत का बदला लेने की धमकियों का उलटा असर पड़ेगा। उन धमकियों से मैं घबराता नहीं। ताक़त के बल पर जिन्ना हमें जीत नहीं सके। इसलिए, हिन्दुस्तान में साम्प्रदायिकों को जान लेना चाहिए कि फ़ौजी कार्यवाही की धमकियाँ हमें दबा नहीं सकतीं। तीन विषयों में ही हमने हिन्दुस्तान से अधिमिलन किया है और शेष में हमने हमारी सार्वभौमता क़ायम रखी है। लेकिन सम्पूर्ण मिलन के साम्प्रदायिक नारे ने उस अधिमिलन को भी ख़तम कर दिया है (इस इलहाक को भी अब उन्होंने तोड़ दिया है)। इन मामलों के बारे में हमें नये सिरे से फ़ैसला करना होगा। पाकिस्तान अथवा हिन्दुस्तान के पक्ष में प्रचार करने के लिए जनता स्वतंत्र है। लेकिन अभी पाकिस्तान के पक्ष में आन्दोलन करना हमारे हित में नुक़सानदेह होगा। अल्पसंख्यकों को सम्बोधित करते हुए, उन्होंने उन्हें सावधान किया कि वे बहुमत के विश्वासभाजन बनें और हिन्दुस्तानी फ़ौज पर निर्भर न करें। 'हिन्दुस्तानी फ़ौज आपको नहीं बचा सकती', उन्होंने उनसे कहा। जब एक कार्यकर्ता ने पाकिस्तानियों द्वारा लगाये गये ताज़ातरीन नारे 'शेरे काश्मीर ज़िन्दाबाद' और 'पाकिस्तान ज़िन्दाबाद' के प्रति अपना रुख़ ज़ाहिर करने को कहा, तो उन्होंने उसका सीधा जवाब देना टाल दिया। लेकिन उन्होंने कहा कि अभी तक कोई फ़ैसला नहीं किया है। वे अपना मत उचित अवसर पर देंगे।"

"एक और बात जिस पर ग़ौर करना है वह यह है कि शेख़ अब्दुल्ला ने स्वतंत्रता पर कुछ न कहने की नीति फिर से अपना ली है। यह भी कि इधर के चन्द हफ़्तों में, पहली बार, उन्होंने कार्यकर्त्ताओं से कहा कि अगर नेशनल कान्फ़रेन्स वर्तमान हमलों से नहीं उबर सकी तो उनकी कोई हैसियत नहीं है।"

"इस सबसे पता चलता है कि शायद शेख़ अब्दुल्ला को हमने हमेशा के लिए नहीं खो दिया है। लगता है वे किसी भी चीज़ के बारे में निश्चित नहीं हैं। आख़ीर में उन्होंने श्रीनगर शहर में अन्न के आयात पर जो रुकावटें थी उन्हें हटा देने की घोषणा की। यह सिर्फ़ जनता का समर्थन प्राप्त करने के लिए किया गया।"

"डा० मुखर्जी की मौत के बारे में सरकार की ओर से कोई मुजरिमाना लापरवाही मेरी जाँच से प्रकट नहीं हुई। उनकी बीमारी की शुरूआत की हालत में जेल डाक्टर, पंडित अमरनाथ रामा, उनका उपचार कर रहे थे। उन्हें जब मोटर में 'नर्सिंग होम' लाया गया, तो स्ट्रेचर पर नहीं, बल्कि वे खुद ज़ीना चढ़ कर ऊपर गये। यह हो सकता है कि बेहतर डाक्टरों और बेहतर दवा के सामान के इस्तेमाल से वे बच सकते थे। लेकिन ऐसा लगता है कि जानबूझ कर उन्हें मार डालने के लिए कुछ नहीं किया गया।"

इन पत्रों के महत्त्व को समझते हुए, हमें यह देख कर खुश होना चाहिए कि काश्मीर के मसले पर हिन्दुस्तान के प्रधानमंत्री ने अभी तक तो पाकिस्तान के प्रधानमंत्री के आगे घुटने नहीं टेके है। हिन्दुस्तानी राय को सही रूप में बनाने के लिए अभी भी समय है, कम से कम सितम्बर मास तक, जब कि हिन्दुस्तान और पाकिस्तान के प्रधान-मंत्रियों की दुबारा भेंट होगी। काश्मीर की ओर हिन्दुस्तान के राजनीतिकों द्वारा लुकाछिपी की नीति अपना लेने से कोई भी फ़ायदा नहीं होगा। हिन्दुस्तान की जनता को काश्मीर के बारे मे पूरे तथ्य जानने का अधिकार है। उस अधिकार से सरकार ने, और समाचार एजेंसियो ने भी, अब तक वंचित रखा है।

काश्मीर में विदेशी निःसन्देह टाँग अड़ा रहे हैं। अमरीकी नीति, ऐसा प्रतीत होता है, काश्मीर को पाकिस्तान में जम करा देना चाहती है और, यह न हो सके तो, उसे आज़ादी दिलाना चाहती है। अमरीका ने, ऐसा मालूम होता है, श्री मोहम्मद अली और शेख अब्दुल्ला दोनों को इस पर राज़ी कर लिया है कि वे श्री जिन्ना से जो विरासत मिली, उसे भुला दें। काश्मीर के बारे में पाकिस्तानी नीति अमरीकी नीति के समान ही है : संभव हुआ तो जम करा लेना, ज़रूरी हुआ तो स्वतंत्र काश्मीर। अन्दरूनी दबाव और स्वयं के अतीत के कारण शेख अब्दुल्ला दुविधा में हैं, यह मान कर, वे पाकिस्तान में जम होने की बनिस्बत स्वतंत्र रहना पसन्द करेंगे। काश्मीर और पाकिस्तान में अमरीकी हित उसके विश्व में जो हित हैं उसी का अंग है। वह हित है दुनिया के सभी क्षेत्रों को सोवियत विरोधी गुट में मजबूती से मिला देना। हिन्दुस्तान की जनता को अब पूरी शक्ति जुटा कर आगे बढ़ना चाहिए। काश्मीर में नीच लेन-देन के परिणाम स्वरूप हिन्द-अमरीकी रिश्तों पर जो खतरनाक असर पड़ेंगे, उनके बारे में सभाओ और प्रदर्शनों द्वारा अमरीकी मन में कोई शक की गुंजाइश नहीं रहने देनी चाहिए। काश्मीर को खुद में अथवा पाकिस्तान में जम करके अमरीकी भले ही सोच लें कि उन्होंने साम्यवाद को बढ़ने से रोका है, पर इससे निःसन्देह वे हिन्दुस्तान की दोस्ती से हाथ धो बैठेंगे।

साम्यवाद सदा की तरह चालाकी का खेल खेल रहा है। पिछले पाँच बरसों से कम्युनिस्ट आज़ाद काश्मीर की नीति का प्रचार करते है और अब जब अमरीकियों ने उसे अपना लिया तो वे पैंतरा बदल कर उसके विरोध में खड़े हो गये हैं। किन्तु किसी भी हिन्दुस्तानी को यह न भुला देना चाहिए कि इस घोटाले का प्रारम्भिक उत्तरदायित्व उनका है। अब भी वे, ऐसा लगता है, बहुत ही चालाकी का खेल खेल रहे हैं। काश्मीर में श्री कारा और श्री सादिक, ये दो विख्यात संगाती हैं और एक ने खुद के पाकिस्तान के पक्ष में होने की घोषणा कर दी है। यह भी बिलकुल मुमकिन है कम्युनिस्ट शक्तियों का ऐसा बँटवारा जघन्यता से और साँठ-गाँठ करके नहीं किया गया हो, किन्तु वे, जो भी हो, इसका फ़ायदा उठाने की बड़ी आशा रखते हैं। ऐसी अवस्था में श्री सादिक़ और उनके लोगों के प्रति हिन्दुस्तानी जनता का क्या रुख होना चाहिए ? उनकी मदद लेने से

इनकार करना बेवक़ूफ़ी होगी, क्योंकि वह एक-राष्ट्र सिद्धान्त और विश्वासपात्रता के उद्देश्य के लिए बहुमूल्य सहायता है, किन्तु इस सहायता के स्रोत को भला देना ठीक न होगा।

हिन्दुस्तान की जनता को एक-राष्ट्र सिद्धान्त के पालन में खामियों को दूर करने के लिए द्विगुणित प्रयास। आर्डनंस डिपो और डाकख़ानों में मुसलमानों को नौकरी न देने के बारे में, अगर वह सही है, तो शेख अब्दुल्ला जो कहते हैं उसमें दम है। अविश्वास से अविश्वास उत्पन्न होना एक दूषित चक्कर है। किन्तु अगर हम हिन्दुओं और मुसलमानों को एक राष्ट्र में गूँथने की अपनी महान योजना के प्रति ईमानदार हैं और अगर हम सचमुच यह मानते हैं कि शक्तिशाली और स्वस्थ हिन्दुस्तान का निर्माण केवल हिन्दुस्तानी राष्ट्रवाद के द्वारा ही होगा, और हिन्दु राष्ट्रवाद के द्वारा नहीं, तो इस चक्कर को कहीं न कहीं तोड़ना होगा। सरकारी नौकरियों में मुसलमानों को नौकरी न देने की सरकार की इन ग़लत नीतियों के पीछे यह डर है कि पाकिस्तान से झगड़े की स्थिति में मुसलमानों पर विश्वास नहीं किया जा सकता। ऐसा डर बिलकुल निराधार है, क्योंकि युद्ध की हालत में अल्पसंख्यक उपद्रवी के साथ कैसा व्यवहार करना चाहिए, यह कोई भी आधुनिक राज्य जानता है; वह केवल उन्हें मसल देता है। और, हर हालत में, विश्वास से विश्वास जनमता है। एक-राष्ट्र के मार्ग पर चलने का निश्चय कर लेने के बाद, ऐसे अनमनेपन और हिचकिचाहट से हम दोनों दुनिया खो बैठेंगे, उदार दुनिया और कठमुल्लेपन की दुनिया भी।

हिन्दुस्तान के साथ काश्मीर के सम्पूर्ण मिलन के लिए आन्दोलन से कई ग़लत-फ़हमियाँ उठ खड़ी हुई हैं। हिन्दुस्तान में उसको कुछ तबक़ो से जो समर्थन मिला, उसे काश्मीरी मुसलमानों ने ग़लत समझा। हिन्दुस्तान को दिल्ली समझौते से संतुष्ट हो जाना चाहिए जिसमें सीमित अधिमिलन तथा और कुछ धाराएं उल्लिखित हैं। विभिन्न प्रकार के क्षेत्रो पर लागू का जाने वाली संवैधानिक धाराओं के बारे में जब तक हम अपने दृष्टिकोण में लचीलापन नहीं ला सकते, तब तक एक प्रकार के संघात्मक सूत्र में बँधे एशिया में शक्तिशाली भारतीय गणतंत्र की आशा व्यर्थ है। वास्तव में, दिल्ली समझौते में ऐसे काश्मीर का उल्लेख है जो, बाहरी दुनिया के लिए, हिन्दुस्तान का ही एक भाग है। हिन्दुस्तानी जनता के किसी भी तबक़े को, भविष्य में ऐसे नासमझ आन्दोलनों को प्रश्रय नहीं देना चाहिए जिनसे कि उनकी कामना के विपरीत परिणाम निकले। प्रजा परिषद् के आन्दोलन को और समूचे काश्मीर मसले को गड़बड़ करने के लिए निःसन्देह भारत सरकार दोषी है। पाँच बरसों से ज्यादा यह घोषणा करते रहने के बाद कि काश्मीर धर्म-निरपेक्ष प्रयास का एक अंग है और हमारी हिन्दुस्तानी फ़ौजों का खून बहाने के बाद, भारत सरकार स्पष्ट रूप से यह कहने में असमर्थ रही कि काश्मीर हिन्दुस्तान का ही अंग है और आगे भी रहेगा। इतने ढुलमुलपन की वजह से जेल में श्यामाप्रसाद मुखर्जी की

मृत्यु हो गयी, जो विश्वश्रेणी के विधायक थे। एक तरफ़ भारत सरकार ने और दूसरी तरफ़ साम्प्रदायिकों ने काश्मीर मसले को उलझा दिया कि मौत की वह दुःखद घटना हो गयी। इस सबमें दोष काश्मीर सरकार का उतना नहीं है जितना कि भारत सरकार का। हिन्दुस्तान की जनता को नीरक्षीर का विवेक सीखना चाहिए। यह विवेक अभी पर्याप्त मात्रा मे नहीं है। मिसाल के लिए काश्मीर में अगर कुछ ग़लत काम हो जाता है तो अधिकांश लोगों की सहज प्रतिक्रिया होगी शेख अब्दुल्ला पर दोषारोपण और आम तौर पर मुसलमानो की अविश्वसनीयता। यह प्रतिक्रिया खतरनाक है और स्वस्थ स्वभाव की परिचायक नहीं है। स्वस्थ जनता काश्मीर में किसी दुर्घटना के लिए हिन्दुओं और मुसलमानों को एक-राष्ट्र में गूँथने के महान अनुष्ठान को दोषी नहीं ठहराएगी, बल्कि भारत सरकार की हँड़िया-चढ़ा-कर-चावल-खरीदने-जाने वाली बेहूदा नीतियों और उन पर अधूरे मन से अमल करने को दोषी ठहराएगी। हिन्दुस्तानी जनता को ऐसा स्वास्थ्य पुनः अर्जित करना चाहिए और अपराधियों को उनके दरबों से खोज निकालना चाहिए।

हर किसी मसले पर जैसे कि कश्मीर के मामले में भारत सरकार हँड़िया-चढ़ा-कर-चावल-खरीदने-जाने की हालत में रही सो इसमें अब कोई सन्देह नहीं है। काश्मीर पर पाकिस्तान के हमले के समय ही उसे महाराजा को हटा देने और एक रीजंसी काउन्सिल नियुक्त करने की बात कही गयी थी। उसमें और लोगों के साथ-साथ हिन्दुस्तान के एक केन्द्रीय मंत्री हों जो काश्मीर मे रहें। उसने देर को, कई बरसों बाद वहाँ के हिन्दू महाराजा को हटाया गया। इससे मुसलमानों के मन में शंका हो गयी कि उसकी नीतियाँ जितनी राजनीति से चालित होती हैं, कम से कम उतनी ही धर्म से। आज तक उसने एक केन्द्रीय मंत्री को काश्मीर में नहीं ठहराया। इससे उसने काश्मीर के कानूनी अधिमिलन को जनता के राजनीतिक अधिमिलन में परिवर्तित करने का महान् अवसर खो दिया। अगर ये दो काम पाँच बरस पहले कर लिये गये होते, तो काश्मीर में हालत आज बहुत भिन्न होती।

हिन्दुस्तान की जनता को अपने धर्म-निरपेक्ष चरित्र की खामियों को दूर करना चाहिए, किन्तु काश्मीर के मुसलमानों को भी दीवार की बिल्ली अथवा दोनों तरफ़ देखने की नीति हमेशा के लिए छोड़ देनी चाहिए। सभी जानते हैं कि अन्तिम निर्णय तो काश्मीर की जनता के हाथ में है और ऐसा कहने के लिए शेख़ अब्दुल्ला से कोई झगड़ा नहीं कर सकता; झगड़ा तो तब होता है जब शेख़ अब्दुल्ला पलट जाने और अनिश्चितता और जनता को पिछले पाँच बरसों से दी गयी राय के विपरीत राय देने के अधिकार का दावा खुद के लिए करते हैं। शेख़ अब्दुल्ला और उनके लोग बँधे हुए हैं। उन्हें अपने वचन का पालन करना चाहिए। काश्मीर के भविष्य से कहीं बढ़ कर और कुछ दावँ पर लगा है। एक-राष्ट्र का आदर्श दावँ पर लगा हुआ है और सामान्य हिन्दू के लिए, सही या ग़लत, मुसलमान का वचन और उस पर विश्वास करना या नहीं, यह दावँ पर लगा

है। किन्तु शेख़ अब्दुल्ला एक मनोवैज्ञानिक समस्या बन बैठे हैं। आया ईमानदराना चिढ़ या चतुर राजनीति उनके वर्तमान आचरण का निर्देशन करती है या नहीं, यह जाँच-पड़ताल करने का एक बेकार-सा विषय हो सकता है। हिन्दुओं के एक तबक़े के साम्प्रदायिक दबाव से निःसन्देह वे चिढ़े होंगे। किन्तु इसका जवाब प्रतिज्ञा भंग नहीं होना चाहिए, बल्कि उन्हें हिन्दुओं से साफ़ बात करनी चाहिए और उनसे माँग करनी चाहिए कि वे अपने धर्मनिरपेक्ष चरित्र की ख़ामियों को दूर कर दें। परन्तु, अन्ततोगत्वा, बीमारी की जड़ एक-व्यक्ति-नेतृत्व की पूजा में है। पंडित नेहरू से शेख़ अब्दुल्ला ज़्यादा ख़राब नहीं हैं। जब किसी व्यक्ति की परिवर्तनशील सनकें राज्य की नीति की धुरी बन जाती हैं, तो विनाश का भय आसन्न हो जाता है। बराबर बढ़ाते-चढ़ाते रहने से, उस व्यक्ति को जनता के बीच ऐसी दैविक स्थिति प्राप्त हो जाती है कि चाहे वह ग़लती ही क्यों न कर रहा हो, उसे रोकना या ठीक करना कठिन हो जाता है। काश्मीर के मुसलमानों को उतना ही जितना कि हिन्दुस्तान की जनता को इस एक-व्यक्ति-नेतृत्व की पूजा का नाश करना और उसकी जगह समितियों के जनतांत्रिक नेतृत्व को क़ायम करना सीखना चाहिए, जिसमें कि छोटी से छोटी समितियों को अभिव्यक्ति का उतना ही अधिकार होना चाहिए जितना कि बड़ी से बड़ी समिति को हो।

बख़्शी ग़ुलाम मोहम्मद, मौलाना मोहम्मद सईद और उनके जैसे अन्य लोग हिन्दुस्तान के मित्र हैं, किन्तु उनकी मुख्य योग्यता यही नहीं है। काश्मीर में एक-राष्ट्र आदर्श के वे अलम्बरदार हैं। पहले जितना उन्होंने किया है, उससे ज़्यादा इसरार के साथ उन्हें अपनी बात कहनी चाहिए। उन्हें काश्मीर के हिन्दू युवजनों का सहयोग मिल सकता है, जिनके जियालाल तामीरी ज्वलन्त उदाहरण हैं। अब पूरी ताक़त से काम करने और काश्मीरी मुसलमानों को एक-राष्ट्र आदर्श के लिए धर्मप्रचारक जैसे उत्साह से खड़ा करने के प्रयत्न का समय आ गया है।

सभाओं और अन्य प्रदर्शनों की निरन्तर मुहिम के द्वारा, हिन्दुस्तानी जनता को ऐसी काश्मीरी नीति का निर्माण कर लेना चाहिए जो घोषित करे १. अमरीकियों से, काश्मीर से हाथ हटा लो; २. साम्प्रदायिक हिन्दुओं से, दिल्ली समझौते के आगे कुछ नहीं; ३. भारत सरकार से, उसके नाश के बाद ही काश्मीर का समर्पण और मुसलमानों के साथ समान व्यवहार; ४. काश्मीरी मुसलमानों से, एक-राष्ट्र प्रतिज्ञा का पालन करो और समिति नेतृत्व स्थापित करो; ५. ख़ुद से, अपनी पूरी शक्ति लगा कर एक-राष्ट्र आदर्श प्राप्त करो और एक-व्यक्ति-नेतृत्व की पूजा को छोड़ दो।

—१९५३, नवम्बर।

मंत्रिमंडल की गठन

काश्मीर मंत्रिमंडल की गठन के सम्बन्ध में काश्मीर से प्राप्त समाचार परेशानकुन हैं। धर्मनिरपेक्षवाद के काम में कम्युनिस्टों ने जो बहुमूल्य सहयोग दिया उसका मैंने स्वागत किया ही था। लेकिन यह भुला देना खतरनाक होगा कि पाप का मूल तो कम्युनिस्ट ही थे, आज़ाद काश्मीर की माँग का पाप कम्युनिस्टों ने शुरू किया था और वे पूरे पाँच बरसों तक उस पाप को करते रहे। और, एक या दूसरे अन्तर्राष्ट्रीय झुलाव के अन्तर्गत वे किसी भी समय अपनी नीति बदल सकते हैं। केवल एक ही कम्युनिस्ट को काश्मीर मंत्रिमंडल में लेने से किसी को अड़चन नहीं होनी चाहिए, क्योंकि धर्मनिरपेक्षता के काम में उनका सहयोग क्रियात्मक रूप में बना रह सकता है। परन्तु, पर्याप्त ग़ैर-कम्युनिस्ट बहुमत प्राप्त करने के लिए, काश्मीर के प्रधानमंत्री को अब सचमुच राष्ट्रीय और ग़ैर-कम्युनिस्ट विचारधारा के तीन मंत्री नियुक्त करने होंगे। नेशलन कान्फ़रेन्स के प्रधानमंत्री, मौलाना सईद और जियालाल तामीरी जैसे अडिग लोगों की कोई कमी नहीं है।

और कोई नीति अपने साथ ही बरबादी लाएगी। और बख़्शी ग़ुलाम मोहम्मद और संविधान सभा से निवेदन करूँगा कि वे काश्मीर मंत्रिमंडल की कुंजी कम्युनिस्टों को न सौंप दें। काश्मीर के लिए सचमुच राष्ट्रीय, आर्थिक मामलों में प्रगतिशील और कुल मिला कर प्रखर धर्मनिरपेक्ष नीति की ख़ातिर सब कुछ दावँ पर लगा देने का अब समय आ गया है। हो सकता है, काश्मीर नेशलन कान्फ़रेन्स को और भी अग्नि परीक्षा देनी पड़े, और फ़ौलाद व दृढ़ विश्वास के लोग ही ऐसा कर सकते हैं। बाक़ी हिन्दुस्तान के हम लोग धार्मिक विभाजन से अज्ञ राज्य के लिए जेहाद में सम्मिलित होने की प्रतिज्ञा करते हैं, किन्तु ऐसे जेहाद की मुख्य और प्रारम्भिक चालक, ज़ाहिर है, अब काश्मीर की जनता ही है।

—१९५३, नवम्बर।

मौलाना मसूदी की बरख़ास्तगी

काश्मीर नेशनल कानफ़रेंस के पद से जिन परिस्थितियों में मौलाना मसूदी को हटाया गया वे इतने असाधारण रूप से हताश करती हैं कि अब ग़ुस्सा होने या अपराध ठहराने की मेरी रुचि ही नहीं रही और मैं अत्यधिक सबर के साथ तथ्य प्रस्तुत करना चाहता हूँ और चाहता हूँ कि शिकायतें दूर हो।

नेशनल कानफ़रेंस की जनरल कौंसिल की बैठक २२ अक्तूबर को होने वाली थी किन्तु उसकी बैठक एक दिन पहले ही हो गयी, सो भी बिना पूर्व सूचना के। मौलाना मसूदी श्रीनगर के रास्ते पर थे और अब भी जनरल कौंसिल में सम्मिलित हो सकते थे, किन्तु २१ अक्तूबर को सुबह आठ बजे से शाम के चार बजे तक रास्ते में ही काश्मीर पुलिस ने उन्हें रोक लिया था, ठीक उसी समय जब बैठक ने अपना काम कर लिया और खतम हो गयी। जिस आदमी को प्रधान मंत्री के पद से हटा दिया था उसे इस तरह अपनी कौंसिल में सम्मिलित होने से जबरन वंचित किया गया और, विशेष रूप से बाद की रपटो को दृष्टिगत रखते हुए कि अनुशासनात्मक कार्यवाही सर्वानुमति से की गयी, घटना और बोझिल हो जाती है। मुझे और भी आगे मालूम हुआ है कि ९० सदस्यों की कथित उपस्थिति में ५० से ज्यादा वास्तव में सदस्य ही न थे और अनुशासनात्मक कार्यवाही के पक्ष मे जो ५ व्यक्ति बोले उनमें से २ को तो बोलने का अधिकार ही न था। और, बैठक मे जो प्रस्ताव पास किया गया, वह उस प्रस्ताव से बिलकुल भिन्न था जिसे वास्तव में वितरित किया गया था।

यह सोच कर मैं कांप उठता हूँ कि अगर हिन्दुस्तान ऐसे तरीक़ों का जिनकी शुरुआत अभी-अभी काश्मीर में हुई, आदी बन जाए तो क्या होगा। कुछ लोग, राष्ट्रीय कालोचित्य का तर्क देते हुए ऐसे तरीक़ों को अपनाना न्यायसंगत ठहराने का प्रयास कर सकते हैं। ऐसी मान्यता तो हमेशा के लिए ग़लत है, और काश्मीर की वर्तमात स्थिति में और भी ग़लत है जबकि हज़रतबल में जुमे की नमाज़ के बाद बड़ी संख्या में पुलिस को प्रायः हमेशा

बल प्रयोग करना पड़ता है। ऐसे तरीक़ों से न हिन्दुस्तान काश्मीर का मन जीत सकता है और न ही हिन्दुओं और मुसलमानों को एक राष्ट्र में गूंथा जा सकता है। काश्मीर में अपनी जनता के वर्तमान संकट के प्रति हमारी समैक्यता व्यक्त करते हुए मैं भारत सरकार का ध्यान प्रधान मंत्री की १० अगस्त, १९५३ की पुनीत घोषणा की ओर भी आकर्षित कर रहा हूँ कि जल्दी ही वे बिछुड़े साथियों को मिलाने का प्रयत्न करेंगे। मेरे अपने रचनात्मक सुझाव देने के लिए मैं कुछ इन्तज़ार करूँगा किन्तु मैं जनता और समाचार-पत्रों को याद दिलाना चाहूँगा कि ऐसी खास खबरों को दबा देने का नतीजा हमेशा बहुत ही बुरा होता है। हिन्दुस्तान की समस्त जनता की ओर से, जिनका भविष्य ऐसी घटनाओं से खतरे में पड़ जाता है, हम केवल निवारण चाहते हैं।

—१९५३, नवम्बर।

प्रस्तावित अमरीका-पाकिस्तान संधि

जहां तक विदेश नीति का सवाल है, हिन्दुस्तान भी पाकिस्तान जितना ही खतरे के रास्ते पर जा रहा है। सौभाग्य से पाकिस्तान में कुछ लोकप्रिय तत्व अपनी सरकार की नीतियों का विरोध कर रहे हैं और पाकिस्तान सरकार अगर अपने वर्तमान ढर्रे पर ही चली तो वह भँवर में पड़ सकती है। हिन्दुस्तान में, जो हो, प्रस्तावित अमरीका-पाकिस्तान संधि के विरुद्ध एक राष्ट्रीय मोर्चा खड़े करने और दहशत फैलाने की कोशिश हो रही है जो कि भारत सरकार के जुर्म को छुपा देगी। ऐसी मनोदशा में डाल देने का हिन्दुस्तान की जनता को प्रतिकार करना चाहिए। युद्ध के पातुक पर ग़रीबी का मारा एशिया अपूर्व रूप से काँप उठता है और हिन्दुस्तान और पाकिस्तान की भी जनता को अपना भारी उत्तरदायित्व समझ लेना चाहिए।

प्रस्तावित अमरीका-पाकिस्तान संधि, चाहे वह पहले से ही हो गयी, अथवा जल्दी ही पूर्व निर्णीत तथ्य हो जाए, उसमें अमरीका और पाकिस्तान की सरकारों की इच्छाएँ और मनोकामनाएँ निहित हैं। अमरीका के लिए जो मतलब की चीज है वह है जनतंत्र और साम्यवाद के बीच विश्व-युद्ध, और जो कोई उनके पक्ष में है और इस युद्ध की उनकी व्याख्या स्वीकार करता है उसका उनके सम्मानित और विश्वसनीय मित्र के रूप मे स्वागत होता है।

पाकिस्तान के लिए, लगता है, जो निर्णायक है वह हिन्दुस्तान के ऊपर फ़ौजी श्रेष्ठत्व, शायद, इसलिए भी कि उसे काश्मीर के बारे में कोई फ़ैसला करने के प्रयास में मुँहकी खानी पड़ी। एकतरफ़ा मन से पाकिस्तान हिन्दुस्तान पर फ़ौजी श्रेष्ठत्व प्राप्त करने के फेर में पड़ गया है, उससे लगता है कि वह सभी चीजों को दावँ पर लगाने को तैयार है। अमरीका और पाकिस्तान की सरकारों के ऐसे दृष्टिकोण से, पाकिस्तान की जनता समेत एशिया की जनता को कोई सरोकार नहीं रखना चाहिए, क्योंकि ऐसा न करने पर वे गोरी शक्तियों के रंगीन भाड़े के टट्टू भर रह जाएँगे।

भारत सरकार का जुर्म कुछ कम नहीं है। ६ बरसों की लम्बी अवधि में भारत सरकार दो जीभों से बोली है, एक काश्मीर को हिन्दुस्तान में मिला देने की, और दूसरी,

जनमतगणना की जीभ; एक खंडित बुद्धि, जो बाहरी दुनिया को न सिर्फ़ पाखंडी ही प्रतीत हुई, बल्कि जिसने काश्मीर समेत हिन्दुस्तान की जनता के मन को भी बुरी तरह चोट पहुँचाया है। इसी खंडित बुद्धि से ही तो शेख़ अब्दुल्ला की आज़ाद काश्मीर की योजना जनमी—एक ऐसी योजना जिसे १९५२ में रूस ने सार्वजनिक रूप से आशीर्वाद दिया और लगता है, बाद में अमरीका ने भी उसको स्वीकृति दी। काश्मीर के मामले में अन्तर्राष्ट्रीय दावँपेंच को आमंत्रित करने का पूरा अपयश भारत सरकार को अंगीकार करना चाहिए। संकट की घड़ी में बख्शी ग़ुलाम मोहम्मद की बहादुरी और साहस की मैंने हमेशा प्रशंसा की है, और अब समय आ गया है कि उनके गुणों में शेख़ अब्दुल्ला और उनके सहयोगियों की लोकप्रियता का समावेश करने का प्रयत्न किया जाए।

काश्मीर के मामले में जो घोटाला हुआ, उसकी सटीक तुलना सत्तारूढ दल की अल्प-संख्यक विषयक नीति है। मुसलमानों का जाति के तौर पर सहयोग प्राप्त करने की मुहिम के ज़रिये कांग्रेस दल ने मुसलिम अलगाववाद का बीज नये सिरे से बोया और उसका कड़वा फल निकला अलीगढ़ मुसलिम सम्मेलन में। यदि सम्मेलन घिनौना था तो उसका स्रोत उन्हीं लोगों में खोजना होगा जो अपने राज्य को जमाये रखने के लिए खुद को मुसलमानों के एक-मात्र रक्षक बना बैठे हैं। महात्मा गांधी की मौत के बाद से हिन्दुओं और मुसलमानों को एक राष्ट्र में गूँथने का कोई प्रयत्न ही नहीं हुआ और इसके लिए सत्तारूढ दल ही सीधे दोषी है।

जुड़ा हुआ काश्मीर और हिन्दू-मुसलिम समस्याओं से संबंधित इन दो बड़ी ग़लतियों की पृष्ठभूमि में शान्ति के नाम पर रूस, चीन और हिन्दुस्तान को एक सूत्र में बाँधने का तीव्र प्रयत्न अधुनातन लालच है। ये तीन देश मिल कर दुनिया की आबादी का निःसंदेह आधा हिस्सा हैं, किन्तु हिन्दुस्तान की जनता को यह जानकारी भी कर लेनी चाहिए कि यह गुट कितने साधनों का सम्पादन कर सकता है। ऐसे गुट के वार्षिक ६ करोड़ टन फ़ौलाद के मुक़ाबले में अकेले अमरीका वार्षिक ११ करोड़ टन फ़ौलाद बना सकता है। सभी परिस्थितियों, और राष्ट्रीय स्वार्थ में भी, स्वयं एशियाई जनता को किसी एक युद्ध-रत खेमे से संबधित करना जुर्म होगा किन्तु हिन्दुस्तान के अभी जो संबंध प्रस्तावित हैं वह तो बेलज्ज़त गुनाह होगा। हिन्दुस्तान की जनता को काश्मीर में जनमतगणना की निन्दा करनी चाहिए क्योंकि उसमें लगातार बदमाशी हो रही है। उसे माँग करनी चाहिए कि हिन्दुस्तान और पाकिस्तान की सरकारें काश्मीर के बारे में किसी फ़ैसले पर पहुँचें। एशिया की राजनीतिकता, विशेषतः इन दो देशों में राजनयिकता को काश्मीर की हैसियत और बनावट के बारे में निर्विवाद हल खोज पाने योग्य होना चाहिए। परन्तु हिन्दुस्तान और पाकिस्तान की वर्तमान सरकारें ऐसा फ़ैसला कर सकने के योग्य अब नहीं रह गयी हैं। हिन्दुस्तान और पाकिस्तान की जनता को एक न एक दिन इस सच का सामना करना होगा कि इन दोनों सरकारों ने उन्हें युद्ध के पातुक पर ला खड़ा कर दिया है।

—१९५३, दिसम्बर।

काश्मीर सम्बन्धी प्रस्ताव

"काश्मीर की स्वभावत: विषम स्थिति को कुव्यवस्था और एकाधिक विदेशी हस्तपेक्ष ने साजिश करके लगभग असमाधानकारी बना दिया। फिर भी, न सिर्फ़ इन दोनों देशों के हित में बल्कि राष्ट्रों के बीच शान्ति और सद्भावना के लिए एक उचित और समझदारीपूर्ण हल निकालना अत्यावश्यक है।

किसी भी मानवविवाद के अटूट हल को न्याय, सिद्धान्त और दूर-दृष्टि पर आधारित करना चाहिए। हिन्दुस्तान और पाकिस्तान को, आज आपस में उनमें जो भी भेद हों, साथ ही रहना है, और बिना एक दूसरे के मित्र बने बिना वे रह ही नहीं सकते। एक के बाद दूसरे विवाद उन दोनों को बरबाद कर छोड़ेंगे।

सभी देशो की स्वतंत्रता और उनका अपने भविष्य का निर्णय करने का अधिकार—ये हैं प्रजा समाजवादी दल के धोरण। प्रजा समाजवादी दल की राष्ट्रीय कार्यसमिति काश्मीर की जनता के इस अधिकार को पूर्णत: मानती है। परन्तु वर्तमान विकट स्थिति में यह संदेहास्पद है कि जो लक्ष्य दृष्टिगत है, यानी हिन्द-पाक दोस्ती और काश्मीर समस्या का हल, वह जनमतगणना से उपलब्ध हो सकेगा।

राष्ट्रीय कार्यसमिति खूब महसूस करती है कि दोनों सरकार का दृढ निश्चय करके एक साथ बैठना कि वे कोई न कोई सन्तोषजनक हल निकालेंगे, तो अच्छा होगा। इससे पहले, नि:सन्देह, दोनों सरकारों के प्रतिनिधि मिले हैं, किन्तु और लोगों की छाया मे और उनकी छाया के द्वारा कोई हल निकालने का प्रयत्न किया है जिसमें किसी बाहरी शक्ति का हस्तक्षेप न हो।

राष्ट्रीय कार्यसमिति हिन्दुस्तान और पाकिस्तान दोनों की जनता से आग्रह करती है कि वह अपनी सरकारो पर इस पौरुष और सही रास्ते को पकड़ने का दबाव डाले।"

—१९५४, १५-१७ जनवरी; प्रसोपा राष्ट्रीय कार्यसमिति का प्रस्ताव।

नेहरू-अबदुल्ला दोनों ही गुनाहगार

ऐसे कारण हो सकते हैं कि शेख अबदुल्ला को एशिया की आज़ादी और धर्म-निरपेक्षता का दुश्मन मान लिया जाए। इन्हें वायदाफ़रामोश भी माना जा सकता है। लेकिन इस अन्ध ईर्ष्या के वशीभूत हो कर दूसरे गुनाहगारों को नहीं भूलना चाहिए। ऐसे बहुत-से गम्भीर कारण हैं, जिनकी बुनियाद पर यह यक़ीन किया जा सकता है कि भारत के प्रधान मन्त्री श्री नेहरू ने शुरुआत के दिनों में श्री अबदुल्ला को बढ़ावा दिया और उन्हें लिखा कि भूटान अथवा नेपाल के ढांचे पर काश्मीर की व्यवस्था करने की भी गुंजायिश हो सकती है। यदि प्रधान मंत्री ऐसे पत्र लिखने की बावत इनकार न करें तो भारत की जनता को चाहिए कि वह उन्हें भी सह-अभियुक्त माने। जो चावल हिन्दुस्तान में २२) मन बिकता है, श्रीनगर पहुँचने के बाद काश्मीरियों के हाथ ९–१०) मन बेचा जाता है। यह काश्मीरियों को पराया जैसा बना देता है, क्योंकि वे इसे एक तरह की घूस समझते हैं। इससे उनके आत्मसम्मान को भी धक्का पहुँचता है। इन तमाम बातों की रोशनी में यह आवश्यक हो गया है कि देश के लोग काश्मीर-नीति की बुनियाद पर पुनर्विचार करें और इस चीज़ को समझें कि सरकार उन्हें कैसी भयानक बरबादी की ओर ले गयी है।

—१९५८, मई; बयान।

उर्वसीअम्

नागा क्षेत्र की स्थिति

"आसाम और उत्तर-पूर्वी सीमान्त शासन के नागा क्षेत्रों की वर्तमान स्थिति पर राष्ट्रीय समिति घोर चिन्ता प्रकट करती है। सरकार की निश्चित नीति का अभाव, प्रशासकीय कुव्यवस्था और सामान्य नागाओं से सम्पर्क स्थापित करने में असफलता के द्वारा जो घटनाएँ हुईं, उनका परिणाम है यह स्थिति। निजी आश्वासनों और औपचारिक समझौतों के द्वारा, जिनका बाद में निरादर किया गया, नागाओं के मन में जो आशाएँ उत्पन्न की गयी उनसे भी नागा आन्दोलन को काफ़ी बल मिला। सरकार नयी चाल अपना कर रिश्वत इत्यादि के द्वारा नागा आन्दोलन को छिन्न-भिन्न करने की कोशिश कर रही है, जिससे स्थिति के सिर्फ़ और बिगड़ने में मदद मिली है। सरकार की कई काली करतूतों, जंगल क़ानून जैसे अप्रिय क़ानूनों को लागू करना, जिससे कि वहाँ के लोग अपनी ज़मीन और जंगल पर अपने जन्मसिद्ध अधिकार से वंचित हो जाते हैं, और पड़ोस के पर्वतीय क्षेत्रों में हर किसी पहाड़ी आदमी के प्रति सरकार का व्यवहार और शक — इन सब बातों से उन इलाक़ों मे नागा आन्दोलन के फैलने का और भी तथा ज़्यादा खतरा उठ खड़ा हुआ है।

"नागाओं के एक तबक़े द्वारा हिंसात्मक कार्यों की खबरें आयी हैं। यह समिति उन कार्यों को बहुत नापसन्द करती है। लेकिन जनता के एक अंग की छिटपुट हिंसा को दबाने के नाम पर गोली चलाना, अमानवी यातनाएँ देना, और अपहरण व बलात्कार तक करने की राज्य की संगठित हिंसा ने सचमुच गम्भीर रूप धारण कर लिया है और उसकी साफ़-साफ़ भर्त्सना होनी चाहिए। यह समिति सरकार से और नागाओं से भी आग्रह करती है कि वे हिंसा और बरबादी के इस पागलपन के खेल को फ़ौरन बन्द करें।

"समाजवादी दल की राय है कि स्वतंत्रता के लिए नागाओं की माँग ग़लत धारणा पर है और खुद नागाओं के लिए भी अहितकर है। यह समिति नागाओं से अपील करती है कि वे आज़ादी के लिए अपनी माँग छोड़ दें और, भारत के नागरिकों की हैसियत से, अन्याय के विरुद्ध और अपनी उचित राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक आकांक्षाओं की

पूर्ति के लिए दूसरे हिन्दुस्तानियों के दबे और शोषित तबक़ों के शांतिपूर्ण संघर्ष में शामिल हो जाएँ। चुनी हुई जिला-सरकार से, जिसे ज़मीन और जंगलों पर, पुलिस पर और टैक्सों की वसूली पर अधिकार हो और सांस्कृतिक सुरक्षण की गारंटी से नागाओं को सन्तुष्ट हो जाना चाहिए, और समाजवादी दल ऐसी माँग का समर्थन करने के लिए वचनबद्ध है।

"जबकि नागाओं को अपनी समस्या का शान्तिपूर्ण हल करने के लिए साहस के साथ आगे बढ़ना चाहिए, सरकार को भी इस मामले में अपनी वास्तविक नीति की घोषणा अविलम्ब कर देनी चाहिए। ऐसी घोषणा के तत्काल बाद समझौते की तफ़सीली योजना बनाने के लिए सरकारी प्रतिनिधियों और नागाओं के प्रवक्ताओं की बैठक होनी चाहिए। इस बीच, नागा क्षेत्र के अन्दरूनी भागों में ज़िम्मेदार नेताओं को जाना चाहिए, सामान्य लोगों से सीधे मिलना चाहिए और नागाओं और शेष हिन्दुस्तानियों के बीच पारस्परिक विश्वास और समझ पैदा करने का प्रयत्न करना चाहिए।"

—१९५६, मार्च २-४; समाजवादी दल की राष्ट्रीय समिति का प्रस्ताव।

उर्वसीअम् : वर्जित क्षेत्र

I

आसाम के राज्यपाल को १२ नवम्बर, १९५८ को निम्नलिखित तार भेजा

"१८ और २२ नवम्बर के बीच राममनोहर लोहिया तिरप सीमांत विभाग में जाना चाहते हैं। कृपया आवश्यक इजाज़त दें। देवप्रसाद बरुआ, सोशलिस्ट पार्टी, जोरहाट के मार्फ़त सूचना दें।"

—किरन बैजबरुआ

II

राममनोहर लोहिया को आसाम-राज्यपाल का संदेसा

"सन्दर्भ—तिरप सीमान्त जाने की इजाज़त के निवेदन का आपका तार। अगर आप कृपया शिलांग आएँ तो राज्यपाल आपसे मिलना चाहेंगे और उस विषय पर बात करना चाहेंगे।"

—राज्यपाल, आसाम

"डिबरूगढ़ के पुलिस सुपरडंट से उपर्युक्त संदेसा टेलीफ़ोन पर आज अभी (शाम ५.४५) मिला और, आदेशानुसार, उसे श्री लोहिया की जानकारी के लिए भेजा जा रहा है।

—१६-११-५८ —ए. एस. आई., नरकटिया पुलिस स्टेशन"

III

राज्यपाल को जवाब

"डा० राममनोहर लोहिया को वह संदेसा मिल गया है। वे चाहते हैं कि राज्यपाल को उनका आसाम-कार्यक्रम सूचित कर दिया जाए, जो कि इस महीने की १९ तारीख को

डिबरूगढ़ में खतम होता है। उनके लिए शिलांग आना और जाना असम्भव होगा। हर हालत में, वे यह नहीं समझ पा रहे हैं कि जाने के पहले राज्यपाल उनसे मिलना क्यों चाहते हैं, क्योंकि यदि राज्यपाल उनके दौरे के अनुभवों में दिलचस्पी रखते हैं, तो राज्यपाल उनसे दौरे के बाद मिल सकते हैं।"

--गोलप बोरबोरा

IV

गोलप बोरबोरा का पत्र

"जब डा० लोहिया गुवाहाटी थे, उन्होने उत्तर पूर्व सीमांचल के तिरप सीमांत विभाग में जाने के विचार की सूचना तार द्वारा आसाम के राज्यपाल को कर दी थी। १६-११-५८ की शाम में डा० लोहिया को राज्यपाल का संदेसा दिया गया जिसमें वे डा० लोहिया से शिलांग मे मिलना चाहते थे। डा० लोहिया के उत्तरपूर्व सीमांचल में जाने की इजाज़त के बारे में उस संदेश में कोई ज़िकर न था। राज्यपाल को सूचित कर दिया गया था कि उत्तरपूर्व सीमांचल जाने के पहले राज्यपाल से मिलने के लिए शिलांग तक जाना और फिर लौटना उनके लिए संभव नहीं होगा। उत्तरपूर्व सीमांचल से लौटने के बाद अपनी यात्रा के अनुभवों से वे राज्यपाल को अवश्य सूचित कर सकते है। चूंकि १९-११-५८ तक, आसाम में उनके कार्यक्रम का आखरी दिन, कोई जवाब नही आया, उसी दिन शाम में डिबरूगढ़ की आम सभा मे डा० लोहिया ने आज़ाद हिन्दुस्तान के एक नागरिक को अपनी ही ज़मीन के हिस्से में जाने की रोक पर सरकारी रुख की आलोचना की। उन्होंने कहा कि ऐसी निर्बन्धात्मक कार्यवाही के सामने अपने जीवन में उन्होने कभी भी समर्पण नहीं किया। उन्होंने एलान किया कि इस बार वे इस अन्यायी क़ानून को नहीं तोड़ेंगे; अगले दिन वे तिरप सीमांत विभाग में जितना जा सकेंगे, जाएँगे और रुकावट पड़ने पर लौट आएँगे। लेकिन वे एक साल के अन्दर आसाम फिर जाएँगे और ऐसी अन्यायी पाबन्दियों को तोड़ेंगे।

२०-११-५८ को डा० लोहिया, मैं, दल की डिबरूगढ़ ज़िला शाखा के मंत्री और डिबरूगढ़ और मार्गरीट के दो अन्य साथियों समेत, डिबरूगढ़ से कोई ५८ मील दूर, मार्गरीट गये, और फिर तिरप सीमांत विभाग की तरफ़। मार्गरीट से ५६ मील दूर, हिन्द-बर्मा सीमा के पास पाँचू दर्रे तक जाने का हमारा इरादा था, किन्तु जयरामपुर, छब्बीसवें मील पर, पहली पड़ताल चौकी पर ड्यूटी वाले संतरियो ने हमें रोक दिया, और हिन्दुस्तानी ज़मीन के शेष ३० मील हमारे लिए अछूते रह गये।

डिबरूगढ़ से जयरामपुर और फिर तिनसुखिया तक (९४+६४ मील) के हमारे पूरे सफ़र में डिबरूगढ़ के ज़िला हेडक्वाटर से पुलिस और गुप्तचर विभाग से उच्च अफ़सरों ने हमारा पीछा किया। रास्ते में जहाँ कहीं हमारी गाड़ी रुकी, उनकी दोनों मोटरें भी

कुछ फ़ासले पर ही रुकीं। एक दूसरी मोटर में केन्द्रीय सरकार के गुप्तचर विभाग के मुख्य अफ़सर ने भी हमारा पीछा किया। शाम में जयरामपुर से लौटते समय मार्गरीट में ज़िले के डिप्टी कमिश्नर से. जो मोटर सहित थे, मुलाक़ात हुई, और उन्होंने भी दिगबोई तक हमारा पीछा किया। सरकार ने इस बेमतलब की दौड़-धूप में लगभग २,५०० रुपये का नुक़सान किया। तिरप-जयरामपुर क्षेत्र (अब 'हस्तान्तरित क्षेत्र' नाम दिया है) में नये बसाये गये नागा, अबोर, चिगपो, नेपाली और स्थानीय आसामी देहातियों से डा० लोहिया मिले, जिन्होंने उन्हें अपने दुःख की गाथा सुनायी। उनमें अनेक पीने के शुद्ध पानी के अभाव में बीमारियों से पीडित हैं, अपनी ज़मीन जोतने के लिए बैल खरीदने की सकत उनम नहीं है, और फ़सल काटने के पहले ही उनकी फ़सल जंगली हाथी बरबाद कर देते हैं। वहाँ पर सिर्फ़ एक ही प्राथमिक शाला है जिसे लोग ही चलाते हैं और जिसकी व्यवस्था सरकार ने अभी तक नहीं सँभाली है। 'कमी' के पिछले तीन महीनों में इस इलाक़े में चावल ४५) मन बिकता था हालाँकि उसी समय तिनसुखिया और डिबरूगढ़ में ३०) मन चावल बहुत महँगा समझा जाता था।

बाद में २३–११–१९५८ को गौहाटी से जारी किये गये एक बयान में डा० लोहिया ने घोषणा की कि वे १९-११–५९ को फिर आसाम आएँगे और उत्तरपूर्व सीमांचल में, जिसका उन्होंने नया नाम दिया है "उर्वसीअं" (उत्तरपूर्व सीमांचल का संक्षिप्त रूप), जाने की अन्यायपूर्ण रोक को २३–११–१९५९ को तोड़ेंगे।

उर्वसीअम् जाने का डा० लोहिया का प्रयास, और अब से ठीक एक साल बाद, वहाँ जाने की मौजूदा रुकावटों को तोड़ने के उनके साहसिक निश्चय से उनके लिए और समाजवादी दल के लिए समूचे आसाम में बड़ी जबरदस्त सहानुभूति जाग गयी है।"

V

"गौहाटी, २२ नवम्बर, '५८ : मैंने अपने चरित्र के विपरीत काम किया। शायद, बढ़ती हुई उमर इसके पीछे कारण रूप में रही हो। लेकिन मैं २३ नवम्बर, १९५९ को, यानी एक साल बाद पुन: लौट कर आऊँगा। उस समय मै उत्तरपूर्व सीमांचल में प्रवेश करूँगा।"

—राममनोहर लोहिया

उर्वसीअम् में पाशविक नीतियाँ

"भारत सरकार द्वारा क़ानून और संविधान को तोड़ने के अनेक उदाहरणों में से एक है मुल्क के बाक़ी हिस्से से उर्वसीअम् के प्रशासन को पूरी तौर से अलग करने की नीति। देश की पूर्वी सीमा पर लगभग ५० हज़ार वर्गमील का यह क्षेत्र बाक़ी हिन्दुस्तान के लोगो के लिए वर्जित क्षेत्र है, जिसमें कोई भी हिन्दुस्तानी नागरिक आसाम के राज्यपाल से ख़ास परमिट लिये बिना घुस नहीं सकता। जब कि संविधान पूरे देश पर लागू होता है, यह कैसे चलता है, इसे क़ानूनी रूप से समझा नहीं जा सकता, और साफ़ तौर पर हिन्दुस्तान की जनता के ख़िलाफ़ यह स्थानीय प्रशासन और भारत सरकार की साजिश है। आदिवासियों की संस्कृति की सुरक्षा के नाम पर, आसाम राज्यपाल के उर्वसीअम् मामलों के लिए सलाहकार बहुत ही निन्दनीय कर्म कर रहे हैं। राज्यपाल के सलाहकारों ने क्षेत्र के निवासियों को बाक़ी हिन्दुस्तान की जनता से अलग रखने की और उनके साथ आरक्षित पशुओं जैसा व्यवहार करने की नीति पर अमल किया है। ऐसी नीतियाँ न सिर्फ़ लज्जा-पूर्ण और निन्दनीय हैं, बल्कि पाशविक है।

मैदानो से आने वाले सरकारी अफ़सरों का क़बीलाई औरतों से शादी कर लेने के उदाहरण तो हैं, किन्तु मैदानों के अन्य लोगों को क़बीलों में शादी करने से रोका गया है। मैदान के स्कूल टीचर को, एक अभोर लड़की से, उसकी रज़ामन्दी से, शादी करने से तीन बार गिरफ़तार किया गया। क़बाइली संस्कृति की रक्षा करने के नाम पर सरकारी और साधारण मैदानी आदमी के बीच फ़र्क़ करना, न सिर्फ़ भेदभाव है, बल्कि ग़ैरक़ानूनी भी है।

पिछले वर्ष के अक्तूबर तक, शिव और दुर्गा जैसे देवी-देवताओं तक के, और गांधी जी जैसे नेताओं के, और श्री नेहरू तक के भी चित्र टांगने की मनाही थी और लड़ने के बाद ही इस मनाही में ढील की गयी।

राष्ट्रीय समिति अपना अफ़सोस और ग़ुस्सा व्यक्त करती है कि अधिकारियों द्वारा राममनोहर लोहिया को २३ नवम्बर, १९५८ को उर्वसीअम् में जाने से रोका गया। यह

समिति माँग करती है कि भारत सरकार को क़ानून का ऐसा अपमान करना फ़ौरन छोड़ देना चाहिए। हिन्दुस्तान के सभी नागरिकों को उर्वसीअम् में स्वच्छन्दता से जाने और रहने का पूरा अधिकार होना चाहिए जैसे कि बाक़ी देश में। राज्यपाल की अनुमति माँगे बिना उर्वसीअम् जाने के राममनोहर लोहिया के निश्चय का समिति स्वागत करती है। इससे देश के किसी भी हिस्से में आने-जाने और रहने का प्रत्येक नागरिक का अधिकार स्थापित होगा।"

—१९५९, जुलाई १६–१९; समाजवादी दल की राष्ट्रीय समिति का प्रस्ताव।

भारत सरकार द्वारा निर्बन्ध भ्रमण के अधिकार की अवज्ञा

कुमारी मार्गो स्किनर, जो एक मान्य लेखिका हैं और पुरानी समाजवादी भी, आठ महीने पूर्व, मासिक पत्रिका 'मैनकाइंड' में काम पर आयी थीं, किन्तु भारत सरकार किसी न किसी कारण से उन्हें इस देश में रहने का 'वीज़ा' नहीं दे रही है। घर मंत्रालय से अब हमें एक पत्र मिला है जिसमें किसी कारण का उल्लेख तो नहीं है पर यह उल्लेख है कि उन्हें रहायिश-वीज़ा न देते हुए उन्होंने इस समस्या पर सभी कोणों से विचार कर लिया है। यह सिर्फ़ 'मैनकाइंड' का ही अपमान नहीं है, जिसने उन्हें नौकरी का सारटीफ़िकेट दिया, बल्कि महात्मा गाँधी का अपमान ज़्यादा है जिन्होंने निर्बन्ध भ्रमण और काम के अधिकार को मूलभूत मानव अधिकार माना था। भारत सरकार ने, मुझे आशा है, अब तक इस प्रश्न पर पूरी तौर पर विचार नहीं किया है, क्योंकि उसकी इस हरकत से, अन्तर्राष्ट्रीय श्रम-संघ के काम में भेदभाव न करने सम्बन्धी उपसंधियों की अवज्ञा होती है, और साथ ही, इससे एक विचारधारा, इस मामले में समाजवादी विचार-धारा, के खिलाफ़ और सरकारी पंथ के पक्ष में भेदभाव हुआ है; सरकारी जो भी हो, कांग्रेसवाद या नेहरूवाद या और भी जो कोई नाम वे दें। मुझे आशा है भारत सरकार अब भी अपना फ़ैसला बदल देगी। 'मैनकाइंड' में काम करने के लिए जहाँ तक हो सके किसी स्वतंत्र दृष्टिकोण वाले व्यक्ति को सोवियत खेमे से बुलाने का निश्चय उसका दूसरा क़दम था। कुमारी मार्गो स्किनर को मैंने राय दी है वे पर्यटक-वीज़ा पर हिन्दुस्तान आएँ और, अगर वे नतीजों को भुगतने के लिए तैयार हों तो, निर्बन्ध भ्रमण, काम और विचार के मूलभूत मानव अधिकार को जतलाएँ।

दूसरी बात अपने देश के अन्दर निर्बन्ध यात्रा के मेरे अपने अधिकार से सम्बन्धित है। पिछले साल २ नवम्बर को मुझे उर्वसीअम् में, जिसे अश्लील लोग नेफ़ा कहते हैं, प्रवेश करने से रोका गया। इसमें भारत सरकार का दोष दोहरा था; क्योंकि ४० हज़ार वर्गमील के लिए अनुमति-पत्र की व्यवस्था केवल संविधान के विपरीत ही नहीं है, बल्कि इसलिए भी कि सरकार से मैंने अनुमति-पत्र माँगा था। उस समय, मैंने अपने स्वधर्म के

विरुद्ध काम किया और सरकार के सामने झुक गया। उसी समय मैंने घोषणा की थी कि मैं २३ नवम्बर, १९५९ को उर्वसीअम् में प्रवेश करूँगा।

मेरे अपने न कोई महल हैं न बाग़ है और न ही किसी पुरानी नौकरशाही अथवा सामंतशाही के महल-बाग़ मुझे उपलब्ध हैं, और इसीलिए, जीवन मे बड़ा आनन्द जो मुझे मिलता है वह अपने देश को उसके सभी सुन्दर रूपों में ही देख कर मिलता है। मुझे मालूम पड़ा कि उर्वसीअम् का जो अब मिस्मी क्षेत्र है, रुक्मिणी वहीं की थी। भारत सरकार इतनी मूर्ख क्यों है, यह इस बात से कुछ समझा जा सकता है कि बड़ी ही विचित्र बुद्धि वाला एक भूतपूर्व पादरी, श्री वेरियर एलविन, आसाम के आदिवासी मामलों में सरकार का सलाहकार है। इस भूतपूर्व पादरी ने प्रधानमंत्री के साथ मिल कर आसाम के आदिवासियों के लिए एक राष्ट्रीय उद्यान का सिद्धान्त बनाया है, जिसमें उनके साथ क़रीब-क़रीब गीर के बब्बरों जैसा व्यवहार किया जाता है और जो, इससे कहीं ज़्यादा, उन्हें बाहरी दुनिया से विच्छिन्न कर देता है। एक मैदानी अध्यापक को तीन बार गिरफ़तार किया गया क्योंकि वह एक अभोर लड़की से विवाह करना चाहता था और चौथी बार जा कर वह विवाह कर सका इसलिए कि वह लड़की कृतसंकल्प थी। पिछले वर्ष के अक्तूबर महीने तक शिव और दुर्गा, गाँधी जी और यहाँ तक कि श्री नेहरू के चित्र भी दुकानदार अपनी दीवारों पर नहीं लगा सकते थे, क्योंकि वह भूतपूर्व पादरी सोचता था कि उससे उर्वसीअम् की जनता चिढ़ सकती है या भ्रष्ट हो सकती है। सभी जानते हैं कि उर्वसीअम् में मैं कोई ज़मीन नहीं ख़रीदूंगा, न ही वहाँ की जनता का मैं शोषण करूँगा, और न भारत विरोधी किसी कार्यवाही के लिए मेरे चीनियों या बर्मियों या रूसियों से सम्पर्क स्थापित करने की संभावना है। अगर सरकार मेरी शारीरिक सुरक्षा के बारे में चिन्तित थी, तो मैं उससे कहना चाहता हूँ कि वह अपना काम देखे और दूसरे लोगों की ज़िन्दगी में ऐसा मूर्खतापूर्ण हस्तक्षेप न किया करे।

—१९५९, जुलाई २२; हैदराबाद में पत्रकारों से बातचीत।

नागा समस्या

"समाजवादी दल की राष्ट्रीय समिति हिन्दुस्तान की जनता का ध्यान आथिउबो घटना की ओर खींचना चाहती है। मणीपुर की क्षेत्रीय कौंसिल के एक समाजवादी सदस्य, श्री आथिउबो, ने लगभग १५० सशस्त्र नागाओं को आत्मसमर्पण करने के लिए राज़ी कर लिया था, किन्तु, प्रशासन के वचन के विपरीत, इन नागाओं को राजक्षमा नहीं दी गयी। इस घटना से समझौते का काम असम्भव हो गया है। इससे भारत सरकार के स्वभाव और तरीक़ों पर भी भयानक प्रकाश पड़ा है। नागा समस्या को मुख्यत: मनोवैज्ञानिक और राजनीतिक मानने और राजकौशल के उदार उपचार काम में लाने के बजाय, प्रशासन ने कुत्सित अहंकार का आचरण किया और ज़ोर-ज़बरदस्ती का प्रदर्शन और इस्तेमाल भी किया। इस बात को अच्छी तरह समझते हुए कि अपने देश और हिन्दुस्तान से अलग होने की माँग से समझौतापूर्ण हल निकालना बहुत कठिन हो गया है, राष्ट्रीय समिति यह दर्ज करा देना चाहती है कि प्रशासन की ओर से मद और नागाओं की ओर से क्रोध के कारण नागा समस्या बिगड़ गयी है, और इसमें से शायद कोई हल ढूंढ़ा जा सकता है। विनम्रता की भावना से और सफल होने की योग्यता का दावा किये बिना समाजवादी दल की राष्ट्रीय समिति अपने अच्छे रिश्तों का इस्तेमाल करने का प्रस्ताव करती है। यह याद दिला देना उपयुक्त होगा कि स्वतंत्र हिन्दुस्तान की पहली संसद की लोकसभा में जो सबसे पहले नागा गये, वे थे समाजवादी रीशांग की शांग‡।"

—१९५९, अक्तूबर २३-२६; समाजवादी दल की राष्ट्रीय समिति का प्रस्ताव।

‡ श्री रीशांग की शांग अब कांग्रेस पार्टी में शामिल हो गये हैं।—सम्पादक

उर्वसीअम् : कुछ अनुभव

I

किसी प्रकार के निषेध या प्रतिबन्ध को तोड़ने का या सत्याग्रह करने का मेरा इरादा नहीं है, बल्कि मैं सिर्फ़ उर्वसीअम् में, जो हमारे देश का एक अंग है, प्रवेश करने की कोशिश करना चाहता हूँ। पिछले साल, २२ नवम्बर को, मैंने घोषणा की थी कि एक साल बाद मैं ऐसा करूँगा, अगर अन्य किसी कारण से प्रेरित न भी होऊँ, मुझे अपना वचन तो पूरा करना है। अनुमति-पत्र के लिए मेरा आवेदन सरकार के पास अब भी होगा, जिसे उस प्रश्न पर विचार करने को एक साल मिला। इसमें कोई हो-हल्ला करने की ज़रूरत नहीं, और सरकार को बस इतना ही करना है कि वह मेरे अपने देश के एक हिस्से में मुझे जाने दे। सरकार इसके खिलाफ़ कुछ करती है, तो वह संविधान का उल्लंघन होगा। स्वच्छन्द घूमने के अधिकार पर केवल ऐसे वाजिब प्रतिबन्ध लगाये जा सकते हैं जो कि आम जनता और अनुसूचित जातियों के हित में हों। किसी भी प्रतिबन्ध में जब तक इन बातों का उल्लेख न हो कि किन परिस्थितियों मे या व्यक्तियों के किस समूह पर वह लागू होगा, और अगर उसका दायरा असीमित, अनिर्धारित और विशुद्ध रूप से मन-चाहा हो तो उसे उचित नहीं माना जा सकता। अनुसूचित जातियों और आम जनता के हितो पर वहाँ ख़तरा मौजूद है और फ़ौरी है। इस तथ्य को साबित करने के अलावा, इस लिए भी उस प्रतिबन्ध को अनुचित समझा जाना चाहिए कि वह लगभग ३५ हज़ार वर्ग मील की भूमि पर लागू है। उर्वसीअम् पश्चिम बंगाल से बड़ा है। भारत चीन विवाद ने इसके विपरीत इस दृष्टिकोण को साबित किया है और महत्त्व दिया है कि इन अनुचित प्रतिबन्धों के कारण ये दोनों हित खतरे में पड़ गये हैं। पहाड़ी जातियों को, सरकारी नौकरों और ठेकेदारों का ज़रिया छोड कर, बाक़ी हिन्दुस्तान से विच्छेद कर देने और सम्पर्क न होने देने से वे पके फल हो जाएँगे जिन्हें विदेशी तोड़ ले जाएँगे। वह ठीक ऐसा ही विच्छेद था जो तिब्बत को खा गया, और वही भूटान और उर्वसीअम् तक को भी खा सकता है। उत्तर-पूर्वी पहाड़ियों में इन पहाड़ी जातियों और शेष हिन्दुस्तान को एक दूसरे

से बात कहने और सुनने के अधिकार से वंचित करना न सिर्फ़ मौलिक अधिकारों पर हाथ डालना है, बल्कि देश की एकता और सुरक्षा को खतरे में डालना है। और, भारतीय नागरिक को सभी ऐतिहासिक, पौराणिक, प्राकृतिक सौन्दर्य और जनश्रुति के स्थानों पर जाने और खुद को हरा करने और देश को एक बनाये रखने का जन्मसिद्ध अधिकार है। पिछले साल मेरी मूल दिलचस्पी थी भ्रमण। अपनी पुरखिन रुक्मिणी की भूमि, मिस्मियों की भूमि, और खूबसूरत मिस्मी कोट अबोर चावल से कैसे बदले जाते हैं, यह देखने की कामना थी। वही दिलचस्पी अब भी सर्वोपरि है। मैं नहीं समझ पाता कि उस कामना की पूर्ति करने में मुझे क्यों रोका जाए। इस बात का अच्छी तरह एहसास नहीं किया जा रहा है कि चीनी हिन्दुस्तान की लगभग समूची उत्तरी सीमा को रिझाने का जबरदस्त प्रयत्न कर रहे हैं और चपटी नाक, तिरछी आँख और पीले रंग का कपटपूर्ण तर्क दे कर हिन्दुस्तानी सीमा के लोगों को, भाई-भाई कह रहे हैं। यह सत्य प्रकट करने के लिए कि इतनी दूर थाई देश तक के लोग उनकी भाषा, लिपि, सोचने के ढंग, धर्म और उनके चेहरे-मोहरे और नस्ल की बनावट तक में भी, चीन की बनिस्बत हिन्दुस्तान से अधिक सम्बन्धित हैं, फ़िल्मों, वृत्त-चित्रों, पोस्टरों और तरह-तरह के दूसरे प्रकाशनों की बेहद जरूरत है। परन्तु, यह काम केवल सरकार के ही करने का नहीं है और हिन्दुस्तान के नागरिकों को भी अपनी सकत भर काम करने देना चाहिए।

बंगाल और उत्तरी सीमाओं का दौरा करने के बाद, मैं अपने कुछ अनुभव मेरे देशवासियों को भी विशेष रूप से बतलाना चाहूँगा :

१. अपनी बढ़ती हुई शक्ति और हिन्दुस्तान की तुलनात्मक निश्चेष्टता के कारण चीनियों ने यह क़दम उठाने की हिम्मत की है। उनकी बढ़ती हुई आर्थिक और फ़ौजी शक्ति का कारण बुरा है, यानी, एकदलीय क्रूरता, किन्तु वह अच्छा कारण भी है, जिससे कि शासकों और जनता के बीच, नेताओं और साधारण लोगों के बीच कपड़े-लत्ते, बोली और खर्च की अधिकतम सम्भव एकसानियत की ओर चीनी लोग लक्ष्य करते हैं। हिन्दुस्तान में पोशाक, भाषा और खर्च के बारे में शासक वर्ग और जनता के बीच लगभग पूरा वियोग पैदा कर दिया गया है। अगर शान्तिपूर्ण ढंग से हिन्दुस्तान अपनी ग़ैर-बराबरियों को अगले १० बरस के अन्दर दूर नहीं कर लेता, तो चीन उन्हें दूर करने का सफल छल-कपट करेगा और देश पर वह एक बार फिर पाशविक क्रूरता लाद देगा।

२. चीन की नजरें लौंगजू या बाराहोती पर नहीं, न ही कालिम्पोंग या भूटान पर हैं, बल्कि वह उत्सुकता से उस दिन की तैयारी कर रहा है जबकि वह गौहाटी, कलकत्ता या दिल्ली के अपने उपद्रवकारी भाईयों और बहनों के लिए मुक्तिसेना बन कर आ सके। अभी जो झगड़ा है वह अपने-आप सुलझ जाएगा, लेकिन अगले १० बरसों के अन्दर, अगर हम नीतियों को आमूल न बदलें, तो कोई भयंकर संकट आ जाएगा। कोई यह भूल न कर

बैठे कि हिन्दुस्तान के कम्युनिस्ट, एक हद तक निम्न मध्यम वर्ग के कुछ तबक़ों को छोड़ कर, जनता के मन से उतर गये हैं। दरअसल, उनके आत्मविश्वास में और उनके लोक विश्वास में इज़ाफ़ा हुआ है कि कम्युनिस्ट सरकार आने वाली ही है। ऐसे राज्यों की कम्युनिस्ट पार्टियाँ, जिनकी सीमाएँ चीन से लगती हैं, चीनपरस्त, अन्तर्राष्ट्रीय और उपद्रवकारी नीतियों पर कोई ऐसे ही नहीं चल रही हैं।

३. फ़ौरी और प्रभावकारी राजनीतिक काम की ख़ातिर किसी सरकार को अक्सर नज़दीकी दृष्टि अपनाना चाहिए, किन्तु अगर जनता अपनी सरकार की नक़ल करे और दूर दृष्टि छोड़ दे, तो कालक्रम में उस देश की राजनीति बाँझ हो जाएगी और वह उसे खतरनाक हद तक कमज़ोर बना डालेगी। हिन्दुस्तान की जनता ने १० बरस पहले तिब्बत पर अपनी सरकार के सार्वभौमिक और अधिराजत्व के मूर्खतापूर्ण फ़र्क़ को मान लेने की भूल की। मैकमोहन रेखा के बारे में यह फिर से भूल कर रही है। भारत सरकार का आखरी श्वेतपत्र इस रेखा का वास्तव में खंडन करता है. किन्तु जनता अपनी सरकार से इतनी बँधी हुई है कि उसने अब तक ठीक निष्कर्ष नहीं निकाले। हिन्दुस्तान और सार्वभौम तिब्बत के बीच मैकमोहन रेखा सही सीमा है। हिन्दुस्तान और चीन के भौगोलिक, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और परम्परागत सही सीमा है, मानसरोवर के साथ पूर्ववाहिनी ब्रह्मपुत्र, कैलाश और उसकी पर्वतमाला।

४. उत्तरी क्षेत्रों में चीनियों के घुस आने के अनेक उदाहरण मैंने देखे हैं, और, जब कहीं सुबूत मिले, उसके बारे में कुछ करना चाहिए। लेकिन मैं यह तथ्य भी बतला देना चाहता हूँ कि हालाँकि कालिम्पोंग में २ हज़ार से ज्यादा चीनी नहीं हैं, उन्होंने हिन्दुस्तान की पहाड़ी औरतों के साथ जो शादियाँ की हैं उनकी संख्या क़रीब २० के है। जातियों और बन्धनों वाला अकेला हिन्दूवाद, अपने वर्तमान स्वरूप में, देश की रक्षा करने में अक्षम है। अगर हमें स्वतंत्र रहना है और चीनियों का मुक़ाबला करना है तो तेज़ी से और सुनियोजित ढंग से इन जातियों और बन्धनों को खतम करना होगा।

५. हिन्दुस्तान बारबार विदेशी विजेताओं से इसलिए नहीं हारा कि उसके नेताओं में फूट थी, बल्कि इसलिए कि उसकी जनता में उदासीनता थी। वैसी उदासीनता अब भी है, क्योंकि चीनी हमले के कारण अधिकांश जनता में कोई वास्तविक हलचल अथवा ग़ुस्सा नहीं पैदा हुआ। जनता और शासक वर्ग के बीच एकसानियत के कार्यक्रम से ही जनता की उस उदासीनता को दूर किया जा सकता है।

६. अगर हिन्दुस्तान अपनी सीमा के लोगों और पहाड़ी जातियों को आधुनिक नहीं बनाता, तो चीन उन्हें जल्दी ही बर्बर तरीक़ों से बनाएगा। मुझे यह साफ़ करने की आवश्यकता नहीं है कि आधुनिकीकरण के मेरे विचार का मतलब यूरोपी अथवा अन्य तरीक़ों की नक़ल करना नहीं है; उसका मतलब सिर्फ़ इतना ही है कि परिस्थितियों के

अनुरूप सबसे बुद्धिमान तरीक़ों को अपनाना। इसलिए, पहाड़ी लोगों की आत्मा या उनके पृथक् गुणों को नष्ट करने का प्रश्न ही नहीं उठता। मैं तो यह मानने को तैयार बैठा हूँ कि पहाड़ी और मैदानी लोगों को बराबर की होड़ करने को कहना ही नहीं चाहिए, और कि, इसीलिए, पहाड़ों में मैदानी लोगों के मिलकियत और धंधे के अधिकारों को सिकोड़ना चाहिए। जब मैं व्यक्ति-विशेष के अधिकारों को इस तरह सिकोड़ने की बात करता हूँ, तब मुझे इस बात पर भी ज़ोर देना है कि इन पहाड़ों के आर्थिक, भौतिक और नैतिक विकास की ज़िम्मेदारी समूची भारतीय जनता की है। समूचे देश के साधन, पैसे के और आदमियों के भी, इन पहाड़ों में इस्तेमाल करने की छूट होनी चाहिए। इतनी कम आबादी है कि कुछ इलाक़ों में प्रति वर्ग मील १० से २० आदमी ही बसते हैं और ये भयंकर रूप में एक दूसरे से कटे हुए हैं कि अपनी वर्तमान स्थिति में ये पहाड़ कम्युनिस्ट चुनौती का सामना नहीं कर सकते। लद्दाख से उर्वसीअम् तक एक हिमालय राज्य, या शायद ऐसे दो राज्य बनाने की सम्भावना की तलाश करना उपयोगी होगा, जिसमें नेपाल को, अगर वह चाहे तो, शामिल होने की छूट होनी चाहिए; पूर्णतया उत्तरदायी सरकार वाला राज्य, किन्तु उस राज्य की प्रगति, आर्थिक योजना और सभी प्रकार की सैन्यशक्ति के बारे में पूरा देश लाज़मी तौर पर कह-सुन सकेगा।

—१९५९, नवम्बर २२; डिबरूगढ़।

II

"तिनसुकिया, नवम्बर २३ : 'अपने देश के एक हिस्से', उर्वसीअम् में बेरोकटोक जाने के अधिकार की रक्षा का डा० राममनोहर लोहिया का एकल मिशन आज १२-३० बजे उनकी गिरफ़तारी से समाप्त हुआ जब उन्होंने, तिनसुकिया से क़रीब ३८ मील दूर, वर्जित क्षेत्र देवमाली में, जहाँ नामसंग के किनारे पर एक छोटी-सी चौकी है, प्रवेश करने का प्रयास किया।

"जयपुर से अपने साथियों के साथ जब डा० लोहिया देवमाली पहुँचे, दो सशस्त्र संतरी उस चौकी पर पहरा दे रहे थे। जयपुर से देवमाली ९ मील दूर है, जहाँ डा० लोहिया रात में रुके थे। जैसे ही वे पहुँचे अपनी कार से उतरे। एक तीसरा सशस्त्र कनिस्टेबल डा० लोहिया से मिला जिसने उनके आने का उद्देश्य पूछा और उनसे बोला कि अधिकारियों की इजाज़त के बिना वे उर्वसीअम् क्षेत्र में प्रवेश नहीं कर सकते। जब डा० लोहिया ने उस आदमी से कहा कि वे स्वच्छन्द भ्रमण के अधिकार का प्रयोग करना चाहते हैं, वह आदमी हट गया और पास खड़ी एक गाड़ी की ओर गया। डा० लोहिया भी आगे बिना किसी रुकावट के पड़ताल चौकी के उस पार पहुँच गये और अड्डा-सुपरडंट के दफ़तर की ओर जाने लगे जो नदी के पार दिखाई पड़ रहा था।

"(उर्वसीअम् के तिरप सीमा खंड का अड्डा-सुपरडंट देवमाली में रखा गया है जब कि उस खंड का हेडकोटर खोनोसोसा है।)

"अधिकारीगण, ज़ाहिर है, आशा करते थे कि डा० लोहिया उस क़ानून को तोड़ेंगे, क्योंकि जयपुर की उस पड़ताल चौकी तक आसाम पुलिस ने उनकी कार का पीछा किया और दो मजिस्टर पहले से ही वहाँ पहुँच गये थे।

"अड्डा-सुपरडंट के दफ़तर पर पहुँचने पर डा० लोहिया को 'बंगाल एण्ड ईस्टर्न फ्रंटियर रेगुलेशन (रेगुलेशन ५ आफ़ १८७३)' की धारा ३ के अन्तर्गत गिरफ़तार कर लिया गया।

"आधे घंटे के अंदर ही उर्वसीअम् के दो अफ़सर और अन्य लोग उन्हें उसी पड़ताल चौकी पर ले आये और प्रतीक्षा कर रहे एक मजिस्टर के हवाले कर दिया। पड़ताल चौकी से उन्हें डिबरूगढ़ ले जाया गया जहाँ उन्हें मुक़दमा होने तक रोका जाएगा।

"इस घटना से स्थानीय लोगों मे कुछ दिलचस्पी हुई, क्योंकि सड़क की ख़राब हालत और लम्बे फ़ासले के बावजूद काफ़ी (एक सौ से ज़्यादा लोग) लोग उनका क़ानून तोड़ना देखने पड़ताल चौकी तक आये थे।

"देवमाली जाते हुए नागाघाट की आमसभा में उन्होने श्रोताओं से (क़रीब एक हज़ार लोग) कहा कि उस अधिकार का स्थापित करना और एक वर्ष पूर्व दिये गये वचन का पालन उनका मुख्य उद्देश्य था।...

"पी.टी.आई. की रपट है कि बाद में डा० लोहिया को डिबरूगढ़ में (जेल कम्पाउंड के पास) छोड़ दिया गया।"

—'**हिन्दुस्तान स्टैंडर्ड', कलकत्ता, नवम्बर २४, १९५९।**

III

उर्वसीअम् प्रशासन का यह कहना सच नहीं है कि मैं लोहित विभाग में जाना चाहता था जब कि वास्तव में मैं तिरप विभाग में गया। प्रशासन को निजी रूप से और जनता को सार्वजनिक रूप से मेरी दोनों योजनाएँ बतला दी गयी थीं और, वास्तव में, तिरप सीमा विभाग जाने के रास्ते पर जयपुर में प्रशासन वाले मुझसे सम्पर्क स्थापित करने वाले थे। फिर एक बार यह साफ़ बतला देना चाहता हूँ, जैसा कि प्रशासन को मैंने बतला दिया था, कि अगर मैं लोहित विभाग में जाऊँगा तो मैं मेरे कामों और घूमने-फिरने पर कोई प्रतिबन्ध नहीं स्वीकार करूँगा और मेरे दोस्त भी साथ होंगे। मुझे कहना ही चाहिए कि हिन्दुस्तान की सरकार सचेत नहीं हो रही है और उसके अफ़सर और सैनिक चीनी फ़ौजों को आगे बढ़ने से रोकने के बजाय एक निस्सहाय शस्त्रविहीन

व्यक्ति, जिसका कोई महत्त्व नहीं है, के सामने अपनी क्षमता जतलाती है। अगर सरकार उर्वसीअम् को पृथक् रखने की नीति में आमूल परिवर्तन नहीं करती, तो इस तरह पृथक् रखा हुआ उर्वसीअम् भी तिब्बत के रास्ते जाएगा। मुझे मालूम हुआ है कि १९५३-५४ में सीमा के लगभग ८० मील अन्दर क्रानली तक चीनी आ गये थे; माओ-त्से-तुंग की तसवीर के तमग़े पहाड़ी लोगों में बांटे गये हैं।

मुझे कुछ राहत मिली कि मैं जेल के बाहर हूं किन्तु मैं दुःखी और क्रोधित भी हूं कि हिन्दुस्तान के एक नागरिक को अपने ही देश में फुटबाल की तरह इधर से उधर उछाला जाए।

—१९५९, नवम्बर २४; डिब्रूगढ़, पी. टी. आई. से मुलाक़ात।

IV

"२७ नवम्बर को दोपहर में ३ बजे एक सहायक राजनीतिक अफ़सर ने उर्वसीअम् के लोहित विभाग की सुनपुरा चौकी में राममनोहर लोहिया तथा उनके साथ सोशलिस्ट पार्टी, आसाम, के संयुक्त मंत्री थोलोक गोगोई को गिरफ़तार किया।

पहाड़ों की सर्द रात में जीप में १० घंटे और नाव में ३ घंटे चलाने के बाद डिब्रूगढ़ में उन्हें छोड़ दिया गया।"

—डिब्रूगढ़ से तार।

उर्वसीअम् प्रवेश : उपसंहार

मैं समझता हूँ कि प्रधान मंत्री के विरुद्ध विशेषाधिकार-प्रस्ताव लाया जा सकता है, क्योंकि दो बातों पर उन्होंने लोकसभा को ग़लत सूचनाएँ दीं। पहली, उन्होंने कहा कि मेरे उर्वसीअम् जाने पर सरकार को कोई आपत्ति नहीं है, जब कि वास्तव में मुझे दो बार उस क्षेत्र में जाने से जबरदस्ती रोका गया। दूसरी, उन्होंने कहा कि कुछ को छोड़ कर उर्वसीअम् की अधिकांश जगहों में लोग जा सकते हैं, जब कि उर्वसीअम् प्रशासन ने ऐसा कहा और किया कि अधिकांश जगहों को छोड़ कर कुछ में ही लोग जा सकते हैं। मैं यह भी बतला हूँ कि जब मैं दुबारा जाने का प्रयत्न कर रहा था तो मुझे पड़ताल चौकी से कोई १५ क़दम परशुराम कुंड जाने वाली सड़क पर गिरफ़्तार कर लिया गया। परशुराम कुंड वह जगह है जहाँ, सरकार ने कहा कि मैं जा सकता था। सरकार को किसी व्यक्ति के काम पर क़दम उठाना चाहिए न कि उसके इरादों पर। और, कई लोगों की तरह, लोकसभा के अध्यक्ष ने सरकारी क़दम के कारणस्वरूप देश की सुरक्षा का प्रश्न उठा दिया। आवागमन की आजादी पर उचित प्रबन्ध लगाते हुए संविधान में आम जनता के हित और अनुसूचित जातियों के हित का उल्लेख है और संविधान कहीं भी इस बारे में सुरक्षा की बात नहीं कहता। वास्तव में, हिमाचल प्रदेश और उत्तर-प्रदेश में चीन से लगी हिन्दुस्तान की सीमा, जिसमें बदरीनाथ जैसी जगहें शामिल हैं, हर साल लाखों यात्रियों के लिए खुली है और इसके परिणाम स्वरूप कभी किसी ने यह नहीं सुना कि देश की सुरक्षा अथवा सेना खतरे में पड़ गयी है। जब सीमा के क्षेत्र में सारे देश के लोगों को जाने की खुली छूट रहती है, तो उससे बचाव में अड़चन की बनिस्बत मदद मिलती है, क्योंकि ऐसी लोक-निगरानी से सरकार की खामियों और जनता की हालत को अनुकूल अवस्था में लाया जा सकता है। मैं पक्की राय का हूँ कि सरकार की पृथकता की नीति के कारण उर्वसीअम् की अनुसूचित जातियाँ अत्यन्त दरिद्रता की ओर उससे भी अधिक अज्ञानता की शिकार हैं, और उर्वसीअम् में निर्बन्ध आवागमन से यह हालत कुछ बदली जा सकती है। उर्वसीअम् की लम्बाई लगभग ३०० मील है और चौड़ाई १०० मील

से कुछ ऊपर। उसकी चौड़ाई का ३० मील तराई है या जलपायीगुड़ी की तरह मैदान है। ६० या ७० मील की पहाड़ियों में, आबादी का घनत्व ५ से १० व्यक्ति प्रति वर्गमील से ज्यादा नहीं हो सकता, जो कि बचाव के लिए और आर्थिक उन्नति के लिए अनर्थकारी है। मैं यह नहीं कहता कि मैदान से आने वाले लोगों को वैयक्तिक मिलकियत और उसी तरह की चीजें बनाने की इजाजत मिलनी चाहिए, पर एक ऐसी व्यवस्थित योजना बनानी चाहिए कि हिन्दुस्तान के अधिक से अधिक आर्थिक साधनों और उसके मानव-बल का भी प्रयोग हो सके। मुझे कोई शक नहीं है कि आसाम के मैदानो के चाय बगान जैसे, उसके मील के मील फलवाटिका में विकसित किये जा सकते हैं।

प्रश्नों के उत्तर :

• तीसरा प्रयास करने के बारे में मेरे मन में दुविधा थी, किन्तु अब मैंने तय कर लिया है कि आसाम के लोगों और विशेषत: समाजवादी दल को आन्दोलन के सूत्र जहाँ मैंने छोड़ दिये, वहाँ से पकड़ने चाहिए। मुझे आशा है कि उर्वसीअम् में जाने का प्रयास जारी रहेगा—और जो अब तक वैयक्तिक रूप मे मेरी हद तक सीमित था, आगे सर्व-साधारण का काम बन जाएगा।

• उर्वसीअम् का परराष्ट्र मंत्रालय के अधीन होना बहुत ही विचित्र और लज्जा-जनक है, क्योंकि श्री माओ-त्से-ुंग या श्री चाऊ-एन-लाई आसानी से पलट कर कह सकते हैं कि वह हिन्दुस्तान का नहीं है, बल्कि उसके लिए वह विदेशी भूमि है।

• मैं नहीं जानता कि मुझे पकड़ने के वक्त अन्य सरकारी अफ़सरों के साथ मानचंग के मुखिया का भाई क्यों था। जब मैंने उससे पूछा कि उसकी भूमि पर जाने से वह मुझे क्यों रोक रहा है, तो उसने कहा कि मेरा स्वागत है पर उसके लिए राजनीतिक अफ़सर और भारत सरकार ज़िम्मेदार हैं। वास्तव में मानचंग के कई देहाती अपनी वंश परम्परा नाग नरोत्तम से मानते हैं और सीमा के इस तरफ़ उनके अनेक सम्बन्ध हैं जो जानबूझ कर और दुष्ट बुद्धि से तोड़े जा रहे हैं। और समूचा मिशमी क्षेत्र रुक्मिणी की जनश्रुति का घर है और अगर मिशमी लोग हमारे प्रति अत्यधिक मित्रता की भावना के अतिरिक्त और कोई भावना रखते हैं तो मुझे बेहद आश्चर्य होगा। बहुत से लोगों ने, जो उस क्षेत्र में रह चुके हैं, मुझसे कहा कि मिशमी गाँवों में मैं अतिथि बन कर रह सकता हूँ, बशर्ते कि सरकार मुझे वहाँ जाने दे।

• मैं तो रुक्मिणी के घर दौड़ता गया था, पर सरकार ने इतने क्रूर ढंग से उसके कृष्ण और कृष्णा, पुरुष और नारी से मिलने के आनन्द से वंचित किया।

—१९५९, दिसम्बर २; गौहाटी; प्रेसवार्ता।

उर्वसीअम् पर प्रस्ताव

"चीन द्वारा भारत पर आक्रमण किये जाने और विशेष कर उत्तर-पूर्व सीमान्त अंचल उर्वसीअम् के ही एक भाग लोंगजू पर चीनियों द्वारा क़ब्ज़ा किये जाने के बाद उर्वसीअम् क्षेत्र में भारतीय नागरिकों के प्रवेश पर बंगाल रेगुलेशन जैसे मृत क़ानून के अन्तर्गत निषेध भारतीय स्वतंत्रता के ऊपर एक ऐसा कलंक है जिसकी अहमियत को भारत की जनता अभी पूर्ण रूप से नहीं समझ पायी है। एक ओर तो उर्वसीअम् क्षेत्र को भारत के अन्य नागरिकों के लिए बन्द करके वहाँ के नागरिकों का एकीकरण इतर भारतीय जनता के साथ नहीं किया जा रहा है, दूसरी ओर, इस क्षेत्र को विदेशी आक्रमण के लिए खोला जा रहा है। इस प्रवेश-निषेध के अनेक दुष्परिणाम हुए हैं।

इस असंवैधानिक निषेध को राममनोहर लोहिया ने पिछले माह दो बार तोड़ कर भारत की सम्पूर्ण जनता की आम तौर पर, और उर्वसीअम् क्षेत्र के निवासियों की खास तौर पर, सेवा की है। सम्मेलन लोहिया को इसके लिए हार्दिक बधाई देता है।

सम्मेलन को लोहिया द्वारा भारतीय नागरिक के मौलिक अधिकार का प्रयोग करके उर्वसीअम् क्षेत्र में प्रवेश करने पर भारत सरकार द्वारा उनको ग़ैरक़ानूनी ढंग से तिरस्कार किये जाने व उनके साथ किये गये व्यवहार पर विशेष रोष है।

सम्मेलन राष्ट्रीय समिति द्वारा इस सन्दर्भ में अपनी विभिन्न बैठकों में पास किये गये प्रस्तावों का समर्थन करते हुए सरकार से माँग करता है :

१. उर्वसीअम् में उत्तर भारतीय नागरिकों के प्रवेश पर रोक तुरंत हटायी जाए।

२. उर्वसीअम् की जनता का उत्तर भारतीय जनता के साथ निकट व सौहार्द्रपूर्ण संबंध स्थापित किया जाए।

३. राममनोहर लोहिया की उक्त अवैधानिक गिरफ़्तारियों के लिए भारत सरकार लोहिया व भारत की जनता से क्षमा याचना करे।

सम्मेलन सम्पूर्ण देश के सोशलिस्टों का आम तौर पर, और उर्वसीअम् के निकटवर्ती सोशलिस्टों व जनता का खास तौर पर, आवाहन करता है कि वह लोहिया द्वारा दिखाये हुए मार्ग पर चलने का प्रयत्न करें, और उसे तब तक जारी रखें जब तक ग़ैरक़ानूनी प्रवेश-निषेध वापस नहीं ले लिया जाता।"

—१९५९, दिसम्बर २९-३१; चेन्निमलाई; समाजवादी दल के चतुर्थ राष्ट्रीय सम्मेलन का प्रस्ताव।

कुछ पत्र

I

बमदिला-दिरांग, १६ मार्च, '६३

साढ़े आठ हज़ार फ़ीट से तुमको लिख रहा हूँ। कई दिन से मेहनत भी बहुत करनी पड़ रही है।......

बीच में एक गिरफ़तारी आ गयी थी। एक ट्रक में हथियारबन्द सिपाही आये। राज्य जब अपनी ताक़त परदेशियों को नहीं दिखा पाता, तब देशियों पर आज़माता है।...

ख़ूबसूरती की बड़ी चीज़ जगह-जगह रोडेन्ड्रोन की छटा मिली। लम्बे-लम्बे पेड़ होते हैं। यहाँ के लोग इनको **खण्डक** कहते हैं।

दफला लोग अपने को कहीं बंगनी कहीं निसी कहते हैं। इसका अर्थ आदमी। लेकिन आदमी रह नहीं पाया। हिमालय में सब नीतियाँ फेल होंगी, क्योंकि केवल पेट के ज़रिये बात हो रही है, और उसके द्वारा पेट भी नहीं भरता। मन है ही नहीं इस नीति में।

सरकार ने उर्वसीअम् में आने तो दिया, लेकिन जहाँ हेलीकाप्टर दे सकती थी, जीप में मारा। यह सरकार कोई भी काम बढ़िया ढंग से नहीं करती। फिर, ऐसे घूमने से लोगों से कोई संबंध नहीं हो पाता। सब मामला सरकारी है। अभी विचार, सिद्धान्त बहुत चलेगा तब लोग शायद सीखें। जिन लोगों को स्वयं भाषण स्वतंत्रता असलियत में नहीं हैं, उनको कहने से क्या फ़ायदा कि चीन में भाषण या विचार स्वतंत्रता नहीं है।

II

बमदिला १७ मार्च, '६३

अपनी राष्ट्रीय शर्म के इस क़स्बे (बमदिला) से लिख रहा हूँ कि इस शर्म को धोना कितना ज़रूरी हो गया है। 'नवभारत टाइम्स' ने इस प्रदेश को 'नेफ़ा' कहना बन्द

कर दिया, बहुत अच्छा। लेकिन, 'उर्वसीअम्' न कह कर 'उपूसी' कह रहा है, सो अच्छा नहीं। 'पूर्व' का 'पू' लेना अथवा 'र्व', इससे कुछ आता जाता नहीं। दूसरे देश भी एक संक्षिप्त शब्द बनाते वक़्त इतनी आज़ादी ले लेते हैं, अगर उससे बढ़िया शब्द बन जाता हो। असली तर्क है नियम का, कि शब्द का पहला या आख़िरी अक्षर लेने की आज़ादी रहे या नहीं। 'उर्वसीअं' शब्द सुन्दर है और सभी प्रदेशों में तेज़ी से चल सकता है। यह शब्द केवल हिन्दी नहीं, सभी भाषाओं का है। फिर भी कोई हिचक रह जाती हो, तो 'उर्वसीअं' की जगह 'उर्वसी' चला सकते हैं। समय तय कर देगा कि कौन शब्द चले।

'उर्वसीअं' का यह कामेंग क्षेत्र है। 'कामेंग' का अर्थ है बड़ी नदी। यहाँ अधिकतर मोनपा लोग रहते हैं। 'मोन' यानी गर्मी और 'पा' यानी और नीची जगह अथवा निवासी। कहा जाता है कि ठंडे इलाकों के निवासियों ने यह नाम दिया गर्मी के निवासियों के लिए। 'तवांग' लड़ाई में पहले गिरा। 'ता' का अर्थ है घोड़ा और 'वांग' यानी आशीर्वाद। अर्थात् घोड़े जिसको आशीर्वाद देते हैं या जो घोड़ों को आशीर्वाद देता है। जगह बड़ी सुन्दर है, हरी है, पन्द्रह बरस पहले तेजपुर वालों ने 'सदा बसन्त' नामक जगह के क़िस्से सुना कर मेरा मन लुभाया था। शायद तवांग वही 'सदा बसन्त' है।

कामेंग वालों का भारत से कितना संबंध है और चीन से कितना, इसका एक नमूना—सिंह एक पुराना शब्द है, इस माने में कि इस शब्द को लिया गया होगा हज़ारों बरस पहले। मोनपा बुद्ध को कहते हैं, संघी और सिंह को सिंघी। यहाँ दो गाँव हैं, जिनके नाम हैं—शक्ति और शान्ति। दुर्दिन और दुर्नीति ने बुरा समय दिखाया है। मोनपा, तवांग आदि तिब्बती से मिलते हैं, जो स्वयं भारती के नज़दीक हैं।

III

तेजपुर, १८ मार्च, '६३

पहले से मेरे मन में कभी-कभी एक बात उठती है; बमदिला और दिरांग जाने के बाद ज्यादा आने लगी है। क्या हम लड़ाई के लिए निकम्मे हो गये हैं। फ्रांस के लिए कहा जाता है कि उसे तीन शौक़ हैं—प्यारी, खाना और प्रेम-मैथुन। ये शौक़ लड़ने की इच्छा से तीव्रतर हो गये हैं, दगाल और उनके जैसे सेनापति जो भी कहें। हमारे कौन शौक़ हैं, कहना मुशकिल है। यों, पुराना देश है। फिर भी, सब शौक़ मुरझा गये हैं एक शौक़ के सामने, किसी तरह जीना, मरे हुए जीना, मन की और शरीर की ठोकर खा कर जीना। फ्रांस के शौक़ों में जान है, वे किसी हद तक शान्ति के अंग हैं।

मुझे सड़क पर एक शरदुफेन लड़का मिला। कुछ बूढ़ों ने हथियार उठाने की बात की। उस लड़के ने कहा—उनकी जाति कभी लड़ी नहीं, युद्ध नहीं किया, हमेशा शान्ति चाही है। मैंने कहा—जब दूसरे मारें तब! उसने कहा—मरें। पता नहीं उसने ये बातें

अपने परम्परागत अन्तःकरण से कहीं या चीन ने एक महीने में जो कुछ शान्ति प्रचार किया उसका कुछ असर रहा। बर्ट्रेन्ड रसेल और भावे जी का मन बड़ा उछले, इस युवक की बात सुन कर। फ़र्क़ सिर्फ़ इतना है कि रसेल के देश में समृद्धि है और मरने-मारने वालों की संख्या अधिक है, और भावे के देशवासी ग़रीब हैं ही, मारना भूल गये हैं, लेकिन स्वेच्छा से मरना नहीं सीख रहे हैं। भारत जैसे देश में मरते ज्यादा हैं, लेकिन जबरिया, स्वेच्छा से नहीं।

हमें क्या हो गया है। इस पर ठंडे दिल से विचार कर हमें फ़ैसला करना चाहिए। या हम इस बात को स्वीकारें कि हम लड़ नहीं सकते, और आखरी नतीजे निकालें। बेबसी को आँख खोल कर स्वीकारने में आलम बदलता है। नहीं तो हमें उन सभी कीटाणुओं को ढूँढ़ना चाहिए जिन्होंने हमारे राष्ट्रीय मन को सड़ाया है। शरदुफेन युवक सच बोल रहा था। राजकीय और सेनानायक झूठ बोलते हैं जब वे हथियार या संख्या को अपनी हार का कारण बताते हैं। हार का कारण है, आज और पिछले हज़ार बरसों में, मन के अन्दर बैठा चोर। बमदिला में लड़ाई हुई ही नहीं, दिरांग में भी प्रायः नहीं। क्यों लड़ें, जब मरने का खतरा है।

मन के चोर की क्या-क्या बातें करूँ। मेरे ही एक साथी ने जिस तरह के सवाल किये, उससे लगा, उसे दिलचस्पी है असमियों और आसामी भाषा से ज्यादा, हिन्दुस्तानियों से कम। मुझे कभी-कभी लगता है कि सेना मे और दूसरी सभी जगहों पर बिहारी, पंजाबी, असमिया वग़ैरह टुकड़ियाँ, और सच पूछो तो जात और भाषा दोनों को मिलायी दृष्टि से, जैसे पंजाबी चमार और बंगाली ब्राह्मण, अलग-अलग हों, तब अपना काम ज्यादा अच्छा हो। खाली सवाल रहता है कि इन सबका नेतृत्व करने वाला कोई विदेशी समूह होना चाहिए। भारत का पुराना मन सड़ चुका है। लेकिन किया क्या जाए। जो कुछ बदलाव होता है, ऊपरी और मुलम्मे वाला। असली मन दबा पड़ा रहता है और हर बेठीक मौक़े पर उमड़ आता है।

कांग्रेस के पन्द्रह बरस ने हमें सड़ाया है निस्संदेह। लेकिन सड़ान हज़ार बरस पुरानी है, हिन्दू धर्म के एक अंग की। जब तक छुआ-छूत, खान-पान, शादी-विवाह के हज़ारों कठघरे बने हुए हैं, तब तक चीन क्या, किसी के भी सामने हम अक्षम हैं। राष्ट्रीय शरम के इस मौक़े पर भी देश कठघरों और हार का संबंध देख नहीं पा रहा है। कठघरे भी क़ायम रखो और जीतो भी। ऐसा हो नहीं सकता। जो चीन से जीतना चाहता है, उसे खान-पान, शादी-विवाह के अलगाव स्वाहा करने पड़ेंगे।

तन्दुरुस्त जान अपने को बचाने के साथ दूसरों को बचाती है। सड़ी जान अपने को भी बचा नहीं पाती। हिन्दुस्तान की जान तन्दुरुस्त बने, यही बड़ा सवाल है। वर्तमान पतित सरकार इस सड़ी जान का एक बाहरी प्रकाश है।

IV

तेजो, २० मार्च, '६३

किताबें, खोज और खोजकरी विद्वान् अधिकतर कैसे होते हैं, उनके बारे में तुम मेरी राय जानती हो। उर्वसीअम् के क़बायलियों के बारे में काफ़ी लिखा गया है और, खोज चल रही है। क़बायली कई क़िस्म के हैं ऐसा हो सकता है, लेकिन उनके नामों में एक दिलचस्प बात दीखती है। प्रायः हरेक के नाम का अर्थ निकलता है, आदमी। मिशमी जात, किंवदन्ती के अनुसार रुक्मिणी वाली, का अर्थ अभी तक पता नहीं चला। उसकी तीन उपजातियाँ हैं, ईदू यानी आदमी, तराँव यानी आदमी, कमान यानी आदमी। मालूम होता है जब किसी परदेशी ने आ कर पूछा, तुम किस जात के हो, कौन हो, प्राकृतिक और सहज उत्तर मिला, आदमी हैं। दूसरा उत्तर इस वर्गविहीन, वर्णविहीन दो-दो, तीन-तीन घर के गाँव में हो ही क्या सकता था। विदेशी विद्वान् ने सोचा ये नाम उनकी जात के हैं। हो सकता है, इनमें जात के अलगाव बन गये हैं स्थान और दूरी के कारण या और सबब से। लेकिन नाम के अलगाव निरर्थक हैं। एक दूसरी जात है आदि आमी; 'आदि' यानी ऊँची और ठण्डी जगह, 'आमी' यानी आदमी। इनको किसी ज़माने में अभोर भी कहते थे, क्योंकि मैदानी परदेशियों ने इनको उजड्ड समझा। इसी तरह दफला है जो कामेंग और सुबन्सिरी इलाक़े में बसते हैं। इनकी उपजातियाँ हैं : 'बंगनी' यानी आदमी, 'नी' यानी आदमी।

मैदान से पहाड़ आते वक़्त इस लोहित इलाक़े में एक जाति मिली देवरी। खम्भों पर इनके मकान खड़े हैं। मकान के नीचे औरतें करघों पर बुनती हैं। भली, सहज और मुलायम दीखती हैं, एक दुपट्टा जैसा पहने हुए और सिर तक ओढ़े हुए। अब तक चार मिशमी मिले, एक लड़की। बहुत कम हँसी। बहुत कम बोली। अगर यह रुक्मिणी की वंशज है, मालूम होता है रुक्मिणी ने सब बोल खतम कर डाले। हो सकता है ये लोग घबड़ा जाते हैं और नाराज़ भी हो जाते हैं, अपने को खिलौना बनता देख कर और चारों तरफ़ से सवालों की बौछार होने पर। मिशमी लड़की ने रसगुल्ला नहीं खाया, क्योंकि वह दूध से बनता है। उसने काली चाय पी। मिशमी औरतें मांस, मछली, दूध नहीं खातीं। विचित्र बात है। मुझे पहले से लगता रहा है कि यह इलाक़ा प्राचीन काल में आधुनिक था। फिर थम गया। लोग इन्हें असभ्य, जंगली अथवा पिछड़े कहते हैं। वास्तव में, इन्हें एक ज़माने के आधुनिक और आज के थमे कहना ज़्यादा सही होगा। फिर, ताम्रेश्वरी वग़ैरह के कुछ अवशेष मिले हैं, और न जाने क्या-क्या जंगल ने खा लिया है जैसे उत्तर प्रदेश में धूल ने। एक बात निर्विवाद मालूम पड़ती है। भारत का पूर्व-पश्चिम संबंध गंगा-जमुना के उत्तर महाभारत और प्राचीन काल में रहा है। वर्तमान आसाम और उर्वसीअम् इस ज़ंजीर की कड़ियाँ हैं। मिशमी और दूसरे लोग शायद इन्ही पुरानी कड़ियों के छुपे रूप हैं। ईदू लड़कियाँ और लड़के भी (मर्द औरत सभी) भाल तक अपने बाल

काटते हैं, कैसे चटपटे, आधुनिक। और तरांव अपने बाल समेट कर, खोपड़ी पर जूड़ा बाँधते हैं। अगर तुम पूछो, रुक्मिणी मिली क्या, मेरा जवाब, यों हर औरत रुक्मिणी है, इस इलाक़े वाली शायद और भी, क्योंकि एक ज़माने में आधुनिक हो कर थम गयी हैं, और, इसलिए, कोमल भावों को जगाती हैं। लेकिन भारत के मध्यम-वर्ग और जाति-प्रथा और बड़े की छोटे के प्रति बोल की असभ्यता, कभी कुछ होने देंगे क्या ?

तुमको इत्तला देनी तो रही जाती है कि बमदिला से तेंगाघाटी तक लाल गण्डक की व्यापक छटा है। शायद तेंगाघाटी ही 'सदा बसन्त' है, तवांग नहीं। रामलिंगम से चाको तक, जिममे १३०० फीट तक चढ़ाई होती है, सफ़ेद और गुलाबी गण्डक की छटा है। पेड़-पौधों की भी बलिहारी है। एक ऊँचाई और गीलेपन पर इनके जटा मूँछ उगती है।

V

डिबरूगढ़ से जीरो—उत्तर लखीमपुर, २३ मार्च, '६३

पहली चिट्ठी में एक बात जोड़ना। ईदू को मैंने आदमी कहा था। सम्भवतः मीदू है। 'मी' यानी आदमी और 'दू' यानी नदी, नदी वाला आदमी। अपभ्रंश होते-होते 'मीदू' का 'ईदू' हो गया। ईदू अपना बाल कपाल तक काट देते हैं, औरतें भी, इसलिए उनको चूलीकाट भी कहते रहे हैं। बड़ी चटपटी और आधुनिक दीखती हैं। जो भी हो, इन सबों के जात नाम मे 'आदमी' संज्ञा ज़रूर है। लुशाई वाले मीज़ो कहलाते हैं। 'मी' माने आदमी 'ज़ो' माने ऊँची और ठण्डी जगह। उर्वसीअम् की संख्या में सबसे बड़ी जात आदि कहलाती है, असल में आदिआमि। 'आमि' यानी आदमी और 'आदि' माने ऊँची और ठंडी जगह। धन्धे से किसी का नाम नहीं लगता, क्योंकि धंधे वाला अलगाव और ऊँच-नाच नहीं है। गाँव और छोटे इलाक़े से भी नाम नहीं। इतना अलगाव नहीं। सब आदमी हैं।

आदमी थम चुके हैं। तेजो के पास के दो गाँव देखे, एक का नाम तर्फोगाम। हालत बुरी है। आदमी और जानवर बहुत ज़्यादा साथ-साथ रहते हैं। शायद दोनों को तकलीफ़ होती होगी। औरतों ने अपने कानों, दोनों में, रुपये बराबर छेद कर रखा है, और गहना। औरत गहने के लिए क्या-क्या नहीं करती रही है। पूछने पर जवाब मिला—दर्द नहीं होता। क्या करें। खुद तेजो में सरकारी अमल है, प्रायः सभी सरकारी नोकर। यहाँ कलक्टर को राजकीय अफ़सर कहते हैं। यहाँ वाला पुराना फ़ौजी है। फ़ौजी आदमी आम तौर से भला होता है, जैसे शराबी, उसमें दूसरे जो भी अवगुण हों। उसकी बीबी भली औरत लगी। वैसे, वे तीनों औरतें जिन्होंने खाना खिलाया—एक, असमिया, जिसने इलाहाबादी से शादी की है, और तीसरी, तमिल, जो चटपटी और सीधी दोनों लगी। शान्ता उसका नाम है। शायद ये औरतें कर्त्तव्यवश भली रहीं। जो भी हो,

राष्ट्रीयता का एक नतीजा यह भी होता है कि दूर देश में अपनी औरतें ममता दिखाती या जगाती हैं।

एक फूल यहाँ बहुतायत से देखा, कनक जिसका नाम। छह-सात पत्तियाँ हैं सफ़ेद और गुलाबी, लेकिन एक पत्ती में गहरा लाल चक्र है। दूर से देखने में अजीब सफ़ेद-लाल मिला दिखता है, गुलाबी नहीं। जहाँ-तहाँ जवा देखा, लेकिन मैं उसका मथुरा-वृन्दावन वाला नाम भूल रहा हूँ, आखिर कृष्ण का फूल है। लेकिन फूलों की इतनी छटा नहीं रही, क्योंकि तेजो हज़ार और तर्फ़ोगाम दो हज़ार फ़ीट के आस-पास हैं। लोहित क्षेत्र में ज़्यादा ऊँचा जाना नहीं हुआ, जैसा कामेंग में हुआ था। इसलिए जंगल ज़्यादा अच्छा देखने को मिला। शायद और कारण रहे हों। तेजो से तर्फ़ोगाम जंगल के बीच रास्ता था। जहाँ-तहाँ पेड़ गिरे मिले। कुछ पेड़ों का वल्कल छिला हुआ था। रात को हाथी आये थे। कामेंग का जंगल चढ़ते पहाड़ों पर था। यहाँ सीधाई पर। बड़े ठाठ वाले पेड़ हैं, ऊँचे, सीधे, बड़े तने - हलक और हलुग नाम है। हलक शायद ज़्यादा शाही है। हलक, बेंत के पेड़, बाँस खैर है ही, और एक पेड़ जिसके नाम में चम्पा है। सुना है मिशमी लोग जंगल में ऊँचे-ऊँचे चल लेते हैं, एक बेंत से दूसरे पर कूद कर। अफ्रीका के जंगलों में शायद ऐसा होता होगा, और तार्जन की शुरुआत इन्हीं अनुभवों से हुई।

इस जंगल का फ़र्श भी तरह-तरह की घासों से भरा रहता है। बेंत वाली पत्तियाँ घास की तरह भी उगती हैं। एक और विशेष बात है। इस जंगल के पेड़ों से ऊपर से नीचे गिरने वाली लता जैसी डाली निकलती है। कुछ ऊँचाई पर जाने के बाद पेड़ के तने पर काई जैसी जमने लगती है, जैसे पेड़ के जटा-जुटा हों। रामलिंगम से चाको तक ऐसा बहुत देखा। इसी तरह से गंगटोक के बाद का ऊँचाई पर भी देखा था। जहाँ जानवर को दाढ़ी होने लगती है और गाय-बैल याक हो जाते है, वहाँ पेड़ का ऐसा हाल हो तो तो क्या अचरज।

बड़े शानदार पेड़ हैं। इनकी होली यहाँ के लोग बहुत जलाते हैं, खेती के लिए। राख मिट्टी और खाद दोनों का काम देती है। ऐसी खेती को झूम कहते हैं। इस बरबादी को रोकने का उपाय तभी हो सकता है जब कोई संगठित योजना बने। केवल रोक लगाने से यहाँ के लोग सोचेंगे कि नियम टूट रहा है, और उनके अधिकारों को छीना जा रहा है। फ़िज़ूल उपद्रव खड़ा होगा। कुछ होवे-जावेगा नहीं।

योजना बहुत बन सकती है। कामेंग में चढ़ती पहाड़ियों पर कोई दस-पन्द्रह मील की दूरी तक जंगली केले की उपज देखी। लोहित में भी इसी तरह समतल ज़मीन पर वैसी ही दूरी तक जंगली केले देखे। हो सकता है, किसी समानान्तर में होते हों (पैरेलेल) सैकड़ों मील लम्बा, दस-बीस मील चौड़ा। अच्छा केला हो सकता है, और दूसरे फल भी भी। इनकी टिनाई करने के लिए कारखाने खुल सकते हैं। बड़ी योजना बनानी पड़ेगी।

और ये फल शायद मुफ़्त में, स्कूली बच्चों और दूसरों को, कम से कम शुरूआत में, देने पड़ें।

जब मैंने पच्चीस वर्ष पहले कहा था कि मच्छड़-खटमल खतम किये जा सकते हैं, जाड़ा, बुखार खतम किया जा सकता है और दूध वग़ैरह मुफ़्त बच्चों को देना चाहिए, तब लोग हँसे थे। कम से कम एक काम कांग्रेस सरकार ने किया, जिसकी मैं मुक्तकंठ से प्रशंसा करूँगा। अभी पूरा नहीं हुआ, लेकिन बहुत कुछ हुआ। जाड़ा-बुखार नियंत्रित है। और डी. डी. टी. हो। मच्छड़ अभी भी काटते हैं, लेकिन उनका बुखारी डंक क़रीब-क़रीब खतम हो रहा है। इसी तरह फल खेती पर लग्गा लगना चाहिए।

VI

उत्तर लखीमपुर, २३ मार्च, '६३

एक दिन में दो। ऐसा मैंने पहले कभी नहीं किया। इसी तरह मैं तुम्हारे और भारत माता तथा पृथ्वी माता, तुम माता पसन्द नहीं करोगी और, हर हालत में, भारत कन्या तथा पृथ्वी कन्या ज़्यादा अच्छे हैं, उनके लिए अपना आदर जता सकता हूँ।

फल खेती तक बात आयी थी। पूरे हिमालय में डेढ़-दो हज़ार मील की लम्बाई और तीस-चालीस मील की चौड़ाई पर फल खेती हो सकती है। यह तो निचले और मध्य हिमालय के कुछ हिस्से की बात हुई। मध्य हिमालय के लिए भी अनाज या फल खेती और छोटे-छोटे कारखाने की बात सोचनी होगी। मैं तुमको इज़रैल का एक क़िस्सा सुनाऊँ। ठीक सीमा पर एक इज़रैली गाँव में हम गये। क़रीब दो सौ लड़के लड़कियाँ थे। खेती करते थे। साथ ही, सैनिक भी थे, ज़रूरत पड़ने पर। जब फिलिस्तीन था, तभी से यहूदियों ने ऐसे बासे बनाये, जो देखने में केवल खेती समूह थे. और असल में छावनी भी। इज़रैल की सीमाओं पर आज ऐसी खेती-छावनी अनेकों हैं। मैंने इन युवजनों के नेता से पूछा, क्या करोगे पन्द्रह लाख छह सात करोड़ के खिलाफ़। कभी तो ये सात करोड़ अरब आधुनिक बनेंगे, तब क्या होगा। युवक के चेहरे पर मुसकुराहट थी या नहीं, मुझे याद नहीं। लेकिन था बिलकुल ठंडा और सौम्य। बोला, जाने को है कहाँ। इज़रैल का खतम होना प्राय: असम्भव है। बीच में मुझे इज़रैल सरकार की यूरोप-अभिमुख नीतियों पर ग़ुस्सा रहा, अब भी कुछ है। लेकिन विचित्र दृढ़ता की क़ौम है। जाने को है कहाँ ! और यहाँ आसाम-उर्वसीअम् में एक ही चीज़ सुनने को मिली, भागो, भागो, दुनिया भर भागने के लिए बाक़ी है।

कब हिन्दुस्तान में संकल्प आएगा। शायद इसी संकल्प के कारण इज़रैल बचा रहेगा। और जैसे अरबी आधुनिक होंगे, उनके मन की विनाशकारी भावना कम होगी। जो भी हो, इज़रैल के कुछ युवजनों और उनके विशेषज्ञों को बुला कर सीमा पर, खास

तौर से पथरीली, ठंडी और मध्य हिमालय की सीमाओं पर, खेत सह छावनी बनाने की बात जाँचनी चाहिए।

हो सकता है समय अभी उपयुक्त नहीं। चीनी सामने खड़े हैं। अपने पहाड़ी क़बायलियों को शायद चीज़ पसन्द न आए, क्योंकि इन बासों में आधे ये रहें तो आधे मैदान के युवजन, कहीं-कहीं और ज़्यादा, लाने होंगे। यहाँ आबादी का सवाल बड़ा टेढ़ा है। पैंतीस हज़ार वर्गमील में कुल ढाई लाख। कुछ तो कहते हैं कि आबादी इससे भी कम है। एक मील पर आठ-दस गाँव या उससे भी कम। कुछ तो करना ही होगा। दस बरस से मैं चिल्ला रहा हूँ कि भारतीय हिमालय में आवास की योजना ज़ोरों से चलाओ। पहले आसानी से हो सकता था। अब भी हो ही सकता है। कभी न कभी मामला ज़ोरों से चलाना होगा।

दृष्टि ख़राब रही है। अपना प्रधान मंत्री जैसा उसके सलाहकार भी वैसे। एलविन की और करामात सुनी। गाँधी जी और शिव-पार्वती की तस्वीर रखने पर गिरफ़तारी की बात पहले ही सुनी थी। लेकिन वह मैदानियों का मामला था। पहाड़ियों पर भी दूसरी तरफ़ से मार रही। पतलून पहनने पर उन्हें डाँटा गया था--अपनी लंगोटी पहनो। जूता पहनने पर कहा गया था कि परम्परा के अनुसार नंगे पैर रहो। हो सकता है कि नेहरू-एलविन ने ऐसा कहने को नहीं कहा, और किसी अफ़सर ने उसके विचारों का मखौल किया। लेकिन विचार ऐसे नहीं हैं कि उनका एसा मखौल उड़ाया जा सकता है। एक घटना एलविन के साथ खुद घटी। तेजो में क़बायली लड़कियों के लिए बुनक स्कूल खुला। करघे रखे गये, माकू वाले (यहाँ माकू कहते हैं, वहाँ वाला शब्द भुला गया)। परम्परागत बुनक ऐसा नहीं होता इस इलाक़े में। एलविन ने इन नये करघों को हटाया। लड़कियाँ भी विरोध में हो गयीं। यह क्या मज़ाक़ चला है, न सिर्फ़ धारा को पलटने का, बल्कि भारतीयता को टूक-टूक करने का। ये आदम शास्त्री शायद बेकारी से डरते हैं। और इन्हें हिन्दुस्तान ही अपना प्रिय मैदान मिला है।

उर्वसीअम् तिब्बत नहीं है। तिब्बत और चीन अलग-अलग हैं, शरीर से भी। यहाँ अक्सर सुना कि बड़ी कोशिश हो रही है शारीरिक मिलावट की भी। एक तो सौ पचास बरस के पहले यह सम्भव नहीं और दूसरे, नतीजा चीनी न होंगे, बल्कि तिब्बती-चीनी या चीनी-तिब्बती। यों मैंने पचीस-छब्बीस बरस पहले एक भाषण दिया था कि दुनिया का भविष्य दोग़ला है। सब जातियाँ शरीर से मिलें। हाँ, चीन की तरह ज़बरदस्ती करके नहीं। वह तो राक्षसी काम हो जाता है, जिसे राष्ट्र हनन भी कहा जा सकता है।

उर्वसीअम् में पहले राज़ी ख़ुशी यह काम चला है। रुक्मिणी और चित्रांगदा के क़िस्से सिर्फ़ गढंत नहीं। तगातार चला है। अहोम राजाओं के ज़माने में आसाम और उर्वसीअम् के घनिष्ट सम्बन्ध थे। लोगों के चेहरे बताते हैं। इन सम्बन्धों को आज

जबरदस्ती रोका जा रहा है। इनका गन्दा अंग जरूर रुकना चाहिए। कुछ लोग फ़रेब की शादी कर लिया करते थे। फिर छोड़ देते थे या बेच देते थे।

लेकिन असली सम्बन्धों को भी रोका गया है। हाँ, एक बात की तरफ़ आगे भी ध्यान देना होगा। उर्वसीअम् की लड़की और बाक़ी भारत का लड़का, यह नहीं चलेगा। बाक़ी भारत की लड़की भी उर्वसीअम् को मिले। लेकिन ऐसी लड़कियाँ निकलेंगी क्या जो रोमांस को इतना दूर ले जाएँ।

VII

जीरो से गोहाटी, २६ मार्च, '६३

सोचा था तुमसे आज सिर्फ़ सुन्दर बातें करूँगा। लेकिन दुनिया सुन्दरता पनपने कहाँ देती है। कल (अब परसों) हम लोगो ने एक निशी, जिन्हें बाहरी लोग दफला कहते हैं, पूजा देखी। पुजारी के हाथो से मुर्ग़ी का खून दो-तीन बूंद गिरा जब वह उसके पंख पत्तों और खंभे के एक देवता पर लगा रहा था। पूजा कराने वाला एक गाँव बूढ़ा जो अपनी समझ से धनी है और अपनी बीमारी को भगाने के लिए अनुष्ठान करा रहा था। एक नन्हा-सा कुत्ता भी मारा गया जो फेंक दिया गया। यहाँ एक बड़ा जानवर होता है, भैंस जैसा जिसे मिथुन कहते है, वह भी काटा गया। दिखने में बड़ा मासूम होता है। यह सिर्फ़ दो काम आता है। शादी के लिए लड़की के बाप को दिया जाता है, जितना धनी उतने मिथुन, और कटने। गाँव में एक बूढ़े के, या जवान, चार बीबियाँ थीं। मैंने उन सबको एक साथ देखना और बैठाना चाहा। आयीं, लेकिन अन्धेरा था, इसलिए सिर्फ़ इतना ही फ़ैसला कर पाया कि हर बाद वाली ज़्यादा शौक़ीन थी। एक चीज का संयोग से पता लगा। आओ बैठो को ये लोग "हा कुमतो" कहते हैं। थाई लोगों ने कई सौ बरस पहले आसाम पर आक्रमण के समय यही कहा था, आओ बैठो, लड़ने से क्या फ़ायदा, अपनी भाषा में "मा कुम", तिनसुकिया से दुमदुमा जाते समय जो माकुम क़स्बा पड़ता है, सम्भवतः यही अर्थ वाला है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि थाई देश से और ऐसे ही हिमालयोत्तर इलाक़ों से, जिन्हें पहले वृहत्तर भारत कहा जाता था और जिन्हें अब जम्बू द्वीप कहना चाहिए, बहुत आना-जाना रहा है—लोगों का, भाषा का और सब चीज़ों का। किन्तु आधार भारत है। और थाई भी तो आधा भारत है और उस समय हो चुका था जब इन्होंने आसाम पर आक्रमण किया।

एक निशी लड़के ने मुझे बताया कि वह भाभी, भाई और बहिन के साथ रहता है, अपनी भाषा में नेही, अम, और बिरम। नेही शायद स्नेही है और 'अम', अज। निशी लोगों को परदेशियों ने सादा और कुरंग कहा है। बिलकुल झूठ। मुझे ये उतने ही भले और सुरूप लगे जितने और कोई। इनकी औरतें अपने बालों और चेहरे का कोई स्वांग

नहीं बनातीं। उनके कपड़ों में उतना रंग नहीं, और परदेशी ने अब तक यहाँ विभिन्नता और रंग देखना चाहा है।

एक अपातानी गाँव भी देखा। निशी गाँव के घर दूर-दूर बसे होते हैं। अपातानियों के गाँव घने, जैसे मैदान वाले। दो सुन्दर चीज़ें पहले ही बता दूँ। जिस घर में हम लोग गये, दो बीबियाँ थीं। वैसे आम तौर पर अपातानी लोग एक ही शादी करते हैं। जवान ने स्नेह दिखाया। लहँगा और बड़ा झूलन दिया, बीबी के लिए। तस्वीर लेते समय पहले तो ज़रा-सा हठ कर बैठी थी। फिर जब मैंने उसके कन्धे पर हाथ रखा तब काफ़ी सट कर बैठी। अपने सुरूप चेहरों को ये काफ़ी बिगाड़ती हैं। दोनों नाकों को छेद कर, ये बड़ा से बड़ा काठ का बुन्दा पहनती हैं। कभी-कभी नाक की ऊपरी नोक तक दो हो जाती हैं। भाल के ऊपर से ले कर नाक तक, कभी-कभी नोंक तक, टीका गुदाती हैं। ठुड्डी पर चार या पाँच लकीरें गुदाती हैं। पूछने पर जवाब मिला, माँ बाप नहीं भी छिदाना चाहते, बच्ची रोती है। मैंने परम्परागत जवाब दिया, चिड़िया और पिंजड़े का। दूसरी सुन्दर बात पहले सुना दूँ, तब और कुछ कहूँ। जब हम लोगों की गाड़ी एक ट्रक से गुज़रते समय कुछ धीमी हुई, तब एक लड़की सामने हाथ फैला कर खड़ी हो गयी। मीठी बोली, लेकिन भिखारिन की तरह नहीं, और अन्दर आ बैठी। मैंने पीछे मुड़ कर उसकी तरफ़ लगातार देखा। आम तौर से वही निर्लज्ज हो सकता है जिसके मन में बहुत कुछ न हो। और कुछ पूछा भी। पुइयाँ उसका नाम था। उसने थोड़ी ही देर बाद अपनी डिबिया निकाली जिसमें बीड़ी थी। एक सामने वाले लड़के को दी जो उसकी जात का था और मज़दूर टुकड़ी में काम करता था। फिर एक अद्‌भुत सौन्दर्य घटा। उसने अपना हाथ बढ़ाया नहीं, डिबिया जहाँ की तहाँ रखी। मेरी तरफ़ देखते हुए सिर्फ़ भवों को इस तरह ताना कि एक सहज और मधुर सवाल उठा लोगे। कम से कम मैंने यही समझा। बग़ल वाले ने कुछ कहा, शायद यह कि इनको बीड़ी क्या देती हो। मुझे अफ़सोस हुआ कि मैंने तम्बाकू पीना छोड़ दिया है। एक और आँखें और भवें याद हैं। लन्दन के एक अस्पताल में एक डाक्टरनी मेरा रक्तचाप नाप रही थी। आँखें और भवें कहाँ-कहाँ, और मुझे बता रही थी कि वह नीलगिरि में पैदा हुई थी। मुद्रा-शास्त्र क्या है? क्या यह परिपक्व सभ्यता का ही अंग है। और अपातानी थम ज़रूर गये लेकिन अपनी पुरानी मुद्राओं में से कुछ को भूले नहीं। या यह सहज मानवी सौन्दर्य है जिसे समाज या प्रकृति का दबाव मिटा देते हैं, मैदान का वर्ग-भेद मिटा देता है, और पहाड़ियों का प्रकृति से संघर्ष अपातानी पठार पर एक साथ रहते हैं। धनी ग़रीब का थोड़ा-थोड़ा भेद है, लेकिन न जाति-भेद, न वर्ग-भेद।

इनमें से कुछ के बाल काफ़ी चमक रहे थे। पता चला कि सूअर की चर्बी लगाती हैं। उर्वसीअम् की खास महक अभी तक नाक से नहीं निकल रही है। पता नहीं, मैं उसे निकालना भी नहीं चाहता हूँ। कुछ अफ़सरों ने मुझसे कहा कि ये इतर पसन्द नहीं

करेंगे। मैंने कड़ुवा जवाब नहीं दिया। कह सकता था कि हर सूअर अपने कूड़े को पसन्द करता है।

उर्वसीअम् के ये लोग कौन हैं, कहाँ से आये—फिर कभी। मैंने सोचा था कि आज मैं तुमसे पहाड़, पानी छींटे वाली हरियाली और आसमान, चारों के संगम पर बातें करूँगा। सुबनसिरी के इस क्षेत्र में जीरो वाले रास्ते की यही विशेषता है।

कुछ और पत्र

I

तेजपुर, १८ मार्च, '६३

उर्वसीअम् की लड़ाइयो में कोई रहस्य है । मैं कह नहीं सकता कि वह बिदूषकों की परेड थी या वर्दियों में सुकमारियाँ । यहाँ कुछ तथ्य दे रहा हूँ, जिन्हें, जैसे भी आप सामने ला सकें, लाइए ।

१. बमदिला, कामेंग का सदर मुक़ाम, १८ नवम्बर की अव्वल सुबह पूरी तरह खाली कर दिया गया । कोई लड़ाई नहीं हुई । पिछले दिन शाम को बन्दूक़ों की कुछ आवाज़ सुनाई पड़ी थी, लेकिन मुझे कोई आदमी ऐसा नहीं मिला जो पक्की तौर पर कह सके कि उसने चीनी सिपाहियों को देखा था । सब लोग एक आम आदेश की बात करते हैं, लेकिन कोई यह नहीं बताता कि ख़ाली करने का फ़ैसला किसने किया और क्यों ?

२ दिरांग, विभागीय हेडक्वाटर को भी लगभग उसी वक़्त ख़ाली कर दिया गया । वहाँ कुछ अनुल्लेखनीय छिटपुट लड़ाई हुई, लेकिन इसका भी कोई प्रमाण नहीं है । भगदड़ में पलटन ने टैंकों को बिगाड़ दिया होगा ।

३. मेरा ख़याल है कि सेला में भी कोई ख़ास लड़ाई नहीं हुई, लेकिन मैं शर्तिया नहीं कह सकता । यह बिलकुल साफ़ है कि पलटन लड़ने से बचती रही ।

४. सब लोग एक आम आदेश की बात करते हैं । कुछ इस ढंग का आदेश कि जब कोई जगह गिरने वाली लगे तो ख़ाली करो और साज़ सामान नष्ट करने लगो । यह आदेश किसने निकाला ? 'गिरने वाली लगे' का क्या अर्थ ? अर्थ कौन निर्धारित करे ? सब अपनी ज़िम्मेदारी झाड़ डालते हैं । क्या हर मामले में फ़ैसला पूरे क्षेत्र का सेनाध्यक्ष करेगा या उसने आम हिदायत जारी कर रखी थी कि आस-पास कहीं चीनी सिपाही दिखाई पड़ जाएँ, या धड़ाके हों तो मान लिया जाए कि जगह गिरने ही वाली है । इन सभी सवालों की सफ़ाई होनी चाहिए ।

५. फ़ौजी कमान के यूँ पूरी तरह फिस हो जाने की जड़ में है: क. अफ़सर वर्ग की क़िस्म, ख. सरकारी नीति का रवैया। कुछ सम्माननीय अपवादों को छोड़ कर अफ़सर वर्ग कायर या दुर्बल साबित हुआ। प्लाटून अफ़सर तक हर अफ़सर के लिए कुर्सी वाला पाखाना ले जाने वाली जीप की बातें सुनाई पड़ीं। पड़ाव से मोर्चे तक का ख़र्च सात सौ रुपये। अंग्रेज़ और अमरीकी अफ़सरों की नक़ल में और भी ऐशआराम। इसके अतिरिक्त मध्यम-वर्ग, बल्कि उच्च मध्यम-वर्ग के लोग शानदार पेशे के लिए पलटन में भर गये हैं, इस आशा और विश्वास में कि लड़ाई नहीं होगी। मेरा सुझाव है: १. पचहत्तर फ़ीसदी अफ़सर नीचे से तरक़्क़ी दे कर बनाये जाएँ और बाक़ी पच्चीस फ़ीसदी सैनिक कालेजों के छात्रों में से; २. मोर्चे पर शान-शौक़त से रहने को कम से कम किया जाए।

६. सरकारी नेतृत्व का चरित्र सबसे अच्छी तरह प्रधानमन्त्री के रुख में ज़ाहिर हुआ है। अगस्त, सितम्बर '६२ बातचीत नहीं, यानी चीन से कोई ठोस बातचीत नहीं, जब तक लद्दाख समेत चीन के क़ब्ज़े का सारा इलाक़ा खाली नहीं होता; १२ अक्तूबर—चीनियों को खदेड़ दो का पलटन को आदेश अखबारों को बताया गया; १९ नवम्बर, —रोना रोना और आंसू बहाना, २१ नवम्बर युद्ध-विराम पर खुशी जो ज़ाहिर हो गयी, ८ सितम्बर वाले प्रस्ताव या उससे भी कम का पक्ष-समर्थन। यह नेतृत्व लुज लुज है; बातें युद्ध की, और पहली ही चोट खाने पर हथियार डाल देना। इस दुतरफ़ा चाल का असर पलटनी कमान पर भी ज़रूर पड़ा होगा।

७. एक रपट संलग्न।

तेजपुर, १८ मार्च, '६३

एक पत्रकार की अप्रकाशित रपट

समाजवादी नेता राममनोहर लोहिया पिछले तीन दिन नेफ़ा (जिसे वे उर्वसीअम् कहते हैं) के कामेंग क्षेत्र के कुछ हिस्सों का दौरा करने के बाद कल रात बमदिला और दिरांग हो कर वापस आये। प्रदेश के समाजवादी नेता श्री किरण बेजबरुआ, श्री गोलप बोरबोरा और प्रो. अजित शर्मा उनके साथ थे। इस बार उन्हें गिरफ़तार होने और आसाम के किसी हिस्से में छोड़ दिये जाने का अनुभव नहीं करना पड़ा। हाँ, देश के किसी विरोधी दल के वे पहले नेता हैं जिन्होंने अपने ही कार्यक्रम के अनुसार उर्वसीअम् का दौरा किया।

उर्वसीअम् के अफ़सर लोहिया और उनके साथियों को तेजपुर से सरकारी सवारी पर अपने साथ ले गये और उर्वसीअम् में प्रवेश करने के लिए उन्हें अनुमति नहीं लेनी पड़ी। उर्वसीअम् में जाने की इच्छा बताने पर सरकार ने झट से आवश्यक प्रबन्ध कर दिया।

चीनी अतिक्रमण और दो महीने से अधिक समय तक लगभग पूरे कामेंग क्षेत्र पर चीनी क़ब्ज़े के इतने दिनों बाद भी लोहिया ने उर्वसीअम् में जो कुछ देखा और जाना, उससे उन्हें दुःख हुआ।

कल रात पत्रकारों से बातें करते हुए लोहिया ने कहा—"निश्चय ही हम संख्या या हथियारों में कमज़ोर नहीं पड़े। कामेंग बाड़ी (तराई) से दिरांग जाते हुए मैंने बिगड़े हुए पाँच टैंक देखे। और भी ज़रूर रहे होंगे। चीनियों के पास बेशक स्वचालित हथियार थे, लेकिन हमारे सिपाहियों के पास बेहतर राइफ़लें थीं, और वे निशाने पर गोली चलाना सीखे हुए थे। सभी अन्दाज़ों के मुताबिक़ सेला, दिरांग और बमदिला में चीनी पलटन दस और तीस हज़ार के बीच थी, और हमारी फ़ौज इससे कुछ खास कम नहीं रही होगी, निश्चय ही बीस हज़ार से कम नहीं। इसके अलावा, हम अपनी ज़मीन पर लड़ रहे थे। हम नीतियों मे, अफ़सरी में, और मनोबल में कमज़ोर पड़े। सरकार के मन में दुविधा थी कि लड़े या न लड़े। कभी-कभी तो मुझे शक होने लगता है कि जैसी भी यह लड़ाई थी, चीनियो से मिल कर लड़ी गयी।

छिटपुट अपवादों को छोड़ कर अफ़सर वर्ग बिलकुल निकम्मा साबित हुआ है, शायद सरकारी ढुलमुलपने के कारण, लेकिन अपनी जान बचाए रखने की इच्छा के कारण भी। ऐसा लगता है, अफ़सर वर्ग का सबसे बड़ा लक्ष्य था भागो-भागो। सरकारी नेता और फ़ौजी अफ़सर चीनियों के सामने ऐसे ही भागे जैसे बिल्ली को देख कर चूहे। युद्ध-बन्दियों और हथियारों की वापसी के लिए जो हिन्दुस्तानी दल गया था, इससे एक चीनी ने, मुझे लगता है ठीक ही कहा था कि 'तुम्हारे सिपाही बेहतर प्रशिक्षित थे और तुम्हारे पास हथियार भी ज्यादा अच्छे थे, लेकिन तुम्हारी पलटन में भगदड़ मच गयी'। चीनियों ने और भी एक फ़बती कसी, 'ये अमरीकी हथियार वापस ले जाओ। लेकिन तुम्हारे सिपाही इनका इस्तेमाल नहीं जानते थे। अपनी रक्षा के लिए तुम्हें इनकी ज़रूरत पड़ सकती है'।

लोहिया ने कहा, रक्षा कहने में चीनियों का ठीक क्या मतलब था सो साफ़ नहीं हुआ और रक्षा किससे ?

दिरांग गाँव के गाँव-बूढ़ा (मुखिया) सेन्गे सेरिंग से भी, जो अपने गाँव के मुख्य प्रवक्ता थे, लोहिया का परिचय कराया गया। जब लोहिया उनके घर पहुँचे, सेरिंग अपनी परम्परागत मक्की की शराब बना रहे थे। छत से एक चूहा शराब में गिर गया। सेरिंग ने उसे पकड़ कर ऊपर की मंज़िल के अपने कमरे से नीचे सड़क पर फेंक दिया। वे एक धर्मनिष्ठ बौद्ध मोनपा हैं, इसलिए, लोहिया ने कहा कि क्या कर रहे हो, चूहा मर जाएगा। सेरिंग ने कहा कि वह मरेगा नहीं। लेकिन चूहा गाँव के शरारती लड़कों के हाथ पड़ गया। आखिरकार वह मर गया।

इसे देख कर लोहिया ने सेरिंग से पूछा कि उन्होंने और उनके आदमियों ने चूहे की तरह चीनियों को क्यों नहीं निकाल फेंका। इसके जवाब में गाँव-बूढ़े ने कहा कि उसके पास और उसके आदमियों के पास हथियार नहीं थे और अगर उनके पास बन्दूकें होतीं, तो वे निश्चय ही चीनियों के खिलाफ़ उनका इस्तेमाल करते। इस पर लोहिया ने कहा कि जब तक वे भारत सरकार के 'चूहे' को नहीं निकाल फेंकते, चीनियों को वे शायद नहीं निकाल सकते। इस साफ़ और खुली बोली से मुखिया को कुछ अचरज हुआ।

लोहिया ने आगे कहा कि उर्वसीअम् के अफ़सरों ने उन्हें बताया कि कामेंग के निवासी तिब्बत मे चीनी अत्याचारों के बारे में जानते थे और इसीलिए उन पर चीनियों का कोई असर नहीं पड़ा। लोहिया ने कहा कि इतना काफ़ी नहीं है।"

II

डिबरूगढ़, २० मार्च, '६३

यहाँ कुछ और सूचनाएँ दे रहा हूँ।

१. तेजपुर का हवाई अड्डा, जो वायु सेना के नियंत्रण में है, २० नवम्बर आधी रात को काम नहीं कर रहा था। ग़ैर-फ़ौजी चालकों को बिना हवाई अड्डे से निर्देश पाये अपने जहाज़ उतारने पड़े। लगता है, वायु सेना में भी भगदड़ मच गयी थी। उस समय चीनी तेजपुर से सौ मील पर थे और उन्होंने युद्ध विराम की घोषणा कर दी थी, या करने ही वाले थे।

२. १८ से २० तक मोहनबाड़ी, डिबरूगढ़ में हवाई जहाज़ से बड़ी संख्या में कुमुक पहुँचायी गयी। फ़ौजी कमान इतना किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गया था कि उसका कोई प्रभावकारी इस्तेमाल नहीं कर सका। कुछ लोग कहते हैं कि १८ के पहले ही वालोंग के गिरने के कारण किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गये। लड़ाई लड़ने का यह अजीब ढंग है। एक प्रासंगिक बात, कि डिबरूगढ़ के कुछ लोगों ने १८ को आधी रात मोहनबाड़ी में एक नल कूप खोदा, क्योंकि पलटन के पास पीने का पानी काफ़ी नहीं था। यह हाल था प्रशासन और पलटन के संगठन का।

३. मैंने सुन रखा था कि अंग्रेजों की लड़ाइयाँ ईटन और हैरो के खेल के मैदानों में जीती गयीं। वह सच भी हो सकता है या ग़लत भी लेकिन हिन्दुस्तानी लड़ाइयाँ हैदराबाद और मसूरी के स्टाफ़ कालिजों या खड़कवासला और देहरादून के सैनिक कालिजों में हारी गयीं। हैदराबाद का स्टाफ़ कालेज प्रत्येक छात्र पर ३,००० रुपये से अधिक खर्च करता है, और अधिकांश रक़म सार्वजनिक होती है। उसका छात्र किसी न किसी प्रकार का प्रशासक होता है। वह सीखता है टीमटाम से रहना और और खुले हाथ खर्च करना। ऐसा लगता है कि प्रशासन और पलटन के सभी कालिजो में यही सिद्धान्त चलता

है। इस तरह, अफ़सर पर चमकदार मुलम्मा चढ़ जाता है, टीम-टाम और सलीक़े वाला, जो कसौटी पर कसे जाने तक अधिकांश लोगों को धोखे में डाले रखता है और पहली चोट पर ही ढेर हो जाता है और, निस्संदेह अपनी टीम-टाम के लिए हर समय भ्रष्टाचार पर निर्भर रहता है।

४. भ्रष्टाचार का एक मामला मैं बताता हूँ, क्योंकि मुझे उसकी पूरी जानकारी है। हमारा एक आदमी, कफ़ील अहमद कैफ़ी, इस सम्बन्ध में सुरक्षा क़ानून के मातहत गिरफ़तार किया गया। दरभंगा में एक हवाई अड्डा बन रहा है। ११० रु. फ़ी हज़ार मन मिट्टी की खुदाई के दर पर सरकारी ठेका एक सार्वजनिक कार्पोरेशन को दिया गया है, जिसके सदर एक हारे हुए लोक सभा सदस्य हैं, जो, जहाँ तक मुझे याद है, केन्द्र में मंत्री या उप-मंत्री भी थे। कार्पोरेशन, दो या तीन बड़े ठेकेदारों को पचहत्तर रुपये देता है। बड़े ठेकेदार कई छोटे-छोटे ठेकेदारों को पचास रुपये देते हैं और फिर जा कर मजदूर को १५ रुपये से ले कर ४९ रुपये तक मिलते हैं। हर जगह आम तौर पर यही क़िस्सा है। 'टस्कर', जिसका नाम अब 'बार्डर रोड टास्क फ़ोर्स' (सीमान्त सड़क कार्यदल) है, का हाल शायद और भी बुरा था। इसके अफ़सरों की शानशौक़त के दिखावे से ही शुरू में लोगो का ध्यान इसकी तरफ़ खिचा था, और मैं नहीं जानता कि अब किस प्रकार की सरकारी जाँच हो रही है। सैनिक इंजिनिरी सेवा, या जो भी उसका नाम हो, सीधे पलटनी संगठन है, वह भी प्रभावित था। सारा सिलसिला सड़न और बदबू से भरा है, जिसकी जड़ में सीधे वह आदमी है जो इस सबका नेता है, क्योंकि उसका सिद्धान्त विश्व-यारी का और अमरीकियों व पश्चिमी यूरोप वालों और अब रूसियो के भी जीवनस्तर की नक़ल करने का है।

III

डिब्रूगढ़, २३ मार्च, '६३

पिछली एक बात कृपया दुरुस्त कर लीजिए। मैं यह बताना भूल गया था कि हैदराबाद स्टाफ़ कालिज हर छात्र पर ३,०००) कितने अरसे में खर्च करता है; खर्चा एक महीने का है। छात्र भी ५००) से हज़ार रुपये तक खर्च करता है। कलक्टर या विभाग-सचिव जैसे ओहदे पर बहुत दिनों तक उसकी आमदनी, यानी ईमानदारी की आमदनी, १,५००) या २,०००) महीना से ज्यादा होने की सम्भावना नहीं है।

मैं यहाँ कुछ इत्तला दे रहा हूँ जिससे स्पष्ट होगा कि प्रधान मंत्री ने विशेषाधिकार का उल्लंघन किया है। जहाँ तक हो सका, मैंने इस इत्तला की जाँच कर ली है। प्रधान मंत्री ने सदन को झूठी इत्तला दी। इसमें कुछ तो काफ़ी पहले की हैं। लेकिन मैं समझता हूँ, कोई भी सदस्य विपरीत इत्तल्ला पाने के बाद, बेशक सबसे पहले अवसर पर, कभी भी उसे उठा सकता है।

१. तेजपुर का कलक्टर भागते वक़्त छुट्टी पर नहीं था। प्रधान मंत्री ने सदन को इस बारे में ग़लत बताया। वास्तव में, वह ड्यूटी पर था। शिलांग, यानी, प्रदेश सरकार ने फ़ैसला किया कि वह काम के पूरी तरह लायक़ नहीं, और उसकी जगह लेने को दूसरा अफ़सर भेजा। यह अफ़सर १८ नवम्बर को, आधी रात के बाद तेजपुर पहुँचा और १९ की सुबह मुशकिल से कलक्टर का पता लगा सका। अतः कलक्टर कार्यमुक्त हो गया और, जहाँ तक मेरी इत्तला है, अतिरिक्त कलक्टर बना दिया गया। अतिरिक्त कलक्टर या कार्यमुक्त अफ़सर के रूप में वह अपनी पत्नी और बच्चों को छोड़ने हवाई अड्डे पर गया। चूँकि हवाई जहाज़ डमडम के बजाय, जैसा कि उसने सोचा था, बारिकपुर जा रहा था, उसने उसी वक़्त तय किया कि वह अपने परिवार के साथ कलकत्ता जा कर उन्हें सुरक्षित छोड़ आए। उसका इरादा फ़ौरन हवाई जहाज़ से ही लौटने का था। यह सम्भव है, किन्तु असंगत, कि उसने शहर छोड़ने की लिखित के बजाय शायद ज़बानी इजाज़त ऊपर से ले ली हो। बचाने-छिपाने की बड़ी कोशिश चल रही है। ख़ाली करो के उस कुख्यात परिपत्र के कारण असली और बड़ा दोष या तो रक्षा मंत्री का है, जो उस समय श्री जवाहरलाल नेहरू थे, या क्षेत्र के सेनाध्यक्ष जनरल कौल का। सचाई को उघाड़ना चाहिए। कलक्टर पर, और सैनिक अदालत में सेनाध्यक्ष पर मुक़दमा चलाने की ज़ोरों से माँग होनी चाहिए। निःसन्देह, प्रधान मंत्री को भी झूठी इत्तला देने के लिए पकड़ना चाहिए।

२. जैसा कि प्रधान मंत्री ने संसद को बताया, लोंगजू दो या तीन वर्ग मील का बेआबाद इलाक़ा नहीं है। वहाँ आबादी है। सिर्फ़ घाटी ही दस वर्ग मील से अधिक है और, आस-पास की पहाड़ियों और अन्य संस्थानों को शामिल कर लें, जिन्हें हमें ख़ाली करना पड़ा, तो वह इलाक़ा आसानी से सैकड़ों वर्ग मील का बन जाता है। आबादी भी सैकड़ों की है। यहाँ के निवासी आदि और मिशमी लोगों की एक शाखा है, जैसे वास्तव में, हमारी सीमा के साथ लगा तिब्बत का जो अधिकांश इलाक़ा है, वह हमारी सीमा के लगातार कुतरे जाने का फल है। मुझे और भी इत्तला मिली है, कि लोंगजू क्षेत्र में पारी, पाटे और लालिंग नाम के और भी गाँव हैं, लेकिन इसकी पूरी जाँच मैं नहीं कर सका। मैं समझता हूँ, उर्वसीअम् के सबसे सुन्दर स्थलों में लोंगजू घाटी तो निश्चय ही है, माचुका वा टूटिंग की घाटियाँ भी हैं, जो सभी, अगर मुझे ग़लत नहीं बताया गया तो, डिबोंग घाटी के हिस्से हैं या उसकी शृंखला। जो राज्य अपने क्षेत्र की विरासत को नष्ट करता है, वह अधम है, दुष्ट है।

IV

डिबरूगढ़, २३ मार्च, '६३

मैंने सोचा था कि आज़ादी के बाद युद्ध काल में भगदड़ का सवाल नहीं रहेगा। उर्वसीअम् और आसाम ने साबित किया है कि भगदड़ का महारोग हमें अभी लगा रहेगा, जब तक ख़ाली करो का अर्थ सरकार और जनता ठीक तरह से नहीं समझ जाएगी।

कब कोई जगह खाली करनी चाहिए ? कौन-कौन हटने चाहिए ? अभी तक यही अर्थ समझा गया है कि जब पलटन हटे, तब हरएक को हट जाना चाहिए। बड़े-बड़े अफ़सरों के दिमाग़ में यही बात है। मुझे प्रशासन में एक आदमी ऐसा नहीं मिला जिसने सोचा हो कि पलटन हटाने के बाद भी उसे अपने इलाक़े में डटे रहना चाहिए। फिर, जनता की भगदड़ की कौन कहे ?

पूरे कमिंग क्षेत्र में जहाँ बमदिला और दिरांग गिरे ज़बरदस्त भगदड़ मची। सड़क बनाने वाले हज़ारों मजदूरों की, जिन्हें पहले टस्कर कहते थे और अब बोर्ड रोड टास्क फोर्स, भगदड़ मची। ये एक तरह की पलटनी जमात हैं। इनके अफ़सर सैनिक अफ़सर हैं। किसके हुक्म से भगे। इनके भागने से सड़कों का हाल और जनता तथा प्रशासन का मन बिगड़ा और ज़्यादा बिगड़ा, क्योंकि बिगड़ा पहले से रहा होगा। बड़े-बड़े प्रशासन के अफ़सर कहते हैं कि हम आखिर में हटे। इसका कोई मतलब नहीं। असली सवाल है, हटना ज़रूरी था या नहीं। क्योकि मेरा अनुमान है कि चाहे ये आखिर में हटे या पहले, इनके दिमाग़ में हटने की बात जोरों से रही। बड़े लोग ख़ूब भागे। हवाई जहाज़ से, मोटर से। तेल कम्पनी के साहब, चाय खेतों के साहब। लड़ाई लड़ी जा रही थी, या भगदड़ का इन्तजाम हो रहा था।

यह ज़रूरी है कि खाली करो का ठीक अर्थ सेना, सरकार और जनता समझे। इस पर ख़ूब बहस चलनी चाहिए। सुना है कि एक साधारण आदेश था कि जब कोई जगह गिरने वाली हो, उसे ख़ाली करो। आदेश बिलकुल गँवार था। पलटन के लिए खाली करने का एक ही नियम होना चाहिए। अब तो और जब भारतीय सेना के बारे में आम ख़याल हो गया है कि यह भग्गू है। किसी जगह को तभी ख़ाली किया जाए जब उसके काबू में रखने की कोई सम्भावना न बचे। जब नयी पलटनों की वहाँ आने की सम्भावना न रहे और जब प्रायः सभी सिपाहियों के खत्म होने की बात आ लगे। आखिर लड़ने गये हैं या जान बचाने गये हैं। सेला, बमदिला और दिरांग से पलटन भागी, विशुद्ध रूप से भागी। वालोंग में कहा जाता है कि लड़ाई हुई, मेरी राय में अन्धों में काने वाली बात हुई। क्योंकि अठारह, उन्नीस नवम्बर को डिबरूगढ़ हज़ारों नयी पलटन आयी, लेकिन बेकार। क्योकि वालोंग वाले कबल जब तक दम तोड़ चुके थे। बड़े हास्यास्पद तर्क दिये जाते हैं। वालोंग का एक रास्ता बर्फ़ हो कर चीन वालों की तरफ़ था। उस रास्ते पर भारतीय अफ़सर ने जाने से इंकार किया। इसलिए उसने सोचा कि चीनी कैसे जा सकते हैं उसी रास्ते पर। सेना के अफ़सर बहुत वाहियात हैं, लेकिन यह दूसरा सवाल है। उनके पक्ष में केवल यही बात कही जा सकती है कि सरकारी नीति इतनी दुविधा वाली और ढुलमुल थी और केवल बचाव, हमला नहीं, कि पहला दोष सरकार का और दूसरा उसका। ख़ैर, इस वक़्त सवाल खाली करो और भगदड़ के भेद का है। जैसा भी रद्दी आदेश था, उसका मतलब और भी रद्दी निकाला गया कोई जगह गिरने वाली हो, का

अर्थ क़रीब-क़रीब ऐसा समझ लिया गया कि कहीं चीनी सिपाही आते दीख जाएँ या धड़ाका सुनें या अफ़वाहें आएँ।

इतनी सेना की बात रही। प्रशासन का हटना बिलकुल जरूरी नहीं, जब विजेता आए तब उस जगह के कलक्टर कमिश्नर वहीं साधारण तौर पर रहने चाहिए। यही दुनिया का नियम है। जनता पर ज़ुल्म कम होता है। युद्ध में भी दुश्मन समझता है कि सामने वाले में अनुशासन है। एक अफ़वाह उड़ी है कि तवांग के सुपरडेंट को चीनियों ने युद्ध समाप्ति के बाद मारा डाला। हो सकता है कि यह अफ़वाह उड़ायी गयी है, जान बचाने के लिए। नहीं तो, अन्तर्राष्ट्रीय क़ानून के ऐसे अपराधों को ख़ूब खोलना चाहिए और जितने बढ़ें उतना ही चीन गिरेगा।

बड़े लोगों को किसी भी जगह से युद्ध शुरू होने के बाद नहीं हटने देना चाहिए। उनकी औरतें, बच्चे ज़रूर, जैसे औरों के। चाय खेतों और तेल साहबों को भी जनता के साथ रह कर त्याग और तकलीफ़ की समता और संकल्प की दृढता कायम करनी चाहिए, युद्ध में ऐसा ही होता है। हटें कौन? केवल औरतें और बच्चे। वे ही जो हटना चाहें। इस सम्बन्ध में एक भ्रान्ति बड़ी फैली है। चीनी सैनिक बलात्कार करेंगे। ज़रूरी नहीं। लेकिन कर भी सकते हैं और ज्यादा तायदाद में। ऐसे समय पुराने ऋषियों में से एक की बात याद करना ज़रूरी है। हर महीने में एक बार औरत कन्या या कुँआरी हो जाती है। योनि के बारे में भारतीय मन आज बिलकुल गंदा हो चुका है। उसे पवित्र रखने का मतलब उसे इतना गंदा बना दिया कि औरत एक अपाहिज वस्तु बन गयी। कहाँ तक भागेंगे। फिर तो सब जगह बलात्कार ही बलात्कार। बच्चों और औरतों के अलावा केवल जन-विरोध के नायकों और छापामारो को हटने का अधिकार होता है।

तेजपुर में, जहाँ से चीनी सेना सत्तर-अस्सी मील दूर थी, ऐसी भगदड़ मची कि बीस-पच्चीस हज़ार के केवल अढ़ाई सौ बचे। पिछले ६ महीने महान राष्ट्रीय शरम के हैं। (अच्छी) बहस करके ही इस शरम को धो सकते हैं, इस मानी में कि आगे ऐसी शरम न घटे।

मेरे मन में विषाद और ग्लानि है। अपने ऊपर भी। लेकिन प्रधान मंत्री के मन में नहीं। प्रधान मंत्री को किसी तरह का पछतावा नहीं। हमेशा सफ़ाई देते हैं, हार को जीत बताते हैं। कोई कुछ कहे उस पर चढ़ बैठते हैं। तनिक लज्जा, विषाद या पछतावा नहीं है। ग़लतियों को दूर करने का पहला पग पछतावा है।

अगर आप इस बहस को चला सकें, केवल एक बार ही नहीं, बड़ा अच्छा हो।

मैं ऐसा ही पत्र 'चौखम्भा' को भेज रहा हूँ। चाहें, पत्र मुरहरि को दिखा दें या नकल करा देवें।

पुनश्च:—वलांग के लिए कहा जाएगा कि चीनी आक्रामकों की तायदाद दस हज़ार या उससे ज़्यादा थी और अपने सैनिकों की चार हज़ार या उससे कम। ज़रूरी नहीं ये आँकड़े सही हों। और सही हों भी तो चार हज़ार दस हज़ार के सामने अच्छा डट सकते हैं, कभी-कभी महीनों।

बमदिला और दिरांग का प्रशासन सत्रह नवम्बर की रात हट चुका था, कुछ अफ़सर कहते हैं, अठारह के गजर दम। तेजो वग़ैरह भी, जहाँ कभी कोई चीनी सैनिक नहीं आया और जहाँ से चीनी कम-से कम आठ दस दिन का रास्ता दूर थे, उसी समय। ये जगहें, बमदिला और वालांग, प्रधान मंत्री बताते हैं, अठारह को गिरीं। गिरें तब जब लड़ें। यहाँ तय करना मुशकिल है कि कब गिरी, सत्रह को हम भगे या अठारह जब चीनी घुसे।

कुछ निर्विवाद सुझाव

बड़ी नीतियों के मामलों में मैं चर्चा तो करता ही रहूँगा किन्तु फ़िलवक़्त मैं कुछ छोटे और निर्विवाद सुझाव देना चाहता हूँ।

१. शेष हिन्दुस्तान का कोई गाँव अथवा शहर का वार्ड प्रस्ताव द्वारा उर्वसीअम् में किसी गाँव से भाईचारे का सम्बन्ध स्थापित करने का निश्चय करे—इसका मतलब होगा पारस्परिक आवागमन और अन्य सहायता व भेंट देना। भाईचारे का सम्बन्ध स्थापित करने वाला गाँव या वार्ड हिन्दुस्तान के किसी न किसी राजनीतिक स्वरूप वाला होगा, इसलिए, उर्वसीअम् के लोगों का, सरकार के फीके स्तर के वर्तमान सम्पर्क के बजाय, हिन्दुस्तान में अपने भाई-बहनों के साथ बहु-विध सम्बन्ध बन सकेगा।

२. उर्वसीअम् मे प्रशासन के आकार को छोटा और कम खर्चीला रखना चाहिए। मैं माने लेता हूँ कि इसके बारे मे दो सम्भव दृष्टियाँ हो सकती है, एक प्रशासन की शक्ति और शानशौक़त से क़बायली को प्रभावित करना, और दो, जहाँ तक हो सके उसके साथ समरस हो जाना। मेरे विचार में, हमें इस जाति और वर्गविहीन समाज में समरस होने की दृष्टि अपनानी चाहिए।

३. उर्वसीअम् में चिन्तन प्रवृत्ति जगानी चाहिए। जिन क़बायलियों और उनके नेताओं ने मुझे यह कहते सुना कि मैं हिन्दुस्तान का सेवक हूँ किन्तु कांग्रेस सरकार का शत्रु, उनके लिए कम से कम शुरू में, यह विचार भौंचक्का कर देने वाला था। लेकिन सिर्फ़ वही तरीक़ा है। आखिर, चीन का प्रतिकार हम क्यों करें! इसका एक कारण यह भी तो है न कि एकान्तता और वैयक्तिकता के उचित अधिकार राज्य और संगठन द्वारा छीन न लिये जाएँ। एकान्तता का यह विश्वव्यापी कारण उतना ही महत्त्वपूर्ण है जितना कि भारतीयता का राष्ट्रीय कारण। इन दोनों कारणों के बारे में उर्वसीअम्-निवासी क़रीब-क़रीब कुछ भी नहीं जानते। बोलने और सोचने की आज़ादी चीन के विरुद्ध हमारा मुख्य अस्त्र है, किन्तु दुर्भाग्य से हिन्दुस्तान उर्वसीअम् में उनका उपयोग नहीं कर रहा है।

४. एक हज़ार मील लम्बे और ३० से ४० मील चौड़े उस हिमालयी क्षेत्र में फल खेती की बड़े पैमाने की योजना हालाँकि बड़ी नीति का मसला है मेरा सुझाव है कि खेती और कारखानों को बढ़ाने की छोटी योजनाएँ फ़ौरन चालू करनो चाहिए। जंगल जला कर उस पर खेती करने की प्रथा को जितना जल्दी हो सके खतम करना चाहिए, लाज़मी तौर से क़ानूनन नहीं, बल्कि दूसरे सचमुच बड़े आकर्षण दे कर।

५. सामाजिक सुधार के एक ज़बरदस्त कार्यक्रम पर अमल होना चाहिए। उदाहरण के लिए, अपातानी औरतों का दोनों नाकों का छेदना और बड़ा करना, वर्ना ये उतनी ही सुन्दर हैं जितनी कि और कोई, पहरावे और नहाने-धोने इत्यादि की आदतें भी बदलनी चाहिए। सरकार की हस्तक्षेप न करने की वर्तमान नीति में जितना हस्तक्षेप है, उससे बढ़ कर और कुछ नहीं हो सकता, क्योंकि, जबरन और क़ानून से, उसने उर्वसीअम् को एक गन्दे और थमे हुए तालाब में डाल रखा है—शेष हिन्दुस्तान से भी अधिक गन्दे और अधिक थमे हुए तालाब में।

मुझे अफ़सोस है कि मैं वालोंग, तवांग और टूटी नगर टास्किंग जैसे सीमा स्थलों पर न जा सका। हेलीकाप्टर इत्यादि के इस्तेमाल के बारे में कोई ऐसा रास्ता निकलना चाहिए कि जिससे सरकार के एजंट या दोस्त और मेरे जैसे विरोधी समान सुविधाएँ, कम से कम तुलनात्मक दृष्टि से, पा सकें।

७. आर्य और मंगोल का, और मंगोल-जैसे भी, मूर्खतापूर्ण वर्गीकरण नहीं होना चाहिए। वास्तविकता से उनका कोई सम्बन्ध नहीं है। पहले जो मैं तार्किक दृष्टि से जानता था, वह आज मैं प्रत्यक्ष प्रमाण के आधार पर कह सकता हूँ कि उर्वसीअम् हिन्दुस्तान का साकार और सांस्कृतिक अंग है।

८. खाली करने के विचार को अराष्ट्रीय घोषित करना चाहिए, क्योंकि हिन्दुस्तान अब भी और कई दिनों तक खाली करने और भाग खड़े होने का फ़र्क़ नहीं जान सकेगा। हर हालत मे किसी जगह से, अगर कोई जगह दुश्मन के हाथ लग जाए तो भी, नागरिक प्रशासकीय अमले को हटा लेने का कोई कारण नहीं है। जिन तत्त्वों को हटा लेना कुछ हद तक न्यायसंगत है वे हैं: १. और औरतें बच्चे, जो हटना चाहते हैं, २. जन प्रतिकार के संगठक और गुरीला के अलावा निःसन्देह सेना भी जो एकत्र हो कर और लड़ने के लिए कुछ असाधारण परिस्थितियों में पीछे हट सकती है।

—१९६३, मार्च २८; गौहाटी।

नोट: उपर्युक्त वक्तव्य, हालाँकि उसी समय समाचार एजंसियों को दिया गया था, किसी दैनिक समाचार पत्र ने उसका इस्तेमाल नहीं किया। इस आशा से कि कुछ तो उसका उपयोग करेंगे, उसे पुनः जारी किया जा रहा है।

नेपाल

हिन्दुस्तान और नेपाल

"यह सम्मेलन नेपाल राष्ट्रीय कांग्रेस के उत्तरदायी सरकार, नागरिक स्वाधीनता और सामाजिक उन्नति के लिए संघर्ष के साथ अपना तादात्म्य व्यक्त करता है। न सिर्फ़ इसलिए कि वह एशिया का एक खंड है, बल्कि ज़्यादा इसलिए कि वह पड़ोसी है जिसका कि इतिहास, अर्थ व्यवस्था, पहाड़ों और नदियों की प्रकृति और परम्परागत संस्कार हिन्दुस्तान के इतिहास इत्यादि से ग्रथित हैं, नेपाल स्वाभाविक रूप में हिन्दुस्तान की जनता के मर्म को छुएगा और हिन्दुस्तान नेपाल की जनता के।

यह सम्मेलन दुःख और क्रोध से नोट करता है कि नेपाल में एक ऐसा शासन बरक़रार है, जो अल्पतांत्रिक और श्रृंखलाबद्ध नौकरशाही है, जनता को एकत्र होने और संगठन करने की अनुमति नहीं देता, विचार-नियंत्रण करता है, प्राथमिक शालाएँ चलाना या सामूहिक पूजा को दंडनीय अपराध मानता है, उसकी खेती, कारखाने, शिक्षा और स्वास्थ्य को सुधारने या लगान और टैक्सों के भारी बोझ को हटाने और कम दाम पर खेतों की उपज की ज़बरदस्ती वसूली को बन्द करने के लिए कुछ नहीं करता।

यह सम्मेलन नेपाल राष्ट्रीय कांग्रेस के अध्यक्ष श्री विश्वेश्वर प्रसाद कोइराला, श्री धर्मनारायण प्रधान, श्री तनकप्रसाद उपाध्याय, तिलकराज साही और महेन्द्रनारायण निधि और नेपाल के ६०० से ऊपर बहादुर सपूतों का अभिवादन करता है, जो उस देश की विभिन्न जेलों में सड़ रहे हैं और जंजीरों से बँधे हैं या अन्य प्रकार के पाशविक व्यवहार से पीडित हैं।

यह सम्मेलन नेपाल के नर नारियों द्वारा दीर्घकालिक अत्याचार का सामना करने के साहस की सराहना करता है। नेपाल की हुकूमत से अपनी नीतियों को बदलने का आग्रह करते हुए, सोशलिस्ट पार्टी नेपाल राष्ट्रीय कांग्रेस को अपनी मदद का आश्वासन देती है और उसे विश्वास है कि हिन्दुस्तान की जनता भारत सरकार को और नेपाल सरकार को भी साफ़ बतला देगी कि इन दोनों देशों की स्वाधीनता और समृद्धि अविभाज्य है।"

—१९४९, मार्च ६-१०; पटना; सोशलिस्ट पार्टी के राष्ट्रीय सम्मेलन का प्रस्ताव।

नेपाल को न भूलें

तिब्बत में तो आग लगी हुई है पर हमें नेपाल को नहीं भुला देना चाहिए। कोई एक साल पहले, हमारी उत्तरी सीमाओं के पोला होने की तरफ़ ध्यान खींचा था। नेपाल की वर्तमान सरकार के भ्रष्टाचार व अत्याचार और सोवियत खेमे की उठा-पटक के बीच, सौभाग्य से नेपाल कांग्रेस की दीवार खड़ी है। किन्तु यह दीवार अब सफ़ील बन जानी चाहिए और राणा हुकूमत खतम होनी चाहिए। नेपाली स्वाधीनता के योद्धा अपने काम की तात्कालिकता की आवश्यकता को समझते हैं पर उन्हें गिरफ़तार किया जा रहा है और पीटा जा रहा है। विश्वेश्वर कोइराला के कथनानुसार श्रीमती सुशीला चालीसे समेत, औरत-क़ैदियों को नंगा किया जा रहा है और कोड़े लगाये जा रहे हैं तथा उस बहादुर योद्धा गणेशमान सिंह के बारे में तो और भी बुरी खबरें आयी हैं। अब और देर करना खतरनाक होगा, और जनतंत्र के लिए नेपाली संघर्ष में हिन्दुस्तानी जनता का अपना सक्रिय सहयोग देना चाहिए, और मैं अतलांतिक खेमे को चेतावनी देता हूँ कि नेपाल में राणा हुकूमत को किसी तरह का बढ़ावा देना उतना ही गर्हित और घातक होगा जितना कि वैसा ही और कोई काम।

—१९५०, नवम्बर।

नेपाल का जन आन्दोलन और सोशलिस्ट पार्टी

नेपाल ही ऐसा स्थान है जहाँ शासन के समस्त पद पैतृक होते हैं। कर्नल का लड़का, जन्म लेते ही, कर्नल बन जाता है, जबकि ६० साल तक योग्यतापूर्वक कार्य करने वाला सिपाही, सिपाही ही रहता है। नेपाल का राजा नाम-मात्र के लिए होता है। सारा शासन राणाओं के अधीन है, जो नेपाल के प्रमुख लुटेरे हैं।

नेपाल की जनता संसार में सबसे अधिक दुःखी है। नागरिक अधिकार नाम की कोई चीज वहाँ नहीं है। संगठन करना राज्य में सबसे बड़ा अपराध माना जाता है। फिर भी, विगत ४ वर्षों में साहस के साथ नेपाल कांग्रेस ने जनता को संगठित किया है और इसी का फल है कि आज निरंकुश शासन के खिलाफ़ क्रान्तिकारी सेनाएँ अभियान कर रही हैं।

कुछ जिम्मेदार लोग कह रहे हैं कि यह नेपाल का आन्तरिक प्रश्न है। मैं ऐसे लोगों को हिन्दुस्तान के लिए निहायत ग़लत आदमी मानता हूँ। अगर नेपाल की जनता सुखी तथा संतुष्ट हो और वहाँ जनतांत्रिक शासन हो, तो निकट की दूसरी शक्तियाँ नेपाल की ओर सिर नहीं उठा सकतीं। यदि हालत इसके विपरीत रही, तो अगले कुछ सालों में वहाँ या तो सोवियत गुट या अतलांतिक गुट बिना अपना जाल फैलाये नहीं रहेगा।

आज हिन्दुस्तान में भी राणाशाही काम कर रही है। अभी बंगाल के गवर्नर साहब दार्जिलिंग तशरीफ़ ले गये तो उनकी कार भी हवाई जहाज से दार्जिलिंग भेजी गयी। इसी प्रकार, हमारे राजदूत अंकारा से काहिरा गये और उनकी भी मोटर जहाज तथा रेल का सफ़र करते हुए काहिरा पहुँची। ठीक राणाओं के जैसे कार्य हैं ये। गुस्सा आता है प्रधान और उपप्रधान मंत्री पर जिन्होंने राणा-मिज़ाज के लोगों की नियुक्तियाँ की हैं। सरे आम उन्हें कोड़े लगाये जाएँ। यह खुश होने की बात नहीं है। चूँकि मैं कमजोर हूँ, इसलिए ऐसा सोचता हूँ। यदि शक्तिशाली होता तो कुछ दूसरी ही तरह सोचता।

सोशलिस्ट पार्टी नेपाली जनता के संगठन में दिलचस्पी लेती आयी है और इस अवसर पर भी जन सेनाओं की सहायता करने में वह हिचकेगी नहीं, चाहे भारत सरकार का रुख जैसा भी हो। आम जनता को भी दिलचस्पी लेनी चाहिए, क्योंकि ऐसा करना नेपाल तथा भारत दोनों ही के हित में होगा।

—१९५०, नवम्बर १९; कानपुर; भाषण।

बेविन को तार

"सोशलिस्ट पार्टी की परराष्ट्र समिति के अध्यक्ष राममनोहर लोहिया ने ब्रिटेन के विदेश मंत्री श्री बेविन को समुद्री तार भेज कर अनुरोध किया है कि ब्रिटिश सरकार काठमाण्डू की निरंकुश राणाशाही को मान्यता न दे और नेपाल की १ करोड़ जनता को लोकतांत्रिक शासन की स्थापना में मदद करे। डा० लोहिया ने नेपाल कांग्रेस से वार्ता चलाने की अपील करते हुए तार मे कहा है कि वर्तमान राणाओं और कम्युनिस्ट नेपाल के बीच नेपाल कांग्रेस ही एकमात्र मजबूत दीवार है। राणाशाही को मान्यता देने पर नेपाल में विदेशी शक्तियाँ घुसने का प्रयास करेंगी और तिब्बत पर आक्रमण की आवृत्ति वहाँ भी होगी।"

—१९५०, दिसम्बर ४ के 'संघर्ष' से।

जनतंत्र बनाम अत्याचार

"सोशलिस्ट पार्टी की राष्ट्रीय समिति नेपाल में अपने भाइयों का अभिवादन करती है, जो कि इतनी बहादुरी से दुनिया में ऐसे बेमिसाल अत्याचार के विरुद्ध जनतंत्र को स्थापित करने में सचेष्ट हैं। ऐसे समय पर जब कि दुनिया का मन अतलांतिक और सोवियत सेनाओं से आक्रान्त है और पागलपन इतना बढ़ गया है कि मुक्ति और विजय के बीच रेखा खींचना कठिन हो गया है, नेपाल लोकशक्ति और तीसरे खेमे का इतना शक्तिशाली साक्षी बना और यह दिखला दिया कि अत्यन्त प्रतिकूल अवस्था में भी जनता अपनी आज़ादी हासिल करने के लिए क्या कर सकती है।

राणा हुकूमत का शक्तिस्रोत नेपाल का राजा है और किसी चुनाव द्वारा उसे समर्थन अथवा स्वीकृति नहीं मिली। उसके अन्तर्गत प्रधान मंत्री और जनरल भी पुश्तैनी होते हैं। इसीलिए उसकी कोई वैधानिक मान्यता नहीं रह जाती। काठमांडू के लुटेरों की मान्यता जारी रखना न भारत सरकार के लिए और न ही ब्रिटेन की समाजवादी सरकार के लिए शोभा देता है क्योंकि इस तरह की मान्यता से लुटेरों को नेपाल के एक करोड़ लोगों को ग़ुलाम बनाये रखने में और जनतांत्रिक हुकूमत के उसके प्रयास को जेल और रक्तपात करके कुचलने में सहायता मिलती है। यह मानते हुए कि जनतांत्रिक ढंग से समाजवाद की ओर अग्रसर होना ही आक्रमण और विदेशी शासन से रक्षा का एकमात्र मार्ग है और कि, राणाओं के अत्याचारी राज में, जितना कि सोवियत खेमा उतना ही अतलांतिक खेमा नेपाल में घुस पड़ेगा, राष्ट्रीय समिति भारत और ब्रिटेन की सरकारों से आग्रह करती है कि वह काठमांडू के अनधिकारियों की मान्यता हटा ले और नेपाल कांग्रेस के नेताओं से बातचीत शुरू करे।

राष्ट्रीय समिति व्यग्रतापूर्वक आशा करती है कि नेपाल कांग्रेस अपनी क्रान्ति के संदेश को हर घर-झोंपड़ी में पहुँचाएगी ताकि अनधिकारियों की हुकूमत खतम हो जाए और जनशक्ति की समितियाँ निर्मित हो सकें और वह सामन्तवाद और दासता के सभी

अवशेष खतम करेगी, जमीन का पुनर्वितरण शुरू करेगी और गांवो में आर्थिक और राजनीतिक सत्ता का वितरण करके जनता की हुकूमत स्थापित करेगी। इस काल में उसे हिन्दुस्तान की सोशलिस्ट पार्टी और आमतौर पर हिन्दुस्तान की जनता की सहायता मिलेगी।"

—१९५०, नवम्बर २२; सोशलिस्ट पार्टी की राष्ट्रीय समिति का प्रस्ताव।

नेपाल कांग्रेस का कार्यक्रम

नेपाल के जनतंत्रियों और अनधिकारियों के बीच संघर्ष एक ऐसे निर्णायक मोड़ पर पहुँच गया है जबकि साहसिक छलांग से नेपाल की क्रांति विश्व इतिहास के अन्तरंग में चली जाएगी, वरना जल्दबाजी में समाधान कर लेने से एशियाई क्रान्तियों के समझौते और हताशा की परम्परा की पुनरावृत्ति होगी।

दिन पर दिन नेपाल के जनतंत्री शक्तिशाली होते जा रहे हैं। नेपाल कांग्रेस द्वारा बीरगंज के अद्भुत क़ब्ज़े और बाद में उसे वहाँ से हटा दिये जाने से नेपाल की वास्तविक घटनाएँ धुंधली दिखाई पड रही है। पहाड़ों में जहाँ से बहादुर गुरखे रंगरूट किये जाते हैं, क्रांति नित्य फैल रही है, और अब मैदान और पहाड़ दोनों आजादी के महाघोष से गूंज रहे हैं। जब कभी जनतंत्रियों को पीछे हटना पड़ता है, वे दूसरी चौकी पर चले जाते हैं और ऐसे क्रान्ति की मशाल नये क्षेत्रो मे पहुँचती जाती है।

भारत सरकार को अनधिकारियों के विरुद्ध नेपाली जनता की सतत फैलती हुई और अपराजेय क्रान्ति को भंग करने का प्रयास नहीं करना चाहिए। काठमांडू के राणा कमज़ोर अत्याचारी हैं, क्योंकि वे न सिर्फ़ अनधिकारी हैं बल्कि वे सरकारी और फ़ौजी शक्ति का प्रभावकारी ढंग से उपयोग करने में भी असमर्थ हैं। हिन्दुस्तान अगर सहायता न करे, तो उनके खतम हो जाने में सन्देह नहीं रह जाता।

हिन्दुस्तान में और नेपाल में भी कुछ लोगों ने समझ रखा था कि जैसे नेपाली जनतंत्र के लिए हिन्दुस्तान की सरकार और सेनाएँ लड़ाई करेंगी। ज़्यादातर वह खयाल दूर हो गया है, हालांकि कुछ लोग अब भी हिन्दुस्तानी फ़ौज को मुक्तिदाता के रूप में देखना चाहते हैं। ऐसे लोग, अगर साम्राज्यवादी या कम्युनिस्ट नहीं हैं, तो नपुंसक हैं। चार साल तक हिन्दुस्तान की जनता ने या कम से कम उसके एक अंग ने नेपाल की जनता को अपने पसीने से मदद की है और अब अपने खून से भी कर रहे हैं। जो हो, यह समझने में ग़लती नहीं होनी चाहिए कि खुद नेपाल की जनता ही नेपाली जनतंत्र के लिए सघर्ष से मुख्यतः फ़ायदा उठाएगी और तकलीफ़ें सहेगी।

परन्तु भारत सरकार की नीतियों के एक अंग के कारण काठमांडू के अनधिकारियों के पक्ष में हस्तक्षेप हो रहा है। राणाओं के पास उनकी ज़रूरत के मुताबिक हथियार और गोला-बारूद तो है किन्तु उनके पास वफ़ादार सिपाही नहीं हैं; जनतंत्रियों के पास उनकी ज़रूरत के मुताबिक वफ़ादार सिपाही तो हैं पर उनके पास हथियार और गोला-बारूद नहीं है। नेपाल में उनके एकमात्र न्यायपूर्ण और, कुछ जगहों पर, प्रभावकारी सत्ता की हैसियत होने से उन्हें हिन्दुस्तान में हथियार ख़रीदने या ले जाने देना चाहिए। उन्हें इस अधिकार से वंचित करना न्याय और सदाचार के विपरीत होगा।

लेकिन नेपाल में संघर्ष सशस्त्र होने की बनिस्बत ज़्यादा राजनीतिक है, वैसे ही जैसे कि वह राजनय की बनिस्बत ज़्यादा हथियार का मामला है।

जिन बातों के लिए नेपाल कांग्रेस वचनबद्ध है उनकी ओर राजनीतिक छलांग लगाने मे उसे अब हिचकना नहीं चाहिए, चाहे वह कितनी ही असंगठित हो या उस पर फ़ौजी दबाव पड़े।

नेपाल कांग्रेस के अधिकार क्षेत्र में प्रत्येक गाँव को बालिग़ मताधिकार के आधार पर अपनी पंचायत चुन लेनी चाहिए। पचायत को, न सिर्फ़ प्रशासकीय सत्ता—देश की एकता और सुरक्षा वाली छोड़ कर—मिलनी चाहिए, बल्कि नौकरशाही को भी उसके अन्तर्गत करना चाहिए।

पाँच या दस गाँवों के समूह बालिग़ मताधिकार डालते वक़्त या अपनी पंचायतों की बैठक में नेपाल की आरज़ी और क्रान्तिकारी संसद् के लिए एक-एक प्रतिनिधि चुनें। ऐसी ससद् १५ दिन के अन्दर-अन्दर बन सकती है। यह ससद नेपाल की आकांक्षाओं का केन्द्र और एकत्र होने का बिन्दु बनेगी और आरज़ी हुकूमत और उसके निदेशक सिद्धान्तों को जन्म देगी।

ज़मीन के पुनर्वितरण की उद्घोषणा नाकाफ़ी है। शुरूआत तत्काल होनी चाहिए। क्रान्तिकारी संसद् ज़मीन का अधिकतम स्वामित्व बाँध सकती है। इस अधिकतम से ऊपर वाली ज़मीन को कुछ प्रवर्गों में वर्गीकृत किया जा सकता है जैसे कि खेतमजूरों और ग़रीब किसानों को भी उपयुक्त प्रवर्गों म करना चाहिए। इस तरह के प्रवर्गों की क़िस्त-योजना के आधार पर ज़मीन के पुनर्वितरण का काम तत्काल शुरू होना चाहिए।

मैं सिपाहियो और राजनीतिज्ञों से प्रार्थना करता हूँ कि वे अपनी फ़ौजी ज़िम्मेवारी को अच्छी तरह समझें या फिर आवश्यक संचार के अभाव में पंगु हो जाएँ। विकेन्द्रित प्रशासन, क्रान्तिकारी संसद् और क़िस्तों में ज़मीन के पुनर्वितरण की इस तीन-सूत्रीय नीति पर चलने का उन्हें एक बड़ा प्रयत्न करना चाहिए। आख़िर, ये उन्हीं के अपने फ़ैसले हैं। इस तीन सूत्रीय नीति से उन्हें शासन में एकता, प्रेरणा और समन्वय

प्राप्त होंगे जिसके लिए वे व्याकुल हैं। इस अवस्था में रुक-रुक कर और धीरे-धीरे काम करने से वे इतिहास में विदूषक बन जाएँगे।

अतलांतिक और सोवियत खेमे के बीच कर्णभेदी झगड़े में, नेपाली संघर्ष की फुसफुसाहट एक स्पष्ट और श्राव्य स्वर बन सकता है।

उत्तरदायी और विकेन्द्रित शासन के अर्थ में जनतंत्र को आर्थिक बराबरी के क्षेत्र में क्रान्तिकारी क़दम से सम्बद्ध करना चाहिए। मानवता के इतिहास में ऐसा प्रयास अब तक नहीं हुआ।

इससे सारे संसार में सहानुभूति की प्रतिध्वनि होगी। यह सही है कि नरमपंथियों अथवा कम्युनिस्टों के आश्रय में नेपाली क्रान्ति, जैसी भी वह है, अब तक दुनिया में बड़ी चर्चा का विषय बन गयी होती। हम संसार के सभी जनतंत्रियों और समाजवादियों से निवेदन करते हैं कि वे सभाएँ करें और जनतंत्र के लिए नेपाली आन्दोलन का अभिनन्दन करें; और, अमरीका, इंग्लिस्तान और फ्रांस के लोगों से निवेदन करते हैं कि वे काठमांडू के लुटेरों की मान्यता हटा लेने का अपनी सरकारों से आग्रह करें।

निश्चलता के तरीक़ों से स्थायित्व नहीं प्राप्त होता। साम्यवाद के भूत के डर की वजह से आगे चलने या प्रयोग करने से जो एशियाई दिमाग़ इनकार करता है वह दुष्ट है। नेपाली संघर्ष में कम्युनिस्टों की दुतरफ़ा चाल जो अब तक शुरू हो गयी है, उससे नेपाल की जनता को आगाह करते हुए, मैं नेपाल के जनतंत्रियों से आग्रह करूँगा कि अपने प्रयासों को तेज़ कर दें। जनतांत्रिक चैतन्य के परिणामस्वरूप जो भी गड़बड़ होगी, वह, लाज़मी तौर पर, आक्रमण या घुसपैठ के विरुद्ध नेपाल को दृढ बनाएगी।

—१९५१, जनवरी।

नेपाल में चालाकी अथवा साहस ?

नेपाल के राजनीतिज्ञों को होशियारी करने की कोशिश नहीं करनी चाहिए। उन्हें यह याद रखना चाहिए कि जेकोस्लोवाकिया वाली चतुराई से नहीं बल्कि युगोस्लाविया वाली बहादुरी से उनके जैसे देश अपनी आज़ादी की सुरक्षा कर सके। प्रधान मंत्री कोइराला और अन्य नेपाली नेता कहते है कि नेपाल समान रूप से चीन और हिन्दुस्तान के प्रभाव में रहा है। यह सही नहीं है। हिन्दुस्तान की आज़ादी की लड़ाई में अनेक नेपाली जेल गये और उसी तरह अनेक हिन्दुस्तानियों ने नेपाल के लिए तकलीफ़ें उठायीं। चीन के बारे में ऐसा क्यों नहीं हुआ ? यह साफ है कि भाषा, लिपि, संस्कृति, धर्म, शारीरिक स्वरूप इत्यादि के मामले में नेपाल हिन्दुस्तान का स्वजातीय है। वैसे वक्तव्यों से चीनी अपनी योजनाओं से विमुख नहीं होंगे और जब भी मौक़ा मिलेगा वे नेपाल पर कम्युनिस्ट सरकार थोपने की निःसन्देह कोशिश करेंगे। शायद वैसे वक्तव्यो से चीन के साथ नज़दीकी रिश्तो के लिए नेपालियों को तैयार किया जा सकता है। मुझे आशा है अब नेपाली नेता ऐसे लहजे में बात नहीं करेंगे।

विरोधी नेता श्री तनकप्रसाद उपाध्याय और डा० के० आई० सिंह से मैं अपील करता हूँ कि कोइराला सरकार को टँगड़ो मारने के लिए वे हिन्द-चीन सीमा प्रश्न का इस्तेमाल न करें। उन्हें याद रखना चाहिए कि कम्युनिस्ट नेता श्री अधिकारी चीन में हैं। तात्कालिक लाभ से इस वस्तुस्थिति से उनकी आँखें बन्द नहीं हो जानी चाहिए कि चीनियो के अन्तर्गत उन्हें श्री कोइराला के रास्ते पर चलना होगा। वहाँ पर ऐसी अनेक समस्याएँ अवश्य होंगी कि जिन पर नेपाली विरोधी लोग अपनी लड़ाई आधारित कर सकते हैं।

पिछले कई बरसों से नेपाल के बारे में मैंने कुछ नहीं कहा इसलिए कि राजाओं के विरुद्ध नेपाली विद्रोह के समय नेपाली नेता, सरकारी और विरोधी दोनों ही, मेरे साथ काम कर चुके थे जबकि अन्य हिन्दुस्तानी नेता या तो अलग रहे या फिर उन्होंने आन्दोलन

का विरोध किया। जिन आदर्शों के लिए हम सब लड़े थे उन्हें भुला दिया गया है —जनता की हुकूमत और बराबरी के आदर्श। हिन्दुस्तान भी नपुंसक और चालाक दीख पड़ने वाली नीति पर चल रहा है। दोनों मामलों में कारण एक ही है। नेपाल में, जैसे कि हिन्दुस्तान में, कुछ अंग्रेजी शिक्षित उच्च वर्ग के लोग देश पर राज कर रहे हैं। ९० प्रतिशत आम जनता—राय, गुरंग, दीवान, छत्री, लिम्बू इत्यादि—के राज के बजाय वह १० प्रतिशत उच्चवर्ग के नेपालियों की हुकूमत है। जब तक नेपाल की ग़रीब जनता देश की बाग-डोर अपने हाथ में नहीं लेती, नेपाल की सुरक्षा कठिन हो जाएगी।

—१९५९, दिसम्बर १८; प्रेस वार्ता।

तिब्बत

तिब्बत पर-चीनी आक्रमण

चीन ने तिब्बत पर आक्रमण कर दिया है। इसका एक ही मतलब होता है कि एक शिशु को मसल डालने के लिए राक्षस ने क़दम उठा लिया है। तिब्बत के वर्तमान शासक प्रतिक्रियावादी और अत्याचारी हों या न भी हों किन्तु उसके विदेश नियंत्रण से रहित होने में कोई सन्देह नहीं हो सकता। किसी देश की आन्तरिक स्थिति, जो कि दूसरे देश के स्थायित्व को सीधे नहीं प्रभावित करती, अगर आक्रमण के लिए न्यायसंगत हो सकती है, तो आज तो चीन तिब्बत में घुस पड़ा है किन्तु उसी तर्क पर किसी दिन अमरीका रूस में घुस सकता है और रूस हिन्दुस्तान में, और न जाने कहाँ जा कर इस तरह के विचार का अन्त होगा।

मैंने उत्तर और दक्षिण कोरिया के बीच किसी का पक्ष नहीं लिया था, ठीक इसलिए कि वह अतलांतिक और सोवियत खेमे के बीच सीधी लड़ाई थी। लेकिन तिब्बत किसी खेमे में नहीं है। तिब्बत पर आक्रमण को यह कहना कि वह ३० लाख लोगों को मुक्त करने का प्रयास है, भाषा का अर्थ ही मिटा देने के बराबर है और सारे मानवीय संसर्ग और बोध को खतम कर देना है। आज़ादी और गुलामी, वीरता और कायरता, निष्ठा और द्रोह, सत्य और असत्य, समानार्थक हो जाएँगे।

चीन की जनता के प्रति हमारी दोस्ती और आदर कभी नहीं कम होगा, किन्तु हमें अपनी धारणा व्यक्त कर देनी चाहिए कि इस आक्रमण और शिशु-हत्या का कलंक चीन की वर्तमान सरकार कभी नहीं धो सकेगी।

कोरिया में हार कर, सोवियत खेमा तिब्बत की जीत द्वारा अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाने की कोशिश कर रहा होगा और इसी से चीन के लिए और भी ज़रूरी हो गया है कि वह सोवियत खेमे की विदेश नीति से अपने को मुक्त रखे।

चीन का यह दावा कि वह तिब्बत में अपनी पश्चिमी सीमाओं को सुरक्षित करना चाहता है, सर्वथा दुष्ट है। तब फिर प्रत्येक राष्ट्र संसार भर में अपनी सीमाओं को

सुरक्षित करने की कोशिश करेगा। और, चीन की बनिस्बत हिन्दुस्तान के साथ तिब्बत के सम्बन्ध अधिक गहरे हैं, भाषा और व्यापार और संस्कृति के सम्बन्ध—हिन्दुस्तान और तिब्बत के बीच, विशेषतः पश्चिमी तिब्बत से, युद्धनीति सम्बन्धी सम्बन्धों का तो कहना ही क्या। तिब्बत में घुस कर चीन की वर्तमान सरकार ने न केवल अन्तर्राष्ट्रीय सदाचार की ही अवहेलना की है, बल्कि हिन्दुस्तान के हितों पर भी आघात किया है।

अगर चीन सरकार का रुख प्रभुता के किसी सर्वथा अप्रवर्ती किन्तु प्राविधिक और संदेहास्पद मुद्दे पर आधारित है, तो जनमतगणना के द्वारा तिब्बत की जनता की इच्छा मालूम की जा सकती है।

अच्छा होगा कि भारत सरकार चीन सरकार को अपनी फ़ौजें हटा लेने की सलाह दे और, दोनों के बीच सच्ची दोस्ती को दृष्टिगत रखते हुए, वह उस तरह की जनमत-गणना की व्यवस्था करने का प्रस्ताव रखे।

—१९५०, अक्तूबर।

हमला : एशिया और विश्व के विरुद्ध

"सोशलिस्ट पार्टी की राष्ट्रीय समिति चीन द्वारा तिब्बत के आक्रमण को ऐसा काम समझती है जो कि एशिया और दुनिया, तिब्बती जनता और हिन्दुस्तान के विरुद्ध है। क्योंकि विदेशी नियन्त्रण से तिब्बत की स्वाधीनता में संदेह रहा ही नहीं, और क्योंकि न नाम में और न ही वास्तविकता में वह अतलांतिक अथवा सोवियत खेमे में है, यह आक्रमण और भी ज्यादा निन्दनीय है। ८ लाख वर्ग मील के क्षेत्र पर आक्रमण को प्रभुता के अधिकार के आधार पर, जो कि उतना ही सदेहास्पद और अमान्य है जितना कि वह साम्राज्यशाही है, न्यायसंगत ठहराने का प्रयास एक ऐसा मज़ाक़ है जिसके बारे में कोई भी आधुनिक सरकार सोच तक नहीं सकती थी।

एकमात्र तिब्बत की जनता स्वतंत्र वोट या जनमतगणना द्वारा अपनी सरकार के स्वरूप अथवा बाहरी दुनिया के साथ साझे के बारे में फ़ैसला कर सकती है और भारत सरकार को चीनी सरकार पर ज़ोर डालना चाहिए कि वह इन शर्तों के मुताबिक़ तिब्बत के साथ फ़ैसला कर ले। परन्तु, सोशलिस्ट एशियाई देशों को उस ख़तरे से सचेत करना चाहती है जिसका इतना स्पष्ट प्रदर्शन तिब्बत में हुआ, जहाँ यथास्थितिवादी और प्रतिक्रियावादी तत्व हत्या और राज करने को उद्यत विस्तारवादी साम्यवाद से टकरा गये हैं और इस लड़ाई में उनकी हालत ख़राब हो गयी है। धार्मिक स्वाधींनता में हस्तक्षेप किये बिना, सोशलिस्ट पार्टी तिब्बत की जनता से आग्रह करती है कि वह घर में समाजवाद और बाहर तीसरे खेमे की नीति अपनाए। ऐसी नीति से तिब्बत की जनता को तुष्टि और शक्ति मिलेगी और अतलांतिक अथवा सोवियत खेमे की घुसपैठ असम्भव बन जाएगी।

हिन्दुस्तान और तिब्बत के ऐसे सम्बन्ध रहे हैं कि जिनकी तुलना में तिब्बत और चीन के बीच के सम्बन्ध अवश्य ही घनिष्ट नहीं हैं। इसीलिए, तिब्बत के भविष्य से हिन्दुस्तान की जनता चिन्तित होती है। हिन्दुस्तान की जनता से सोशलिस्ट पार्टी आग्रह

करती है कि वह तिब्बती जनता को अपनी स्वाधीनता क़ायम रखने में और समाजवाद और तीसरे खेमे की नीति बनाने में सहयोग दे।"

—१९५०, नवम्बर २२; नागपुर; सोशलिस्ट पार्टी की राष्ट्रीय समिति का प्रस्ताव।

तिब्बत पर प्रस्ताव

"सोशलिस्ट पार्टी के इस सम्मेलन की राय में तिब्बत सम्बन्धी भारत सरकार की नीति न केवल पंचशील के ढोल के खोखलेपन को प्रकट करती है, वरन उससे यह भी साफ़ हो जाता है कि श्री नेहरू की वैदेशिक नीति न न्याय पर आधारित है, न देशहित में है; और न विश्व में आज़ादी, लोकशाही और विश्व एकता को आगे बढ़ाने वाली।

भारत सरकार के माथे पर यह कलंक हमेशा लगा रहेगा कि ब्रिटिश साम्राज्यवाद से विरासत में मिले हुए तिब्बत में अपने अधिकार उसने, स्वेच्छा से, तिब्बत के लोगों और उनकी सरकार को न सौंप कर, एक अन्य साम्राज्यवादी शक्ति को सौंपा; वह भी उस समय, जब चीन की सेनाओं ने तिब्बत पर आक्रमण करके उस पर अधिकार कर लिया। आज जो लोग तिब्बत की स्वतंत्रता के बारे में बहुत शोर कर रहे हैं, नौ साल पहले तिब्बत की शिशुहत्या के समय में सभी लोग चुप रहे थे, क्योंकि उस समय आवाज़ उठाने पर श्री नेहरू की विदेश नीति का उन्हें बुनियादी तौर पर विरोध करना पड़ता।

तिब्बत मे चीन के प्रभुत्व का सैद्धान्तिक आधार उतना ही है, जितना तिब्बत में फ़ौजी टुकड़ियों या व्यापारिक चौकियाँ रखने के हिन्दुस्तान के अधिकार का था; अर्थात् सैन्य-शक्ति। वास्तव में 'प्रभुत्व' का सारा सिद्धान्त ही एक घृणित साम्राज्यवादी सिद्धान्त है। चीन और हिन्दुस्तान, दोनों के ही अधिकारों का अन्त होना चाहिए था। तिब्बत की स्वतंत्रता और तटस्थता के आधार पर तिब्बत, चीन और हिन्दुस्तान के बीच पारस्परिक सन्धि के द्वारा इस बात की सुरक्षा प्राप्त की जा सकती थी कि तीनों देशों में से किसी की भी भूमि का उपयोग अन्य दो के विरुद्ध न किया जा सके। इसके विपरीत, तिब्बत के भविष्य को चीनी सेना के हवाले करके हिन्दुस्तान की सरकार एक राष्ट्र की हत्या करने के पाप में भागीदार बनी है।

अन्य देशों के समान चीन के साथ भी हमें अच्छे-से-अच्छे कूटनीतिक सम्बन्ध, और अगर सम्भव हो तो मित्रता का सम्बन्ध भी रखना चाहिए। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि हम सचाई को छिपाएँ या बुराई के सामने चुप बैठे रहें।

यह सम्मेलन तिब्बतवासियों को विश्वास दिलाता है कि भारत सरकार की नीति चाहे जितनी भी पंगु हो अपनी राष्ट्रीयता की रक्षा करने के संघर्ष में उन्हें सारे भारत-वासियों की सहानुभूति और नैतिक समर्थन प्राप्त है।

सम्मेलन चीनी अधिकारियों और सेना द्वारा तिब्बत के राष्ट्रीय अस्तित्व के विनाश की चेष्टाओं की तीव्र निन्दा करता है और भारत सरकार से माँग करता है कि वह चीन को यह साफ़ तौर पर जतला दे कि तिब्बत की राष्ट्रीयता के हनन का अर्थ भारत और चीन के मैत्रीपूर्ण सम्बन्धो पर कुठाराघात होगा। सम्मेलन चाहता है कि एशिया के देश किसी बड़ी शक्ति के पिछलग्गू बनने अथवा बारी-बारी से शक्ति-गुटों की चाकरी करने की नीति का परित्याग करके आत्म निर्भर बनें।

सम्मेलन यह स्पष्ट कर देना चाहता है कि तिब्बत में लोकशाही पर आधारित जीवन और सरकार का विकास करने की ज़िम्मेदारी तिब्बत वासियों की ही है, किसी बाहरी एजेन्सी की नहीं। साथ ही, सम्मेलन भारत सरकार से माँग करता है कि तिब्बत से आने वालों को शरण देने में किसी प्रकार का भेदभाव न बरते। बिना ऊँच-नीच का भेद किये आज़ाद हिन्दुस्तान के द्वार हर उस व्यक्ति के लिए खुले रहने चाहिए जो किसी भी प्रकार के ज़ुल्म से बच कर इस देश की भूमि पर शरण लेना चाहे।"

—१९५९, अप्रैल २५-२८; **वाराणसी; समाजवादी दल के तृतीय राष्ट्रीय सम्मेलन का प्रस्ताव।**

तिब्बत पर चीन का दूसरा हमला

तिब्बती जनता पर चीनी हमले की दूसरी क़िस्त पर अधिकांश लोग जो आज रो-धो रहे हैं, वे, जहाँ तक मुझे याद पड़ता है, ९ साल पहले जब तिब्बत में शिशु-हत्या हुई थी चुप थे। उसी समय कुछ किया जाना चाहिए था, कुछ कहा जाना चाहिए था। परन्तु, इसका यह मतलब नहीं कि अब कुछ नहीं कहना चाहिए। लेकिन ऐसा कुछ कहते समय लोगों को अपनी कमज़ोरियाँ नहीं भुला देनी चाहिए; कहावत है, नाचने के पहले ही मोर अपने पैरों को देख ले तो अच्छा। विदेश नीति विषयक मतों में एक बुनियादी कमी यह है कि न्याय अथवा अन्याय का मसला जब उठता है, तब वे मत नहीं बनते, बल्कि राष्ट्रीय स्वार्थ, दल स्वार्थ या व्यक्तिगत स्वार्थ के वक़्ती हेतु के इर्दगिर्द बनते हैं। ९ साल पहले भारत सरकार के, और कुछ हद तक हिन्दुस्तानी जनता के भी, चीनी हुकूमत के साथ इतनी दोस्ती के ताल्लुक़ात थे कि हिन्दुस्तान में कोई भी दल अथवा नेता तिब्बती समस्या पर साहस से नहीं बोल पाया। स्थिति अब बदल गयी है। दोनों सरकारों के बीच शायद अब भी सतही सम्बन्ध बने हुए हैं, किन्तु पिछले साल-डेढ़ साल से अन्दर ही अन्दर खिचाव की खिचड़ी पक रही है। इसी कारण, उन पुरानी स्थितियों में जिन लोगों की ज़बान बन्द थी, अब उन्हीं लोगों के गले तिब्बती जनता की रक्षा में चिल्लाते-चिल्लाते बैठ गये हैं।

विदेश नीति के मामलों में हर कहीं लोकमत की हालत बनावटीपन के कारण बिगड़ जाती है, विशेषतः हिन्दुस्तान में, जहाँ देशी सरकार और ब्रिटिश शासक को यह तय करने का एकाधिकार है कि किस मसले पर—मसले से संबंधित समाचार और जानकारी के अत्यधिक प्रचार द्वारा—जनता का मन आन्दोलित होना चाहिए। जितनी जल्दी हिन्दुस्तान की जनता उन बनावटी सतहों के नीचे जा कर देखने की कोशिश करेगी, देश के लिए अच्छा होगा।

हिन्दुस्तान की विदेश नीति को तटस्थ कहा जाता है, और, एक मानी में, वह है, क्योंकि दोनों में किसी भी शक्ति-गुट की वह ग़ुलाम नहीं है किन्तु पारी-पारी से वह दोनों

की नौकर है। पिछले साल-डेढ़ साल में भारत सरकार की नीति पूंजीवादी जनतंत्र के खेमे और अमरीका की तरफ़ ज्यादा झुकी जैसे कि उससे ४–५ बरस पहले सोवियत गुट की तरफ़ उसका झुकाव था। परन्तु, यह गठजोड़ कभी भी स्थिर नहीं रहता, बल्कि दोनों पलड़ों को थोड़ा कभी इधर तो थोड़ा कभी उधर झुका दिया जाता है। इसी संदर्भ में तिब्बती मसले पर ग़ौर किया जा रहा है। किसी देश की विदेश नीति वस्तुनिष्ठ, तार्किक, ठोस, और, जहाँ तक हो सके, आदर्श होनी चाहिए। आज वह विषयनिष्ठ और भावुक है। अब इसमें क्या शक रह जाता है कि अगर हिन्दुस्तान के प्रधान या विदेश मंत्री कोई बंगाली वंशज होते, तो पाकिस्तान से झगड़े का चौखटा पूर्वी बंगाल के शरणार्थियों की समस्या से बनाया जाता; अगर वे तमिळ वंशज होते, तो श्री लंका में हिन्दुस्तानियों की समस्या हिन्दुस्तान की विदेश नीति का सबसे बड़ा एकमात्र मसला बन जाता; अब चूँकि वे काश्मीर वंशज हैं इसलिए काश्मीर के मसले के इर्द-गिर्द हिन्द-पाक झगड़ा तेज़ होता है, जो, परिणाम स्वरूप, हमारी विदेश नीति का सबसे बड़ा एकमात्र मसला बन गया है।

हर एक हिन्दुस्तानी को तिब्बत के लिए खास प्रेम है। एक ओर तो ऐसे कारण हैं जैसे मानसरोवर। मानसरोवर के नामोच्चारण में ही हिन्दुस्तानी की आत्मा विश्रान्त किन्तु विचित्र आनन्द से विभोर हो उठती है। दूसरी ओर, तिब्बत के बच्चों-जैसे और मासूम लोगों के लिए हममें असंवरणीय मोह है। इसमें लेशमात्र भी सन्देह नहीं है कि तिब्बत और विशेष रूप से उसका पश्चिमी भाग का, चीन की बनिस्बत कहीं ज्यादा हिन्दुस्तान से सांस्कृतिक, धार्मिक और भौगोलिक सम्बन्ध है। कई लोग शायद न जानते हों कि तिब्बती लिपि हिन्दुस्तानी लिपि का एक रूपान्तर है, और तिब्बती दृष्टिकोण ज्ञान और निर्मलता का एक अद्भुत मिश्रण है। सारनाथ में एक तिब्बती बौद्ध भिक्षुणी ने एक बार कहा था: "आदमी हर जगह बुरा होता है, किन्तु हिन्दुस्तान में कुछ कम और तिब्बत में कुछ ज्यादा, इसलिए, किसी न किसी बौद्ध उपदेशक और पंथ को तिब्बत जाना पड़ा।"

इसके बारे में दुबारा सोचने की जरूरत ही नहीं है कि दलाईलामा को हिन्दुस्तान में आश्रय दिया जाए या नहीं। अगर सरकार को कोई संशय है तो वह एक और शिशु-हत्या की अपराधी होगी। किसी भी स्वाभिमानी राष्ट्र को अन्य देशों के राजनीतिक पीडितों को आश्रय देना ही चाहिए।

दलाईलामा अथवा उन दूसरे लामा के प्रति हमारा कोई पक्षपात नहीं है। किसी और को भी कोई पक्षपात नहीं रखना चाहिए। आज जो इनके या उनके प्रति पक्षपात करते हैं वे या तो अमरीका या रूस के साथ शीत-युद्ध सम्बन्ध रखते हैं। तिब्बत और वहाँ के लामाओं के बारे में सोचने पर मन में एक स्वाभाविक रूमानी भाव जागृत होता है, किन्तु इस प्रकार की भावनाओं से लामाओ की धार्मिक स्वाधीनता की हमारी माँग मज़बूत होनी चाहिए न कि उनकी राजनीतिक सत्ता की।

लामाओं की राजनीतिक सत्ता को खतम करना चाहिए। यह कहा जाता है कि वह काम चीनी कर रहे हैं। लेकिन चीनी सरकार उस काम को संगीन की नोक पर कर रही है, और इस तरह तो वह लामा शासन से भी खराब साबित होगा। समझदार लोगों का काम तिब्बती लोगों को जागृत करना है ताकि लामाओं के प्रति उनके रुख में परिवर्तन हो और लामाओं का शासन समाप्त हो सके।

[तिब्बत पर चीनी हमला बर्बर काम है। किन्तु उसकी बुराइयाँ साम्यवाद में भी उतनी हैं जितनी कि पूंजीवाद में।] हंगरी में रूसी अतिक्रमण, तिब्बत में चीनी अतिक्रमण, मिस्र पर एंग्लो-फ्रेंच हमला—ये सब उसी बुराई से जनमे हैं। दोनों रक्तपिपासु राक्षस—साम्यवाद और पूंजीवाद—आदमी की छाती पर चढ़े हुए हैं और एक को दूसरे से बेहतर समझने की कोशिश करना आदमी की बेवक़ूफ़ी होगी। दुनिया की घटनाओं को जब अतलांतिक अथवा सोवियत चश्मे से देखें तो वे विकृत दीखेंगी। हिन्दुस्तान के तथाकथित तटस्थ चश्मे से भी साफ़ देखने मे रुकावट होती है। हम हमेशा अमरीका और रूस के बीच मेल-मिलाप की कामना रखते है कि आइज़नहावर और क्रुश्चेव एक-दूसरे को गले लगाएँ और भाई-सा व्यवहार करें, जो कि दरअसल मे वे हैं। अमरीका और रूस दोनों शक्तिशाली है—धन-दौलत मे शक्तिशाली और हथियारों में शक्तिशाली—और बाक़ी सभी देश किसी न किसी चीज़ के लिए उन पर निर्भर करते हैं। उसकी वजह से अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में सियारों और लोमड़ियों का कुनबा बढ़ता है। दुनिया के सभी राष्ट्र इन दोनों भीमकाय के आगे या तो सियार जैसा या लोमड़ी जैसा आचरण करते हैं। कुछ सियार इन दोनों शेरों में से किसी एक के साथ जुटे रहते हैं। लेकिन लोमड़ियाँ भी होती है जो सुविधानुसार अपने मालिकों को बदल लेती है। भारत सरकार और लोगों ने लोमड़ी के गुण ग्रहण कर लिये हैं।

हिन्दुस्तान की विदेश नीति के सम्बन्ध में एक ग़लतफ़हमी चली आ रही है और वह है श्री कृष्ण मेनन के बारे मे, जिन्हें एक लम्बे अरसे से कम्युनिस्ट और रूस समर्थक माना जाता है। जो हो, शुरू से वे इंग्लिस्तान के वफ़ादार रहे। समूचे संसार में इंग्लिस्तान के विदेश और फ़ौजी मंत्रालयों के एजेंटों का जाल बिछा हुआ है। उन्हें दूसरे सभी मामलों में खुली छूट है, सिवाय इसके कि वे ब्रिटिश साम्राज्य के प्रभाव को अक्षुण्ण बनाये रखने में सहयोग दें। कभी-कभी विदेश मंत्रालय द्वारा यह काम नहीं किया जाता बल्कि ब्रिटेन की बायें बाज़ू की पार्टियों के द्वारा किया जाता है। कभी-कभी ऐसा लगता है कि न सिर्फ़ श्री मेनन बल्कि उनसे भी बड़े लोग इस खींच-मुच या लचीली ब्रिटिश नीति से बँधे हुए हैं।

चीनी अतिक्रमण के बारे में एक और बात पर ध्यान देना चाहिए। चीन मे फ़ौलाद की पैदावार एक करोड़ टन पर पहुँच गयी है। चार-पाँच बरस बाद हिन्दुस्तान ६० लाख

टन के लक्ष्य पर पहुँचेगा। उस समय चीन एक करोड़ सत्तर लाख टन पैदा करेगा। भौतिक समृद्धि को हम सर्वोच्च महत्त्व नहीं देते; किन्तु दुनिया उसे किस दृष्टि से देखेगी? रूस के सारे पाप, यहाँ तक हंगरी में उसके पाप, स्पुतनिक की खोज से धुल सकते हैं। दुनिया के महान् विचारकों और महान् दार्शनिकों ने सोवियत हुकूमत की तकनीकी क्षमता के आगे अपना सर झुकाया। लोग शक्ति की उपासना करते हैं, चाहे वह कितनी ही क्रूर क्यों न हो। और कहीं के लोग जितना ऐसे करते हैं, उतना ही भारत सरकार और प्रसोपा करती है। फिर, चीन की फ़ौलाद की बढ़ती हुई पैदावार का अपना लाज़मी असर पड़ेगा। जब तक भारत सरकार और जनता सामाजिक-आर्थिक स्थितियों में क्रान्तिकारी परिवर्तन नहीं करती, वे चीनी साँप के दाँत नहीं उखाड़ सकते। हर चीज सोवियत-अमरीकी रिश्तों पर निर्भर करती है। अगर वे दोनों नजदीक नहीं आते तो तिब्बत सम्बन्धी तनाव बढ़ेगा। तिब्बतियों की मासूम, बच्चों-जैसी सूरत से पूँजीवादी संसार उत्तेजित होगा और कम्युनिस्ट क्रोधित होंगे। इससे बढ़ कर और कुछ न होगा। अगर गोरे हंगरी को ले कर युद्ध न छिड़ा, तो रंगीन तिब्बत को ले कर तो छिड़ेगा ही नहीं।

—१९५९, मई।

तिब्बत के शरणार्थी

"सोशलिस्ट पार्टी की राष्ट्रीय समिति की यह बैठक चाहती है कि तिब्बती शरणार्थियों का स्वागत हो और उनके साथ भारतीय नागरिकों जैसा व्यवहार हो, परन्तु देश की सीमाओं की सुरक्षा का ध्यान रखते हुए, यह समिति सरकार को सचेत करती है कि उक्त शरणार्थियों को हिमालय या तराई के क्षेत्रों में न बसाया जाए।"

—१९६१, जुलाई १२-१५; हैदराबाद; सोशलिस्ट पार्टी की राष्ट्रीय समिति का प्रस्ताव।

दलाई लामा से वार्ता

"अखिल भारतीय समाजवादी युवजन सभा के चौथे राष्ट्रीय सम्मेलन का प्रस्ताव है कि भारत सरकार दलाई लामा से और तिब्बती जनता के अन्य प्रतिनिधियों से खुल कर और अगर ज़रूरत हो तो गुप्त बातचीत करे, जिसका आधार हो तिब्बतियों की तरफ़ से तिब्बत के समाज और अर्थ-व्यवस्था के क्रान्तिकारी पुनर्निमाण का वचन और भारत की तरफ़ से स्वतन्त्र तिब्बत का। तिब्बत की स्वतन्त्रता की घोषणा को सरकारी तौर पर मान्यता देने के लिए अनुकूल अवसर तक ठहरा जा सकता है, किन्तु राष्ट्रीय नीति का लक्ष्य विशेषतः जनता के स्तर पर वही होना चाहिए।

सम्मेलन की राय में भारतीय विदेश नीति को सृजनात्मक होना चाहिए, जिसका, जहाँ तक चीन का सवाल है यह अर्थ होगा कि जब तक चीनी हमला जारी रहता है, तब तक संयुक्त राष्ट्र में चीनी सदस्यता के मामले मे हिन्दुस्तान मत न दे, और बाद में चीन और फ़ारमोसा दोनों की सदस्यता हो।"

—१९६२, अक्तूबर ५-७; हैदराबाद; समाजवादी युवजन सभा के चौथे राष्ट्रीय सम्मेलन का प्रस्ताव।

तिब्बत की आज़ादी की बात किसने की ?

"तथ्यों को ठीक रखने की खातिर हम श्री जयप्रकाश नारायण को बतलाना चाहेंगे कि तिब्बती मसले को उठाने वाले पहले आदमी होने की बात तो दूर, उन्होंने तिब्बत की आज़ादी की हत्या करने की खुली साजिश में हिस्सा लिया। १९४९ में राममनोहर लोहिया के लन्दन प्रेस सम्मेलन में जब कम्युनिस्टों ने गड़बड़ करने की कोशिश की, तब वे इस बात पर दृढ रहे कि वे भारत सरकार के मत के न भागीदार हैं, न ही प्रभुत्व और अधिराजत्व के बीच स्कूल-विद्यार्थी जैसा भेद करते हैं, और तिब्बत की आज़ादी के हामी हैं। बाद में इंगलैंड के एकमात्र कम्युनिस्ट समाचारपत्र, "दी डेली वरकर", में श्री नारायण का वक्तव्य छपा कि प्रधान मंत्री की तरह वे भी प्रभुत्व और अधिराजत्व में भेद करते हैं और तिब्बत पर चीन के अधिराजत्व को स्वीकार करते हैं। श्री नारायण, जो तब पुरानी सोशलिस्ट पार्टी के प्रधान मंत्री थे, द्वारा लोहिया के बयान का खंडन करते हुए दिये गये बयान के पहले उच्च आयुक्त (जो श्री कृष्ण मेनन ही थे) और दिल्ली के बीच जो टेलीफ़ोन और तार खटखटाये गये उनका हम सिर्फ़ अनुमान ही कर सकते हैं। इस पर जैसे कि आज़ादी और अमन के दूसरे मसलों पर भी राममनोहर लोहिया ही पहले व्यक्ति थे जिन्होंने कुछ किया और अक्सर उन्हें अपने पुराने साथियों और राजनीतिज्ञों के अस्थिर व्यवहार के कारण दुःखी होना पड़ा। जब कि तिब्बत की आज़ादी की, श्री नारायण की बाद की हामी का हम स्वागत करते हैं, हम उनसे कहना चाहेंगे कि वे निज के और देश के हित में अपने अतीत से सबक़ सीखें, और भविष्य में ज्यादा संगत रुख अखतियार करें।"

—१९६२, दिसम्बर १२; श्री रविराय का वक्तव्य।

नीति

भारत की फ़ौज में विस्तार आवश्यक

तिब्बत पर चीनी हमले से भारत को चिन्ता नहीं पैदा होनी चाहिए क्योंकि भारतीय फ़ौज विदेशी हमला रोकने के लिए काफ़ी मज़बूत है। देश की आबादी को देखते हुए हमारी फ़ौज में काफ़ी विस्तार होना चाहिए। फ़ौजी और ग़ैर-फ़ौजी जातियों का भेद क़ानून से तो मिटा दिया गया है किंतु असल में भेद अभी जारी है। यह भेद शीघ्र मिटा देना चाहिए। अमरीकी तथा रूसी गुटों से अलग रह कर भारत को अफ़गानिस्तान और बर्मा जैसे तटस्थ राष्ट्रों को उनकी आज़ादी की रक्षा में मदद देनी चाहिए।

—१९५०, दिसम्बर; बनारस।

"आक्रमणकारी चीन" पर संयुक्त राष्ट्र संघ का वोट

चीन को युद्ध सामग्री देने के बारे में, संयुक्त राष्ट्र संघ में वोट के समय हिन्दुस्तान की तटस्थता विश्व एकता और शान्ति के उपासकों और विशेषरूप से हिन्दुस्तान की सोशलिस्ट पार्टी के लिए विजयोल्लास का अवसर था। नयी दुनिया के निर्माण की रचनात्मक नीति को इस तरह सुदृढ करने के लिए भारत सरकार को विश्व की सराहना मिलनी चाहिए।

लगातार चार बरसों से हिन्दुस्तान ने पेंग मारने और पारी-पारी से सोवियत और अतलान्तिक खेमे की सेवा करने की नीति का अनुसरण किया है। उसने सोवियत और अतलान्तिक घुसपैठ के सम्मुख भारतीय जनता को उघाड़ कर रख दिया है, दिमाग़ के सोतों को ढंक दिया है और आपत्तिकाल में उन्हें आत्मसमर्पण की ओर अभिमुख कर दिया है। एक तो स्वतंत्रता और तटस्थता के लिए अवसर यह नीति काफी ग़लत थी, और परिणामस्वरूप, वे सभी, जो दो महान् शक्ति-खेमों से हट कर, नयी सृजनशील शक्ति का निर्माण करना चाहते थे, बहुत बदनाम हुए। हमे आशा है कि एक कमज़ोर पंच और हानिकारक टाँग अड़ाने वाले का काम छोड़ देने और, चाहे कितनी ही कम मात्रा में क्यों न हों, सचमुच निर्माता बनने के लिए ईमानदारी से काम करने की भारत सरकार की इच्छा इस वोट में प्रतिबिम्बित होती है। हिन्देशिया से मिस्र तक ऐसे देशों की एक श्रृंखला फैली हुई है जिन्हें सैद्धान्तिक, आर्थिक और सैन्य सुरक्षा के जाल मे एकत्रित किया जा सकता है और स्वीडन जैसे देशों में भी जिसकी दूर सीमा चौकियाँ हैं। पूँजीवाद और साम्यवाद से, जो दोनों केन्द्रीकरण और हिंसा और समूचे संसार पर एक सरकार के नेतृत्व के पंथ हैं, आगे बढ़ कर और देश में समता के साथ-साथ सभी देशों के बीच समता और विकेन्द्रित पुनर्रचना के सिद्धान्तों को फैलाने की दृष्टि से समाजवादी दल ने इस श्रृंखला को सैद्धान्तिक सुरक्षा प्रदान करने का प्रयत्न किया है। अगर पार्टी भारत सरकार होती, तो आर्थिक और सैन्य सुरक्षा प्राप्त करने की ओर वह बहुत आगे बढ़ी होती।

हिन्दुस्तान का प्रधान मंत्री एक तेजतर्रार घोड़ा है, जो, जब महात्मा गांधी उस पर सवार थे, अच्छे नतीजे निकाल सका, किन्तु जब से उसका सवार नहीं रहा, वह देश को

बरबादी के किनारे ला खड़ा करता है। अगर हिन्दुस्तान की जनता उस पर ठीक से सवारी करने लगे और भारत सरकार को तटस्थता के रास्ते पर टिके रहने के लिए, और तटस्थ श्रृंखला के सुनिश्चित लक्ष्यों तक पहुँचने और समूचे संसार के लिए समता और समृद्धि प्राप्त करने के लिए मजबूर करे, तो अब भी ऐन मौक़े की सुरक्षा हासिल की जा सकती है। युगोस्लाविया के तटस्थतावादियों के विश्व मोर्चे से हट जाने से, जिसके साथ उसने इतना पक्का और सैद्धान्तिक लगाव घोषित किया था, विजय का वह अवसर, जो हो, कुछ फीका पड़ गया। हम मार्शल टीटो और उनकी बहादुर जनता से, इस बात का ख़याल न करते हुए कि राष्ट्रीय सुरक्षा का तक़ाजा उन पर हावी हो गया होगा, निवेदन करना चाहते हैं कि वे तटस्थतावादी पक्ष में लौट आएँ।

जब कि भारत सरकार की तटस्थता की नीति से नयी आशा और ख़ुशी का संचार हुआ है, जापान और जर्मनी के पुनःशस्त्रीकरण के सवाल पर प्रधान मंत्री के जवाब से फिर असम्पृक्त मन प्रतिबिम्बित हुआ है। एक राष्ट्र के किसी प्रधान मंत्री के लिए, जिसकी सेना है और जो उसे क़ायम रखना चाहता है और उसे बढ़ाना भी चाहता है, जापान के संविधान में सेना न रखने वाली धाराओं के बारे मे, चिकना-चुपड़ा नैतिक बखान करना बेहूदा है। इन नैतिक फुहारों के बावजूद जापान जरूर पुनः सशस्त्र बनेगा, और जापान की जो पार्टियाँ संविधान की इन धाराओं को पकड़े रहीं, उनकी, जापान के हाल के नगर-पालिका चुनावों में, मुकम्मिल हार यह साबित करती है। वैसे ही जर्मनी उसी दिशा में जाएगा। निःशस्त्रीकरण या तो समूचे संसार का होगा या फिर किसी का नहीं। इतने दीर्घ काल से हिन्दुस्तान अपनी आन्तरिक जाति प्रथा का आदी हो गया है कि उसे अन्तर्राष्ट्रीय जाति प्रथा की, जो दुनिया को ५ ब्राह्मण और ६० के क़रीब अछूत राष्ट्रों मे बाँट देती है, हामी भरने और स्वीकार करने मे कोई कठिनाई नहीं मालूम पड़ी। चार बड़े या पाँच बड़े वाला सिद्धान्त, पाट्सडाम, याल्टा या और कहीं के गुप्त क़रारनामे वाला, और विजयी और पराजित राष्ट्रों के बीच भेदभाव वाला सिद्धान्त बिलकुल अस्वीकृत कर देने पर ही हिन्दुस्तान संसार की कुछ सेवा कर सकता है। पुरानी दुनिया के झगड़ों में तटस्थता की अपनी नीति के अनुरूप, हिन्दुस्तान को हिम्मत से नयी दुनिया के दावों की मदद करनी चाहिए, जो किसी भी साम्राज्यवादी, पूँजीवादी अथवा साम्यवादी विशेषाधिकार को मान्यता नहीं देता।

—१९५१, मई २४; दिल्ली।

लाल चीन के प्रति हमारा रुख़

हिन्दुस्तानी जनता के बीच ठोक-ठोक कर प्रचार किया जा रहा है कि चीन कम्युनिस्ट देश नहीं है, और कि अनेक चीज़ों में वहाँ निजी मिलकियत है। हाल में जो सद्भावना मंडल वहाँ गया था, उसके एक सदस्य और श्री पन्नीकर, उस देश के भारतीय राजदूत, तो कम से कम इस बात से सहमत हैं। और कई लोग अभी से इस स्वर में या तो बोलने लगे हैं या अब ज़ोरों से बोलना शुरू करेंगे।

अभी से इस राग को अलापने वाला धोखेबाज़ होगा या सचेतन विचारक, किन्तु लगता है इस राग का प्रयोजन है या तो चीन के लिए दुनिया भर में एक प्रकार की सद्भावना पैदा करना या फिर एशिया के दृढ समाजवादी मत को स्वच्छ रूप में प्रकट न होने देना।

ज़्यादातर एशियाई सरकारें, विशेषत: भारत सरकार, नीतिरहित और अस्पष्ट हैं। वे बोली में गरम हैं और काम में नरम, और, इसीलिए, वे उन विचारों को पसन्द करती हैं जो धुंधलका खड़ा करते हैं और दुविधा पैदा करते हैं। चीन को शामिल करके यदि वे अपने खेमे का विस्तार कर सकें तो ज़ाहिर है उन्हें खुशी होगी। परन्तु, एशिया में समाजवादी मत स्वच्छ प्रकट होने जा रहा है। मुझे मालूम हुआ है कि हिन्दुस्तान के प्रधानमंत्री ने हिन्देशिया के समाजवादी नेता डा० शहरयार की चीन यात्रा कराने में बहुत ही सक्रिय काम किया है। डा० शहरयार बहुत ही समझदार व्यक्ति हैं। वे एशिया में समाजवादियों के एकत्रित होने में भारतीय प्रधानमंत्री को रुकावट नहीं डालने देंगे। मुझे आशा है डा० शहरयार चीन जाएँगे और उस देश के अपने निजी अनुभवों से समाजवादी एशिया को लाभान्वित करेंगे।

एशिया के लोगों को दो प्रकार के सम्बन्धों को जल्दी ही जान लेना चाहिए, एक, सरकारी स्तर पर, और दूसरा, लोक स्तर पर। ढुलमुल दोस्ती मोल लेने के लिए सच को दबाना या उसके स्वरूप को विकृत नहीं करना, उन्हें यह भी सीखना चाहिए।

पीकिंग सरकार के साथ सभी एशियाई सरकारों को सही राजनयिक और, जहाँ कहीं सम्भव हो, दोस्ताना सम्बन्ध रखने का प्रयत्न करना चाहिए। लेकिन किसी भी हालत में तोड़-मरोड़ और खामोशी भी नहीं होनी चाहिए जो कुछ मानी में और भी बुरी होती है।

हालाँकि सद्भावना मंडल के एक सदस्य ने चीन में रूसी विशेषज्ञों को सदाचरण का प्रमाणपत्र दे दिया है, उसने एक आश्चर्यजनक उद्घाटन किया है कि वहाँ ८० हज़ार से ऊपर रूसी विशेषज्ञ हैं। इसका मतलब हुआ कि विदेशी शासन के अन्तर्गत हिन्दुस्तान में अंग्रेज़ों की जो संख्या थी, उससे डेढ़े से भी ज्यादा रूसी चीन में हैं। चीन में रूसियों का आचरण बहुत ही अच्छा होगा किन्तु इसमें शक की कोई गुंजायिश नहीं है कि उस देश पर उनका पंजा मज़बूती से जमा हुआ है। खुली टक्कर के परिणामस्वरूप कुछ हो जाए तो बात अलग है, वरना रूस की विदेश नीति से चीन का अलगाव मुमकिन नहीं लगता ; सद्भावना मंडल के एक सदस्य के अनुसार चीनी नेता माओ-त्से-तुंग दिन पर दिन अपनी जनता की पहुँच के बाहर होते जा रहे हैं।

चीनी स्थिति का एक और पहलू है जिसको नज़रअन्दाज़ करना या उसे युक्तिसंगत न बनाना एशियाई लोगों के लिए भयंकर होगा। चीन में कम्युनिस्टों के आने के बाद १० लाख से ऊपर लोगों को मौत के घाट उतार दिया गया। उनको क्रान्तिविरोधक, काला-बाज़ार करने वाले और तोड़फोड़ करने वाले कहा गया है। यह सच भी हो सकता है और नहीं भी।

मान लें कि जिन्हें मार डाला गया वे सभी दुष्ट तत्त्व थे, तो भी, १० लाख क़तल उस तरीक़े की सर्वथा निन्दा के लिए काफ़ी हैं। उनसे कोई फ़ायदा नहीं निकलेगा। मुझे मालूम हुआ है कि कम्युनिस्ट मजिस्टरों ने क्रान्ति के पोषक खुद अपने माँ-बाप का क़तल करने में विशेष आनन्द लिया। सुधारकों का एक वर्ग उत्कृष्टता का अनुभव कर सकता है कि जनता के प्रति प्रेम पैतृक सम्बन्धों से ऊपर उठ सकता है. किन्तु मैं उसे मानवता की बेमिसाल अशिष्टता मानता हूँ।

चीन ने ज़मीन का पुनर्वितरण कर दिया इसलिए उसकी विदेश नीति अथवा आतंक से राज चलाने के भयंकर पहलुओं से एशिया के लोगों को अन्धे नहीं बन जाना चाहिए। परन्तु, चीन में ज़मीन का पुनर्वितरण वैसा ही काग़ज़ी लेखा-जोखा है जैसा कि हिटलर के तहत मुनाफ़े पर ५% की सीमा बँधी थी। ग़ल्लावसूली, दाम बाँधना, किसान युवजनों की सैनिक सेवा में अनिवार्य भरती और राजनीतिक तथा अदालती अधिकार पीकिंग में ही केन्द्रित हैं। इन कामों और अधिकारों में जब तक गाँव पंचायतें हिस्सा नहीं बटातीं, और न्याय जब तक कार्यांग और भीड़ के हो-हल्ले से मुक्त नहीं होता, चीन में जिस तरह ज़मीन का पुनर्वितरण हुआ है वह निरर्थक है और जिसके लिए समाजवादी माँग करते हैं और आन्दोलन करते हैं, उससे उसका कोई सम्बन्ध नहीं है।

चीन में निजी सम्पत्ति है या नहीं, इसे भावुक और भ्रान्त जानकारी का मसला नहीं बना देना चाहिए। इस तरह की अस्पष्ट बहसें केवल पूँजीवादियों और कम्युनिस्टों की सहायक होती हैं, क्योंकि उनके लिए विचार सत्य की अभिव्यक्ति नहीं है बल्कि क्षणिक स्वार्थ के साधन हैं। हर हालत में, समाजवादी एशिया के लिए मसला सार्वजनिक और निजी सम्पत्ति के बीच नहीं अटका हुआ है। इस बात में पक्की आस्था रखते हुए कि कारखानों पर सामाजिक स्वामित्व से ही एशिया की अर्थव्यवस्था पुनर्निर्मित हो सकती है, समाजवादी एशिया को अब केन्द्रित और विकेन्द्रित सार्वजनिक सम्पत्ति के उपयुक्त रूप हासिल करने हैं।

उसे यह साफ़ समझ लेना चाहिए कि अतलांतिक और सोवियत खेमे के बीच झगड़ों के प्रति तटस्था की नीति का मतलब खामोश रहना या निर्णय न करना कदापि नहीं है। जिस तरह अफ्रीका में फ्रांसीसी या बर्तानवी क़तले-आम या समूचे ससार को अपने ढर्रे पर ढालने के अमरीकी प्रयास पर निर्णय करने में इनकार नहीं है, चीनी अवसरवादी, जो अपने निजी या संकीर्ण राष्ट्रीय स्वार्थ के लिए विचारों को बदल देने के आदी है समग्र पर निर्णय करने से इनकार करते हैं, क्योंकि वे अपने सम्भावित हितैषी को कठिनाई में नहीं डालना चाहते।

भारत सरकार फ़िलवक़्त चीन की दलाल है, और हिन्दुस्तान में अकाल पड़ने पर या दुनिया में जग छिड़ जाने पर वह अमरीका की नौकरानी बन जाएगी। इसीलिए, कई मसलो पर उसे चुप रहना पडता है या दो मुँही बात करनी पड़ती है या दुहरी चाल चलनी पड़ती है। अतएव दोनो खेमों में श्री नेहरू के कुछ दोस्त हैं सो आसानी से समझ में आ जाता है। अवसरवादियो को ऐसे लोगों की कमी नहीं पड़ती जो उन्हें मनाते हैं और रिझाते हैं किन्तु वे नया राष्ट्र बनाने अथवा नयी दुनिया का निर्माण करने मे सर्वथा अयोग्य है।

समाजवादी एशिया को समनुरूपवादी और सहअस्तित्व के समान रूप से बुरे पंथों को निश्चय ही अस्वीकार कर देना चाहिए। समनुरूपवाद में विचार का मारक मट्ठसपन निहित है और सहअस्तित्व की कल्पना में अनिश्चित और गुलगुली और लुजलुज बुद्धि रहती है। समाजवादी एशिया को अतलान्तिक या सोवियत प्रणाली के साथ समनुरूप होने से इनकार कर देना चाहिए, और उसे उनके साथ या उनके बीच चुप रहने या सच को दबाने के आधार पर सहअस्तित्व पर अमल करने से भी इनकार कर देना चाहिए।

सिर्फ़ निर्बन्ध जाँच-पड़ताल और खुली बहस के आधार पर एक दूसरे को सन्निकट करने की प्रणालियों के साथ सहअस्तित्व होना चाहिए। अपने ही चिन्तन की रूपरेखा को माँजने और परिष्कृत करने में समाजवादी एशिया को एक ओर, विचारों और कर्मों का अपना ठोस ढाँचा खड़ा करना चाहिए, और, दूसरी ओर, पूँजीवाद और साम्यवाद में बुरे

कामों और ग़लतियों को बतलाने से इनकार नहीं करना चाहिए। एक समाजवादी जो विदेश नीति के मामले में सन्निकटता के साथ सहअस्तित्व के सिद्धान्तों पर चलता है, अतलान्तिक और सोवियत प्रणालियों की ग़लतियों और बुराइयों को दूर करने का प्रयत्न हमेशा करेगा, ताकि वे एक दूसरे के सन्निकट होते जाएँ, तब तक, जब तक शान्तिमय विश्व नहीं बन जाता।

विदेशों में—मलाया, हिन्देशिया और दूसरी जगहों में रहने वाले चीनी और हांगकांग चीनी भी राष्ट्रपति माओ-त्से-तुंग और जनरलसिमो चांग-काई-शेक को समान रूप से अस्वीकार करने के आधार पर अपने बीच जनतांत्रिक और समाजवादी विचार-धारा को जन्म दे सकते हैं। इससे मुख्यभूमि और फ़ारमोसा के भी चीनियों का मन खूब प्रभावित होगा और सन्निकटता आ सकती है।

यह आशा कि माओ भी टीटो के रास्ते चलेगा, चीन के बारे में राय निर्धारण में एक बड़ी दिक़्क़त बन जाती है। अगर माओ टीटो के रास्ते जाएँ और अगर चीन घर में केन्द्रीकरण और बाहर रूस के संरक्षण से अपने को मुक्त करना शुरू कर दे, तो मैं उसका स्वागत करूँगा। लेकिन चाहे जितनी खुशामद करने या निर्णय से इनकार करने से कभी युगोस्लाविया नहीं हुआ करता। निजी राष्ट्रीय और विश्व-अनुभव से ही युगोस्लाविया बनता है, और विदेशी लोग उस अनुभव को जल्दी और गहरा करा सकते हैं, बशर्ते वे अपने द्वेषरहित और सहानुभूतिपूर्ण निर्णयों को घोषित करें। एक न एक दिन रूस और चीन भी समझ जाएँगे कि हिन्दुस्तान में उनके सबसे अच्छे दोस्त समाजवादी ही हैं जो कि उनके दलाल बनने से इनकार करते हैं और जो हमेशा अतलान्तिक खेमे के नौकर बनने से इनकार करेंगे। अमरीका से भी मैं कहना चाहता हूँ कि उसी तर्क पर एशिया में उसके सबसे अच्छे दोस्त समाजवादी ही हैं।

चीनी प्राचीन और महान् हैं और मैंने कहीं भी चमड़ी का इतना बढ़िया तन्तुगुण नहीं देखा या बुद्धि का इतना अधिक लचीलापन अनुभव किया। हिन्दुस्तान और चीन की जनता के बीच परम्परागत दोस्ती के बन्धन क़ायम रहने चाहिए और उनकी सरकारों को, जैसी भी हम उन्हें मानें, उचित सम्बन्धों का निर्वाह करना चाहिए।

—१९५१, दिसम्बर।

चाऊ-नेहरू भेंट

हिन्दुस्तान और चीन के प्रधानमंत्रियों की भेंट से मुझे प्रसन्नता है। ये दोनों निःसन्देह एक तिहाई मानव जाति के प्रतिनिधि हैं, चाहे ८० करोड़ हों या १०० करोड़ इससे कोई खास नतीजा नहीं निकलता। किन्तु उनकी शक्ति को जान लेना जरूरी है। चीन के प्रधानमंत्री ने जब कहा कि दोनों प्रधानमंत्री ९६ करोड़ का प्रतिनिधित्व करते हैं, बेशक वे सच बोले किन्तु सिर्फ़ आधा सच, क्योंकि उन्हें यह भी कहना चाहिए था कि दोनों देश कितनी फ़ौलाद या गेहूँ पैदा करते हैं। ९६ करोड़ के प्रतिनिधि वे अवश्य हैं, किन्तु ३० लाख टन से कम फ़ौलाद पैदा करते हैं।

मैं उनकी भेंट के महत्त्व को कम नहीं करना चाहता किन्तु मैं उसे उसके ठीक विन्यास में रखना चाहता हूँ। हिन्दुस्तान और चीन और अन्य रंगीन देशों के लोगों को एहसास होना चाहिए कि गोरे देशों की तुलना में वे कितना पीछे हैं। चीन के रंगीन लोगों के पीछे लगे रूस के ३ करोड़ ५० लाख टन फ़ौलाद वाले गोरे लोग हैं। और हिन्दुस्तान के रंगीन लोगों के पीछे लगे इंग्लैंड के २ करोड़ टन फ़ौलाद वाले गोरे लोग हैं, और उनके पीछे हैं अमरीका के ११ करोड़ टन फ़ौलाद वाले वही गोरे लोग।

मैं नहीं चाहता कि यूरोपी या अमरीकी सभ्यता की अन्धी नक़ल हो। मेरा आरोप है कि हिन्दुस्तान और चीन की वर्तमान सरकारें अपने-अपने देश में यूरोप खड़ा करना चाहती हैं। वह असम्भव है और अवांछनीय भी।

अगर दुनिया के रंगीन लोग विचार और कर्म का नया तरीक़ा विकसित करेंगे और अपनी खेती और कारखाने को नये ढंग से बढ़ाएँगे, तो ही मानव सभ्यता वर्तमान संकट से, जो कि विदेश नीति में भी संकट का कारण है, उबर सकती है। सोवियत राष्ट्रमंडल से चीन को और ब्रिटिश राष्ट्रमंडल से हिन्दुस्तान को जिस हद तक मुक्त होने में इस भेंट से सहायता मिलेगी उसी हद तक उसका महत्त्व होगा। विदेश नीति में हिन्दुस्तान और चीन जिस हद तक अपनी गतिविधि की आज़ादी हासिल कर सकेंगे और, परिणाम-

स्वरूप, सोवियत और ब्रिटिश राष्ट्रमंडलों से अधिकाधिक तटस्थ होंगे, उस हद तक श्री नेहरू और श्री चाऊ समूची रंगीन दुनिया की कृतज्ञता के पात्र बनेंगे।

सहअस्तिव के उसूल को जल्दी से मान लेने के विरुद्ध मैं सचेत कर देना चाहता हूँ। श्री नेहरू और श्री चाऊ चाहे जितना चिल्लाएँ, दो प्रणालियों का शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व हो नहीं सकता, सिवाय शांति के कुछेक अन्तराल की अवधि में समूचे मानव इतिहास में विभिन्न प्रणालियो का टकराव हुआ है। दो प्रणालियों का शान्तिमय अस्तित्व रखने का सिर्फ़ एक ही रास्ता है, और वह है एक तीसरी प्रणाली की निष्पत्ति द्वारा जो कि इतनी शक्तिशाली हो कि उन दूसरी दो के साथ सहअस्तित्व बाध्य कर दे। तीसरी प्रणाली की निष्पत्ति और उसकी शक्ति बढ़ाने के लिए हिन्दुस्तान और चीन की सरकारों ने अब तक कुछ नहीं किया। मुझे आशा है कि भविष्य में वे ऐसी नीति बनाने के लिए क़दम बढ़ाएंगे।

—१९५४, जुलाई; बलिया।

पथरीली, बंजर !

चीन द्वारा भारत की सीमा का अतिक्रमण भारत सरकार की दुर्बलता का परिचायक है। भारत को भारत माता न मान कर मिट्टी और पत्थरों का भूखंड समझने के कारण ही लोग सीमावर्ती हमले को साधारण घटना समझते हैं। भारत पर किसी भी हमले की उपेक्षा ग़द्दारी है। भारत सरकार ने सीमाओं की सुरक्षा का कोई समुचित प्रबन्ध नहीं किया। फलस्वरूप इस देश की सीमाएँ कमज़ोर बनी रहीं और विदेशियों को ललचाती रहीं।

मैं सेना नहीं पसन्द करता। लेकिन जब सेना है, तो उसका इन्तज़ाम अच्छा होना चाहिए। यह खेद की बात है कि हमारे देश मे ऐसी परिस्थितियाँ भी उत्पन्न होती हैं कि सेना के बड़े अफ़सर इस्तीफ़ा देने की बात सोचने लगते है।

भारत की रक्षा अब दिल्ली की वर्तमान सरकार नहीं कर सकती। नेपाल तिब्बत, सिक्किम, भूटान और उर्वसीअम् को उन्होंने बारह साल तक कमज़ोर बनाये रखा। भारत के सीमान्त क्षेत्रों में रहने वालों के बीच जब तक राष्ट्रीय भावना नहीं पैदा की जाती, उनके दिलों में देश के प्रति दर्द नहीं पैदा किया जाता, तब तक हम विदेशियों का मुक़ाबला नहीं कर सकते।

आज हमारी सारी समस्याओं का मूल कारण है जात-पाँत और ऊँच-नीच का भेदभाव। भारत का हिस्सा विदेशियों के क़ब्ज़े में जाने का मुख्य कारण है हमारी आपसी फूट। चीन के साठ करोड़ व्यक्ति तो एक साथ हैं, लेकिन हिन्दुस्तान के चालीस करोड़ व्यक्तियों की ताक़त इन्हीं संकीर्णताओं के कारण पचास लाख की शक्ति बन जाती है। चीन की पलटन भारत में घुस आयी परन्तु देश में कितने आदमी हैं जिनका दिल आक्रमण से तड़प उठा। बीघा-दो-बीघा ज़मीन के लिए तो जान दे देते हैं, पर देश की हज़ारों वर्गमील ज़मीन के लिए किसी पर कोई प्रतिक्रिया न हुई। इसका मुख्य कारण आज के सत्ताधारियों की द्विज नीति है। उनकी जात-पाँत की इस भावना से सर्वसाधारण में ऐसी निराशा उत्पन्न हो गयी है कि वे इन मामलों में दखल देने का अपना अधिकार ही नहीं समझते।

ऐसे प्रधान मंत्री को क्या कहा जाए जिन्होंने चीन द्वारा क़ब्ज़े में ली गयी ज़मीन को ऊसर और पथरीली बता कर अपनी ग़लतियों को छिपाने की कोशिश की है। सम्पूर्ण सीमा क्षेत्र को कमज़ोर बना कर श्री नेहरू ने अक्षम्य अपराध किया है। यदि वे राष्ट्र-रक्षा में असमर्थ हैं तो उन्हें पद-त्याग कर हट जाना चाहिए। अंग्रेज पादरियों से सरकार उर्वसीअम् की रक्षा नहीं करवा सकती। नेपाल जाग्रत है किन्तु इसके लिए दो बहादुर साथी कुलदीप, तारापद चटर्जी को शहादत देनी पड़ी। चीनी आक्रमण से यदि देश की रक्षा करनी है तो जनता में बहादुरी की भावना भरनी होगी।

आज हमारी पलटन में गड़बड़ी है। पलटन में पक्षपात होता है। इससे कोई इनकार नहीं कर सकता, क्योंकि एक सैनिक अधिकारी श्री जयसिंह आपजी ने इसी के विरोध में त्याग-पत्र दिया था। इसमें श्री मेनन की उतनी ग़लती नहीं थी जितनी कि प्रधान मंत्री की है।

—१९५९, सितम्बर २; रोसड़ा, दरभंगा।

हिन्दुस्तान, चीन और तिब्बत : कांग्रेस व कम्युनिस्ट नीतियाँ

•

हिन्दुस्तान और चीन के मसले को समझने के लिए चार कोनों से हमें इस मसले को देखना होगा। एक, हिमालय में हिन्दुस्तान की उत्तरी सीमा, या मान लो कोई चीनी बोले तो उसमें या उसके पास लगती हुई चीन की दक्षिणी सीमा; दूसरे, हिन्दुस्तान और चीन की कुल ताक़त की तुलना; तीसरे, तिब्बत, और चौथे, विदेश नीति। जब इन चार कोनों से हिन्दुस्तान और चीन के मसले को एक-एक करके देख लें, तब इसके बाद सब मिला कर भी उस बात को समझने की कोशिश करना होगा।

सबसे पहले मैं उत्तरी सीमा का दृष्टिकोण उठाता हूँ, जो लद्दाख से ले कर उर्वसीअम् तक फैला हुआ है, और बीच में नेपाल, सिक्किम, भूटान हैं। इन इलाक़ों को मिला कर जो अपनी उत्तरी सीमा होती है, उसके बारे में हिन्दुस्तान की सरकार ने पिछले १२ सालों में क्या किया है? उत्तरी हिमालयी सीमा के लोग आज़ादी के बारह सालों में जानबूझ कर कमज़ोर बना कर रखे गये हैं। १९५० से बार-बार चेतावनी देने के बावजूद हिन्दुस्तान की सरकार ने उत्तरी सीमाओं र वहाँ के लोगों को इस तरह मुलायम बना कर रखा है जो विदेशी आक्रमण को न्योता दे। आज़ादी के बारह सालो में सारे देश को, खास तौर से सीमा के इलाक़े को, मुलायम रखा जाता है, कमज़ोर रखा जाता है। उसको मज़बूत और कड़ा बनाओ। अपने देश की रक्षा करते वक़्त सीमाओं को मुलायम न रहने देना सुरक्षा का एक बहुत बड़ा अंग है। जब मैं मुलायम और कड़े, इन शब्दों का इस्तेमाल करता हूँ. तो मेरा मतलब न सिर्फ़ हथियारी ताक़त से है, बल्कि और सभी क़िस्म की ताक़त खास तौर से लोगों के मन की ताक़त और उनके सोचने के ढंग और उनके रहने के ढंग वग़ैरह से भी है। इस उत्तरी सीमा का क्या हाल रहा है, इसका सुबूत अभी हाल ही में बहुत बढ़िया मिला, जब हिन्दुस्तान के प्रधान मंत्री भूटान गये थे। उन्हें भूटान देख कर बड़ी खुशी हुई। और क्यों खुशी हुई, इसका उन्होंने सबब बताया कि वहाँ सड़क नहीं है, वहाँ स्कूल नहीं है, वहाँ कारखाने नहीं हैं, वहाँ अखबार नहीं हैं। ऐसा लगा कि कोई आदमी बहुत बुड्ढा हो चुका है, और ज़िन्दगी के पेंच से इतना फट गया है कि ऐसी

जगह लुक छिप जाना चाहता है, जहाँ पेंच न हो। साफ़-सी बात है कि अगर किसी इलाक़े को इस तरह से एक छिपा अँधेरा कोना बना करके उससे सुख हासिल करोगे, उसे मुलायम रखोगे, तो उन्हें न्योता ही देना होगा कि आओ भाई चीनी, या और कोई, इस इलाके को आ कर मज़बूत बनाओ, कड़ा बनाओ।

उसी के साथ-साथ जो उर्वसीअम् का इलाक़ा है, उसके बारे में मुझे ज़्यादा कुछ नहीं कहना है। खाली इतना कि बारह बरस में हिन्दुस्तान के एक काफ़ी बड़े हिस्से का नाम तक यहाँ की सरकार नहीं ढूंढ़ पायी। इस इलाक़े को आम तौर से पढ़े-लिखे लोग 'नेफा' कहते हैं, क्योंकि अंग्रेजी शब्दों के जो पहले अक्षर हैं, 'नार्थ' का 'एन', 'ईस्ट' का 'ई', 'फ़्रन्टियर' का 'एफ़' और 'एजेन्सी' का 'ए'; इन चारों अक्षरों को मिला कर उस इलाक़े का नाम पड़ा 'नेफा'। यह न समझना कि वह मील दो मील का इलाक़ा है, तीस-चालीस हज़ार वर्ग मील का इलाक़ा है। मैं नहीं कहता कि इसका नाम हिन्दुस्तान की किसी एक ज़बान के शब्दों के अनुसार रखो। हिन्दुस्तान की चाहे जो ज़बान, तेलुगु हो, मराठी हो, बंगाली हो, उसमें आखिर इसे क्या कहा जाएगा ? उत्तर पूर्व सीमान्त अंचल कहा जाएगा। और उस इलाक़े में जितने अफ़सर हैं, सरकारी नौकर हैं, उनकी पेटियाँ मैंने देखीं, झब्बे वग़ैरह देखे उन सब पर लिखा भी रहता है उत्तर पूर्व सीमान्त अंचल। कितना बढ़िया नाम बन जाता है। उत्तर का 'उ' ले लो, पूर्व का पहले का 'पू' न ले कर, ऐसा अक्सर होता है कि आखरी अक्षर ले लिया जाता है, 'र्व' ले लो, सीमान्त का 'सी' ले लो, अंचल का 'अम्' ले लो, हो जाता है उर्वसीअम्। रोज़ की ज़िन्दगी में रम्भा, मेनका, तिलोत्तमा से मुलाक़ात न हो सके, अपने मुल्क के एक हिस्से को उर्वसीअम् कह कर तबियत कुछ खुश तो की ही जा सकती है। कितना बढ़िया नाम हो जाता है।

इस उर्वसीअम् में अभी पिछले साल तक महात्मा गाँधी या और किसी आदमी या देवी-देवताओं की तसवीर दुकानों में रखना जुर्म था, और सज़ा हो सकती थी। आज़ाद हिन्दुस्तान में ग्यारह बरस तक गाँधी जी की तसवीर रखना जुर्म हो, कभी आप यक़ीन कर सकते हैं ! ऐसा क्यों, क्योंकि उर्वसीअम् के ऊपर क़ब्ज़ा सीधा हिन्द सरकार का है, और हिन्द सरकार ने उर्वसीअम् के इलाक़े में बसने वाले आदिवासियों और पहाड़ी जातियों के मामलों में वेरियर एलविन साहब को, जो किसी ज़माने में पादरी थे, गिर्जा घरों वाले पादरी या मिशनरी जिनको कहते हैं, सलाहकार बना के रखा। अब तो खैर वे पादरी नहीं हैं। मैं इस पर कुछ ज़्यादा नहीं कहना चाहता कि सीमा के एक प्रदेश के सलाहकार को हिन्दुस्तान की सरकार हिन्दुस्तान में से नहीं खोज पाती, किसी एक विदेशी को रखना पड़ता है। वेरियर एलविन साहब और प्रधान मन्त्री ने मिल कर एक सिद्धान्त निकाला कि उर्वसीअम् के इलाक़े में बसने वाली आदिवासी और पहाड़ी जातियाँ जैसे अबोर, मिसमी, मिकिर, दाफ़ला और बहुत हैं, इनकी संस्कृति, रहन-सहन के ढंग की रक्षा करने के लिए ज़रूरी है कि बाहर वालों के सम्पर्क से उनको अछूता रखा जाए। जिस

तरह गीर में ४००-५०० वर्गमील का इलाक़ा सुरक्षित रख दिया गया है शेर के लिए और वहाँ किसी को शिकार करने की इजाज़त नहीं है, लेकिन अगर कोई कम से कम उस इलाक़े में जा कर कुछ देखना चाहे तो जा सकता है। उससे भी आगे बढ़ करके उस तीस-चालीस हज़ार वर्ग मील के इलाक़े के लिए वेरियर एलविन साहब और नेहरू साहब ने मिल कर ऐसा सिद्धान्त बनाया कि कटघरा-सा बना रखो, बाहर वालों से इनका सम्पर्क न होने पाए। इनके जो अपने कपड़े लत्ते हैं और शायद आपने कभी तसवीरें देखी होंगी, वे रंग-बिरंगे लँहगे या तीरकमान या इनके नाचने के अपने ढंग, ये सब अगर जारी रखना चाहते हो, ज़िन्दा रखना चाहते हो, तो इनको बाहर की दुनिया से मिलने-जुलने न दो। वरना इनके रहन-सहन और इनके ढंग खतम हो जाएँगे। यह कितनी ज़हरीली ज़हनियत है! इसे आप समझ सकते हो, क्योंकि इसका नतीजा होता है कि एक इतने बड़े इलाक़े को जबरन, कोशिश करके, दो-चार हज़ार बरस पहले की सभ्यता में जकड़ करके, बाँध करके रख लिया जाता है, जैसे बहुत ज़बरदस्त बर्फ़ के महल में दस हज़ार बरस पहले की चीज़ें रख दी जाएँ। उर्वसीअम् के इलाक़े को हिन्द सरकार ने इसी तरह से क़ायम रखना चाहा।

सिक्किम के बारे में मैं ख़ाली इतना ही कहे देता हूँ कि वहाँ पर हिन्दुस्तान का संरक्षण है लेकिन सिक्किम की जनता को हिन्दुस्तान की लोकसभा में अब तक अपने नुमाइन्दे भेजने का अधिकार नहीं है। वहाँ हुकूमत की जैसी भी प्रथा अब तक रही है, उसमें एक खास तबक़े को, जो कि राजा की जात का है, अपनी आबादी से कहीं ज़्यादा नुमाइन्दगी का अधिकार दिया गया था। तीन-चार बार वहाँ के लोग मुझसे मिले थे और उन्होंने इस पर लड़ाई शुरू करनी चाही थी। लेकिन मैं आपको इतना ही बता दूँ कि इधर पाँच-सात बरस मे मुझ जैसे लोगों की उतनी हिम्मत भी नहीं रही और तबियत भी नहीं रही कि वैसी लड़ाई को शुरू किया जाए।

जब लोकतन्त्री लड़ाई का ज़िक्र आया तो नेपाल का थोड़ा-सा हवाला दे देना चाहिए। इस उत्तरी सीमा के पाँचो इलाक़ों में से चार तो बिलकुल कमज़ोर, मुलायम रखे गये, लद्दाख, सिक्किम, भूटान और उर्वसीअम्, लेकिन नेपाल उतना मुलायम नहीं है जितना कि दस बरस पहले था। नेपाल में दस बरस पहले कोशिश करके, लड़ाई करके जो वहाँ की पुरानी राज करने की प्रथा थी, उसको खतम करके एक तरह की लोकशाही क़ायम की गयी। लेकिन जब यह लड़ाई शुरू की गयी थी, तो ज़्यादातर हिन्दुस्तान के सोच-विचार करने वाले लोगों ने—जिन्हें सोच-विचार करने वाला कहा जाता है, दरअसल वे कैसे हैं, उनके बारे में कुछ ज़्यादा ज़िक्र करने की ज़रूरत नहीं—कहा कि नेपाल में राणाशाही के ख़िलाफ़ लड़ाई में जो हिन्दुस्तानी मदद दे रहे हैं, वे हिन्दुस्तान और नेपाल का रिश्ता बिगाड़ रहे हैं। ऐसा कहने वाले लोग कौन थे? क़रीब-क़रीब सभी कांग्रेसी थे, लेकिन कुछ ने जैसे बंगाल के मुख्य मंत्री विधानचन्द्र राय साहब ने तो

बयान निकाल करके उस लड़ाई की निन्दा की थी। वह लड़ाई कैसे चली, उसका भी हवाला दिये देता हूँ। आज जो नेपाल के प्रधान मन्त्री हैं, श्री विश्वेश्वरप्रसाद कोईराला, वे गोआ में मेरी गिरफ़तारी के कुछ अरसे बाद आये। सिर्फ़ वे ही नहीं, नेपाल के तीन-चार प्रतिनिधि मंडल भी मेरे पास आये। उनमें जवान लड़के भी थे। जो जवान थे उनमें से कुछ ने मुझे उलाहना दिया कि तुम इतनी दूर जा कर गोवा वालों की तो फ़िकर करते हो, लेकिन नेपाल में क्या हो रहा है, कभी इसकी तरफ़ तो देखो। खैर, मैंने कोईराला से कहा कि आप कांग्रेस नेताओं के पास जाओ, क्योंकि यह बड़ा मसला है और हिन्दुस्तान की किसी छोटी पार्टी के नेता को उसे अपने हाथ में नहीं लेना चाहिए। उन्होंने मुझे कहा कि वहाँ से मैं ठुकराया जा चुका हूँ। फिर मैंने उनसे कहा कि देखो, आप बिहार के रहने वाले हो, इसलिए, अगर मान लो कि आप सोशलिस्ट पार्टी वालों के पास भी आते हो तो आप जयप्रकाश जी के पास जाओ क्योंकि आपके इलाक़े के रहने वाले वो नेता हैं और अच्छा हो आप उनसे बातचीत करो।

कुछ अरसे के बाद वे मेरे पास आये और उन्होंने कहा कि अब जब मैं सब जगहों से ठकराया जा चुका हूँ, मुझे कोई सहारा नहीं मिल रहा है, तब मैं तुमसे कहता हूँ कि तुम नेपाल की इस राणाशाही के खिलाफ़ लड़ाई में हमारी मदद करो। इस पर मैंने कहा कि जब तुम्हारे मामले को कोई उठा नहीं रहा है तब बात दूसरी है, तब मैं राज़ी हूँ।

फिर लगातार चार बरस तक मुझ जैसे आदमियों ने ही नेपाल में, राणाशाही के खिलाफ़ जो लड़ाई चली उसमें जो कुछ बन पड़ा, मदद पहुँचायी। और जो हिन्दुस्तान में अखबार चलाने वाले लोग हैं, लेक्चर देने वाले लोग हैं, उन्होंने इस लड़ाई को तिरछे टेढ़े-मेढ़े, व्यंग्य के रूप में कहा कि यह राणाशाही के खिलाफ़ लड़ाई नहीं, बल्कि हिन्दुस्तान-नेपाल के रिश्ते को बिगाड़ने की लड़ाई है। दरअसल चीज़ क्या है, देखने के दो तरीक़े अलग-अलग हैं। मैं नहीं चाहता कि कांग्रेसी या उनके जैसे लोग हिन्दुस्तान की सुरक्षा नहीं चाहते या उत्तरी सीमाओं को मज़बूत नहीं देखना चाहते। उनकी भी इच्छा है कि सीमा ठीक रहे। लेकिन सीमा को ठीक कैसे रखा जाए। सीमा में जो लोग राजा हैं, या शासक हैं या सरकारी लोग हैं, वे हिन्दुस्तान के दोस्त हो कर रहें तो सीमाएँ मज़बूत रहेंगी। सोचने का दृष्टिकोण एक यह है कि नेपाल में जो सरकार है, अगर वह हिन्दुस्तान की दोस्त रहती है, तो नेपाल हिन्दुस्तान का दोस्त, अच्छा और मज़बूत प्रहरी रह सकता है। दूसरा सोचने का ढंग यह है कि राणाशाही की मातहती में नेपाल इतना कमज़ोर रहेगा कि कोई परदेशी या दुशमन आसानी से नेपाल पर क़ब्ज़ा जमा सकेगा, इसलिए, नेपाल की जनता को उभाड़ करके उसे अपने मुल्क का राजा बनाओ और पुराने राज्य की जो व्यवस्था है उसको खतम करो। फिर जा कर वह इलाक़ा मज़बूत बनेगा। ये दोनों दृष्टिकोण साफ़-साफ़ तौर पर चार बरस तक राणाशाही के खिलाफ़ जो लड़ाई चली, उसमें सामने आये। यह सही है कि कुछ लोग मुझसे कहेंगे कि क्या हुआ, आखिर बाद में, राणाशाही खतम

हुई, नेपाली कांग्रेस नेपाल की राजा बनी; लेकिन नेपाल किस रास्ते गया, और अब वह प्रधान-मन्त्री वग़ैरह कहाँ हैं ? कुछ लोग तो यह कहेंगे कि मुझ जैसे आदमियों को कोई चीज़ शुरू करना आता है, उसको चलाना भी किसी हद तक आता है, लेकिन ख़तम करते वक़्त मामला बिगड़ जाया करता है, और उसमें दोष मुझको देंगे । मैं उस बहस में नहीं पड़ना चाहता । मैं सिर्फ़ इतना कह दूं कि यह मामला और गहरा है । भिखमंगा ही भिखमंगे के पास आया करता है, और अमीर के पास नहीं जाता । ग़रीब ग़रीब के पास आता है और जब उसको अमीरी मिल जाती है तो जिस ग़रीब ने उसकी मदद की है, उसका साथ छोड़ना वह ज़रूरी समझता है, बल्कि आँख बचा करके चलता है कि कहीं याद न दिलाए पुरानी, और फिर वह नयों के साथ दोस्ती क़ायम करने लग जाता है. कुछ उसको ज़रूरत ही होती है । यह बिलकुल साफ़-सी बात है कि जो काठमांडू की गद्दी पर बैठेगा उसका दिल्ली की गद्दी वाले के साथ सम्बन्ध अवश्यम्भावी हो कर रहेगा । उसमें मुझ जैसे आद-मियों का क्या मतलब है ? इस चीज़ को मैं समझता हूँ, इसलिए मुझे ज़रा भी मलाल नहीं है । यह तो एक अवश्यम्भावी चीज़ थी । हिन्दुस्तान के मामले में, नेपाल के मामले में और विश्वशान्ति के मामले में या आज़ादी के मामले में हमारे जैसे आदमियों ने अपना कर्त्तव्य निभाया । यह बात दूसरी है कि उससे हमारा नज़दीकी निजी स्वार्थ न सिद्ध हुआ हो, उसकी कोई चिन्ता नहीं । लेकिन एक काम पूरा हुआ । नेपाल की जनता किसी हद तक, कम से कम आधी दूरी तक, इतनी कड़ी बनी कि अब एक परदेशी और पड़ोसी उस पर उतनी आसानी से आँखें नहीं लगा सकता जितनी कि लद्दाख या उर्वसीअम् पर, और हो सकता है कि दूसरी मंज़िल भी पार हो जाए ।

लद्दाख के मामले मे मैं इतना ज़रूर कहना चाहूँगा कि मालूम होता है कि चीन का हमला दो-तीन बरस से चला आ रहा है । सड़क तक बना डाली, अन्दर घुस गये । दिल्ली की सरकार क्या अफ़ीम खाये हुए थी, भाँग पीये हुए थी ? और, सरकार बहुत चालाक भी हो गयी है । जब किसी ऐसे मामले में फँस जाती है तो वह अपने छोटे क़ुसूर को मान करके जनता की आँखें बड़े क़ुसूर से हटा लिया करती है । लद्दाख में इसने कितना बड़ा जुर्म किया, उस पर जनता की निगाहें न जाएँ इसलिए प्रधान मन्त्री ने यह क़बूल कर लिया कि हाँ, चीनियों ने जब सड़क बनाना शुरू किया था, तभी लोकसभा में उन्हें इत्तला दे देनी चाहिए थी । लोगों ने सुना । मान लिया कि देखो भाई अपनी ग़लती क़बूल कर रहा है, माफ़ करो । लेकिन कौन-सी ग़लती क़बूल की, इत्तला न देने वाली । इससे बड़ी ग़लती कौन-सी थी ? इत्तला देते न देते, लेकिन तीन बरस पहले जब चीन ने सीमाओं में प्रवेश किया तब तुमने किया क्या ? कहा क्या, क्या नहीं कहा, इत्तला दी, नहीं दी, यह तो सब छोटे दरजे के सवाल हैं । असली सवाल है, किया क्या ? कुछ नहीं किया । वह पूरा उत्तरी सीमा का इलाक़ा पिछले दस-बारह बरसों में कमज़ोर रखा गया । किसी हद तक मैं तर्क के साथ और सुबूत के साथ यह कह सकता हूँ कि जानबूझ कर । एक ग़लत धारणा में पड़े रहे

कि हिमालय बड़ा ऊँचा है, कौन इन इलाक़ों में लड़ाई का सामान इकट्ठा करेगा और लड़ाई की अवस्था पैदा करेगा। दूसरी ग़लत धारणा थी कि हिन्दुस्तान और चीन की दोस्ती तो हज़ारों बरस पुरानी है, जैसे जो दोस्ती पुरानी होती है, वह भला बिगड़ थोड़े ही सकती है। इस तरह की कुछ अजीब ग़लत धारणाएँ चलती थीं, और उसके अलावा यह कि इस सोये हुए इलाक़े को जितना सुला कर रखो, उतना अच्छा। क्यों छेड़ते हो, क्यों उभाड़ते हो, न जाने उसके उल्टे भी नतीजे निकल सकते हैं।

लेकिन यह इलाक़ा जाग चुका था। इतिहास में पहले भी जागा रहा है, क्योंकि हिमालय में आने और जाने वाले लोग इतिहास में पहले भी रहे हैं और अब तो शायद जितनी ऊँचाई सरगा माथा की है, उसके पास से भी लोग आने-जाने लग जाएँ तो ताज्जुब न हो। यह इलाक़ा जाग चुका था। इसके बारे में क़रीब नौ-दस बरस पहले एक हिमालयी नीति भी बनायी गयी थी कि इस इलाक़े के लोगों को किस तरह दिमाग़ से, और जो सामाजिक और आर्थिक ज़िन्दगी होती है, उस तरह से मज़बूत बनाया जाए। इस हिमालयी नीति को ले करके कुछ आगे भी बढ़ा गया था। लेकिन इन सब चीज़ों के होते हुए हिन्द सरकार ने और हिन्दुस्तान के शासक लोगों ने उत्तरी सीमा को मज़बूत बनाने के लिए कुछ भी नहीं किया। फिर, मैं आपसे बतला दूँ मज़बूती, दुतरफ़ा है; एक तरफ़ तो माली और हथियारी मज़बूती, और दूसरी तरफ़ लोगों के मन की मज़बूती। जो पिछले दो-चार-पाँच हज़ार बरस से एक ही तरह की ज़िन्दगी मे जकड़ गये हैं, उनके मनों को मज़बूत बनाना इस मानी में कि उनको नया बनाना, नयी दुनिया के लायक़ उनको बनाना, उनके मन में कौतुहल पैदा करना, कुछ नयी खोज और चाह पैदा करना। यह काम नहीं हुआ।

सरकार की तरफ़ से जो सफ़ाई दी गयी थी, ऊपर और पहाड़ी ज़मीन के मामले में, वह बहुत ही गन्दी सफ़ाई थी। किसी भी हिन्दुस्तानी का अपने मुँह से ऐसा शब्द नहीं निकालना चाहिए। जब हिन्दुस्तान का कोई भी इलाक़ा या ज़मीन दुश्मन के क़ब्ज़े में चली गयी हो उस वक़्त उस ज़मीन के बारे में कहना कि वह पथरीली और ऊसर है, वह ऐसा ही है, जैसे कोई बच्चा अपनी माँ की नाक के बारे में कहे कि उसमें दाग़ लगा हुआ है या उँगली के बारे में कहे कि इसमें फोड़ा निकला हुआ है या सड़ी हुई है। यह बातें की नहीं जातीं।

लेकिन इससे साफ़ मालूम होता है कि इस एक उत्तरी सीमा के दृष्टिकोण से हिन्दुस्तान को कितना कमज़ोर रखा गया। हो सकता है कि कुछ इसके पीछे चालाकी भी रही हो। जब आदमी बहुत चालाक बनने की कोशिश करता है, तो बहुत बेवक़ूफ़ भी बन जाया करता है। आज जो दुनिया में अतलांतिक और सोवियत खेमों का झगड़ा है, उसमें कुछ चालाक आदमियों की ऐसी तबियत रहती है कि ज़रा दोनों तरफ़ की छेड़खानी को देख लो, कुछ ज़रा दोनों तरफ़ से फ़ायदा ले लो, हो सकता है, इसमें से भी कुछ नतीजा निकले,

उसमें से भी कुछ नतीजा निकले। ऐसा चालाक आदमी आखिर को फँस जाया करता है। लेकिन इस सिलसिले में मेरे पास कोई लम्बे सबूत नहीं हैं। बाक़ी बात तो हमने सबूत के साथ की, लेकिन यह एक अन्दाज़ है। लद्दाख के बारे में, तीन साल की कुम्भकरणी निद्रा के बारे में मैंने खाली एक अन्दाज़ लगाया।

इसी के साथ-साथ, जो हिन्दुस्तान और चीन की पूरी ताक़त की तुलना का दृष्टिकोण है, उससे भी इस मसले को देखो। मैं कोई चीन का हिमायती नहीं, न चीन की साम्यवादी प्रथा को पसन्द करता हूँ। लेकिन वह आदमी जो अपनी आँखों को फोड़ लेता है, बड़ा खतरनाक होता है। इसलिए, बिना चीन को पसन्द किये, जो असलियत है, उसको हमें समझ लेना चाहिए। मिसाल के लिए, चीन एक करोड़ टन फ़ौलाद सालाना आज पैदा कर रहा है, जबकि हिन्दुस्तान की सालाना फ़ौलाद की पैदावार २५ लाख टन है, या उससे भी कम। चीन ३५ करोड़ टन कोयला पैदा कर रहा है सालाना, जब हिन्दुस्तान की सालाना पैदावार ५-६ करोड़ टन की है। यह मैंने आपको खाली दो चीज़ों की बातें बतलायीं। जो अनाज का आँकड़ा है, वह हिन्दुस्तान का क़रीब ६-७ करोड़ टन है, और चीन का क़रीब २०-२२ करोड़ टन है। झट से लोग यह कह देंगे कि चीन की आबादी ज़्यादा है, तो चीन की आबादी और हिन्दुस्तान की आबादी में खाली ड्योढ़े का फ़रक़ है—४० करोड़ और ६० करोड़ ही का फ़रक़ है। यह भी कहना मुश्किल है कि क्या सचमुच वह साठ करोड़ है। अभी जो मैंने बतलाया उसमें कितना फ़रक़ है। २५ लाख और १ करोड़, ५-६ करोड़ और ३५ करोड़, ६-७ करोड़ और २०-२२ करोड़। चार गुने और पाँच गुने का फ़र्क़ है। यह कोई मामूली चीज नहीं।

इस मसले पर सोच विचार करते हुए, मैं आपको कुछ कारणों की तरफ़ ले जाना चाहता हूँ और वह भी मिसाल दे कर। हिन्दुस्तान और चीन में, दरअसल, फ़रक़ होना चाहिए था। गांधीवाद और मार्क्सवाद में जो कोई फ़रक़ है, और जितना फ़रक़ है, उस हिसाब से हिन्दुस्तान के लोहार जो लाखों की तादाद में गाँवों में फैले हुए हैं, उनकी मदद से फ़ौलाद की छोटी-छोटी भट्टियाँ क़ायम करके सालाना ५-७ लाख टन फ़ौलाद की पैदावार बढ़ायी जाती। लेकिन हिन्दुस्तान में तो रूरकेला, भिलाई और दुर्गापुर में बड़े-बड़े कारखाने बने। रूस और अमरीका की नक़ल करने वाले ऐसे नशेबाज़ लोग मौजूद हैं कि उन्हें कोई दूसरी चीज दिखाई नहीं पड़ी। चीन में हज़ारों और शायद लाखों तक ऐसी छोटी-छोटी भट्टियों का इस्तेमाल करके फ़ौलाद की पैदावार को बढ़ाया गया। जिसे ग्रामोद्योग हम लोग अपने मुल्क में कहा करते हैं, उसको सचमुच एक बड़े पैमाने पर और यंत्रों का इस्तेमाल करके नहीं, बिना यंत्रों के और छोटे पैमाने के उद्योग धंधों की मदद ले कर, चीन में, पैदावार को बढ़ाने की कोशिश की गयी। इधर, दूसरी तरफ़, जब किसी ग़रीब और पिछड़े हुए देश को ऊँचा उठाना होता है और खास करके आज के ज़माने में, तब लोग सोचते हैं, मुल्क को रूस या अमरीका के जैसा नया और आधुनिक बनाओ।

इस आधुनिकता के दो स्वरूप हैं। एक तो, खपत की आधुनिकता करो, और दूसरे, पैदावार की आधुनिकता करो। यह बात अलग है कि पैदावार की आधुनिकता करते वक़्त भी कई तरह के सवाल उठते हैं जैसे कि मशीनें कैसी हों, यन्त्र कैसे हों, विज्ञान का कैसा इस्तेमाल हो। ये सवाल उठने चाहिए। मैं समझता हूँ कि जब हिन्दुस्तान में अच्छी सरकार आएगी तो ये सवाल उठेंगे। लेकिन अभी मैं आपको खपत की आधनिकता के बारे में कहना चाहता हूँ। चीन जैसे मुल्क ने खपत की आधुनिकता को दबा कर रखा। उस सवाल को उठने ही नहीं दिया, और हिन्दुस्तान जैसे मुल्क खपत की आधुनिकता में ही अपनी पूंजी और आमदनी को बरबाद करते रहे। हम ग़रीब हैं। हमारे यहाँ कल-कारखाने नहीं हैं। हमारे खेती-कारखाने को नया बनाना है। उसके लिए पूँजी चाहिए। अगर हम अपनी पूँजी को ऐयाशी की चीज़ों में खतम कर देते हैं, अपनी जिन्दगी को खूबसूरत बनाने के लिए, या आरामदेह बनाने के लिए, तो फिर नयी जिन्दगी के बनाने में कहाँ उतनी पूँजी रह पाती है। बिना इस बात पर बहस किये हुए मैं ख़ाली मिसाल के लिए एक तर्क इस्तेमाल किये देता हूँ कि हिन्दुस्तान की सब पंचवर्षीय योजनाएँ है और पूँजी का खर्चा है, उनमे से आधा या आधे से भी ज्यादा खपत की आधुनिकता पर खर्च हो जाता है, कैसे बढ़िया मकान बनाये जाएँ, कैसे बढ़िया रेलगाड़ियाँ बनायी जाएँ, कैसे प्लाटफ़ार्म बढ़िया बनाये जाएँ, कैसे हवाई अड्डे अच्छे बनाये जाएँ। यह है खपत की आधुनिकता।

जा यहाँ के बड़े लोग है, उनका खर्चा बड़ा विचित्र है। मैं आपको मिसालें दिये देता हूँ। एक तरफ़ आप चीन के सरकारी नेताओं को देखो, माओत्से तुंग को, किसी हद तक चीन के चू-एन-लाई को भी। सच पूछो तो हो-ची-मिन्ह इसके लिए सबसे अच्छी मिसाल हैं। अगर कोई आदमी अच्छी तरह से इनके चेहरों से परिचित न हो और इन्हें कहीं सड़क पर देख ले, वह हरगिज़ नहीं बतला सकेगा कि मामूली चीनी या हिन्द-चीनी से किस तरह अलग हैं। उनकी पोशाक इस तरह की रहती है। आपमें से जो हो-ची-मिन्ह की तसवीरें देख चुके हों, वह तो हिन्दुस्तान में आये थे, उनका जो छोटा-सा पाजामा और छोटा-सा कोट है, पतला और बिना किसी फ़ैशन वाला, वह हिन्दचीन का हरेक बाशिन्दा पहनता है। वही हालत चीन की है और मैं समझता हूँ कि अब रूस में थोड़ा-बहुत बदलाव आने लगा होगा, लेकिन तीस-चालीस बरस तक स्टालिन और लेनिन के ज़माने में भी जो शासक वर्ग, नेता वर्ग और राज वर्ग का कपड़ा था, वह बिलकुल जनता के कपड़े से एक जैसा था, जिसमें कपड़े का अलगाव जनता और शासक में बिलकुल भी न रह जाए। हिन्दुस्तान में, ठीक इसके उलटा है। यहाँ शासक वर्ग का अलग कपड़ा है, अलग पहरावा है, सामन्ती पहरावा, चाहे वह यूरोपी लोगों की गलालंगोट हो, चाहे चार सौ बरस पहले के हिन्दुस्तान का चूड़ीदार पाजामा हो। पोशाक में कुछ अलगाव होना चाहिए कि झट से पहचान में आ जाएँ कि यह राजा वर्ग का आदमी है या कि जनता का। पिछले बारह बरसों में लगातार कोशिश की गयी है कि दरबारी कपड़े को और जनता के कपड़ों को

अलग कर दिया जाए और पहनने वाले के जिस्म पर एक तरह से लेबल लगा रहे कि राजा आ रहा है। उसी ढंग से, अलगाव का जो दूसरा बड़ा रूप है, उसे देखो। चीन या हिन्द-चीन में, और पहले रूस में भी, किसी ने यह नहीं सोचा कि तरक़्क़ी करने के लिए एक सामंती भाषा की ज़रूरत है जिसे साधारण जनता समझ न सके। जो काम हुआ है चीन में, चीनी भाषा के ज़रिये हुआ है। हिन्दुस्तान में उसके उलटे, यह सिद्धान्त रखा गया कि हिन्दुस्तान की अपनी भाषाएँ इतनी कमज़ोर हैं कि उनमें आधुनिकीकरण हो नहीं सकता, इसलिए किसी विदेशी आधुनिक भाषा का इस्तेमाल करो। वही अलगाव। पोशाक में अल-गाव, दरबारी पोशाक; भाषा में अलगाव, दरबारी भाषा, जनता के साथ सम्बन्ध तोड़ दो। मैं समझ सकता हूँ यह एक बहुत बड़ा कारण है कि चीन अपनी ताक़त को बढ़ा पाया, क्योंकि चीन के शासक वर्ग और नेता वर्ग और जनता में भाषा और कपड़े, रहन-सहन और खर्चे का अलगाव नहीं रहा है, या बहुत कम रहा है। हिन्दुस्तान में वह अलगाव बहुत बड़े पैमाने पर बढ़ता ही चला गया।

इसी तरह से आप विज्ञान की तरफ़ देखो। विज्ञान को बढ़ाने की बातें तो अपने मुल्क में हुईं, लेकिन कैसे? यहाँ इमारतों को खड़ा किया गया। तरह-तरह की अनुसन्धान-शालाएँ, इमारतें खड़ी करती चली गयीं। मैं समझता हूँ कि अब तक हिन्दुस्तान में पन्द्रह बीस ऐसी अनुसन्धानशालाएँ बन गयी विज्ञान की, कि अगर कोई आदमी बाहर से देखे तो सोचे कि हिन्दुस्तान विज्ञान में बड़ी तरक़्क़ी कर रहा है। चीन में या इसके पहले यूरोप में या उसके जो बड़े देश हैं, वहाँ सबसे पहले वैज्ञानिक पर आँखें लगायी गयीं कि जो विज्ञान में खोज करता है, उसको तैयार करो, उसका दिमाग़ बनाओ कि वह खोज करने के लायक़ हो। हिन्दुस्तान में, पहले इमारत, फिर यन्त्र और उसके बाद उसको इस्तेमाल करने वाला आदमी, यानी वैज्ञानिक। चीन में, कोई नयी बात नहीं, यूरोप की ही नक़ल करते हुए पहले नम्बर पर वैज्ञानिक, दूसरे नम्बर पर यन्त्र और तीसरे नम्बर पर इमारत। हमारे यहाँ सब चीज़ें उलट दी गयी हैं। न जाने क्या हमारी तक़दीर खराब रही कि पिछले बारह बरस में जहाँ कहीं, जिस किसी दृष्टि से आप देखें, मुल्क की पूरी ताक़त को इकट्ठा करने का, बढ़ाने का कोई भी अच्छा इन्तज़ाम नहीं किया गया।

इस दूसरे कोने को देखने के साथ ही साथ झट से सवाल उठ जाता है विदेश नीति का। देश के अन्दर यह कमज़ोरी रही। मैं आपको एक जुमला सुना देना चाहता हूँ, बड़ा खूबसूरत जुमला है। उसे "चौखम्भा" अखबार ने इस्तेमाल किया। उसने कहा कि इस साल, या समझ लो इस महीने में, भाखड़ा और पंचशील दोनों साथ-साथ बह गये। अन्दरूनी मन्दिर, क्योंकि इनको मन्दिर ही कहा गया, देश के अन्दर का मन्दिर भाखड़ा, देश के बाहर का मन्दिर पंचशील, भाखड़ा और पंचशील दोनों साथ-साथ बह गये। अब बारह बरस की जितनी भी बुराइयाँ और कमियाँ रही हैं, वह सब एक साथ इकट्ठा हो कर प्रकट हो रही हैं। क्या रही है यह विदेश नीति, सिवाय इसके कि

हिन्दुस्तानी खुश हो लें, कुछ शब्दों के इस्तेमाल से और सरकार भी खुश हो ले। इसके पीछे कुछ दम नहीं रहा है। अगर किसी विदेशी नेता ने अपने मुल्क में आ कर आपके किसी शब्द का इस्तेमाल कर दिया, पंचशील का इस्तेमाल कर दिया या इसी तरह और किसी शब्द का, तो हम खुश हो जाते हैं कि शान्ति की दुंदुभी बज गयी और हिन्दुस्तान की तूती बोलने लग गयी। लेकिन, दरअसल, पिछले दस-बारह बरस में विदेश नीति के किसी भी मसले को, ठोस मानी में, हिन्दुस्तान ने आगे नहीं बढ़ाया। किसी भी कहना शायद ज्यादा होगा, एक आध अपवाद शायद मिल जाएँ, जैसे कि मैंने कई दफ़ा खुद कहा है, हिन्देशिया वाला अपवाद रहा है। उसमें हिन्दुस्तान ने कुछ ठोस काम किया था। इसी तरह से शायद एकाध और मिल जाएँ। वरना पिछले दस-बारह बरस की विदेश नीति का इतिहास तो खाली लफ़्फ़ाज़ी का इतिहास है, जहाँ तक हिन्दुस्तान का ताल्लुक़ है। लेकिन उस लफ़्फ़ाज़ी में हिन्दुस्तान की जनता फँस गयी। अब जा कर धीरे-धीरे मालूम हो रहा है, जनता को भी, क्योंकि उस नीति में से कोई सफलता तो निकली नहीं। हर जगह मामला बिगड़ गया, चाहे गोआ हो, काश्मीर हो, चाहे उत्तरी सीमा हो, और ज़ाहिर-सी बात है कि साधारण तौर से कोई भी जनता अपनी मुसीबत को तभी समझा करती है जबकि उसके सिर पर हथौड़े की चोट पड़ने लगती है। पहले से समझ लें तो दिक़्क़त क्यों? गोकि पहले से समझ लेना चाहिए था। इसके सभी आसार मौजूद थे। हिन्दुस्तान की विदेश नीति, क्योंकि वह देश की अन्दरूनी ताक़त का इस्तेमाल नहीं कर पा रही थी और क्योंकि देश की अन्दरूनी खेती और कारखाने लूले-लँगड़े रह गये, इसलिए, लाज़िमी तौर से विदेश नीति भी लूली-लँगडी रह गयी। इसमें मुझे कोई बहुत ज्यादा सबूत देने की ज़रूरत नहीं।

इस विदेश नीति ने हमेशा अपने स्वतन्त्र होने का नाज़ किया कि न तो वह अतलान्तिक खेमे की नौकर रही और न सोवियत खेमे की। लेकिन, दरअसल इस विदेश नीति के स्वरूप को आप ढूंढ़ो तो पता चलेगा कि एक अजीब तरह का क़िस्सा चलता रहा है। जैसे तराज़ू में दो पल्ले होते हैं और कभी-कभी आपने दुकानदार को देखा होगा कि ईमानदारी से ही कभी एक पल्ला भारी हो जाता है और कभी दूसरा और कभी-कभी दूकानदार अपने हाथ से ही डंडी मार दिया करता है। कभी एक पल्ला भारी हो गया, कभी दूसरा। पिछले बारह बरस में विदेश नीति के बारे में विदेश नीति का दुकानदार लगातार डंडी मारता रहा है। यह दूसरी बात है कि देखने वाले ऐसे नादान रहे हैं कि उन्हें समझ में नहीं आया कि कब उसने डंडी मारी। लेकिन वह डंडी मारता रहा है। मिसाल के लिए मोटी तौर पर सन् '५२ से सन् '५७ तक तो डंडी कुछ सोवियत खेमे की तरफ़ चल रही थी और सन् '५७ से अब तक, आगे की कौन जाने, मालूम होता है कि अब डंडी अतलांतिकी खेमे की ओर चल रही है और चलेगी। यह डंडी क्यों चलती है? अगर यह कहा जाए कि हिन्दुस्तान की सरकार हर मसले पर अलग-अलग सोच कर

फ़ैसला करती है कि किसमें अमरीकी और अंग्रेज सही कर रहे हैं और किसमें रूसी और चीनी सही कर रहे हैं, तो फिर, लगातार ऐसी डंडी नहीं दीखनी चाहिए। आज मुमकिन है कि कीनिया के मसले पर सोवियत का साथ दे दिया और कल हंगरी के मसले पर अमरीका का, वैसा कुछ हो तो किसी हद तक मैं समझ सकता हूँ। लेकिन यह तो बाक़ायदा चार-चार, पाँच-पाँच साल तक इधर या उधर झुकाव हिन्दुस्तान की विदेश नीति में मिलता है।

इसके कितने सबब हैं, उन सबको तो मैं इस वक़्त नहीं ढूंढ़ना चाहता, लेकिन एकाध सबब की तरफ़ इशारे के लिए मैं आपका ध्यान खीच देना चाहता हूँ। लगता है कि जिधर से कुछ ज्यादा दक्षिणा मिल जाती है, उधर डंडी चल जाती है। हो सकता है कि हिन्दुस्तान के अन्दर जो इन दोनों खेमों के आदमी हैं, उनका असर कभी-कभी इतना ज्यादा पड़ जाता है, या उनके असर के बारे में जब हिन्दुस्तान की सरकार निश्चिन्त हो जाती है कि अब इनके असर को हमने दबा दिया, तब वह उस ढंग की विदेश नीति को अपना लिया करती है। मिसाल के लिए मैं समझता हूँ, कि सन् '५७ तक हिन्दुस्तान की सरकार बेफ़िक्र हो चली थी कि हिन्दुस्तान में सोवियत खेमे के जो एजण्ट हैं, कम्युनिस्ट, उनको इतना पालतू बना लिया है कि अब उनके बारे में इतनी ज्यादा चिन्ता करने की जरूरत नहीं।

विदेश नीति के सम्बन्ध में मैं आपको एक छोटी-सी घटना और सुना देता हूँ। वह लेबनान के दिनों की है। जब लेबनान में अमरीका वालों ने अपनी पलटन उतारी थी, उस वक़्त काफ़ी लोगों के मन भी उखड़े थे। मुझे भी एक-दो दिन तक ऐसा लगा कि शायद विश्वयुद्ध हो जाए। मामला सचमुच बड़ा नाजुक था। गोकि यह सही है कि मेरे दिमाग़ में उस वक़्त था कि अभी इतनी जल्दी विश्वयुद्ध होना सम्भव भी नहीं दीख पड़ता और कुछ मामले दुनिया के ऐसे फँसे गये हैं कि होगा कैसे। फिर भी, वह हालत पैदा हो गयी थी। लेकिन फिर से एक शिखर सम्मेलन की बातें चल पड़ीं, अमरीका है, रूस है, इन लोगों का शिखर सम्मेलन। उस मौक़े पर रूस के नेताओं की तरफ़ से एक बयान भी आ गया कि हमें बड़ी खुशी होगी अगर हिन्दुस्तान भी इस शिखर सम्मेलन में आए। बस क्या था! दिल्ली सरकार की लार टपकने लगी। और आपके प्रधान मंत्री ने एक भाषण में इन सबका ऐलानिया ज़िक्र करते हुए कहा था कि वैसे हम लोगों को कोई ख्वाहिश नहीं कि हम बड़ी जगहों में जा कर बैठें। लेकिन अगर हमें बुलाया गया तो हम उस ज़िम्मेदारी से इनकार भी नहीं करेंगे। यह सही है कि एकतरफ़ा बुलावे पर हम नहीं जाएँगे। बुलावा जब दोनों तरफ़ से आएगा तभी हम जाएँगे। यह कितना बेहूदा बयान है, क्योंकि एकतरफ़ा बुलावे पर आप जा भी नहीं सकते, अगर चाहो भी तो। जा भी सकते हो जब दो तरफ़ा बुलावा हो। रूस और अमरीका, दोनों एक राय के हो जाते हैं तभी तो किसी शिखर सम्मेलन में हिन्दुस्तान का आदमी जा कर बैठ सकता है। उस भाषण से साफ़ मालूम हुआ कि हिन्दुस्तान की विदेश नीति का एक सबसे बड़ा—मैं

तो समझता हूँ सबसे बड़ा, लेकिन एक बहुत ही बड़ा—उद्देश्य यह है कि किस तरह से हिन्दुस्तान के मौजूदा शासकों या शासक को बहुत जबरदस्त अन्तर्राष्ट्रीय रुतबा मिल जाए। यह वैयक्तिक स्वार्थ की बात है कि कैसे उसका नाम, इज्ज़त और शान और इतिहास में स्थान रह जाए, बजाय इसके कि यह देश और दुनिया कैसे नयी दिशा में बदले। लेकिन जब न्योता नहीं आया, तो मुमकिन है उससे भी ठेस लगी हो। कुछ थोड़ा बहुत सीखा हो कि न्योता अगर दुतरफ़ा लेना हो तो थोड़ी डंडी मारना सीखो, क्योंकि एक तरफ़ से आ गया, दूसरी तरफ़ से नहीं आया।

इस शिखर सम्मेलन के बारे में एक बात जरूर कह देना चाहता हूँ क्योंकि शायद होने वाला है, और जो दो सबसे बड़े शक्तिशाली राष्ट्र हैं उनके आदमी आईज़नहोवर साहब और ऋुश्चेव साहब मिल ही चुके हैं। यह बड़ा अच्छा हो रहा है। मैं तो बहुत खुश हूँ। अगर इसका नतीजा कुछ निकलता है तो और खुश होऊँगा, क्योंकि रूस और अमरीका की नीतियों मे थोड़ा सामंजस्य होना शुरू हुआ. कम से कम तनाव मिटा तो, एक बढ़िया बात यह होगी कि दुनिया भर के चालाक लोग और भिखमंगे लोग अपना पेशा खो बैठेंगे और इन चालाक लोगों को और भिगमंगों को भीख माँगने के बजाय, इधर-उधर सहारा ढूंढ़ने के बजाय, अपने पैरों पर आप खड़ा होना होगा। मैं समझता हूँ कि दुनिया के स्वास्थ्य के लिए यह बहुत जरूरी है। जब तक इन दोनों की आपस में होड़ चलती रहती है, तब तक चालाको और भिखमंगों को मौक़ा मिल जाता है कि इनकी होड़ का फ़ायदा उठा कर कभी इनसे कुछ मार लें, कभी उनसे कुछ मार लें। अगर इन दोनों में मुहुब्बत न सही तो मुहब्बत की शुरूआत ही हो जाए, तो फिर इसके बाद दुनिया के शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य में अच्छी तबदीली हो कर रहेगी।

अब मैं विदेश नीति के पूरे इम्तहान के बाद तिब्बत के बारे में थोड़ा जरूर बता दूं, क्योंकि मैंने शुरू में ही कहा था कि वह चौथा कोना है जिससे इस मामले को देखना है। तिब्बत वही इलाक़ा है, जो ठीक हमारी उत्तरी सीमा के साथ जुड़ा हुआ है। ९-१० बरस पहले जब तिब्बत पर चीनियों ने अपना पहला क़ब्ज़ा जमाया था तब कहाँ थी हिन्दुस्तान की सरकार और हिन्दुस्तान की विरोधी पार्टियाँ ? हिन्दुस्तान की सरकार और विरोधी पार्टियाँ, दोनों ही इस विदेश नीति के मामले में गड़बड़ रहे हैं। विरोधी पार्टियाँ, क्यों गड़बड़ रही हैं. यह तो एक लम्बा क़िस्सा है। उसको छोड़ो। लेकिन, अलबत्ता, इस बार चीन के दूसरे झपेटे पर कुछ लोगों ने दलाई लामा के साथ सहानुभूति दिखलायी, तिब्बत के मामले को उठाया, ऐसा लगा कि हिन्दुस्तान की राजनीति में अब सबसे बड़ा सवाल न तो भूदान है, न कूपदान, और न ग्राम दान। अब तो खाली तिब्बत दान ही रह गया है। दस बरस पहले जब चीन ने पहला झपेटा तिब्बत पर मारा था, शेर ने जब अपने शिकार को मारा, तब हिन्दुस्तान की सरकार और दूसरे लोग भी चुप रहे। अब, जब शेर अपने शिकार को खाने की कोशिश कर रहा

है, तब हल्ला मचा रहे हैं। क्या फ़ायदा ? हल्ला फिर भी मचाना चाहिए। लेकिन मैं आपको कह दूँ कि किस तरह दस बरस पहले हिन्दुस्तान की सरकार और जनता ने चुप्पी साध कर बहुत नुक़सान किया दुनिया भर का, तिब्बत का और अपने देश का। उस वक़्त भी मेरे ही जैसे कुछ आदमी थे, जिन्होंने कहा था, यह शिशुहत्या हो रही है, छोटे बच्चे का गला एक राक्षस घोट रहा है। और तब कुछ लोगों ने कहना शुरू किया कि लो, और नहीं बनता तो हिन्दुस्तान और चीन का रिश्ता ही बिगाड़ रहे हैं। उस वक़्त उन्हें चीन की चासनी दिखाई पड़ रही थी, हिन्दी-चीनी भाई-भाई ! हिन्दुस्तान की विदेश नीति में यह चासनी बहुत चलती रहती है, कभी हिन्दी-चीनी भाई-भाई, कभी हिन्दी-रूसी भाई-भाई। अब मैं समझता हूँ कि हिन्दी-अमरीकी भी भाई-भाई होने वाले हैं। और फिर जब कभी अंग्रेजों की रानी एलिजाबेथ आ गयीं तो फिर कहना ही क्या है, हिन्दी-अंग्रेजी तो हमेशा ही भाई-भाई रहे हैं, अब पता नहीं भाई-बहन भी हो जाएँ या क्या हो जाएँ।

किसी भी मसले पर ठीक तरह से सोच-विचार करने की क्षमता सरकार की तो बिलकुल ही नहीं रही है; लेकिन हिन्दुस्तान की पढ़ी-लिखी जनता ने भी अपना कर्तव्य को अदा नहीं किया। क्योंकि उसने मेरे जैसे आदमियों के बारे में तो सोचा कि यह ज़िद्दी हैं, तेज़ हैं, बातें बिना सोचे बोल देते हैं। जो सच बोलने वाले हैं उनकी बातों को तेज़ या ज़िद्दी या प्रखर कह कर टाल दिया गया और जो सच्चाई पर पर्दा डालने वाले लोग हैं उनकी बातों की तरफ़ ध्यान गया। यह एक नुक़सानदेह चीज़ हुई।

तिब्बत के मामले मे मुझे कोई लम्बी ऐतिहासिक बहस नहीं करनी है। मैं समझता हूँ कि तिब्बत आज़ाद होना चाहिए, आज़ाद रहा है। इतिहास में ऐसा भी वक़्त था, जब तिब्बत ने चीन पर राज किया। जो लोग इतिहास की सनदें निकाल कर भविष्य की दुनिया का निर्माण करना चाहते हैं, उनसे तो मैं कहूँगा कि वह सनद निकालो जिसमें तिब्बत ने चीन पर राज किया था, और चीन पर तिब्बत का राज क़ायम कर दो। सनद से क्या मतलब। असलियत देखो। हाँ, सनद के मामले में मैं इतना ज़रूर कह दूँ कि मैं भी मैकमोहन लकीर को किसी हद तक एक साम्राज्यशाही की लकीर मानता हूँ। जो चीन वाले कहते हैं वही मेरी भी राय है। यह बात दूसरी है कि उस बात के नतीजे वे कुछ और निकालते हैं और मैं कुछ और। इस लकीर का नाम ही कैसा है। मैकमोहन साम्राज्यशाही नाम है। वैसे इससे कुछ बहुत ज्यादा नतीजा नहीं निकालना चाहिए, क्योंकि दुनिया की सबसे ऊँची चोटी का असली नाम है सरगा माथा। यह कोई नाम मैं नहीं दे रहा हूँ। नेपाल में सब लोग उस चोटी को सरगामाथा कहते हैं। लेकिन पिछले तीन सौ बरसों में जो शासक लोग रहे हैं, उन्होंने उसका नाम एवरेस्ट मशहूर कर डाला। असली नाम, पुराना नाम, जनता का नाम, नेपाल के लोगों का नाम है सरगामाथा, लेकिन दुनिया भर में और पढ़े-लिखे लोगों में वह माऊंट एवरेस्ट के नाम से मशहूर है।

अगर कोई कह दे कि माऊंट एवरेस्ट नाम है, इसलिए वह चोटी ही नहीं है, तब तो वह ग़लत बात होगी। असल बात यह है कि सरगामाथा का नाम ग़लती से माऊंट एवरेस्ट हो गया, क्योंकि हम भूरे, काले, पीले मुंह वाले लोग ग़ुलाम हो गये, अंग्रेज़ का नाम आ गया। मैकमोहन लाइन के पीछे जो ज़मीन रही है वह ज़मीन साम्राज्यशाही नहीं है। मैकमोहन लाइन को साम्राज्यशाही मानना तो इस सफ़ाई के साथ-साथ। अधिकतर उसका जो हिस्सा है, वह ठीक ही है। लेकिन अब जहाँ मैं उसमें तबदीली करना चाहूँगा, वह तिब्बत का है। तिब्बत चीन का क्यों रहे? तिब्बत के लोग स्वतन्त्र क्यों न हों? और अगर नाता रिश्ता रखना है तो साफ़ सबूत है, इतिहास भी है और आजकल की असलियत भी है कि पश्चिमी तिब्बत जिसमें मानसरोवर पड़ता है, उसका सम्बन्ध हिन्दुस्तान से कहीं ज्यादा है, बनिस्बत चीन के। तिब्बत की लिपि, तिब्बत की भाषा पर प्रभाव, तिब्बती रहन-सहन के ढग और सोचने के ढंग पर हिन्दुस्तान का, चीन के मुक़ाबले में कहीं ज्यादा असर रहा है। मैं कुछ ग़लत कह गया। किसी देश का किसी देश पर अगर असर रहा भी हो तो उसका ज़िक्र नहीं करना चाहिए। यह साम्राज्यशाही की भाषा है, अपने देश को चढ़ाने-बढ़ाने की भी भाषा है, दो देशों के पारस्परिक रिश्तों को बिगाडने वाली भी भाषा है। यों कहो कि लिपि भाषा, धर्म, रहन-सहन, जीवन के ढंग, सोचने के तरीक़ों के मामले में हिन्दुस्तान और तिब्बत में लेना-देना कहीं ज्यादा रहा है, बनिस्बत तिब्बत और चीन के। यह ज्यादा सही है।

इसके साथ-साथ मैं इतना भी बता देना चाहता हूँ कि जिस ढंग से नेपाल की राणाशाही के खिलाफ़ लड़ाई करने में हिन्दुस्तान की बहुत-सी पार्टियों, ताक़तों और नेताओं ने आनाकानी की, उसी ढंग से तिब्बत वाले मामले में भी आनाकानी रही। मैं लामाशाही के धार्मिक स्वरूप को तो मानता हूँ, चाहे उस पर मेरी जो भी राय हो। हमको अपनी राय रखने का हक़ है। हो सकता है, कुछ लोग समझें कि लामाशाही खतम होनी चाहिए जिस तरह और भी जो धार्मिक पंथ हैं वह खतम होने चाहिए। लेकिन लामाशाही के मामले में इतना मैं कहूँगा और हर भला आदमी कहेगा कि तिब्बत की जनता आगे चल कर और समझ-बूझ कर समझौते के माफ़त जो चाहे सो करे, लेकिन लामाशाही की धार्मिक ताक़त को छेड़ना नहीं चाहिए। परन्तु लामाशाही का जो आर्थिक और राजकीय पहलू है, उसमें तबदीली लानी चाहिए। तिब्बत में लामाओं की ज़मीनें बहुत हैं। लामाओं की ज़मीनें थीं, उनका राज्य पर अधिकार था और वे राज्य चलाते थे। ज़मीनों के ऊपर अधिकार, मिलकियत के ऊपर अधिकार और राज्य के ऊपर अधिकार, यह बदलना चाहिए। यह नहीं हो सकता कि तिब्बत के साथ सहानुभूति दिखलाओ। दलाई लामा के साथ सहानुभूति दिखलाने का हर्गिज़ यह मतलब नहीं होना चाहिए कि इनकी हर बात के साथ सहानुभूति दिखाओ। यह मैं मानता हूँ कि दलाई लामा आज दुःखी और पददलित तिब्बत का प्रतीक बन गया है। लेकिन हमें इस बात को समझ

लेना चाहिए, आज न सही, दस-बीस बरस के बाद हिन्दुस्तान की जनता इस बात को समझेगी कि विदेश नीति को ठोस पायों पर अगर खड़ा करना चाहते हो तो अपने दोस्त और पड़ोसियों को मजबूत बनाना पड़ेगा। तिब्बत की चालीस लाख जनता जो लामाशाही के धार्मिक के साथ-साथ आर्थिक और राजनीतिक शिकंजे में जकड़ी हुई है, कभी भी मजबूत हो नहीं सकती। अगर मान लो लामाशाही के इन दो पहलुओं के बारे में पन्द्रह-बीस बरस, पच्चीस बरस से कुछ आन्दोलन हुए होते, कुछ आवाजें उठी होतीं, कुछ हिन्दुस्तान में भी उत्तेजना होती, तो वहाँ पर भी कुछ नवीकरण हो गया होता। लेकिन उस तरफ़ ध्यान नहीं दिया गया, और आखिर में जब कोई दुर्घटना हो जाती है, तो फिर चिल्लपों मचाने से कोई फ़ायदा रहता नहीं।

मैंने चारो कोनों से हिन्दुस्तान चीन के मसले को कुछ दिखाने की कोशिश की। अब पूरा सवाल देखते है तिब्बत, उत्तरी सीमा, विदेश नीति, और पूरी ताक़त को मिला-जुला कर तो एक बात साफ़ हो जाती है कि हिन्दुस्तान कमजोरी की हालत में है। सीमा में कमजोर है, जहाँ दिल है, दिल्ली, और उसके आसपास का इलाक़ा, वहाँ कमज़ोर है। ऐसे मौक़े पर सवाल उठ जाता है कि बताओ, क्या किया जाए? यह जवाब देना हमारा काम नहीं है कि क्या किया जाए। हिन्दुस्तान की सरकार ने यह एक अच्छा तरीक़ा निकाल लिया है कि बरसो तक किसी मामले को बिगाड़ते रहो, मुल्क को कमजोर बना डालो और फिर जब सिर पर हथौड़ा पड़ने लगे तो जनता से कहना शुरू करो कि बताओ, अब क्या किया जाए। यही होता है अपने विदेशी मामलों में। आपको याद होगा कि कुछ अरसा पहले इसी तरह से हिन्दुस्तान की जनता को अमरीका के खिलाफ़ प्रदर्शन करने के लिए उकसाया गया था, क्योंकि अमरीका ने पाकिस्तान को पलटनी मदद देना शुरू किया था। जब हिन्दुस्तान की विदेश नीति बहुत ज़्यादा असफल होने लगती है, तो वह किसी न किसी तरह से जनता को उकसा कर अपनी बात कहला देना चाहती है। अबकी बार भी हिन्दुस्तान की जनता को उकसाया गया था, सीमा वाले मामले में। जनता से माँग की कि सीमा की चल कर रक्षा करो, मुक़ाबला करो, पलटनी मुक़ाबला, वग़ैरह-वग़ैरह। मेरे जैसे आदमी के मुँह से आप ऐसी बात नहीं सुनोगे कि जा कर चीन का मुक़ाबला करो। कैसा मुक़ाबला करो, पलटनी करो या दूसरा। हिन्दुस्तान के एक सही और मामूली नागरिक के नाते जो हम लोगो को कहना चाहिए, वह यह है: हिन्दुस्तान की जिन जमीनो पर चीन ने क़ब्जा कर लिया है, उन जमीनों को हिन्दुस्तान की सरकार वापस ले। वह चीन के साथ पचशील की बात करके वापस लेती है, या चीन के दोस्त क्रुश्चेव साहब से बीच बचाव करवा कर वापस लेती है या और तरीक़ों से वापस लेती है, इससे मुझको कोई मतलब नहीं। जिस तरीक़े को भी अखतियार करना हो हिन्दुस्तान की सरकार को, वह तरीक़ा अखतियार करे क्योंकि वह गद्दी पर बैठी हुई है, उसके पास पलटन की सब इत्तलाएँ हैं, उधर वह चीन की पलटन को जानती है, इधर अपनी ताक़त,

जैसी बनायी या बिगाड़ी है, उसको जानती है। इसलिए सोच समझ कर वह अपना ढंग निकाले। मैं हिन्दुस्तान के नागरिक के नाते खाली यह माँग ज़ोर से करता हूँ कि जो ज़मीनें हमारी गयी हैं, वे वापस आनी चाहिए, जल्दी वापस आनी चाहिए, और, हिन्दुस्तान की सरकार को उसमें मज़बूती के साथ आगे क़दम बढ़ाना चाहिए।

अब होता क्या है ? हिन्दुस्तान की सरकार तो खाली चालाक है। ज़मीनें उसको वापस लेना-लिवाना नहीं है। वह तो फँसाना चाहती है। जनता की तरफ़ से माँगें कुछ लोग कर दिया करते हैं, चलो पलटनी मुक़ाबला करो। तब प्रधान मंत्री को कहने का मौक़ा मिल जाता है कि हम थोड़े ही पलटन इस्तेमाल करने वाले लोग हैं। यह तो जंगली तरीक़े होते हैं, वग़ैरह-वग़ैरह। झूठी-सी बहस खड़ी हो जाती है। हमको यह झूठी बहस खड़ी नहीं करनी चाहिए। असली बात है कि वे ज़मीनें वापस लो।

लोग कह सकते हैं कि इसमें तुम क्या करोगे ? आम तौर से ऐसे विषयों पर लेक्चर देने वाले लोग कम से कम भाषण में अपना खून बहुत आसानी से बहा दिया करते हैं—एक-एक क़तरा अपने खून का बहा देंगे चीन का मुक़ाबला करने में। अब तक पिछले दस-पन्द्रह दिन या दो-तीन महीनों में जितने खून के क़तरे बहे हैं, अगर उन भाषण देने वालों का हिसाब पूरा लगाया जाए तो अब तक उनके जिस्म में कोई खून रहना नहीं चाहिए था। खैर, मुझे तो, इस तरह के भाषण नहीं देना है, क्योंकि मेरे जैसी उम्र के आदमी तो अब कोई पलटन में जाने वाले हैं नहीं। इसलिए यह फ़िज़ूल का सवाल है। मैंने तो सुना है कि बहुत से नये और पुराने गाँधीवादियों की तलवार अब की दफ़ा बहुत ज़ोर से चमक पड़ी। नया-नया गाँधीवाद जो आया है।

पलटन के बारे में एक छोटा-सा बीच में पटाक्षेप किये देता हूँ। पलटन मुझे पसन्द नहीं, कहीं पसन्द नहीं, दुनिया में पसन्द नहीं, हिन्दुस्तान में पसन्द नहीं। पलटन की पूरी प्रथा खतम की जाए तो अच्छा होगा। शायद, वह खतम होगी, किसी दिन, अगर दुनिया को तरक्क़ी करना है और बचना है। लेकिन जब तक पलटन है, तब तक उसका इन्तज़ाम ठीक चलना चाहिए—इन्तज़ाम और इस्तेमाल दोनों। और दोनों में गड़बड़ चली। इस्तेमाल की बात तो अभी तक साफ़ हो गयी। अब इन्तज़ाम की बात भी थोड़ी बहुत मैं कह देना चाहता हूँ। पिछले कुछ अरसे में पलटन के इन्तज़ाम में तरह-तरह की ग़लतियाँ आयी हैं। कुछ बड़े-बड़े अफ़सरों ने इस्तीफ़े दिये हैं। दिल्ली की सरकार झूठ बोली, जब उसने कहा था कि पलटन मे पक्षपात, जात का पक्षपात या गुट का पक्षपात या राजनीति का पक्षपात, नहीं हुआ और अफ़सरों की पदोन्नति बिलकुल क़ायदे से हुई, क्योंकि मुझ जैसे बाहरी आदमी को भी मालूम है कि पिछले ८–१० महीनों में दो बड़े अफ़सरों ने इस्तीफ़ा दिया, जिसमें से एक का नाम मैं आपको सुनाये देता हूँ—जयसिंह आपजी। ज़रूरत हुई और कोई पूछेगा तो दूसरे का भी नाम बता सकता हूँ। मुमकिन है कि ऐसे बहुत से दूसरे अफ़सर रहे होंगे।

इस सवाल को ले कर तिमैया साहब और मेनन साहब में थोड़ी-बहुत चोंच लड़ गयी। आज जनता को सही रास्ता दिखलाने वाले अखबार रह ही नहीं गये हैं। इस चोंच लड़ौवल को हर अखबार ने अपने किसी मतलब से ऐसा दिखाया कि जैसे मानो ये दोनों आपस में लड़ गये हों। आजकल अखबारों में ऐसी चर्चा चल पड़ी है कि आखिर को बदमाश आदमी तो तिमैया साहब है, उसको हटाओ; या बदमाश आदमी श्री कृष्णमेनन है, उसको हटाओ। लेकिन अगर ये बदमाश हैं दोनों, तो किसके सहारे चलते हैं, किसके मुक़र्रर किये हुए हैं, किसके बल पर वहाँ हैं? फिर, दोनों में कोई विशेष फ़र्क़ नहीं है। एक अंग्रेज़ी वाम-पंथियों का आदमी है और दूसरा अंग्रेज़ी दक्षिण-पंथियों का। तिमैया अंग्रेज़ी दक्षिण-पंथियों का लाला-पाला-पोसा हुआ आदमी है और श्री कृष्णमेनन अंग्रेज़ी वाम-पंथियों का लाला-पाला-पोसा हुआ आदमी है। इसमें तो कोई शक है ही नहीं। मैं यहाँ थोड़ा-सा ज़रूर जोड़ देना चाहता हूँ, इसलिए नहीं कि मैं कोई श्री तिमैया को पसन्द करता हूँ, लेकिन इसलिए कि श्री तिमैया ने एक पेशा ऐसा अपनाया कि उसमें भक्ति की गुंजाइश ज़्यादा है। पलटनी पेशा ऐसा हुआ ही करता है। इसलिए अगर मुझे कभी झख मार कर इन दोनों आदमियों में से ही चुनना पड़े, बशर्ते कि दोनों सिविलियन हों—यह बहस मत छेड़ देना कि एक पलटनी आदमी है और दूसरा सिविलियन—तो मैं श्री तिमैया के ऊपर ज़्यादा विश्वास करूँगा बनिस्बत श्री कृष्ण मेनन के, क्योंकि पेशे के हिसाब से उसने भक्ति करना ज़्यादा सीखा है। और दूसरे का तो पेशा ही ऐसा रहा है कि तभी तक भक्त रहो, जब तक भक्ति करने वाले से कुछ मिल सकता हो।

अब सवाल जिस ढंग से रखा गया है यह नहीं है कि तिमैया और कृष्णमेनन ने आपस में कौन-कौन-सी कहाँ-कहाँ लड़ाइयाँ कीं, उनके स्वभाव में क्या फ़र्क़ है, और एक पलटनी जरनेल है, दूसरा सिविल का सरकार का, और जनता का मंत्री है। सवाल छोटा-सा है। छोटा मतलब महत्त्व में नहीं, छोटे दायरे का है, और वह यह है कि क्या पलटन का इन्तज़ाम पिछले कुछ अरसे में क़ायदे-क़ानून के मुताबिक होता रहा है या क़ायदे-क़ानून को तोड़ कर गुटबाज़ी के आधार पर चला गया। उस सवाल पर लोगों का ध्यान नहीं दिलाया जाता। हाँ, यह हो सकता है, कि उस पलटन के अफ़सर लोग भी उस पक्षपात और गुटबाज़ी की हवा में फँस गये हैं। मुमकिन है कि तिमैया साहब भी खुद फँसे रहे हों। और आज जो उनके बड़े ज़बर्दस्त हिमायती बन रहे हैं, उनको एक बहुत लम्बा चौड़ा अच्छे चरित्र का सर्टिफिकेट देने में लगे हुए हैं वे इस बात को ढूंढ़ने की कोशिश नहीं कर रहे हैं कि पिछले कुछ अरसे में जो पलटन की बदइंतज़ामी रही है, वह कहाँ रही, कैसी रही कितनी रही।

यह तो मैंने सेना के बारे में, बीच में बात चल पड़ी तो, कहा। असल चीज़ तो यह है कि लोग पूछेंगे तब फिर क्या कहोगे? अब तो चीन ने क़ब्ज़ा जमा लिया तुम्हारे इलाक़े में।

मुझे न तो पलटन के बारे में कुछ कहना है, न यह कहना है कि सरकार का हम साथ देंगे। अगर कोई देशभक्ति की आवाज़ बुलन्द करना चाहता हो, तो उसके लिए सीधा-सा रास्ता है, मुझे वह भाषा बोलनी तो आती नहीं लेकिन मैं समझता हूँ कि वह कुछ ऐसा होगा कि हिन्दुस्तान की मान-मर्यादा की रक्षा करने के लिए जो कुछ दिल्ली की सरकार और नेहरू साहब करेंगे उसमें हम पूरी तरह उनके साथ रहेंगे, उनका हाथ मज़बूत करेंगे, पूरी ताक़त उनके साथ भिड़ा देंगे। यह बोली मुझे नहीं बोलनी है, क्योंकि वह बोली बेमतलब है और बेवकूफ़ी की है। जिस सरकार ने उत्तरी सीमा को बारह बरस तक मुलायम और कमज़ोर बना कर रखा, जिस सरकार ने तिब्बत के मामले को चासनी के शब्दों से खतम करना चाहा, जिस सरकार ने हिन्दुस्तान की खेती और कारख़ाने को मज़बूत करने की कोशिश नहीं की, जिस सरकार ने विदेश नीति को देश और दुनिया के फ़ायदे के बजाय कुछ व्यक्तियों के सम्मान का साधन बना लिया, उस सरकार के लिए मैं यह कहना नहीं चाहता कि मैं उसके पीछे हूँ; होना नहीं चाहता हूँ और यह भी नहीं चाहता कि कोई भला आदमी, कभी भी, किसी भी हालत में कहे कि वह उसके पीछे है। हमें सरकार से ख़ाली एक माँग करना है कि देश की रक्षा करो। जो ज़मीन दुश्मन ने ले ली है, वक़्ती दुश्मन है, उनसे वापस लो, समझौते से लो या और किसी उपाय से लो। ऐसा काम करते वक़्त जो हमारा कर्त्तव्य है, उसे हम पूरा करेंगे। इसके अलावा और कोई बात माँगने का किसी को हक़ नहीं। मेरे जैसे आदमी का क्या कर्त्तव्य हो सकता है? साफ़ बात बताता हूँ कि मेरा तो एक ही कर्त्तव्य है कि कभी विदेश नीति के मामले में हिन्दुस्तान मुसीबत मे फँसे तो हमारे जैसे आदमियों से जितना बन पड़े, हम जनता के मन को मज़बूत और ऊँचा रखेंगे, देशभक्ति के रास्ते से उसे डिगने नहीं देंगे। यही हमारा कर्त्तव्य है। इससे ज़्यादा कुछ नहीं। और उस रास्ते पर चलते हुए जो कुछ भी तकलीफ़, त्याग, ज़िन्दगी और मौत का सामना करना पड़ेगा, उसके लिए ख़ुद भी तैयार रहेंगे और अपने लोगों को भी तैयार करने की कोशिश करेंगे।

देशभक्ति और देशद्रोह का भी सवाल थोड़ा-बहुत उठ खड़ा होता है, क्योंकि बहुत चर्चा चल पड़ी है देशद्रोह की। चीन और हिन्दुस्तान का मामला और थोड़ा पेचीदा इसलिए हो जाता है कि चीन और रूस के आदमी हिन्दुस्तान की पार्टियों में भी हैं या, यों कहिए कि हिन्दुस्तान की एक पार्टी ऐसी नींव पर खड़ी हुई है कि उससे चीन और रूस जैसे मुल्कों को ऐसे मौक़े पर कुछ उम्मीद करने के लिए काफ़ी सबब हैं, कम्युनिस्ट पार्टी। कम्युनिस्ट पार्टी देशद्रोही है, ऐसा अक्सर सुना जाता है। देशद्रोह क्या है? हम लोग इस शब्द के बारे में भी कुछ जानकारी हासिल कर लें और समझ कर उसका इस्तेमाल करें। यह मत समझना कि मैं यह साबित करने बैठा हूँ कि कम्युनिस्ट लोग देशद्रोही नहीं हैं बल्कि मैं पता लगाना चाहता हूँ कि अगर वे हैं तो किस हद तक हैं, जिससे हम उनका स्वरूप पहचान कर ख़बरदार रहें। वैसे तो विभीषण भी देशद्रोही था, और अब तक लोग

कहते हैं, हालाँकि सच और धर्म और न्याय के लिए राम का दोस्त बन कर विभीषण तो बहुत बड़ा आदमी. हो गया, धर्मात्मा । लेकिन फिर भी अभी तक लोग उसको देशद्रोही कहते हैं । फिर भी वह धर्मात्मा तो रहा । आज की दुनिया में यह भी चक्कर चला है । मान लो साम्यवाद सत्य और न्याय की चीज़ है और उसके ज़रिये सारी दुनिया में शान्ति और आज़ादी की हुकूमत क़ायम हो सकती है तब अगर कोई आदमी विभीषण बने तो समझ लेना चाहिए, कम से कम हिन्दुस्तान के आदमियों को उसके ऊपर बहुत ज़्यादा अचरज नहीं करना चाहिए । दुनिया के हर हिस्से में और हर युग में सत्य और न्याय का —उनकी समझ के अनुसार सत्य और न्याय—साथ देने वाले विभीषण रहे हैं और रहेंगे । हो सकता है कि कई दफ़ा लोग सत्य और न्याय का मतलब ही ग़लत समझ जाते हों । इसीलिए, कुछ और समझदार लोगों ने यह फ़ैसला किया है कि सच और न्याय जो भी हो, जब तुम किसी देश के अन्दर रहते हो तो तुम्हारे मन में सच और न्याय की जो भी भावना हो, लेकिन देश और परदेश के मामले में तुम कभी विभीषण मत बनना वरना दुनिया में तुम हमेशा के लिए बदनाम हो जाओगे । मैं समझता हूँ कि सच और न्याय के मामले में सोचने का ज़्यादा अच्छा तरीक़ा यही होगा ।

लेकिन देशद्रोह का मामला यहीं नहीं खटाई में पड़ जाता । अब थोड़ा और आगे आप बढ़ो । क्या है देशद्रोह ? सिर्फ़ वही देशद्रोही हैं क्या जो दुश्मन का साथ देते हैं । जब कभी तोड़ का मौक़ा आ जाता है । या, वे लोग भी देशद्रोही हैं जो दुश्मन के साथ लड़ाई करते वक़्त बरसों तक कमज़ोरियों के कारण रहे हैं । क्या सिर्फ़ कम्युनिस्ट देशद्रोही हैं कि जो चीन की मदद कर जाएँगे किसी तोड़ के मौक़े पर । या कांग्रेस भी देशद्रोही है या कांग्रेसी सरकार कि जिसने बारह बरस तक हिन्दुस्तान की कुल ताक़त को कमज़ोर रखा और उत्तरी सीमा को मुलायम रखा । मोटी अक़्ल से सोचने पर भी, देश की सुरक्षा के किए जो ज़िम्मेदार समूह, पार्टी और आदमी हैं और वे देश को लगातार कमज़ोर रखते हैं, तो वे भी तो देशद्रोही हो गये । अगर एकाध दफ़े ग़लत सोचने के सबब से ग़लती हो जाए और कमज़ोरी हो जाए तो उसको भी माफ़ करना चाहिए । लेकिन अगर सोचने का तरीक़ा ऐसा बेढंगा रहा है कि लगातार कमज़ोरी रही, तो वह भी देशद्रोह हो जाता है ।

फिर ऐसे लोगों को भी समझना होगा कि जो सरकारी गद्दी पर नहीं बैठे, सरकार का विरोध करते हैं लेकिन इन लगातार कमज़ोरियों के कारणों को हटाने के बजाय छोटी-छोटी पगडंडियों में हमेशा भटक जाया करते हैं : इन कमज़ोरियों को दूर करने के लिए आन्दोलन नहीं करते, न पोशाक बदलने का आन्दोलन, न दरबारी भाषा को खतम करने का, न चीज़ों के दामों को बाँधने का, न खेती-कारखाने को सुधारने के लिए छोटी-छोटी मशीनों के इस्तेमाल का । इन आन्दोलनों को करने के बजाय वे हमेशा लहर के साथ, बहाव के साथ चलने में मज़ा लेते हैं । हमारी जो अपनी सोशलिस्ट पार्टी है उसके सामने

बड़ी दिक़्क़त यह है कि वह देश की ताक़त को बढ़ाने के लिए आन्दोलन को खड़ा करने में अकेली पड़ जाती है। प्रजा सोशलिस्ट पार्टी जैसी पार्टियाँ ऐसी हैं कि जो लहर जिस वक़्त मुल्क में उठे, उसके साथ हो लो, उससे कुछ फ़ायदा उठा लो। हंगरी की लहर कभी उठी तो उसके साथ हो लो, अगर तिब्बत की लहर उठी तो उसके साथ हो लो, अगर संयुक्त महाराष्ट्र की लहर उठी तो उसके साथ। जब कभी जो कोई भी लहर उठे तो पानी के साथ बह लो और जितना भी मजा मिल सके और फ़ायदा उठा सको उठा लो। इस सबसे मैं खुद और अन्य समाजवादी भी कई दफ़ा निराश होते हैं। लेकिन इस बात को याद रखना कि हिन्दुस्तान के समाजवादी दूसरों की उठायी हुई लहर में तैरना पसन्द नहीं करते। वे हिन्दुस्तान और दुनिया की असली ताक़त को बढ़ाने के लिए जिन लहरों को उठाना चाहिए, उनको उठाने में लगे हुए हैं। इसमें और उसमें बड़ा ज़बरदस्त फ़र्क़ है।

मैंने आपको इन लोगों की बात बतायी जो नक़ली आन्दोलनों में फँसे रहते हैं। उसी के साथ-साथ यह भी ज़िक्र कर दूँ कि आज जोशी साहब, बम्बई वाले, फ़रमाते हैं कि संयुक्त महाराष्ट्र समिति से कम्युनिस्टों की हकालपट्टी करना ज़रूरी हो गया है, क्योंकि अब यह साबित हो गया कि कम्युनिस्ट देशद्रोही हैं। सन् '४२ में जब आप भूमिगत हो कर दर-दर फिरते रहते थे, तब यह साबित नहीं हो गया था क्या कि ये देशद्रोही हैं। अभी लांगजू और लद्दाख का मामला आया, क्या तभी यह साबित हुआ? और दूसरे बहुत से मामले आये थे, हंगरी का, तिब्बत का, रूस के अन्दर वैयक्तिक आज़ादियों के ख़ातमे का। तब यह साबित नहीं हुआ था? इससे यही नतीजा निकलता है कि ये लोग जब जिस मौक़े पर जो तर्क मददगार हो सके, उसका इस्तेमाल करते हैं। कम्युनिस्ट आदि जितने चीन के मामले में देशद्रोही साबित हुए हैं, उससे कहीं ज़्यादा सन् '४२ वाले अंग्रेज़ साम्राज्यशाही के खिलाफ़ के आन्दोलन में साबित हो चुके थे। लेकिन फिर भी इन लोगों ने एका किया, समझौता किया, साथ-साथ लड़े, चुनाव जीते। क्यों? मुझे एक प्रजा सोशलिस्ट नेता ने एक बात बतायी। मैंने पूछा नहीं, सफ़ाई नहीं माँगी, क्योंकि इन मामलों में अब सफ़ाई क्या माँगनी, वह तो हम जानते हैं। लेकिन चोर की दाढ़ी में तो तिनका रहता है। उन्होंने अपनी तरफ़ से सफ़ाई देना शुरू किया कि देखो, तुम्हारे मन में शायद होगा कि क्यों हम लोगों ने कम्युनिस्टों के साथ एका किया। असल में मामला बहुत पेंच का हो गया था। हमारे सामने सवाल अपनी जान बचाने का था, या खतम होने का था। अगर प्रजा सोशलिस्ट पार्टी सन् '५७ में कम्युनिस्टों के साथ चुनाव समझौते न करती, तो वह खतम हो सकती थी। एम. पी., एम. एल. ए. चुने नहीं जाते। और वह पार्टी जिस ढंग की है, यह साफ़-सी बात है कि अगर उसके एम. पी., एम. एल. ए. न रहें, तो वह एकदम ही ख़तम हो जाए। जब तक इसके एम. पी., एम. एल. ए. की तादाद सौ-दो सौ-ढाई सौ रहती है, तब तक किसी न किसी शकल में वह क़ायम है। वह तादाद तो बना कर रखना था और ख़ास तौर से हमारे मुक़ाबले में, क्योंकि हम

नये-नये बने थे। अगर कहीं हमारे एम. पी., एम. एल. ए. की तादाद बढ़ जाती तो प्रजा सोशलिस्ट पार्टी मिट ही जाती। प्रजा सोशलिस्ट पार्टी के नेता ने साफ़-साफ़ कहा था कि देखो भई, यह हमारे जीवन-मरण का सवाल था। खास तौर पर जब तुम हमसे अलग हो गये थे, उस वक़्त कहीं हमारे एम. पी., एम. एल. ए. कम हो जाते तो हम तो खतम ही हो गये थे। जो सबसे बड़ा धर्म, उन्होंने कहा, वह है जीवन को बचाने का धर्म, आपद् धर्म। जब आफ़त पड़ जाए तो जैसे भी हो, जीवन को बचाओ। फिर उसके बाद दूसरे काम किये जाएँगे। पहले जान बचाओ। मैंने उस बहस में कोई हिस्सा नहीं लिया। मैंने कहा, मैं इस बहस में नहीं पड़ना चाहता परन्तु खाली एक बात बतला देना चाहता हूँ कि इस सबसे बड़े धर्म से भी एक बड़ा धर्म है कि जब कभी तुम किसी सिद्धान्त के मामले में फँस जाओ तो मर जाओ और तुम्हारे मर जाने के बाद जो नयी पौध आएगी वह उस धर्म को और ज्यादा अच्छी तरह चला सकेगी। अपनी ज़िन्दगी को क़ायम रखने के लिए, बचाने के लिए, तुमने अपना सब सिद्धान्त, उसूल, धर्म छोड़-छाड़ दिया, तो उसके साथ इतना मजा नहीं रह जाएगा। तुम अपने जीवन को बचा कर न्याय ो नहीं क़ायम रख सकोगे इसलिए ज्यादा अच्छा है कि उसमें मिट जाओ। और लोग क़ायम हों। जो लोग आज सारे देश में कम्युनिस्टों के देशद्रोह की चर्चा फैलाये हुए हैं, उनके बारे में अभी भी मुझे यक़ीन नहीं कि फिर से कभी जीवन-मरण का सवाल उठ खड़ा हुआ, फिर से कभी एम. पी., एम. एल. ए. का सवाल उठ खड़ा हुआ, फिर कहीं आपद् धर्म आ गया, तो जिस तरह से सन् '५७ में प्रजा सोशलिस्ट और कम्युनिस्ट गठबन्धन चुनाव लड़ने के लिए हुआ था, उसी तरह से सन् ६२ में भी हो सकता है। मुझे इसमें कोई अचरज नहीं होगा। उस वक़्त भी लोकतंत्र के हज़ार कारण बता दिये जाएँगे। इसलिए शब्द देशद्रोह को समझते वक़्त हमें पूरा नक़्शा आँखों के सामने रखना चाहिए। मैं कोई कम्युनिस्टों को देशभक्त नहीं समझता। लेकिन इतने तरह के देशद्रोह मैंने अपनी पिछले बीस बरस की ज़िन्दगी में देखे हैं कि अब देशद्रोह के बारे में कुछ सचेत रहना चाहता हूँ। आज से दस-पन्द्रह बरस पहले मैं समझता कि खाली कम्युनिस्ट देशद्रोही हैं। तब उनके लिए मेरे दिल में भी कुछ ग़ुस्सा हो जाया करता था, दिमाग़ी ग़ुस्सा तो था ही। आज मैं देख रहा हूँ कि जो अपने को बहुत राष्ट्रप्रेमी कहने वाले लोग हैं, चाहे अपनी भूल के कारण, चाहे अपनी ग़लतियों के कारण, चाहे अपने स्वार्थ के कारण, चाहे अपने आपद् धर्म के कारण, बजाय देश को और दुनिया को सुधारने के, गद्दी का इस्तेमाल करते हैं अपनी शान-शौक़त के लिए। ऐसे मौक़े पर देशद्रोह के बारे में सावधान रह कर हमें चलना चाहिए तभी हम देशद्रोह का मुक़ाबला भी कर सकते हैं।

अब मैं आपको उस कम्युनिस्ट से जो बातचीत हुई, वह भी थोड़ी-सी सुनाये देता हूँ। वह अब कम्युनिस्ट हो गया, किसी जमाने में वह हमारे साथ था। वह मजदूर है। थोड़ा-बहुत मुझे मानता है। सोशलिस्ट पार्टी वालों में और किसी के लिए चाहे इज्जत

नहीं रही हो, इज्जत तो शायद मेरे लिए भी नहीं होगी, लेकिन इतना समझता है कि आदमी तो सच्चा है। इसलिए इस बार जब वह मिला तो दो-तीन घंटे दिल खोल कर बातें हुईं। उसने कहा कि और बातें तो छोड़ दो पर शुरू में, हमने सोचा था, कम्युनिस्ट लोगों में भाईचारा ज्यादा होगा, लेकिन वहाँ जो गये, तो देखा कि जितना अपनी पुरानी पार्टी में था, उतना ही वहाँ भी नहीं निकला। उस सब को छोड़ें। और बातें करें, लेकिन मैं यह कहे देता हूँ कि बीच में मैंने यह भी पूछा उससे कि कहो तुम्हारा मन कुछ उखड़ रहा है क्या ? बोला, नहीं, अब तो हम जम गये हैं, पहले छह महीने तो उखड़े-उखड़े रहे, लेकिन अब तो अपने को अच्छी तरह से समझा लिया है। अब तो हम वहाँ हैं, और वहीं रहेंगे। उसने यह साफ़ कर दिया और तब उसने बताया कि जब चीन और हिन्दुस्तान का यह मामला शुरू हुआ तो कम्युनिस्ट नेताओं ने बड़ी ग़लती की। उन्होंने ऐसे बयान दे डाले कि जिससे मालूम हो कि वे देशभक्त नहीं हैं। फिर कम्युनिस्ट पार्टी के अन्दर हल्ला मचा। उसने मुझे बताया कि उसके जैसे आदमियों ने हल्ला मचाना शुरू किया। अब कम्यु-निस्ट नेता, कोई-कोई, ठीक तरह से बोलते हैं। वे भी कह रहे हैं कि हम भी देश की रक्षा करेंगे, हम भी सीमाओं की रक्षा करेंगे। खैर। मैंने उससे पूछा कि रक्षा करोगे तो किसकी रक्षा करोगे ? कैसे रक्षा करोगे ? जब एक-एक करके बात चली तो वह हँस पड़ा। उसने कहा कि यह तो सब बोलने का ढंग है, आप भी जानते हो। खून कौन बहाता है, कौन नहीं बहाता, लेकिन यह तो कहने का ढंग है। अगर कम्युनिस्ट नेताओं ने शुरू में ही यह ढंग अपना लिया होता, तो हमें मुसीबतों का सामना नहीं करना पड़ता। फिर मैंने पूछा, अच्छा अब यह बताओ तुम कि आखिर इस चीन वाले मामले में तुम जब कहते हो कि हिन्दुस्तान की रक्षा करोगे तो इसका मतलब क्या निकलता है ? क्या सचमुच तुम हिन्दुस्तान के लिए चीन के खिलाफ़ लड़ सकते हो ! शुरू में उसने कहा, क्यों नहीं, हाँ-हाँ, हमको तो अपने देश को आज़ाद रखना है। मैंने कहा, नहीं, देखो, इतनी जल्दी-जल्दी बात मत करो, धीरे-धीरे बात करो, यह बताओ मुझे कि अभी जो चीन ने किया, उसे तुम हमला मानते हो कि नहीं ? उसने कहा, उसे हमला हम कैसे मान लें। मैंने फिर पूछा कि अगर दिल्ली की सड़कों पर चीन की पलटन तुम्हारी मुक्ति के लिए आ जाए तो तुम उसको हमला मानोगे कि नहीं। उसने जवाब दिया, यह कैसे हो सकता है, यह कभी सम्भव है ! हमने यह तो फ़ैसला कर लिया कि हिन्दुस्तान में साम्यवादी ताक़त तभी आएगी जब हिन्दुस्तान की जनता उसको कहेगी। अहिंसा की बुनियाद पर हिन्दुस्तान की जनता जब साम्यवादी बनेगी, तब यह देश साम्यवादी होगा। इसलिए वह सवाल ही नहीं उठता। तब मैंने कहा, देखो, अब तसल्ली के साथ सोचो। केरल में क्या हुआ, लोकतंत्र की हत्या हुई न ? उसने जवाब दिया, हाँ, हुई तो। अगर वहाँ लोकतंत्र को कोई ताक़त बचा सकती तो, मैंने पूछा, तुम उसका स्वागत करते कि नहीं करते ? उसने कहा जरूर करते। तब मैंने कहा कि तुम जरा अपने दिमाग़ को थोड़ी और कसरत दो, सोचो कि यह केरल उत्तर में चला

गया और हिमाचल प्रदेश बन गया और वहाँ कम्युनिस्टों की हुकूमत है और वहाँ पर दिल्ली की हुकूमत ने उस हुकूमत को खतम किया और लोकतंत्र की हत्या हुई है और उस वक़्त, अपना पड़ोसी चीन लोकतंत्र को बचाने के लिए दिल्ली सरकार की मुखालफ़त करता है, तब तुम क्या करोगे ? उसने जवाब दिया कि तब तो बात दूसरी है। खैर। मैं पहले ही कह चुका हूँ कि मैंने बहुत देशद्रोह देख लिये हैं ज़िन्दगी में। इसलिए अब देशद्रोह के खिलाफ़ गुस्सा जरूर है और गहरा गुस्सा है। अपने देश को मैं देशद्रोह से बचाना चाहता हूँ, लेकिन जो देशद्रोही हैं उनसे, और जो बेचारे इस ढंग के लोग हैं, किसान हैं, मज़दूर हैं, उनसे मुहब्बत की दो बात करने में मैं बुरा नहीं समझता। सच पूछो तो उन देशद्रोहियों को ज्यादा सज़ा देनी चाहिए, जो लोग आपद् धर्म या अपने निजी उत्थान और पतन के कारण देश और दुनिया की ताक़त को कमज़ोर बनाया करते हैं।

कम्युनिस्टों के बारे में कुछ थोड़ा और सोचना चाहिए और वह यह कि इतने खराब होते हुए भी वे हमेशा मज़बूत बने रहते हैं। कहीं आप ग़लती मत कर बैठना कि इस बार मौक़ा मिला है तो उनको देशद्रोही और विदेशी एजेण्ट वग़ैरह कह कर ही अपने कर्तव्य की पूर्ति समझ लो और समझ लो कि बस अब कम्युनिस्ट खतम हो गये। इस तरह से कम्युनिस्ट बीसों दफ़े खतम हो चुके हैं। कौन-सा पाप उन्होंने नहीं किया ? हज़ार पाप ये करते हैं लेकिन फिर भी वे ताक़त अपनी बढ़ाते ही रहते हैं या कम से कम जो ताक़त है, उसे क़ायम रखते हैं। रूस में इन्होंने नागरिक अधिकारों का खातमा किया—इनकी ताक़त घटी नहीं। हंगरी में लाखों को मौत के घाट उतार कर आज़ादी को खतम किया है—इनकी ताक़त घटी नहीं, न राष्ट्रीय न अन्तर्राष्ट्रीय। तिब्बत का गला घोंटा—इनकी ताक़त घटी नहीं। सन् '४२ में इन्होंने अंग्रेज़ी साम्राज्यशाही का साथ दिया, हिन्दुस्तान की आज़ादी के आन्दोलन को खतम किया—इनकी ताक़त घटी नहीं। क्या बात है ? इस पर सोचना चाहिए। कभी आप हिन्दुस्तान के उन नेताओं के चक्कर में मत फँस जाना, जो दो-चार विशेषण का इस्तेमाल करके कि ये तो देशद्रोही हैं, ग़द्दार हैं, समझते हैं कि इन्होंने कम्युनिस्टों को खतम कर दिया।

लेकिन ये कैसे हैं देशद्रोही, ये कैसे हैं मनुष्यद्रोही, ये कैसे हैं न्यायद्रोही कि जो अपनी ताक़त बढ़ाते रहते हैं। इसके दो सबब बताये देता हूँ। एक सबब तो है इनकी अन्तर्राष्ट्रीयता, इनके स्पुतनिक और इनके ल्युनिक। जब कभी हंगरी जैसी घटना हो जाती है और लोगों का मन उखड़ने लगता है, खुद कम्युनिस्ट पार्टी के मेम्बरों में हलचल पैदा हो जाती है कि राक्षसी ताक़त के साथ क्यों रहें, तब एक स्पुटनिक आ कर खड़ा हो जाता है या घूमने लगता है, दुनिया भर में चारों तरफ़ नक़ली चाँद के रूप में या चाँद की तरफ़ या सूरज की तरफ़, और फिर उखड़े हुए दिल जम जाते हैं। कोई बात नहीं, यह पाप तो ज़रूर हुआ, लेकिन आखिर को हमारा सम्प्रदाय मज़बूत है और दुनिया को यही बचा कर रहेगा, यही बना कर रहेगा। कम्युनिस्ट के दिमाग़ को समझने की कोशिश करनी चाहिए

और उस दिमाग़ को भी जो कम्युनिस्टी ताक़त को देख कर अपने इरादे बदलता है। मेरे जैसे आदमी ने तो कभी ज़िन्दगी में यह सीखा नहीं। स्पुटनिक हो या न हो, मेरा फ़ैसला रूस और चीन और कम्युनिज़्म के बारे में वैसा ही रहेगा जैसा कि अमरीका के बारे में मैंने कई दफ़ा कहा कि उनकी जितनी भी दौलत हो, लेकिन हमने तो जो फ़ैसला कर रखा है, वह रहेगा। असल चीज़ यह है कि दुनिया में ज़्यादातर लोग स्पुटनिक को देखते हैं। इस दफ़े भी वही हुआ। उसी के साथ-साथ दूसरा एक बड़ा सबब है कि जब अन्याय और ज़ुल्म किसी देश में होते रहते हैं और अगर अच्छे लोग अच्छे तरीक़ों से उसका मुक़ाबला नहीं करेंगे तो फिर बुरे लोग बुरे तरीक़ों से उसका मुक़ाबला करेंगे और उनको जनता का साथ मिल जाएगा। पिछले बारह बरस के गेहूँ चावल के दाम को ले कर ज़ुल्म हुआ, पिछले बारह बरस में बड़े लोगों की आमदनी और छोटे लोगों की आमदनी को ले कर ज़ुल्म रहा, पिछले बारह बरस में साधारण लोगों की ज़िन्दगी में किसी तरह सुरक्षा नहीं रही। इन ज़ोर ज़ुल्मों के ख़िलाफ़ अगर सही पार्टियाँ अहिंसा के तरीक़े से लड़ाई नहीं करती हैं और साधारण जनता को सरकार के ख़िलाफ़ या मालिकों के ख़िलाफ़ सहारा नहीं देती हैं तो कम्युनिस्ट आ कर ग़लत तरीक़ों का इस्तेमाल करके जनता का मन अपनी तरफ़ खींच लेंगे। ये दो बड़े सबब हैं जिनकी तरफ़ अगर आप ध्यान नहीं दोगे, तो कम्युनिस्टों को ख़ाली देशद्रोही कह देने से कम्युनिस्टों को दुनिया से या हिन्दुस्तान से ख़तम नहीं कर सकते।

यह तो एक मोटी सी बात हो गयी। इसी तरह से मैं आपको कम्युनिस्टों के या उनके साथियों के जो थोड़े-बहुत आन्दोलन हुए, उनके बारे में एकाध मोटी बात बताये देता हूँ। एक बड़ा आन्दोलन बंगाल में हो गया। बिहार में या आन्ध्र में अभी ऐसा नहीं हुआ पर हो सकता है। लेकिन बंगाल वाला बड़ा इस मानी में है कि उसमें काफ़ी जानें चली गयीं, ६०-७० आदमी मर गये, बहुत मारपीट भी हुई। क्या था वह आन्दोलन, कैसा था? उस आन्दोलन के बारे में भी ख़ाली दो तरह के प्रचार मुझे हिन्दुस्तान में दिखलाई पड़ते हैं। जो कम्युनिस्ट या कम्युनिस्ट समर्थक हैं, वे कहते हैं कि जनता उमड़ी। जो कम्युनिस्टों के विरोधी हैं, वे कहते हैं कि कम्युनिस्टों ने कितनी क्रूरता की, क़त्ल किये, आगज़नी की, लूटमार की, कितना मुल्क को बरबाद किया। लोग इसी बहस में पड़ जाते हैं। लेकिन दरअसल बहस को तो और गहरी बनाना चाहिए। यहाँ मैं एकाध घटना बताये देता हूँ। नम्बर एक कि ३१ अगस्त को कलकत्ता शहर में पुलिस ने बड़ी बेरहमी से प्रदर्शनकारियों को पीटा। मैं नहीं कहता कि वैसी बेरहमी और कहीं नहीं हुई, उससे ज़्यादा तो खरसवाँ में आदिवासियों के साथ हुई थी। आप हज़ार आगज़नी के और क़तल के मामले बतलाएँ, लेकिन उस दिन कम से कम पाँच सौ और, कुछ लोग कहते हैं कि हज़ार आदमियों को पुलिस ने इतने डंडे मारे कि सबको चोटें आयीं, हड्डी टूटी, कोई भी हड्डी हो, चाहे हाथ की, चाहे पैर की, चाहे पीठ की। आप सोच सकते हो कि कोई

४०-५० हज़ार का प्रदर्शन था उसमें से हज़ार आदमी को पुलिस न इतनी जोर-जोर से मार कर घायल किया। जब कम्युनिस्टी या दूसरी क्रूरता के बारे में सोचो तो कभी-कभी, जो सरकार की क्रूरता है, उससे अपनी नज़रें हटा मत लेना, नहीं तो ग़लती हो जाएगी। मैं अक्सर कहा करता हूँ कि कांग्रेसी कूड़े पर ही कम्युनिस्टी कीड़ा पला करता है। जो लोग चाहते हैं कि कम्युनिस्टी कीड़े को मारें, और सिर्फ़ उससे लड़ाई करें तो वह हो नहीं सकता। जब तक कांग्रेसी कूड़े को बुहार कर साफ़ नहीं कर देते, तब तक वह रहेगा, उसे खतम नहीं कर सकते। दूसरी एक और भी घटना बताये देता हूँ। एक सितम्बर से लगा कर चार सितम्बर तक, जबकि थोड़ा बहुत जनता की तरफ़ से, सब जनता की तरफ़ से नहीं, जनता के कुछ हिस्से की तरफ़ से भी आग लगाने का काम हुआ, एकाध आदमियों के गले भी काट लिये गये। दो-पाँच-दस जगह पर कुछ दंगे की शकल भी सामने आ गयी। दो भाषाओं के लोगों में मारपीट और बस्ती जलाना वग़ैरह, ये सब चीज़ें हुईं। मैं जानबूझ कर जनता कहता हूँ, चाहो तो कम्युनिस्ट नाम ले लो, फ़ारवर्ड ब्लाक नाम ले लो, जो कोई भी नाम ले लो क्योंकि पार्टियाँ ऐसे मौक़े पर ज़्यादा मैदान में नहीं रहती हैं। एक सितम्बर से चार सितम्बर तक कम्युनिस्टों का कहीं पता था ही नहीं। दरअसल अगर कोई कम्युनिस्ट विरोधी हो तो वह इस बात को सामने लाए। कहाँ थे ये हज़रत एक सितम्बर से चार सितम्बर तक ? कहाँ गयी थी इनकी बहादुरी ? सब बिल में घुस गये थे। कम्युनिस्ट जवाब देंगे कि हमारे नेता तो जेल में थे। यह जवाब झूठा है। आधे से ज़्यादा नेता लोग बाहर थे। कुछ लोग तो कहते हैं कि कम्युनिस्टों के नेता श्री ज्योति बसु विधानराय साहब के घर में ही छुपे हुए थे और वहाँ मज़े में चाय पी रहे थे। खैर, यह हँसी की बात है और मुमकिन है कि सही न हो। लेकिन वह अगर कहीं सही साबित भी हो जाए तो मुझे इतना अचरज नहीं होगा, क्योंकि विधानराय साहब की एक भतीजी हैं, उनका नाम श्री रेणु चक्रवर्ती है। वे कम्युनिस्ट हैं। उनका अगर अपने चाचा के यहाँ एक कमरा हो तो ताज्जुब की बात नहीं। वह अपने कमरे में अपने नेता को बुला कर रख लेती हैं तो चाचा बेचारा क्या करेगा, निकाल बाहर करेगा ? इस घटना के साथ-साथ एक बात यह भी बतला दूँ कि आखिर तो यह सब एक ही थैली के चट्टे-बट्टे हैं। जितनी हिन्दुस्तान की पार्टियाँ हैं, सब मध्यम वर्ग की, जैसे एक ज़मींदार या ताल्लुक़ेदार घराना होता है और इसमें चाचा-भाई के आपसी झगड़े होते हैं, वैसे यह सब मध्यम वर्ग और ऊँची जातियों की पार्टियों के आपसी झगड़े हैं जो चलते रहते हैं। खैर, जो भी हो, असल चीज़ मुझे यह बतानी है कि एक सितम्बर से चार सितम्बर तक ये हज़रत लोग ग़ायब थे और ग़ायब रहेंगे, क्योंकि हिंसा वाली लड़ाई में हमेशा जनरल पीछे रहता है। सत्याग्रह वाली लड़ाई में जनरल आगे रहता है। जो सत्याग्रही हैं उन्हें अगर आप यह समझाएँ कि देखो तुम मैदान छोड़ कर भाग गये, तो उनके मन को बुरा लगेगा और वे शायद अपनी हालत बाद में सुधारेंगे। लेकिन जो हिंसा में विश्वास करते

हैं, मन से उनको तो यह चीज़ बुरी लगेगी ही नहीं। वे सोचेंगे, वाह, हम तो लड़ाई को चला रहे थे पीछे रह कर।

ख़ैर, ये सब बातें तो इस आन्दोलन के बारे में हुईं। और एक मोटी-सी चीज़ आप याद रखना। जो भी सबब हों, हिन्दुस्तान की आज़ादी के आन्दोलन की दो धाराएँ रहीं। एक तो अहिंसा वाली, महात्मा गाँधी वाली, और दूसरी, उनके पहले से भी जो चली आ रही थी, वह पिस्तौलबाज़ी वाली जिन्हें आप क्रान्तिकारी, आतंकवादी आदि कह लें। सब जानते हैं कि अगर बिहार और उत्तरप्रदेश ने भीड़ की बहादुरी दिखलायी तो बंगाल में कुछ लोगों ने व्यक्तिगत बहादुरी दिखलायी। बंगाल में भीड़ की बहादुरी के एकाध अपवाद हो सकते हैं जैसे मिदनापुर में, पर मोटी तौर पर वहाँ आतंकवादी आन्दोलन ही चला जो ऐसे व्यक्तियों को सामने लाया जिनकी वैयक्तिक बहादुरी की मिसाल नहीं मिलती। इस तरह की वैयक्तिक बहादुरी पूरी तौर पर अच्छी नहीं होती, विशेषतः जब उसकी वारिस कम्युनिस्ट पार्टी बनती है। जो भी सबब हो, बंगाल के लोगों ने देखा कि कम्युनिस्ट लोग हिंसा को मानते हैं, गोकि उनकी हिंसा बिलकुल दूसरे ढंग की थी, तो समझा कि यही असली क्रान्तिकारी पार्टी है। दूसरा सबब यह भी है कि कलकत्ता एक अजीब-सा शहर है कि जहाँ कई भाषा के लोग हैं। वहाँ तेलुगु भाषा बोलने वाले सबसे ज़्यादा समूह में निकलें तो मुझे ताज्जुब नहीं होगा। विजयवाड़ा से तो ख़ैर वहाँ ज़्यादा तेलुगु बोलने वाले लोग मिल जाएँगे। विजयवाड़ा की आबादी मुशकिल से तीन-एक लाख होगी। कलकत्ता में कोई छः-सात लाख तेलुगु भाषा वाले ज़रूर होंगे और उड़ीया होंगे कोई छः सात लाख। सभी भाषाओं के लोग वहाँ पर हैं। इनमें आपस में तनाव रहते हैं। कम्युनिस्टों ने एक ऐसी हवा बना दी है कि ये बाहरी लोग बंगालियों का शोषण करते हैं, और ख़ास तौर से उनमें जो मिलों के मालिक हैं, मारवाड़ी, उनके ख़िलाफ़ एक धारणा पैदा कर दी। हालाँकि यह बात बिलकुल सही है कि जो बंगालियों में भी पैसे वाले जमींदार हैं, वे इन मिल मालिकों से कुछ कम नहीं। लेकिन वे दूसरे क़िस्म के हैं। और जब इस तरह की हवा बनने लग जाती है, तो आदमी अक़ल से तो काम लेता नहीं है। वह जज़बे से काम लेने लग जाता है। नतीजा क्या होता है? मारवाड़ियों में भी तो दो तरह के लोग होते हैं—अमीर कम, ग़रीब ज़्यादा। और मारवाड़ियों को छोड़ो, तेलुगु, उड़िया, तमिल, कलकत्ते में ये जो दूसरी भाषाओं के लोग बसे हुए हैं, उनमें भी ग़रीब और अमीर होते हैं। जनता के मन में यह भावना पैदा की कि देखो, बाहरी लोग मारवाड़ी आ कर तुम्हारा शोषण करते हैं। अब, वे जो अमीर मारवाड़ी हैं, उन तक तो जनता पहुँच नहीं पाएगी, वे तो मोटरों में घूमते हैं, पैदल थोड़े ही घूमते हैं, और अगर उन तक कोई आदमी अपना हाथ पहुँचाये तो उनके यहाँ तो पहले ही बन्दूक़ वाले सन्तरी रहते हैं और न भी रहें तो संजीव रेड्डी साहब या विधानराय साहब उनकी रक्षा के लिए दस सन्तरी क्या पचास सन्तरी भेज देंगे। इसका यह नतीजा

निकलता है कि जब जनता का मन उखड़ता है और उसको ग़ुस्सा आता है, तब वह उनको तो पकड़ नहीं पाती, और हर बेचारा, झाँका, मुटिया, ग़रीब, तेलुगु, उड़ीया, बिहारी, उत्तर प्रदेशी, मारवाड़ी, जो भी मिला, लोग अपनी भाषा के अलावा वाले पर ग़ुस्सा निकालते हैं। यह कितनी खराब चीज़ हो रही है।

जब तक इन मामलों पर गहराई से सोच कर फ़ैसला नहीं करते यानी यह तय करना पड़ेगा कि हिन्दुस्तान की इन घटनाओं को ऊपरी तौर पर देखने से कुछ नतीजा निकलने वाला है नहीं; सम्पत्ति का, मिलकियत का, कारखानों का, बुनियादी तरह से फ़ैसला करना पड़ेगा। कोई पार्टी सामने आए कि जो सच्चे इरादे से सच्ची नीति से, और ताक़त पैदा करके पूंजीवाद को खतम करे। मैं नहीं कहता कि कम्युनिस्टों के तरीक़े से उसे खतम करो। उस तरीक़े से तो शायद खतम कर भी नहीं सकते। अहिंसा के तरीक़े से उसे खतम करो। लोगों के ऊपर ग़ुस्सा न चलायें, तभी तो जा करके इन मसलों को हल कर सकते हो। लेकिन यह सब नहीं हो रहा है। इसका नतीजा क्या है? ऐसे-ऐसे दर्शन भी निकलने शुरू होते हैं कि कांग्रेस को मज़बूत करो, वरना ये कम्युनिस्ट आ जाएँगे। कोशिश यह होती है कि कम्युनिस्टों को देशद्रोही और लुच्चा कह कर खतम किया जाए। लेकिन सिर्फ़ कहने से वे खतम नहीं होते। जब वे मज़बूत बने रहते हैं, तब उनका भूत खड़ा किया जाता है कि देखो अब यह ताक़त में आने वाले हैं इसलिए कांग्रेस को मज़बूत करो। मैं यहाँ साफ़ कह देना चाहता हूँ कि अगर कांग्रेस का शासन चलता रहा और अगर नेहरू साहब जैसे लोग हिन्दुस्तान की गद्दी के मालिक रहे और फिर जिस तरह से देश और विदेश में अपनी कमज़ोरी को क़ायम रखा, तो इसमें कोई शक नहीं है कि कम्युनिस्टों की गद्दी हिन्दुस्तान में क़ायम हो कर रहेगी। मैं यह साफ़ कहना चाहता हूँ कि कांग्रेसी हुकूमत चलती रहती है तो इसका लाज़िमी नतीजा होगा कि कम्यूनिस्टी हुकूमत क़ायम हो। कम्युनिस्टी हुकूमत को क़ायम न होने देने का सिर्फ़ एक ही तरीक़ा है कि हिन्दुस्तान की जनता जितनी जल्दी हो सके कांग्रेसी हुकूमत को खतम करे। लेकिन जो लोग जनता की ताक़त में विश्वास खो बैठे हैं, जो लोग जनता के आन्दोलनों को चलाना नहीं चाहते, जो लोग लफ़्फ़ाज़ी से ही अपने देश के मसले को हल कर लेना चाहते हैं, उन लोगों के लिए एक ही ज़रिया रह जाता है, वह यह कि कम्युनिस्टों की बढ़ती हुई ताक़त को जब देखते हैं तो सोचते हैं कि चलो, कांग्रेस की बग़ल में हो लो, तब कहीं जा कर बचोगे वरना बच नहीं पाएँगे।

अब यह बात बिलकुल साफ़ हो चली है कि जो ताक़त कम्युनिस्टी देशद्रोह से हिन्दुस्तान को बचा सकेगी, वह हिन्दुस्तानी जनता के मन और शरीर पर आधारित रहेगी। आज ६० करोड़ चीनियों का मुक़ाबला कुल ४०-५० लाख हिन्दुस्तानी बड़ी मुश्किल से कर रहे हैं, वह भी बेढंगे तरीक़े से। जब तक हिन्दुस्तान को नहीं बदल देते, यहाँ के लोगों को, यहाँ की औरतों को, यहाँ की छोटी जातियों को, यहाँ के मज़दूरों-

किसानों को, यहाँ के दूकानदारों को, यहाँ के जो अल्पसंख्यक हैं मुसलमान और ईसाई वग़ैरह, उनके मन नहीं बदल देते हो तब तक कैसे मुमकिन है कि ये मुल्क की हिफ़ाजत करने को तैयार रहेंगे। और उस रास्ते पर जाने के लिए तैयार रहना चाहिए। जो चीन, हिन्दुस्तान, तिब्बत के मामले में बहुत माथा खपाया करते हैं, घूम फिर कर यहीं पर पहुँचना होता है कि अपनी देश की ताक़त को बढ़ाओ, तब जा कर कहीं चीन का मुक़ाबला कर सकते हो, वरना नहीं।

कुछ चीजें तो रह गयीं, लेकिन एक घटना का ज़िक्र कर देना चाहता हूँ। वह शायद कुछ लम्बी हो जाए। इस सारे मामले में हिन्दुस्तान और चीन के बीच में कुछ चिट्ठी-पत्री लिखी गयी, जिसमें सोशलिस्ट पार्टी का ज़िक्र रहा। मैं उस घटना के बारे में लम्बान से बात नहीं करना चाहता, क्योंकि जो कुछ प्रधान मंत्री ने चीन को सोशलिस्ट पार्टी के बारे में लिखा था, उसके लिए बाद में उन्होंने माफ़ी माँग ली थी। माफ़ी अगर न माँगी होती तो मुमकिन है कि मैं और ग़ुस्से से बोलता। अब ग़ुस्सा दिखाने की कोई जरूरत नहीं है। जब एक आदमी माफ़ी माँग लेता है तब उसकी माफ़ी को मान लेना चाहिए, चाहे माफ़ी माँगने का उसका ढंग जैसा भी रहा हो। यह बात सही है कि जब उन्हें माफ़ी माँगनी थी तो उसूल और सिद्धान्त बतलाते हुए वे माफ़ी माँगते तो अपना भी और देश का भी फ़ायदा करते। लेकिन खैर, जो भी हुआ। अब इस घटना की जो तफ़सील है उसको देखो। बम्बई में, किसी एक प्रदर्शन में सोशलिस्ट पार्टी के कुछ लोगों ने माओत्से-तुंग की तसवीर पर टमाटर और अंडे वग़ैरह फेंके। उस पर चीनी लोग बहुत नाराज़ हो गये और उन्होंने ऐसी चिट्ठियाँ लिखीं कि गुंडों ने और बदमाशों ने हमारे राष्ट्रपति के चित्र का इतना अपमान किया कि इस घटना को चीनी कभी भूल नहीं सकते और, शायद चीनी भाषा का ढंग होगा, सौ बरस तक नहीं भूल सकते। और भी बहुत कड़े शब्द उन्होंने इस्तेमाल किये। उस पर हिन्दुस्तान की सरकार ने जवाब दिया कि यह काम सोशलिस्ट पार्टी का है। सोशलिस्ट पार्टी एक छोटा-सा समूह है। बड़ी सोशलिस्ट पार्टी जिसका नाम प्रजा-सोशलिस्ट पार्टी है उससे टूटा है। खैर इस पर अचरज नहीं करना चाहिए, क्योंकि आखिर हर बड़े भाई का काम होता है कि वह अपने छोटे भाई की तारीफ़ कर दिया करे। इसीलिए अगर प्रजा-सोशलिस्ट पार्टी की तारीफ़ प्रधान मंत्री करते हैं तो वह अपनी ताक़त को बढ़ाने के लिए ही करते हैं। देश-विदेश में जितना ज्यादा अपने पिछलग्गू मददगार की तारीफ़ करते हैं, उतनी ही उनकी भी ताक़त बढ़ती है। खैर, उस पर ज़्यादा ध्यान न देना कि उस बड़ी पार्टी से यह छोटी पार्टी टूटी। फिर, उसके साथ उन्होंने कहा कि इस पार्टी के लोगों का कोई महत्त्व नहीं है। ये बहुत छोटे लोग हैं और देश में इनकी कोई सुनता नहीं है और ये बहुत खराब काम किया करते हैं। हिन्दुस्तान की सरकार के खिलाफ़ भी ये हमेशा बहुत आपत्तिजनक काम किया करते हैं और ये बड़े ग़ैर-ज़िम्मेदार लोग हैं।

सबसे पहले तो मैं यह कह देना चाहता हूँ कि जब यह घटना हुई थी और मुझे छह-सात दिन बाद जब इस घटना के बारे में पता चला, तभी मैंने कहा था कि यह न होती तो अच्छा होता और उसके सबब भी बताये थे। दुनिया के यानी यूरोप के, यूरोप में ही तो लोकतंत्र चला है, लोकतंत्र में एक पद्धति रही है कि जब किसी आदमी या नीति से जबरदस्त गुस्सा हो तो उस नीति का हिमायती आदमी जो नेता है, उस पर सड़े अंडे, सड़े टमाटर और सड़ी और कोई चीज़ फेंको और अपने गुस्से का इज़हार करो। इंगलिस्तान में तो यहाँ तक कहना सही है कि जब तक कोई नेता अपने चेहरे पर पाँच सात दफ़े सड़े अंडे और सड़े टमाटर खाये हुए नहीं होता, तब तक वह प्रधान मंत्री के लायक़ हो नहीं सकता। यह एक मोटी-सी बात है जिसे मैं उन लोगों से कहना चाहता हूँ जो लोकतंत्र का मतलब इंग्लैंड, जर्मनी, फ्रान्स इन सबसे समझा करते हैं। वहाँ यह एक साधारण-सी परिपाटी चली आ रही है। लेकिन एक चीज़ समझ लेना चाहिए, क्योंकि हिन्दुस्तानी कई दफ़ा इन मामलों में ज़्यादा ग़ौर नहीं करते। समझते हैं कि सड़े टमाटर या सड़े अंडे के मतलब हैं कोई गंदी चीज़ फेंकना। इसके पीछे ख़ाली गन्दगी का मतलब नहीं है। एक दूसरा भी मतलब है कि अंग्रेज या जर्मन या फ्रान्सीसी जब कोई चीज किसी के ऊपर फेंकना चाहता है, उसको चोट नहीं पहुँचाना चाहता, और अगर यह सड़े न हों तो चोट लग जाएगी। बहुत से जो हमारे देश के उत्साही लोग हैं, पूरी तौर से सोचते नहीं, और ग़लती कर जाया करते हैं। उसी से एक तर्क और निकाल लेना कि जर्मनी और इंगलिस्तान में सड़े अंडे फेंकने में किसी को एतराज़ न होगा, क्योंकि वहाँ शायद ही कोई हो जो अंडा न खाता हो। लेकिन हिन्दुस्तान की आधी आबादी तो ऐसी है जो अंडा नहीं खाती। इन सब चीज़ों को भी सोचना पड़ेगा। एक बात तो बिलकुल साफ़ है कि हिन्दुस्तान में जो कोई किसी के ऊपर सड़े अंड फेंकता है वह आदमी कुछ नादान है, इस चीज़ की असलियत को नहीं समझता। सड़े टमाटर, सड़े अंडे किसके ऊपर ? तसवीर के ऊपर ? सो भी कैसी तसवीर। जहाँ सड़े अंडे, सड़े टमाटर फेंकने की परिपाटी है वहाँ जिन्दा आदमी पर फेंकते हैं। माओत्से तुंग की तसवीर पर अंडा फेंकना नपुंसकता है। अगर फेंकना है तो ऐसे आदमी पर फेंको जो जवाब दे सके। माओ के जितने हो शिशु हत्या के अपराधी, सरकारी नेता, तर फेंको। हालांकि मैं इसे पसंद नही करता। गुस्से में अगर कोई ऐसे आदमी पर फेंक देता है तो मैं कहूँगा, खैर। देश विदेश का जब तक फ़र्क़ है तब तक राष्ट्रपति का ख़याल रखना है। बोलने के मामले में मैं राष्ट्रपति और आईज़नहावर में फ़र्क़ नहीं करता। अगर ये सब फेंकना ही है तो प्रधान मंत्री या राष्ट्रपति की तसवीर पर नहीं, उनके शरीर पर फेंको, हालांकि मैं इसे भी नहीं पसन्द करता।

प्रधान मंत्री ने जब माफ़ी माँग ली तो गुस्से से नहीं काम लेना चाहिए बल्कि घटना का विवेचन करना चाहिए। प्रधान मंत्री को विदेशियों के सामने अपने देशवासियों के बारे में सोच-समझ कर लिखना चाहिए था। यह सही है कि सोशलिस्ट पार्टी आज

'महत्त्वहीन' है। अगर सोशलिस्ट पार्टी हिंसा, बम चलाना आदि पर चलती, तो सरकार डरती। हर हालत में हमें अहिंसा के रास्ते पर चलना है। पिछले तीन बरस में हमारे २५ हज़ार लोग जेल गये, ८ जेल में मर गये किन्तु सोशलिस्ट पार्टी ने एक कंकड़ी तक नहीं फेंकी।

छोटी पार्टी की बात का क्या मतलब है ? एम० पी० या एम० एल० ए० के गज से नापा जाए तो हमारी पार्टी छोटी है। मेम्बरी के नियम की लगाम के कारण हम सिर्फ़ ३००-३२५ सीटें लड़े। कोशिश यह होनी चाहिए कि १९६२ में सोशलिस्ट पार्टी १,५०० सीटों पर लड़े। तब इसकी सम्भावना है कि २००-२५० सीटें जीत जाए। १,५०० सीटों पर कैसे लड़ें ? शर्तों पर अमल करके लड़ें या और किसी तरीक़े से लड़ें, इस पर सोचना। सिद्धान्त को आगे बढ़ाने के लिए भी तादाद आड़े आती है।

हिन्द-चीन के मसले पर गम्भीरता से विचार करना अच्छा होगा। मैं चीन और रूस के मामले में कोई हताश नहीं हूँ। उनकी ताक़तों के आँकड़ों से मत मानना कि मैं डर गया, और न उसकी लालच ही रह गयी है। ५०-१०० बरस तक हम धीरज रख सकते हैं।

दुनिया की सभ्यता में इस समय रूस जवान है और अमरीका अधेड़। रूस की सभ्यता ४० बरस की है जबकि अमरीका की १५०-२०० साल की। यह असल चीज़ है जिसे अखबार और रेडियो आपको नहीं बताएँगे। विदेशी खबर छापने वाली एजेंसी है रायटर। रेडियो और अखबारों पर सरकारी क़ब्ज़ा इतना है कि सरकार की दिशा से वे हट नहीं सकते।

कीनिया, अलजीरिया में जितना जुल्म पिछले दस-बारह बरसों में हुआ है उतना और कहीं नहीं हुआ। हंगरी और तिब्बत के मामलों पर अंग्रेज़ी और हिन्दुस्तानी रायटर की मदद से जनमत को उभाड़ते हैं। सब पर व्यापक दृष्टि से विचार करना चाहिए।

—१९५९, अक्तूबर ७; हैदराबाद; भाषण।

भारत-चीन संघर्ष

"सोशलिस्ट पार्टी की राष्ट्रीय समिति भारत सरकार से आग्रह करती है कि वह हिन्दुस्तान के उन क्षेत्रों को चीन से वापस ले जिन्हें उसने हथिया लिया है। इसके अतिरिक्त, समिति चाहती है कि सरकार ऐसी स्पष्ट और दृढ नीति अपनाए, जिससे भारतीय नागरिकों, सैनिकों और व्यापारियों का जीवन बेमतलब खतरे में न पड़े और राष्ट्र की आन और प्रतिष्ठा का निरादर न हो। राष्ट्रीय समिति देश की जनता को भी यह विचार करने के लिए आमंत्रित करती है कि क्या देश की सुरक्षा और आज़ादी, जिस पर अन्य सभी कुछ निर्भर है, वर्तमान सरकार और उसकी नीतियों के चलते सुरक्षित है।

भारत-चीन संघर्ष को चार कोनों से देखना होगा: तिब्बत, जो प्रकृति और परम्परा से दोनों देशों के बीच स्वतंत्रता का क्षेत्र है; देश की उत्तरी सीमा, जिसमें लद्दाख, सिक्किम, भूटान, और उर्वसीअम् शामिल हैं, और मित्र नेपाल; उनकी तुलनात्मक शक्ति और विकास की रफ़्तार; हिन्दुस्तान की विदेश नीति; और इस प्रसंग में, कांग्रेसवाद, साम्यवाद और अन्य नीतियों की जाँच-पड़ताल करनी होगी।

पहली ग़लती उस समय हुई जब सरकार और, एक हद तक, जनता ने प्रभुत्व और अधिराजत्व के बीच मूर्खतापूर्ण किन्तु घातक फ़र्क़ किया और उस आधार पर १९४९-५० में चीन के हाथों तिब्बत की शिशुहत्या को स्वीकार कर लिया। यह इस कारण हो सका कि हिन्दुस्तान की विदेश नीति किसी आदर्श और निश्चय ही यथार्थ पर आधारित नहीं है, बल्कि एक विचित्र प्रकार की भावुकता पर आधारित है। सोशलिस्ट पार्टी चाहती है कि तिब्बत और उसके लोग स्वतंत्र हों, लेकिन तानाशाही के धार्मिक अधिकारों को छोड़ कर, उसके राजनीतिक और भूसम्पत्ति के अधिकारों के अन्त का स्वागत करेगी। पार्टी मैकमोहन रेखा को सीमा निर्धारण का सन्तोषजनक आधार नहीं मानती, क्योंकि साम्राज्यवादी होने के अतिरिक्त उसके द्वारा हिन्दुस्तान और हिमालयी जनता के साथ अन्याय किया गया है। पार्टी आशा करती है कि हिन्दुस्तान की शक्तिशाली और शान्ति-

पूर्ण जनता एक न एक दिन चीन की शक्तिशाली और शान्तिपूर्ण जनता को इस बात पर राजी कर सकेगी कि वह तिब्बत की स्वतंत्रता स्वीकार करे या फिर, ऐसा न होने पर, सांगपो (ब्रह्मपुत्र) को हिन्दुस्तान और चीन के बीच प्राकृतिक सीमा रेखा माने ताकि विशेषतः पश्चिमी तिब्बत, जिसमें मानसरोवर शामिल है, हिन्दुस्तान के साथ भाईचारे के सम्बन्धों का पूरी तरह से निर्वाह कर सके।

हिन्दुस्तान के उत्तर हिमालयी क्षेत्र और वहाँ के लोग आज़ादी के बारह सालों में जानबूझ कर कमज़ोर रखे गये हैं। या तो जिस भाग में हम रह रहे हैं, उसका और हिमालय की ऊँचाई का ग़लत अनुमान करने के कारण, या फिर रहन-सहन के पोंगापंथी ढंग और विचित्र तौर तरीको के प्रति थके-बूढ़े लोगों के क्षणिक अनुराग के कारण, १९५० से बार-बार चेतावनी देने के बावजूद, हिन्दुस्तान की सरकार ने सारे हिमालय क्षेत्र और वहाँ के लोगों को इस तरह दुर्बल रखा है कि जो विदेशी आक्रमण को न्योता दे। राणा-शाही की समाप्ति के बाद नेपाल में जो मजबूती आयी है, उसे हिन्दुस्तान की मान्यता प्राप्त राजनीतिक पार्टियों ने निरुत्साहित किया, और उसे मूल रूप से उन्हीं तत्वों द्वारा प्रोत्साहन मिला जो आज सोशलिस्ट पार्टी में हैं। उर्वसीअम् का ३५,००० वर्ग मील का विशाल क्षेत्र आज तक राष्ट्रीय जीवन और विश्व चेतना की मुख्य धाराओं से अलग रखा गया है। राष्ट्रीय समिति ऐसी हिमालय नीति पर तत्काल अमल किये जाने की माँग करती है जो देश की उत्तरी सीमा और उसके लोगों को दृढ़ और सशक्त बनाए।

राष्ट्रीय समिति चीन की बढ़ती हुई शक्ति और हिन्दुस्तान की सड़न दोनों से अच्छी तरह अवगत है जिनका चरमोत्कर्ष वर्तमान संघर्ष में प्रकट हुआ है और वह चाहती है कि लोग इस बात पर विचार करें कि क्या सरकार की इन नीतियों से उन्हें शक्ति और सम्पदा प्राप्त हो सकती है और उनकी सीमाओं और स्वतंत्रता की रक्षा हो सकती है। उद्योगीकरण में और खेतिहर पैदावार में चीन हिन्दुस्तान से काफ़ी आगे बढ़ गया है। अगर यह उद्योगीकरण संबंधी नये विचारों और तौर तरीक़ों के प्रयोग के फलस्वरूप हुआ होता, और निरी मूर्खता, ख़ाली अहंकार और भ्रष्टाचार के कारण नहीं, जैसा कि वास्तव मे वह है, तो सोशलिस्ट पार्टी लोगो से कहती कि संक्रमणकालीन अवस्था समझ कर इसे सहन कर लें। अयोग्यता और भ्रष्टाचार के साथ-साथ हिन्दुस्तान के शासक वर्गों के अपने और आम जनता के बीच के अन्तर को भाषा, पोशाक और खर्च के जरिये बनाये रखने और बढ़ाने की परम्परागत इच्छा भी जुड़ गयी है, जबकि इसके विपरीत, चीन के शासक भाषा, पोशाक और खर्च में लगभग पूरी तरह अपने देश के आम लोगों जैसे ही बन गये हैं। राष्ट्रीय समिति चिन्तित है कि चीन में पहला अणु बम बनने का समाचार मिलते ही ये शासक वर्ग लुढ़क जाएँगे। लेकिन वह देश की जनता को सलाह देगी कि वह शान्त रहे, संकट की अवधि के लिए तैयार हो और राष्ट्र को ताक़तवर बनाने के लिए नये विचारों और शक्तियों का निर्माण करे।

राष्ट्रीय समिति हिन्दुस्तान की विदेश नीति के उस पहलू पर ज़ोर देती है जो उसे सभी शक्ति-कूटनीति के जैसा बनाता है और जिसके फलस्वरूप वह गांधीवाद की विश्व-सुधारक प्रेरणा से उसी तरह वंचित हो जाती है, जिस तरह कि मार्क्सवाद की शक्ति से वह वंचित है, जब चीन हांगकांग और मकाओ के ब्रिटिश और पुर्तगाली उपनिवेशों के बारे में कुछ नहीं करता, लेकिन लद्दाख और लौंगजू में घुस पड़ता है, तो वह सत्ता-कूटनीति के परम्परागत तरीक़ों पर चलता है जिसमें शक्तिशाली शत्रु को न छेड़ कर, कमज़ोर से लड़ाई की जाती है। जब हिन्दुस्तान की सरकार गोवा में कुछ नहीं करती, पाकिस्तान के साथ कुछ-कुछ जैसा का तैसा व्यवहार करती है, लेकिन खरसवां और नागा पहाड़ियों में भयानक क़त्लेआम में अपनी बन्दूक़ों का रियाज़ करती है, तो वह अपने ही लोगों को धूर्तता से लक्ष्य बनाती है जिनके कि प्रत्युत्तर देने की सम्भावना नहीं है। बलवान के आगे पंचशील या सह-अस्तित्व और दुर्बल के सामने बन्दूक़, यह हिन्दुस्तान और चीन दोनों की ही एक सरीखी नीति है। हिन्दुस्तान की सरकार ने शक्तिशाली देशों के बीच युद्ध और पुलिस कार्यवाही के बीच फ़र्क़ करके, और युद्ध के बारे में सावधानी और धीरज की सलाह दे कर अपनी उस नीति की बहुत ही खुल कर और बेहयाई से अभिव्यक्ति की।

राष्ट्रीय समिति की राय में कांग्रेसवाद कुछ नहीं, सिवाय उस गांधीवाद के जिसमें से कि सत्य और अहिंसा को हटा दिया गया है और इस कारण वह प्रभावहीन पाखंड का विशुद्ध मूर्तरूप है और वह चीन की हैवानी चुनौती का प्रतिकार नहीं कर सकता। न वह आगे चल कर साम्यवाद की अन्दरूनी बाढ़ को रोक सकता है क्योंकि जनता को अन्न व तुष्टि देने की उसकी क्षमता सीमित है और इस कारण उसके अत्याचार बढ़ते ही जाएँगे।

हिन्दुस्तान का साम्यवाद चीन या रूस के साम्यवाद का संगीसाथी होने के अलावा और कुछ नहीं हो सकता, और वह भी विश्व के पुनर्निर्माण के उच्चतम हित में। हिन्दुस्तान के लोगों को यह समझ लेना चाहिए कि उनका सामना ऐसे देशद्रोहियों से है, जो धन या स्वार्थ के लिए नहीं, बल्कि आदर्शों के लिए काम कर रहे हैं। हिन्दुस्तान के कम्युनिस्ट खतरनाक लेकिन सुथरे देशद्रोही हैं, जिनमें लगभग सारी जनता को ही अपने देशद्रोह से प्रभावित करने की बड़ी क्षमता है। विश्व साम्यवाद की शक्ति उसकी इस अन्तर्राष्ट्रीय योग्यता में है कि जब भी कोई हंगरी या तिब्बत या मानवी आत्मा की हत्या की घटना हो, तो वह किसी स्पुटनिक या ल्युनिक का निर्माण करके अन्तरात्मा की आवाज़ को शक्ति के नगाड़े में डुबा दे और उसकी राष्ट्रीय योग्यता इसमें है कि वह शोषण और अत्याचार का प्रतिकार करने की क्षमता रखता है, यद्यपि उसके लक्ष्य गंदे हैं और साधन उससे भी अधिक गंदे—विशेषत: ऐसी हालत में जब नेक लोगों ने सिविलनाफ़रमानी का परित्याग कर दिया हो। ल्युनिक को समाजवादी उत्तर यह है कि अमरीका और, उसके

पहले, इंग्लैंड की तरह रूस भी बूढ़ा जाएगा और साम्यवाद अपने चचेरे भाई पूंजीवाद की तरह ऐसी सभ्यता का निर्माण नहीं कर सकता जिसके भौतिक साहस का ह्रास न हो। साम्यवाद के दुष्ट किन्तु आकर्षक प्रतिकार का समाजवादी उत्तर सिविलनाफ़रमानी में है। फिर भी, जनता को अन्दरूनी और बाहरी साम्यवाद के संयुक्त हमले से सावधान रहना होगा। अन्तर्राष्ट्रीय साम्यवाद ने हिन्दुस्तान की ज़मीन पर यह पहला सैनिक क़दम शायद शक्ति और जनमत के दुर्बल स्थानों का पता लगाने के लिए रखा है और वह अभी वापस हट जाएगा और उस समय फिर पूरी शक्ति से आएगा जब उसके लिए सौभाग्य से राष्ट्रीय साम्यवाद बंगाल, भूटान या पंजाब में केरल की पुनरावृत्ति कर सकने में सफल हो और लोकतंत्र की रक्षा के लिए वह अपने बाहरी साथियों को शुद्ध अन्तःकरण से बुला सके।

प्रसोपा के बारे में राष्ट्रीय समिति कुछ नहीं कहना चाहती सिवाय इसके कि कम से कम उसका नेतृत्व, ऐसे व्यक्तियों का गिरोह है जो हर चढ़ती लहर पर हर किसी के साथ सवार होना चाहता है, चाहे वह हंगरी के पक्ष में हो या चीन के विरुद्ध या संयुक्त महाराष्ट्र के पक्ष में, और चाहे कांग्रेस के साथ हो, चाहे कम्युनिस्टों के, शायद इस कारण कि वे इतने थके और हारे हुए हैं कि कठिनाई और मुसीबत में रह कर काम नहीं कर सकते ताकि बूंद-बूंद करके जनमत की उन लहरों का निर्माण कर सके जो किसी राष्ट्र का भाग्य बदलती है।

राष्ट्रीय समिति स्वीकारती है कि हर देशभक्त को आज घोर निराशा की भावना का सामना करना पड़ता है, इस कारण नहीं कि चीन बलवान है और उसका देश कमज़ोर, क्योंकि ऐसी विशेषताएँ समय ले कर या ज्यादा अच्छे काम के तरीक़ों से दूर की जा सकती हैं, बल्कि इस कारण कि समय रहते अपने शासक वर्गों को, जिनसे अधिक बुरे शासक दुनिया में और नहीं हुए, हटा देने की प्रवृत्ति लोगों में नहीं दिखाई देती। फिर भी, जो देशभक्त हैं, उन्हें अपना काम करते जाना है, क्योंकि वे न कहीं और जा सकते हैं न किसी और का सहारा ले सकते हैं। सोशलिस्ट पार्टी सभी देशभक्तों को आमंत्रित करती है कि बूंद-बूंद करके समाजवादी और लोकतांत्रिक जनमत की उन लहरों का निर्माण करें जो अब भी चमत्कार से देश का भाग्य बदल सकती हैं।"

—१९५९, अक्तूबर २३–२६; गौहाटी; समाजवादी दल की राष्ट्रीय समिति का प्रस्ताव।

देश की अन्दरूनी हालत और विदेशी

हिन्दुस्तान में आईजनहावर साहब आये, और उसके पहले चीन के माओत्से तुंग साहब घुस ही चुके थे। इस पर बोलने के पहले मैं यहाँ के विश्वविद्यालयों के बारे में कहूँगा।

इलाहाबाद विश्वविद्यालय बन्द है और लखनऊ का विश्वविद्यालय भी बन्द है। मैसूर के विश्वविद्यालय में गोली चल चुकी है। इनकी अलग-अलग तफ़सील में मैं नहीं जाऊँगा, लेकिन कुछ आधारभूत बातें रखूँगा। एक यह कि दोष दुतरफ़ा है। लेकिन किस तरह से दुतरफ़ा है, इसे सोच-विचार कर कहना चाहिए। आम तौर से एकतरफ़ा बात करने पर ही लोगों को मजा मिलता है। कहाँ किसका हक़ है, यह साफ़ कहा जाए, तो विद्यार्थी और प्रोफ़ेसर दोनों में कौन कितना दोषी है इस बात का पता चलेगा। अध्यापकों के बारे में मेरी राय बन चुकी है। वे अच्छे लोग नहीं हैं।

विद्यार्थियों के बारे में हमें सोचना है, क्योंकि वे नये हैं। हर बार कहा जाता है कि छात्र अनुशासनहीन है, दंगा करता है। बिना टिकट लिये हुए किसी खेल को देखने की कोशिश करना या ट्रेन में सफ़र करना, अनुशासनहीनता की मिसाल दी जाती है। लेकिन सरकार इन बुराइयों से इतना नहीं घबड़ाती। सरकारी नीति रही है कि विद्यार्थियों का ध्यान पढ़ाई-लिखाई से हटा कर नाच-गाने की ओर लगाया जाए, क्योंकि अगर विद्यार्थी पढ़ने और बहस करने में अपना ध्यान लगाएँगे तो ध्यान दूसरी ओर भी जाएगा। सरकार ने कोशिश की कि इनका ध्यान खेल-कूद और नाच-गाने में फँसाये रखो। पिछले १२ सालों में विद्यार्थियों का ध्यान 'सांस्कृतिक' कामों की ओर मोड़ दिया गया। अभी यह लखनऊ, इलाहाबाद विश्वविद्यालय में फूटा है और आगे अभी शेष और जगहों में भी फूटेगा। मुझे इसमें आपत्ति नहीं है कि विद्यार्थियों को भरत नाट्यम् सिखाओ और उधर उनका ध्यान ले जाओ। लेकिन सिर्फ़ इससे काम नहीं चलेगा। भारत सरकार ने यही नीति रखी है कि सिर्फ़ इधर ही इनका ध्यान रखो और, इसीलिए, पिछले सालों

में सांस्कृतिक कामों को इतना बढ़ावा दिया गया कि विद्यार्थी समाजवाद, साम्यवाद या राजनीति की तरफ़ न जा सकें।

डा० रंजन का उदाहरण देता हूँ। इलाहाबाद युनिवर्सिटी में एक गाने का प्रोग्राम हो रहा था। इलाहाबाद विश्वविद्यालय के उपकुलपति भी उपस्थित थे। गाने वाले गा रहे थे। इधर चाय की प्यालियाँ आने लगीं। गाने वाले ने कहा कि उपकुलपति साहब पहले आप अपनी चाय खतम कर लीजिए तब मैं गाना शुरू करूँगा। बेशर्मी की हद देखो! गाना शुरू हुआ, फिर चाय आयी और प्याला खटका, ये हैं डा० रंजन। दूसरा उदाहरण यह है कि एक ग़रीब छात्र उनके यहाँ मदद लेने गया। उपकुलपति ने पूछा, जब ग़रीब हो तो पढ़ने की क्या ज़रूरत है। फिर पूछा, तुम्हारे पिता क्या करते हैं? कहा, कुम्हार हैं, मिट्टी के बर्तन बनाते है। उपकुलपति ने कहा, जाओ और तुम भी बर्तन बनाओ। जब विश्वविद्यालय में ऐसी बातें हों तो उन पर ध्यान रखना चाहिए। अध्यापक सीमा को पार करते जा रहे हैं। न तो वे तहज़ीब जानते हैं और न कुछ सिखाना। ये मुल्क को कमज़ोर रखते हैं, ग़रीबों की क़दर नहीं करते। वे क्या लड़कों को सदाचार सिखाएँगे, जब खुद लड़कों से नफ़रत करते हैं।

लखनऊ विश्वविद्यालय के बारे में कुछ नहीं कहूँगा। मैं पहले यहीं पर एक बार कह चुका हूँ कि जहाँ मर्द और औरत की बात हो, वहाँ दखल नहीं देना चाहिए। मैंने कहा था कि ऐसे लोग जो क़ायदे के बाहर चलना चाहते हैं उन्हें अगर सच्चाई की बुनियाद पर चलना नहीं आता तो कम से कम हिम्मत से काम लेना चाहिए।

एक छात्र से मैंने कहा था कि तुम जवान हो, लेकिन बूढ़े जब लड़कियों को भगा ले जाते हैं तो तुम उन पर ग़ुस्सा करते हो। तुम्हें हिम्मत वाला बनना चाहिए, लड़कियों का ध्यान बूढ़ों की ओर जाने ही क्यों देते हो। मेरा एक प्रोफ़ेसर था, बूढ़ा था, उसने इश्क नहीं किया बल्कि एक लड़की से शादी कर ली थी। लेकिन उसे बहुत परेशान होना पड़ा। औरत-मर्द के मामले में हिन्दुस्तानियों को सावधान रहना चाहिए। यह सही है कि जहाँ-तहाँ बातें फूट जाती हैं वहीं लोगों का ध्यान जाता है। लेकिन ये हो सब जगह रही हैं। और क्या हो रहा है, उसकी कुछ खबर हम लोग अपने अखबारों में छापा करते हैं। आज अखबार उन लोगों के हाथ में हैं जो मौजूदा समाज को क़ायम रखना चाहते हैं। वे ऐसी चीज़ों को नहीं छापेंगे।

कलकत्ता विश्वविद्यालय में सन् '४९ में एक जाँच समिति बैठी थी। उसकी रपट किसी ने नहीं छापी। किसी तरह से वह मुझे मिल गयी और वह हमारे अखबार में छपी। वहाँ के प्रोफ़ेसर रुपया कमाते हैं, किताब, और इम्तहान के परचों से वे आमदनी करते हैं। जो नामी प्रोफ़ेसर हैं, उन्हें इम्तहान की कापियाँ अधिक संख्या में देखने को मिलती हैं। वे अपने यहाँ दूसरे प्रोफ़ेसर या लड़कों को नौकर रखते हैं कि तुम कापियाँ

देख देना और चार आना प्रति कापी ले लेना। कुछ लोग एक घेरा बना लेते हैं और कापियों को घेरे में उछाल देते हैं। जो कापियाँ घेरे में पड़ीं, वे पास और शेष फेल। यह जाल लम्बा फैला है। इसे तोड़ना चाहिए। पूरी तरह से यह तब टूटेगा जब भारत के सभी मामले में सोचने के नये ढंग आएँगे। यह नहीं हो सकता कि सरकार के मन्त्री या कारखाने के मैनेजर बड़ी-बड़ी कोठी बनाएँ और अध्यापक ग़रीब के ग़रीब ही रहें। जब सारे भारत को सुधारा जाएगा तभी विश्वविद्यालय सुधर सकते हैं। जो बहुत बड़े-बड़े अफ़सर हैं, आज वे बहुत ही मज़े में हैं।

हमारे अखबारों को आज विज्ञापन नहीं मिलता। इसके क्या कारण हैं। जितने सरकारी महकमे हैं, उनका कोई न कोई अफ़सर बना दिया जाता है, और उन्हीं के द्वारा विज्ञापन बाँटे जाते हैं। हमारे अखबारों को भी लिखा गया कि तुम भी विज्ञापन लाने के लिए कुछ खबसूरत औरतों को अपने यहाँ नौकरी दो, जो विज्ञापन ला सकें, तो विज्ञापन मिलेगा। कुछ हद होती है।

विश्वविद्यालय के मामले में एक तो सोचना यह है कि किस तरह से प्रोफ़ेसर वग़ैरह को एक हद में बाँध दिया जाए कि पूरी तरह से पैसा बनाने और अपने ओहदे का वे नाजायज़ इस्तेमाल न कर सकें। जो विश्वविद्यालय के प्रोफ़ेसर हैं उनकी आमदनी जाँचने के लिए और उनके आचरण की जाँच के लिए एक कमेटी बनायी जाए। मैं आपसे पहले कह चुका हूँ कि यह मामला आप उस ढंग से न बना लेना कि जो नैतिकता की बात कहे, वही अच्छा है। बात करना सीखो। तहज़ीब सीखो ताकि लड़कियों का ध्यान बूढ़ों की ओर न खिचे।

दक्षिण भारत में एक खानदान पूरा का पूरा ज़हर खा कर मरा पाया गया। कारण क्या था। एक लड़की उनके घर में थी, २४ वर्ष की होगी। वे शादी नहीं कर पाते थे। शर्म आनी चाहिए विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों को कि वे ऐसी शादी नहीं करते। अध्यापक तो गिरे ही हैं दहेज़ की बात पर, बी. ए. और एम. ए. कितनी बदमाशी करते हैं। सरोज और उसके भाई समाज न बदल सके और ज़हर खा कर मर गये। हज़ारों लड़कियाँ शादी न करें और अपना खर्च चलाएँ तो आप ही लोग कहोगे कि देखो कितनी बदचलन हैं। ५,००० रुपया दहेज़ दे कर जिनकी शादी होती है वे बदचलन नहीं हो सकतीं क्या? कौन बदचलन है, इस पर हमें अपना दिमाग़ बदलना पड़ेगा। अगर सरोज और उसके भाई बजाय आत्महत्या करने के क़सम खाते कि जिस समाज में शादी में दहेज़ लेना नेकचलनी समझा जाता है और जहाँ दर्जनों बच्चे पैदा करना नेकचलनी है, उस समाज को बदलो। तब लोगों का ध्यान उधर न जाता।

कालेजों की पढ़ाई अंग्रेज़ी के माध्यम से नहीं होनी चाहिए। आजकल लच्छेदारी की पढ़ाई होती है। ऊपरी ढर्रे पर लोग अच्छा-बुरा समझते हैं। जो प्रोफ़ेसर अपने विषय

को जानता है लेकिन लच्छेदारी नहीं करता, उसे बुरा कहा जाता है। अपनी जबान के माध्यम से सभी विषय पढ़ना पड़ेगा। ये प्रोफ़ेसर आज के समाज के हिस्से बन गये हैं। ज़्यादातर तो इनमें पैसे वाले और ऊँची जाति के हैं। मैं लड़कों को कह देना चाहता हूँ कि वे इस बात को समझ नहीं रहे हैं कि अंग्रेज़ी के माध्यम की पढ़ाई कितनी ख़तरनाक है। लोगों के दिमाग़ में घुसा है कि बिना अंग्रेज़ी के, नये विज्ञान को नहीं समझा जा सकता। यह बात रूस और चीन ने ग़लत साबित कर दी है। इस पर अब तर्क करने की ज़रूरत नहीं है। फिर अंग्रेज़ी का मोह क्यों है।

जितनी ज़्यादा ग़रीबी होती है और ख़ास करके उस इलाक़े में जहाँ नयी बातें नहीं पहुँचतीं, वहाँ ग़रीब औरतें गहना पहना करती हैं। जो आगे बढ़ जाती हैं वे तो गहने पहनतीं ही नहीं। जो औरतें जितनी कम पढ़ी-लिखी होती हैं वे ज़्यादा गहने पहनती हैं। भील औरतें पूरा पाँव गहने से ढका करती हैं। धनी घर की लड़कियाँ अपने-आप कान छिदवाया नहीं करतीं और कहा करती हैं कि कान में क्या पहनूँगी जब कान छिदवाऊँगी ही नहीं। इसी तरह, जब आदमी अपनी बेवक़ूफ़ी को छिपाना चाहता है तो अंग्रेज़ी का गहना पहनना चाहता है।

विश्वविद्यालयों में पढ़ने वालों की तादाद घटाने के लिए बहुत कोशिश हो रही है। जब किसी लड़के की भरती विश्वविद्यालय में न हो तो गड़बड़ी अवश्य होनी चाहिए। नम्बरों की कमी के कारण भरती न करना, निहायत गन्दी चीज़ है। यह मैं जानता हूँ कि हिन्दुस्तान के दो आदमियों ने क़सम खा ली है और वे विधान को तोड़ कर अपनी जाति-पाँति रखना चाहते हैं। वे चाहते हैं कि विद्यार्थियों की तादाद कम की जाए। इसे कोई रोक नहीं सकता। तादाद बढ़ेगी ही। पहले तादाद ७ लाख थी, दस-वर्ष में तादाद २०-३० लाख होके रहेगी। अब पढ़ाई गाँव और शहर के ग़रीब तबक़ों में घुस रही है। जो परिवार पहले से पढ़ने में आगे थे, उन्हें बुरा लग रहा है कि कहाँ से ये देहाती और जंगली लोग पढ़ने चले आ रहे हैं। आजकल चपरासी को भी पूछा जाता है कि अंग्रेज़ी जानते हो? दसवाँ पास हो? सरकार को चाहिए कि बिन अंग्रेज़ी पढ़े-लिखे भी ऊँची जगह पर पहुँचें। यह तो न्याय की बात है। कालेजों में कम लड़के भरती हों और कम पास हों। यह तादाद घटाने के लिए किया जा रहा है। भरती के बाद जब इम्तहान होता है तो ग़रीब तबक़ों को रोकने का काम किया जाता है ताकि वे पास न हों।

मुझे दुःख है कि बनारस विश्वविद्यालय ऐसे अवसर पर नहीं बन्द हुआ। उसे भी ऐसे मौक़े पर बन्द होना चाहिए जो अभी भी चल रहा है। पिछले साल वहाँ के विद्यार्थियों को बन्दूक़ की नोक से दबाया गया। दो हज़ार पुलिस के इस्तेमाल के बाद लड़के भय से चूहे बन गये। मेरे जैसा आदमी तो यही कहेगा कि लड़के भय से रहें तो अच्छा है, मगर उनको चूहा न बनाया जाए। मैं बनारस विश्वविद्यालय के

छात्रों को कहना चाहूँगा कि जिस तरह से जब तुम लड़े थे तो लखनऊ और इलाहाबाद विश्वविद्यालय के लड़कों ने तुम्हारे साथ ग़द्दारी की थी, कहीं इस तरह से तुम न करना। आन्दोलन चलाओ। पास करने के जो क़ायदे क़ानून हों, उन्हें ठीक बनाओ।

आप देख गये होंगे कि कितना ज्यादा सम्बन्ध रखता है चीन के बारे में यह अन्दरूनी मसला। यह मुल्क चीन से क्या मुक़ाबला कर सकता है। अमरीकी आईज़न-हावर आये। अभी तक हमने फूल के हार, गहने, बिछौने, सुना था लेकिन फूल के फाटक और छत आईज़नहावर साहब के आने पर नेहरू साहब ने बनवाये। अच्छा है। याद रखना अब तक अमरीका से भारत को ७ अरब के आस-पास रुपये मिल चुके हैं, और चीन के च्यांग काई शेक साहब को भी ४० अरब मिला था। कितना कम है चीन से। फूल के फाटक के बाद अब रुपया देने की रफ़तार बढ़ेगी और बढ़ कर २० अरब तक जाएगी। २० अरब के बाद ये भी खतम करेंगे। मुफ़्त का माल देश को बनाता नहीं, केवल पूंजीपतियों को ही बनाता है। चीन के ४० अरब में २० अरब तो चीन बनाने में लगा था और शेष अफ़सरों आदि में फ़िज़ूल खर्च हुआ था।

दुनिया के सारे राष्ट्रों की एक पंचायत है। किसी भी देश को रुपये और कल कारखाने देने की बात भी उसी पंचायत के ज़रिये होनी चाहिए। इससे जो बात-चीत चापूलसी में चलती है, वह बन्द हो जाएगी। भारत जैसा मुल्क आज ग़रीबी के कारण हाथ पसारता है, लेकिन अमरीका जैसा देश उसे दूसरी निगाह से देखता है। मैकमिलन साहब भी इसी तरह से बोलते हैं। किसी देश की बाहरी मदद या तो विश्व पंचायत के ज़रिये या अलग किसी पंचायत के ज़रिये मिलनी चाहिए, नहीं तो ताक़त वाले देश, कमज़ोर और ग़रीब मुल्क पर दबाव रखेंगे और छोटे मुल्क चापलूसी सीखेंगे।

इसमें कोई शक नहीं कि चीन ने हमला किया क्योंकि भारत की सरकार वाहियात रही। जो सरकारी पार्टी है, उसकी मैं बात बताता हूँ। कांग्रेसियों के जुलूस कलकत्ते में निकले जिनमें "चीन वालो भारत छोड़ो" का नारा लग रहा था। जिसकी भारत में सरकार है, उस पार्टी के लोग यह नारा लगाते हैं। क्या मज़ाक़ है ? मैंने दुनिया में बहुत चीज़ें देखी हैं लेकिन एक भी ऐसी बात नहीं देखी। "अंग्रेज़ो भारत छोड़ो" की तरह "चीन वालो भारत छोड़ो" का नारा लगा दिया गया, जैसे चीन वाले यहाँ हुकूमत कर रहे हों।

भारत की रक्षा की माँग करता है जन संघ और प्रजा सोशलिस्ट पार्टी। जिस कांग्रेस पार्टी ने १२ वर्ष तक नाकामयाब हो कर राज किया था। जिसके भीतर और बाहर के मन्दिर, भाखड़ा और पंचशील, बह गये। अभी तक इसे भारत के ज्यादा लोगों ने समझा ही नहीं। दोनों एक साथ बहे हैं। इससे पता चलता है कि यह सरकार कितनी निकम्मी है। सच पूछो तो इसको वोट नहीं मिलना चाहिए। वोट इसके मुक़ाबले में

मिला किसको ? जनसंघ और प्रजा को, जो चीन के मामले में हल्ला मचा रहे हैं। वोट के पीछे एक सबब यह था कि भारत की रक्षा करना। चीन से, पलटन के मामले में, भारत ने कमज़ोरी दिखायी, उसे मज़बूती दिखलानी चाहिए, ऐसा ये कहते हैं। भारत की सरकार चालाकी से काम दिखलाना चाहती है। हिन्दुस्तान की सरकार मज़बूती से चीन का मुक़ाबला करे और लद्दाख से चीनी को बाहर निकाल दे तो उसका क्या मतलब होगा ? देश जिसे १२ साल से कमजोर रखा गया है उसे मुक़ाबले के लिए जुट जाने को कहा जाए तो क्या मतलब ? एक बढ़ती ताक़त से मुक़ाबला करने के क्या मानी होते हैं ? यही न कि और किसी का सहारा लो। जनसंघ और प्रजा के हल्ले का मतलब यही है कि अमरीका की मदद लो। उसका कहना यह नहीं है कि १२ साल से पिछड़े देश को आगे बढ़ाओ। जिस तरह से कम्युनिस्ट पार्टी एक विदेशी ताक़त का हथियार बन चुकी हैं, उसी तरह से जनसंघ और प्रजा हिन्दुस्तान को आईज़नहावर और अमरीका का मुहताज बना देना चाहती है। वे भारत को बदलने की बात नहीं करते। कांग्रेस, जनसंघ और प्रजा तीनों कहते हैं, चीन आया है मिल कर मुक़ाबला करो। चीन से हम कहाँ मिलें ? कानपुर में, लखनऊ में ? मेरे जैसा आदमी देश के ही एक इलाक़े में जाना चाहता है, तो कह दो, चीन आ गया है, आगे मत बढ़ो। लखनऊ में जुलूस निकालो, चीन आ गया है, मत बोलो। क्या मतलब इसका ?

अमरीका में ऋुश्चेव साहब के साथ जितने लोग गये थे, कुल १० दिन में उन पर ५ लाख रुपया खर्च अमरीका ने किया। अमरीका वाले चिल्लाये कि क्यों आपने रोज़ के ५० हज़ार रुपयों को, जो बच्चों के दूध के लिए थे, विदेशियों पर खर्च किया। लेकिन यहाँ तो लाखों रुपये की फूल की छत ही बनायी जाती है, कोई पूछने वाला नहीं। जो चीन ने हमला कर दिया तो इन दोनों पार्टियों को मौक़ा मिल गया कि चीन को बदनाम करके अमरीका का सहारा लो। होना यह चाहिए था कि अमरीका और रूस को खतम करके हम चीन से मुक़ाबला करेंगे। चीन लद्दाख में चार बरस से घुसा हुआ है। सड़क बन गयी है। सवाल है, दिल्ली चुप क्यों रही। जब चीन ने अपनी सड़क लद्दाख में बनायी थी तो भारत ने कार्यवाही क्यों नहीं की ? उधर बग़ल में पाकिस्तान में अमरीका की सड़कें बन रही थीं। छोटा चालाक जो होता है वह सोचता है कि चीन की सड़क और हवाई अड्डे बन जाते हैं तो ये दोनों आपस में लड़ेंगे, हमारा क्या जाता है।

हिन्दुस्तान के नेताओं को, मैं समझता हूँ कि फ़ोटो खिचवाने का शौक़ बढ़ गया है। उर्वसीअम् में चीनी आये थे और कुछ लोगों को चीन ले गये थे। चीनी लोग उस इलाक़े के लोगों को ख़ास तौर से बुलाते हैं और उनकी इज़्ज़त करते हैं। आचार्य नरेन्द्रदेव चीन गये थे, उनकी बैठक माओत्से तुंग साहब से अलग न हो पायी। लेकिन एक पहाड़ी इलाक़े का मामूली आदमी भी गया तो उसकी मुलाक़ात माओत्से तुंग से करायी गयी। कहा—तुम्हारी नाक चपटी, हमारी नाक चपटी; तुम्हारी आँख छोटी, हमारी आँख

छोटी; तुम्हारा रंग पीला हमारा भी रंग पीला। वहाँ ऐसा प्रचार किया गया। लेकिन यहाँ फ़ोटो खिचवाने का मौक़ा मिल जाए, बस प्रसन्न हैं। चीन ने उत्तरी सीमा पर बसने वाले हिन्दुस्तानियों से कहा है कि वे उनके भाई हैं न कि हमारे। यह दस वर्ष से चल रहा है। मैं चीन से लगी उत्तरी सीमा के सभी इलाक़ों में घूम कर आया हूँ। धर्म, लिखने का ढंग, भाषा, इन सब मामले में तिब्बत भारत एक दूसरे के भाई हैं, चीन के नहीं। जिस्म के मामले में भी तिब्बत भारत से नज़दीक है।

जनसंघ तो इसलिए बना है कि वह हिन्दुस्तान का बिगाड़ करे, जैसे कांग्रेस ने किया है। क्यों नहीं ये 'नेफ़ा' का नामकरण करते? प्रजा वाले तो बिलकुल ही बेमतलब हैं। यह कौन-सी पार्टी है जिसे लखनऊ वाले बिला मतलब ही टिकाए रखे हैं। भारत की सरकार निकम्मी है तो कैसे मुक़ाबला हो। चीन घुसा कैसे! लोंगजू लेने के लिए या लद्दाख लेने के लिए घुसा था? नहीं! अगर मान लो लड़ाई महीने दो महीने में होने वाली होती तो हमारे आपके सोचने का ढंग अलग-अलग होता। एक तरफ़ बयान निकलता है कि चीन ने हिन्दुस्तानियों के साथ बदमाशी का बरताव किया। दूसरी तरफ़ बयान है, चीन का तिजारती रिश्ता छोड़ने का इरादा नहीं है। चीन का इरादा भी है कि वह बहुत दूर, आगे बढ़े। जब काश्मीर का मामला दस वर्ष चल सकता है, तो चीन का ५ वर्ष तो चलेगा। चीन ने हमला किया, क्योंकि कमज़ोर पर सब हमला करते हैं। इसने फ़ारमोसा पर हमला नहीं किया, हांगकांग पर नहीं किया। चीन देखता है, कहाँ है कमज़ोर, उसे दबाओ। चीन हमेशा टटोलता रहता है कि कम्युनिस्टों की सरकार को कहाँ कामयाब कर सकते हैं। यह मामला उत्तरी सीमा का नहीं है, कलकत्ता, लखनऊ, दिल्ली में कम्युनिस्ट राज बनाने का है। अभी तो एक नाटक खेला जा रहा है।

वे इलाक़े जो चीन से दूर हैं वहाँ की हिन्दुस्तानी कम्युनिस्ट पार्टी ने चीन के हमले के सम्बन्ध में रुख लिया कि देश को बचाना है। जहाँ सीमा चीन से जुड़ी है वहाँ कम्युनिस्टों द्वारा कहा गया—चीन हमारी भलाई करेगा। चीन के नज़दीक वाले इलाक़े चीन-नीति अपनाये। जनसंघ समझता है कि कम्युनिस्टों को देशद्रोही कह करके ख़तम कर देंगे। प्रसोपा भी यही समझती है। ये सब एक ही हैं। अगर कम्युनिस्ट देशद्रोही हैं तो इस मानी में जनसंघ और प्रजा भी देशद्रोही हैं। दिल्ली में ये मिल कर अपना कारपोरेशन बनाये थे। प्रजा पार्टी वाले '५७ में कम्युनिस्टों से मिल कर चुनाव लड़े थे कि सरकार बनाएंगे। प्रजा पार्टी तो लंगड़ी है, उसे लकड़ी की जरूरत है चाहे वह लकड़ी कम्युनिस्ट की मिले या कांग्रेस की। कम्युनिस्ट जिस तरह से सन् '४२ में ग़द्दारी करके कांग्रेस से मिल गये थे, उसी तरह वे फिर करेंगे। लेकिन फिर भी ग़द्दारी के बाद भी, वे पनप गये। मैं कम्युनिस्टों को जानता हूँ। ये मुल्क के लिए कीड़ा हैं, मुल्क को जहन्नुम में पहुँचाएँगे। वे लालच वाले ग़द्दार नहीं हैं। वे कुछ और क़िस्म के ग़द्दार हैं। सन् '४२ में ग़द्दारी की, हंगरी के मामले में ग़द्दारी की लेकिन फिर भी ख़तम नहीं होते। क्यों नहीं होते?

आप समझते हैं जनसंघ और प्रजा, कम्युनिस्टों को खतम करेंगे। हमारे जैसे लोग जो लड़ते-लड़ते पस्त हो चुके थे और सन् '४२ में जेल में थे, उस समय दिमाग़ से भी हमारा हिटलर से कोई सम्बन्ध नहीं था। लेकिन जब अंग्रेज़ों की पलटन पीछे हटती थी, तो अच्छा लगता था। आज उतना तो नहीं, क़रीब-क़रीब उसी तरह का हाल होता जा रहा है। जनता, दुकानदार, कुली, मज़दूर और मामूली किसान आज दुखी होते जा रहे हैं। आज भारत की दुखी जनता कांग्रेस से दुखी हो कर पलटाव चाहती है। यही चीज़ कम्युनिस्टों की मदद करती है। इसमें कोई शक नहीं कि चीन और रूस की हुकूमत भारत को बरबाद करेगी। लेकिन फिर भी पलटाव वाले उधर झुकते हैं। जिस तरह मज़दूरों का कारखाने में शोषण होता है। उसी तरह कम्युनिस्ट ग़रीब और दुखी लोगों का शोषण करते हैं। लोगों के मन में है कि ये सब खराब हैं। चीन आएगा भारत को बदलेगा, ऐसा प्रचार कम्युनिस्ट करते हैं।

५–१० वर्ष में कम्युनिस्ट लोग यह भावना प्रचारित करेंगे कि चीन भारत की ग़रीबी का पलटाव करेगा और मुक्ति दिलाएगा। यह है साजिश जो ५ वर्ष बाद समझ में आएगी। प्रजा और जनसंघ अपनी पार्टी बढ़ाने के लिए कम्युनिस्टों को देशद्रोही कहते हैं। कम्युनिस्ट कैसे खतम हो जाएँगे ? यहाँ के गाँवों में किसी को पता है कि चीन ने हमला किया है ? किसी ने सुना भी तो समझा कि चीनाबादाम की बातें हो रही है। पढ़े-लिखे लोग कम्युनिस्टों को मज़बूत पा कर उनकी हाँ में हाँ मिलाने लगेंगे। विदेशियों ने हमला करके हमें बार-बार ग़ुलाम बनाया है। फूट की वजह से भारत ग़ुलाम नही बना है। नेताओं की फूट से भारत ग़ुलाम नहीं बना है, बना है जनता की उदासीनता की वजह से। बक्सर की लड़ाई दो मिनट चली और ४० हज़ार सिपाही भाग गये और ५,००० अंग्रेज़ों के सिपाही जीत गये, किसान हल की मुट्ठी पकड़े खड़ा देखता रहा। प्रजा और जनसंघी हमेशा नौकरी, शादी और अन्य चीज़ों में कांग्रेस से एका बनाये हो रहते है। जब नीची जातियों को ऊपर उठाया जाएगा तो देश की रक्षा होगी। हमारे जैसा आदमी जब अपने देश में जाता है तो उसे तो रोक लिया जाता है लेकिन चीन के घुसने पर सरकार के पास पलटन नहीं है और हमारे लिए बीसों सिपाही आ जाते हैं।

चीन की सीमा क्या है ? मैकमोहन लाइन की बात कही जाती है। भारत-तिब्बत की सीमा क्या है ! दिन-रात प्रजा और संघी यह चिल्लाते हैं, काग्रेस की तरह, कि मैकमोहन लाइन, मैकमोहन लाइन। पर यह तो भारत-तिब्बत की सीमा है। भारत-चीन की सीमा क्या है ? दिल्ली सरकार को रुक कर बोलना पड़ता है, लेकिन प्रजा और संघी को क्या हुआ जो नहीं बोले। हिन्दुस्तान की सरकार ने पहली बार मानसरोवर कैलाश की चर्चा की। मानसरोवर के ऊपर चीन का क़ब्ज़ा १० वर्ष से है, कैलाश पर भी चीन का क़ब्ज़ा १० वर्ष से है, वह कैलाश, जिसकी धुरी पर पुरानी गाथाएँ जुड़ी हुई हैं।

तिब्बत तो गया, कम से कम थोड़े दिनों के लिए गया। अगर तिब्बत पूरी तरह से आज़ाद है तब तो भारत-चीन की सीमा मैकमोहन लाइन है, लेकिन अगर तिब्बत स्वतंत्र नहीं है तो चीन की सीमा पूर्ववाहिनी ब्रह्मपुत्र हो जाती है। मानसरोवर कैलाश हमारे हैं।

उर्वसीअम् में सिपाहियों ने हमें गिरफ़तार किया। मज़े की बात देखो कि गिरफ़-तार भी करते हैं और कभी-कभी हुज़ूर भी कह देते हैं। कभी मोटर में बैठाया, कभी नाव में बैठाया, कहीं कुण्डली नदी पर बैठाया। तीन नदियों के संगम का एक साथ मैंने तीन घंटे में सफ़र कर डाला। आत्मसम्मान की राजनीति को नौजवान आदमी ही चला सकता है। मैं जेल से नफ़रत करता हूँ। वह मुझे साँप की तरह लगती है। आज सरकारी नौकरों के अलावा किसी की इज्ज़त रह नहीं गयी है। आप इस बार उथल-पुथल मचा दें ताकि ग़रीब आदमी भी इज्ज़त की ज़िन्दगी बसर कर सके। विद्यार्थियों को भी कहूँगा कि हर छुटपुट चीज़ को बड़ी चीज़ के साथ जोड़ो। मेम्बर बनो, ताक़त बढ़ाओ, जितने सोशलिस्ट पार्टी के मेम्बर लखनऊ में हैं वे सोशलिस्ट पार्टी को सुर्ख़ नहीं बना सकते। आपको इसे बनाना है। सन् '६० में सिविलनाफ़रमानी होगी, अगर सरकार ने माँगों को नहीं माना तब। इसमें आप सब, जो भी, जितना भी बन पड़े, भाग लीजिए।

—१९५९, दिसम्बर १६; लखनऊ; भाषण-रपट।

उत्तरी सीमा

भारत को चीन के आक्रमण से बचाने और अपने देश की सीमा सुरक्षा की दृष्टि से तिब्बत का स्वतंत्र होना, भारत की उत्तरी सीमा तथाकथित मैकमोहन रेखा से भी आगे ब्रह्मपुत्र नदी का माना जाना अत्यन्त आवश्यक है।

भारत सरकार ने श्री चाऊ एन लाई को निमंत्रित कर बड़ी भूल की है और निश्चय ही प्रधान मंत्री श्री नेहरू की राष्ट्रीय प्रतिष्ठा के विपरीत अपनाये जाने वाली इस नीति से भारत-चीन की सीमा समस्या का समाधान नहीं निकल सकता। जिस समय चीन अपनी कूटनीति के द्वारा तिब्बत पर अधिकार कर रहा था, उन्हीं दिनों भारत सरकार को और प्रधान मंत्री श्री नेहरू को मैंने सचेत किया था, किन्तु खेद है कि उस समय कोई ध्यान नहीं दिया गया। परिणाम स्वरूप, भारत सरकार की लापरवाही का लाभ उठाते हुए चीन ने तिब्बत और उसके बाद भारत के भी कुछ हिस्से पर अधिकार कर लिया है।

चीन के प्रधान मंत्री को, केरल के चुनाव के लिए वोट पड़ जाने के बाद निमंत्रित किया जाना एक कूटनीतिपूर्ण चाल है।

—१९६०, मार्च १; रायगढ़; भाषण से।

इलाक़े की कसौटियाँ

श्री नेहरू और श्री चाऊ नयी दुनिया के प्रणेता अपने-आप को कहते हैं। दुनिया के देशों में अब प्रेम और श्रद्धा क़ायम करनी है, अतः सीमा-विवाद के बारे में भी नयी विचारधारा के अनुसार सोचना होगा। दुनिया का कौन-सा इलाक़ा किस देश के साथ होना चाहिए, इस संबंध में मेरी कुछ कसौटियाँ हैं, जिन पर विचार करके किसी इलाक़े को कि वह किस देश में रहे, तय किया जाना चाहिए। सबसे पहले आती है उस इलाक़े के रहने वालों की भावना। इसके बाद, उनकी भाषा, लिपि रहन-सहन, संस्कृति, धर्म और पुराने संबंध। उक्त बातों पर तोलें तो तिब्बत अथवा लद्दाख चीन के मुक़ाबले भारत के अधिक नज़दीक होते हैं। पुराने दस्तावेज़ों के लिहाज से यदि कोई फ़ैसला किया जाए तो भी, हालाँकि इस नयी दुनिया में पुराने दस्तावेज़ों का अब कोई महत्त्व नहीं है, क्योंकि पुरानी संधियाँ साम्राज्यवादियों, राजाओं और शोषकों द्वारा एक-दूसरे की ताक़त कम-बढ़ होने के अनुसार की गयी हैं और उनमें जनता की भावनाओं का कोई खयाल नहीं रखा गया था। फिर भी, यदि दस्तावज़ों का ही सवाल है तो ३००-४०० साल पुराने दस्तावेज़ों की ही बात क्यों ली जाए, ४,०००-८,००० वर्ष पुराने दस्तावेज़ों व बातों को लिया जाए तो मैकमोहन रेखा के ७०-८० मील उत्तर तक यानी कैलाश-मानसरोवर भारत की सीमा है।

चीन ने हमारी केवल १२ हज़ार वर्ग मील ज़मीन नहीं दबायी है, बल्कि चीन ने दस वर्ष पूर्व तिब्बत पर क़ब्ज़ा किया तब लाखों वर्ग मील ज़मीन दबा ली और उसके बाद ८० हज़ार वर्ग मील तो वह पहले ही खा चुका है।

जनसंघ, कांग्रेस, प्रजा सोशलिस्ट और अन्य राजनीतिक पार्टियाँ मैकमोहन रेखा की आरती उतारते नहीं थकतीं। कैलाश, मानसरोवर और सरगामाथा हमारे हैं। मैकमोहन रेखा से ७० मील दूर उत्तर-पूर्व वाहिनी ब्रह्मपुत्र हमारी और चीन की सीमा हो सकती है।

नपुंसक चाणक्य नेहरू ने आज देश को बरबाद करके रख दिया है। देश में भ्रष्टाचार अनाचार का बोलबाला है। श्री नेहरू देश की कमज़ोर और निहत्थी जनता पर गोली चलवाते हैं, पाकिस्तान से गर्मी से बात करते हैं, और चीन के तलवे चाटते हैं, क्योंकि चीन मज़बूत है। चीन से वार्ता करते समय पं० नेहरू को भारत की ५ लाख वर्ग मील ज़मीन की भी चर्चा करनी चाहिए जिसे चीन ने १० वर्ष पूर्व हड़प लिया था। इसी भाग में हमारे परम्परागत प्रसिद्ध तीर्थ कैलाश, मानसरोवर तथा ब्रह्मपुत्र नदी हैं। हमें तिब्बत की स्वतंत्रता का भी प्रयास करना चाहिए और यदि संभव न हो तो भी कैलाश-मानसरोवर की प्राप्ति की ओर विशेष ध्यान दिया जाना ज़रूरी है।

भारत व चीन पुराने दस्तावेज़ों और संधियों को मध्य में रख कर समझौते की वार्ता कर रहे हैं। भारत और चीन जैसे प्रगतिशील देशों को नयी दुनिया के निर्माण में इनका उपयोग नहीं करना चाहिए। इतिहास इसे मूर्खतापूर्ण वार्ता कहेगा।

अंग्रेज़ों ने हमारे देश में आर्य, द्रविड, मंगोल तथा आदिवासी आदि वर्णविभेद की जो नीति अपनायी थी, उसका चीन लाभ उ ा रहा है। समस्त उत्तर भारत को मंगोल रक्त से सम्बन्धित मान कर वह अनुचित लाभ उठाने के लिए मंगोल-मंगोल भाई का प्रचार कर रहा है।

मैं यह सुझाव देने को तैयार नहीं हूँ कि यदि वार्ता से समस्या हल न हो तो क्या करना चाहिए। यह सत्तारूढ लोगों का काम है। वे सोचें कि देश की भूमि की रक्षा का प्रयास किस तरह किया जाए। मेरी दृष्टि में तो जब ३०-४० वर्ष पश्चात् नपुंसक सत्ताधारी नही रहेंगे, तब देश का सुधार होगा। इसी संदर्भ में आज ग़रीब जनता पर बल प्रयोग करने के लिए सरकार के पास पुलिस की शक्ति है, किन्तु देश की रक्षा के लिए उन्हें पंचशील याद आता है।

देश में १२ सालों में करोड़पति बढ़े हैं। २५ करोड़ के आसामी बिड़ला, २०० करोड़ के आसामी हो गये हैं और ग़रीब भूखा मर रहा है। आज की बागडोर बड़े बनिया-ब्राह्मण और कायस्थों के हाथ में है और ग़रीब ब्राह्मण, बनिया, कोरी, चमार, भंगी पिस रहे हैं। श्री नेहरू ने ग़रीब जनता की पोशाक को अलग कर रखा है, देश को हीनता की भावना मे भर दिया है और देश में अंग्रेज़ों के नक़लची बन्दरों का बोल-बाला है। श्री बिड़ला एक दिन में ४० हज़ार रुपये कमाते हैं और श्री नेहरू एक दिन में ४० हज़ार रुपया ख़र्चा कर देते हैं। अमरीका के आईज़नहावर भी इतना खर्च नहीं कर सकते।

पुश्तैनी भिखमंगा श्री नेहरू ब्राह्मण के बेटे हैं और छोटे-से देश डेनमार्क से ले कर बड़े से बड़े अमरीका और रूस सभी के सामने हाथ पसारने में उन्हें शर्म नहीं आती। ये देश को बुरी तरह क़र्ज़दार बना कर छोड़ेंगे।

देश में कोई नरम कार्यक्रम वाली पार्टी कांग्रेस को हरा नहीं सकती। इसके लिए देश को गरम कार्यक्रम देने की आवश्यकता है।

सरकार की मालिक है जनता। यह मज़े की बात है कि नौकर आज सेवा न करके मालिक बने हुए हैं। ऐसे ५ लाख नौकर हैं जिन पर ५० करोड़ रुपया सालाना व्यय होता है।

क़ानून की दृष्टि में आदमी की समान क़ीमत होनी चाहिए। वह ग़रीब-अमीर का भेद न करे। नेताओं और जनता के ही रहन-सहन में आज फ़र्क़ है। आवश्यक यह है कि नेता करोड़ों में घुलमिल जाएँ।

कम्युनिस्ट वोट से कभी सफल नहीं हो सकते। हाँ, १०-१२ वर्ष में रूस चीन की मदद से वे यहाँ हुकूमत बना सकते हैं। उनके इस प्रयास को रोकने के लिए ४० करोड़ लोगों में प्राण डालने की ज़रूरत है।

—१९६०, अप्रैल; ललितपुर; भाषण से।

चीनी प्रधानमंत्री की यात्रा

मुझे डर है कि श्री नेहरू चीनी प्रधानमंत्री के साथ दिल्ली में जल्दी ही होने वाली बातचीत में कहीं ऐसा समझौता न कर बैठें कि जिससे चीनी सेनाओं के क़ब्ज़े में हमारी सीमा के जो क्षेत्र हैं, उनका कम से कम आधा भाग हमारे हाथ से निकल जाएगा। हालाँकि इन दोनों प्रधानमंत्रियों की बातचीत के नतीजे का अन्दाज़ लगाना कठिन है, पर मुझे डर लगा हुआ है, क्योंकि बड़ी-बड़ी ग़लतियाँ करने की श्री नेहरू की नुक़सानदेह क़ाबिलियत से मैं अवगत हूं, और, इसलिए, मैं सोचता हूँ कि श्री नेहरू समझौता करने के लिए राज़ी हो जाएँगे, जिसके अन्तर्गत, चीनियों द्वारा दबायी गयी आधी ज़मीन तो हमें मिल जाएगी और आधी चली जाएगी। श्री नेहरू की इस उपलब्धि को हिन्दुस्तान के अखबार खूब उछालेंगे कि इस आदमी ने कैसा बढ़िया तीर मारा है।

मुझे अफ़सोस है कि कम से कम चार राजनीतिक दल यानी कांग्रेस, जनसंघ, प्रसोपा और स्वतंत्र पार्टी ने, जो निहित स्वार्थों की दायीं बाज़ू की प्रतिक्रिया के प्रतिनिधि संगठन हैं, बार-बार घोषणा की कि मैकमोहन रेखा हिन्दुस्तान की सीमा रेखा है।

मेरी राय में हिन्दुस्तान की सीमा रेखा मैकमोहन रेखा के क़रीब ७० मील उत्तर में पड़ती है जिसमें वह सारा इलाक़ा आ जाता है जहाँ मानसरोवर, कैलाश और पूर्ववाहिनी ब्रह्मपुत्र है।

स्वतंत्र तिब्बत को हिन्दुस्तान यह इलाक़ा दे सकता है, किन्तु चीन को तो हरगिज़ नहीं। हिन्दुस्तान और तिब्बत के बीच मैकमोहन रेखा सीमा रेखा हो सकती है। हिन्दुस्तान और चीन के बीच सीमा रेखा तो मैकमोहन रेखा से क़रीब ७० मील उत्तर में ही हो सकती है। हम जानते हैं कि चूँकि हिन्दुस्तान आज कमज़ोर है, वह उस ज़मीन पर अपने हक़ का इसरार नहीं कर सकता। किन्तु ५० या ६० बरस बाद जब हिन्दुस्तान काफ़ी मज़बूत हो जाएगा, तब जनता मेरे इन शब्दों का महत्व समझ सकेगी।

अगर चीनी सरगामाथा पर दावा कर सकते हैं—एवरेस्ट कहना भूल है, चीनी भाषा में भी उसका नाम अलग है—तो कोई कारण नहीं है कि कैलाश और मानसरोवर के पास के इलाक़े हिन्दुस्तान के क्यों न हों।

स्वतंत्र पार्टी और कांग्रेस के बीच कोई फ़र्क़ नहीं है क्योंकि दोनों देश के प्रतिक्रियावादी निहित स्वार्थों का प्रतिनिधित्व करते हैं। जबकि कांग्रेस हुकूमत में है, स्वतंत्र पार्टी पूँजीपतियों के स्वार्थों की रक्षा करने हुकूमत में जाना चाहती है। स्वतंत्र पार्टी के बारे में एक अच्छी चीज़ यह है कि श्री राजगोपालाचारी ऐय्याशी के मामले में श्री नेहरू से कम खर्च करेंगे। भारतीय जनतंत्र को इन अमीरों की पार्टियों से बड़ा खतरा है, क्योंकि वे चुनाव के वक़्त अनापशनाप खर्च करेंगी। मैं चाहूँगा कि जनता ऐसी पार्टियों और व्यक्तियों से कोई सरोकार न रखे जो कि चुनावों में पर्चों, भोंपुओं या मोटरों पर बेतहाशा खर्च करते हैं, क्योंकि खर्च करने के बाद ये लोग चुन जाने पर ग़लत तरीक़ों से इस नुक़सान को पूरा करने की हरचंद कोशिश करेंगे।

समाजवादी दल के मई १ से शुरू होने वाले सत्याग्रह का बहुत महत्त्व है। मैं जनता से आग्रह करूँगा कि वह उसे सफल बनाए, और खुल कर क़ानून तोड़े, क्योंकि खुल कर क़ानून तोड़ना पाप नहीं है। चोरों, आफ़ीसरों या मंत्रियों की तरह इस देश में लुकछिप कर क़ानून तोड़ना सचमुच बुरा है।

श्री चाऊ-एन-लाई जब दिल्ली आएँ तब उनके विरोध में किसी भी प्रदर्शन को मैं पसन्द नहीं करूँगा क्योंकि यह चीनी नेता अपनी मरज़ी से नहीं आ रहे हैं, बल्कि श्री नेहरू के आमंत्रित अतिथि की हैसियत से। अगर कोई काली झंडियों के प्रदर्शन के लायक़ है, तो वह श्री नेहरू के अलावा और कोई नहीं हो सकता, क्योंकि उन्होंने एक विशुद्ध आक्रमणकारी को न्योता भेजा। गाँधी जी के नेतृत्व में, प्रिंस आफ़ वेल्स के भारत आगमन के देशव्यापी बायकाट की तुलना करके ी चाऊ एन लाई के विरुद्ध प्रदर्शन करने के प्रस्ताव को उचित ठहराने का प्रसोपाई नेता प्रयास कर रहे हैं। ये प्रसोपा नेता तंग नज़र है और निकट अतीत के स्वाधीनता-संग्राम के मोटे तथ्य भी भूल जाने का प्रयत्न करते हैं। प्रिंस आफ़ वेल्स को हमारे देश के किसी मान्य प्रतिनिधि ने न्योता नहीं दिया था, तभी तो गाँधी जी ने उनकी यात्रा का बायकाट करने के लिए देश को ललकारा। युवराज को हिन्दुस्तान आने की दावत वाइसराय ने दी थी जो कि हमारी जनता के प्रतिनिधि नहीं थे। किन्तु चीनी प्रधानमंत्री को तो हिन्दुस्तान के प्रधानमंत्री ने आमंत्रित किया है। हालाँकि मैं श्री चाऊ एन लाई के विरुद्ध किसी प्रदर्शन के खिलाफ़ हूँ, पर उन्हें, जो विशुद्ध रूप से आक्रमणकारी हैं, श्री नेहरू को दावत देने का काम ही ऐसा है कि जिसके लिए मैं उनकी निन्दा करता हूँ।

—१९६०, अप्रैल; रुद्रपुर; भाषण से।

हिन्दुस्तान, चीन और रंगीन लोगों की एकता

अक्सर अपने देश में कुछ राष्ट्रीय और शायद वक्ती हितों के आधार पर चीन की बनिस्बत रूस को ज्यादा पसन्द करने का खतरनाक रुझान है। दोनों देश एक ही प्रणाली का प्रतिनिधित्व करते हैं और अगर इन दोनों में से किसी को चुनना हो तो, चीनी रंगीन लोगों के समूह के हैं जिन्हें गोरे लोग दबा रहे हैं। मुझे अफ़सोस है कि चीनी कम्युनिस्ट अपने अस्तित्व के इस सर्वाधिक बड़े तथ्य को भूलते-से लग रहे हैं, जिसे, श्री चाऊ एन लाई के इस देश में आने पर, मैं उन्हें बतलाना चाहूँगा।

इसी तरह, जब जनरल च्यांग काई शेक १९४२ में हिन्दुस्तान आये थे, उन्हें भी मैंने इस तथ्य की याद दिलाना चाहा था। उस समय मैं गांधी जी और जनरल च्यांग के बीच डाकिये का काम कर रहा था, किन्तु श्री नेहरू मेरे प्रयासों के आड़े आ गये, और मैं जनरल च्यांग से जो कहना चाहता था, वह श्री नेहरू को ही बोल सका। मैं चाहता था कि श्री नेहरू चीन-जापान शान्ति की बातचीत चलाएँ, चाहे उसका नतीजा कितना ही निरर्थक क्यों न निकले। तब श्री नेहरू ने कहा था कि वह बुखार अपनी पूरी मियाद लेगा। इस पर मैंने कहा था कि दवा की गोलियों से आराम जल्दी हो सकता है या कम से कम तकलीफ़ तो कम हो सकती है।

अच्छा होगा यदि चीनी प्रधान मंत्री तिब्बत के प्रभुत्व को मान्य करें, कैलाश और मानसरोवर छोड़ दें, और पूर्ववाहिनी ब्रह्मपुत्र को हिन्दुस्तान की सीमा मानें, और इस आधार पर हिन्दुस्तान और चीन मिल कर आस्ट्रेलिया, अफ्रीका और दक्षिण अमरीका पर गोरों के वर्चस्व के विरुद्ध लड़ सकते हैं।

—१९६०, अप्रैल १६, फ़तेहपुर।

क्या दिल्ली सिर्फ़ मोहम्मद शाहों को ही जन सकती है

चीन को संयुक्त राष्ट्र संघ का सदस्य बनाने के बारे में हिन्दुस्तान के प्रतिनिधियों ने वहाँ जो कुछ कहा, उसको पढ़े पाँच घंटे बीत चुके हैं किन्तु अब तक मैं शान्त न हो सका। हिन्दुस्तान की लगभग एक लाख वर्ग मील ज़मीन को जब चीन ने हथिया लिया है, तो केवल देशद्रोही ही इस समस्या को विवाद की, चीन के कुटिल आक्रमण को कुव्यवहार की, हिन्दुस्तान की पीड़ा को महज़ दर्द की संज्ञा देंगे। अगर ऐसी स्थिति को मुझे मानना पड़े कि अब भी चीन की सदस्यता संतुलन की दृष्टि से उचित है, क्योंकि इससे वह नरम पड़ सकता है और अपने अन्तर्राष्ट्रीय कर्त्तव्यों के प्रति उत्तरदायी हो सकता है, तो भी वोट के समय मैं अनुपस्थित रहूँगा। अगर मैं चीन के पक्ष में वोट देते समय उपस्थित भी रहूँ, तो, या तो मैं चुप रहूँगा या फिर सच्ची बात बतलाऊँगा।

इन बेशरम लोगों का कम से कम मुँह तो बन्द कर ही देना चाहिए जो हिन्दुस्तान के प्रतिनिधि बनते हैं और सोचते हैं कि सारी दुनिया उनकी कपटपूर्ण धूर्तता या दोमुँहेपन के चकमे में आ जाएगी। आने वाली पीढ़ियाँ अचरज करेंगी कि क्या दिल्ली ऐसे ही मोहम्मद शाहों को जन सकी जिन्होंने प्रत्येक विजेता नादिरशाह के चरणों में अपने स्वर्ण-कोष और सुन्दरियों को अर्पित कर दिया।

—१९६०, अक्तूबर ५; हैदराबाद; प्रेस वक्तव्य।

—

पत्रकारों से वार्ता

हमारे घोषणापत्र में सबसे बड़ी बात यह है कि हमने देश के ५० लाख बड़े लोगों और साढ़े बयालीस करोड़ छोटे लोगों मे फ़र्क़ किया है। दुनिया में कहीं भी इतनी अधिक आर्थिक असमानता नहीं है जितनी हिन्दुस्तान में, और उसके साथ ही पिछले तीन हज़ार सालों में सामाजिक और आध्यात्मिक ग़ैरबराबरी ने, खास तौर पर जाति की ग़ैरबराबरी ने हमारे दिमाग़ और व्यवहार में घर कर लिया है। हमें ऐसी सामाजिक क्रान्ति की ज़रूरत है जो जाति का नाश करे ऐसी आर्थिक क्रान्ति की ज़रूरत है जो निजी सम्पत्ति को खतम करे, सिवाय ऐसी सम्पत्ति के जिसमें भाड़े के मज़दूर न लगें; और ऐसी क्रान्ति की ज़रूरत है जो मनुष्य के दिमाग़ को इतना सबल बनाए कि वह हथियारों का इस्तेमाल बन्द कर दे और आन्तरिक शान्ति और सन्तुलन प्राप्त करे। आज हिन्दुस्तान में समाजवादी पार्टी छोटे लोगों की अकेली पार्टी है, यद्यपि इसका व्यवहार अभी पूरी तरह इसके सिद्धान्त के अनुकूल नहीं है। सभी मान्यता-प्राप्त पार्टियाँ, एक सरकारी और तीन विरोधी, बड़े लोगों की पार्टियाँ हैं।

हम चाहते हैं कि हिन्दुस्तान की विदेश नीति कुछ बनाए, रचना करे। अभी तक यह सिर्फ़ सौदेबाज़ी करती रही है। पिछले दस वर्षों में इसने केवल एक बार हिन्देशिया में कुछ बनाया और उसके लिए मैं श्री नेहरू को पूरे नम्बर देता हूँ, क्योंकि अन्य किसी देश से अधिक हिन्दुस्तान ने हिन्देशिया को स्वतंत्र होने में सहायता दी। लेकिन वहाँ भी कुछ गड़बड़ हो गयी लगती है, क्योंकि प्रधान मन्त्री नेहरू और राष्ट्रपति सुकर्ण के बीच खिचाव आ गया लगता है। अगर हम संसद में काफ़ी शक्तिशाली हुए तो हम भारत सरकार को मजबूर करेंगे कि जो कुछ उसने हिन्देशिया के बारे में किया, वही सारे अफ्रीका के बारे में करे।

हिन्दुस्तान की सरकार रूस और अमरीका के बीच सहअस्तित्व की नीति पर चल रही है। हम उसे मजबूर करेंगे कि वह सह-अस्तित्व के साथ दोनों को एक-दूसरे के समीप लाने की नीति पर चले। तटस्थतावादी देशों ने, जिनका सम्मेलन सितम्बर में बेलग्रेड में

होने जा रहा है ऐसा प्रतीत होता है कि सोशलिस्ट पार्टी की नीति को, चाहे कितने भी बिगड़े हुए रूप में, पकड़ लिया है। संभव है कि उसके सयोजक सौदेबाज़ी से ऊब गये हैं।

संयुक्त राष्ट्र संघ में चीन के प्रवेश के सम्बन्ध में समाजवादी दल भारत सरकार को मजबूर करेगा कि वह मौन रहे, जब तक चीन भारतीय भूमि को ख़ाली नहीं करता और तिब्बत के मसले को सन्तोषजनक रीति से हल नहीं करता।

फ़ीजी मारिशस और पश्चिमी इन्दी और शायद कुछ अन्य स्थान भी ऐसे हैं जहाँ भारतीय वंशज बहुमत में या लगभग बहुमत में हैं। सैकड़ा पीछे एक हिन्दुस्तानी विदेशों में बसे हुए हैं। हिन्दुस्तान की विदेश नीति को इस तत्व का उपयोग विश्व शान्ति और प्रगति के लिए करना चाहिए।

मेरी हमेशा से यह मान्यता रही है कि पाकिस्तान और हिन्दुस्तान के बीच कभी भी लम्बे अरसे तक, बिना किसी प्रकार का संघीय या और भी निकट सम्बन्ध स्थापित किये हुए वास्तविक शान्ति नहीं हो सकती। जब तक ये अलग रहेंगे, तब तक झगड़े का कोई न कोई कारण बना रहेगा। बिना झगड़े के ये अलग नहीं रह सकते।

एक बात तो यह है कि हिन्दुओं और मुसलमानों को बिलकुल समान नागरिक बन जाना चाहिए। इस सिलसिले मे उनमें कोई फ़र्क़ न रहे। सड़क पर देख कर कोई हिन्दू और मुस्लिम को अलग-अलग न पहचान सके। अर्थात् मन्दिर-मस्जिद को छोड़ कर उनमें कोई फ़र्क़ न रहे।

[आन्ध्र-प्रदेश में हरिजनों को सरकारी नौकरियों में विशेष सुविधाएँ देने के सरकारी आदेश के सम्बन्ध में एक पत्रकार के प्रश्न का उत्तर देते हुए लोहिया जी ने कहा :] आन्ध्र के रेड्डी और कम्मा, केरल के नैयर और तमिलनाड के मुदालियर पिछले पचास वर्षों में ब्राह्मणो की प्रभुता के विरुद्ध लड़ते रहे थे। उस अवधि में वे हर तरह के साम्प्रदायिक आदेशों की माँग करते थे। अब चूंकि, कम से कम राजनीति में, उनकी स्थिति ब्राह्मणों के बराबर हो गयी है। इसलिए वे असाम्प्रदायिक, राष्ट्रीय सिद्धान्त के ज्यादा कट्टर समर्थक हो गये हैं। मुझे यक़ीन है कि आन्ध्र का उत्थान उस समय तक नहीं हो सकता, जब तक कापू और हरिजन और अनभार और अन्य ऐसी ही दबी जातियाँ जागतीं नहीं और समान अवसर की नहीं, वरन विशेषाधिकारो और विशेष अवसर की माँग नहीं करतीं।

हम जो कुछ चाहते हैं, श्री संजीवैया का सरकारी आदेश उसका एक हिस्सा भी नहीं है। दबे हुए समहों और जातियों के इस उत्थान को बँटाईदारी के अन्त और खेत मजदूरों की मजदूरी बढ़ाने के खेती सम्बन्धी आन्दोलनों से मिलाना होगा। मैंने हमेशा कहा है कि औरतों, हरिजनों, शूद्रों, आदिवासियों और मुसलमानों में पिछड़ी जातियों को सभी ऊँची जगहों में विशेष अवसर दिये जाएँ। और यह एक राष्ट्रीय आवश्यकता है.

क्योंकि देश को जगाने का और कोई उपाय नहीं है। आज हिन्दुस्तान सिर्फ़ अर्ध-जीवित है, या और भी कम। हिन्दुस्तान न अपनी ग़रीबी मिटा सकता है, न अपनी आज़ादी को सुरक्षित कर सकता है, जब तक उसकी ९० फ़ीसदी आबादी को, जो पिछले तीन हज़ार सालों से दिमाग़ का उपयोग न कर पाने के कारण पंगु हो गयी है, अपने दिमाग़ का इस्तेमाल करने के लिए विशेष रूप से प्रोत्साहित नहीं किया जाता।

—१९६१, जुलाई २१; हैदराबाद; प्रेसवार्ता।

चीन का संयुक्तराष्ट्र संघ में प्रवेश

"सोशलिस्ट पार्टी की राष्ट्रीय समिति की यह बैठक हिन्द सरकार के संयुक्तराष्ट्र संघ में चीन के प्रवेश के लगातार समर्थन पर घृणा व्यक्त करती है। भारत सरकार ने इज़राइल से इस आधार पर कूटनीतिक सम्बंध स्थापित करने से इनकार कर दिया कि इज़राइल ने मिस्र पर हमला किया, हालाँकि इज़राइल मिस्र की ज़मीन के एक ज़र्रे पर भी क़ाबिज़ नहीं हो सका, और पूर्वी जर्मनी से इस आधार पर कि पश्चिमी जर्मनी नाराज़ हो जाएगा। भारत सरकार में राष्ट्रीय स्वाभिमान और अन्तर्राष्ट्रीय सदाचार की इतनी कमी है कि उसने चीन द्वारा भारत पर आक्रमण और भारतीय भूमि पर उसके क़ब्ज़े को कोई अहमियत नहीं दी, और इस तरह उसने अपने राष्ट्र विरोधी चरित्र को हमेशा के लिए स्थापित कर दिया है।"

—१९६१, सितम्बर १३–१६; अयोध्या; सोशलिस्ट पार्टी की राष्ट्रीय समिति का प्रस्ताव।

चीन और पुर्तगाल

जनता में जागृति और शक्ति लाने के लिए ही चीन द्वारा हिमालयी और पुर्तगाल द्वारा गोवा की ज़मीनों को हथिया लेने का मामला चुनाव प्रचार में उठाना चाहिए। सैनिक या उसी तरह की कार्यवाही करने के पक्ष में अथवा विरोध की बात करना बिलकुल बेकार है। ग़ैरकांग्रेसी दूसरी पार्टियाँ जब कार्यवाही की माँग करती हैं तो इससे कांग्रेस पार्टी को गम्भीर बुद्धिमान आदमी का 'रोल' मिल जाता है, और देश को शक्तिशाली बनाने अथवा सुरक्षा करने में उसकी लापरवाही की बात छिप जाती है।

असल सवाल यह है कि हिन्दुस्तान और चीन की शक्ति के बीच जो अन्तर है, उसे कैसे पूरा किया जाए। १२ बरस पहले हिन्दुस्तान और चीन दोनों की औद्योगिक शक्ति समान थी, और तब फिर चीन के सालाना १५० लाख टन फ़ौलाद के मुक़ाबले हिन्दुस्तान में सिर्फ़ ३० लाख टन ही क्यों पैदा होती है। औद्योगिक शक्ति में इसी अन्तर के कारण हिन्दुस्तान पर चीन को आक्रमण करने का साहस हुआ।

नीतियों की और भी ग़लतियाँ रहीं, और अब भी है जैसे संयुक्त राष्ट्र संघ में चीन की सदस्यता के लिए हिन्दुस्तान का लगातार समर्थन।

फ़ौज रखना भी, और देश की ज़मीन पर जब आक्रमण हो और क़ब्ज़ा हो जाए तो उसका प्रयोग न करना, राष्ट्रीय चरित्र का महान् दोष है। लेकिन हमले का मुक़ाबला तत्काल होना चाहिए न कि हमला होने के कई बरस बाद।

मैं चाहूँगा कि देश की खेती और कारखाने बलवान न बनाने के लिए जनता सरकार को दोषी ठहराए। हिन्दुस्तान की योजनाएँ बनाने में एक बड़ी कमी यह रही कि उसमें खपत का आधुनिकीकरण आ गया, जब कि पूंजी के सभी साधनों और सम्भव बचत को पैदावार के यन्त्र को सुधारने में लगाना चाहिए। इस तरह हिन्दुस्तान की योजनाओं का आधा धन फ़िज़ूल खर्च होता है। १९२० और १९५० के बीच सोवियत रूस की जिन्होंने

यात्रा की, वे क़िस्से सुनाते थे कि वहाँ गन्दगी है, बदबू है और कि हजामत की पत्तियों से गाल छिल जाते हैं, जब कि रूस, जैसा कि अब प्रकट है, अपनी औद्योगिक और वैज्ञानिक शक्ति का निर्माण कर रहा था। चीन भी उसी तरह की नीति पर चल रहा है। वही नीति महात्मा गांधी ने भी बतलायी थी हालांकि उनका ढंग अलग था और लक्ष्य दूसरे थे। एशिया और अफ्रीका के ग़ैर-कम्युनिस्ट राजनीतिज्ञ यूरोप और अमरीका की ऐय्याशी के स्तरों की नक़ल करने की ग़लती कर रहे हैं, जिससे कि वहाँ के देशों में बड़े और छोटे आदमी के बीच फ़र्क़ बढ़ता ही जाता है, और, इसीलिए, उनके देश दिन पर दिन कमज़ोर होते जा रहे हैं। एशिया के विश्वयार दुनिया के मालिकों, नौकरशाहों और सामन्तों को एक करने का प्रयत्न कर रहे हैं, जबकि विश्वमैत्री का दर्शन, महात्मा गांधी जैसा, दुनिया की जनता को एक करना और उनके जीवन-स्तर में समानता लाना चाहता है।

पुर्तगाल के खिलाफ़ वोट फँसाने की बढ़-बढ़ कर प्रचारात्मक बातें करना बिलकुल बन्द होना चाहिए जब तक कि उन बातों का मतलब यह न हो कि वे कार्यवाही के सूत्रधार के रूप में हैं।

—१९६१, दिसम्बर ३; सिकन्दराबाद; भाषण से।

विश्व और भारत-भाग्य

कुछ लोगों को मेरी बातों में एक हारे हुए, थके हुए आदमी की निराशा मिलेगी। यह सही है कि मेरे जैसा आदमी साधारण तौर से हारा हुआ माना जाता है, किन्तु एक दृष्टि आप अपने सामने रखना कि ऐसा आदमी शायद स्वनिर्णय से, हारा हुआ रहता है। हारने से उसमे निराशा नहीं हुई, बल्कि वह निराश है, इसलिए हारा हुआ रहता है और आशा के मृगजाल में फँसना नहीं चाहता और निराशा के कर्तव्य को करना चाहता है।

भारत-भाग्य पर बोलने के पहले थोड़ा-सा मैं आपको विश्व भाग्य की भी बात बता दूं। यह अनिवार्य है कि जो कुछ मैं कहूँ, बड़ी रेखाओं में ही होगा और अपूर्ण-सा लगेगा पर कुछ बातों को मैं उभार कर रखूंगा। विश्व-भाग्य पर बोलते हुए मुझे एक बात तो आपको अस्त्र के बारे में बता देनी है। अगले २५-३० वर्ष के अन्दर-अन्दर या तो संसार से हथियार खतम होंगे और नहीं तो संसार खतम होगा। इस बार संसार में ऐसी स्थिति हुई। पहले ऐसी नहीं थी। हथियार को बुरा तो सभी बड़े लोग कहते रहे हैं, चाहे वे गौतम बुद्ध हों, ईसू मसीह हों, या महात्मा गांधी हों, किन्तु हथियार प्रयोगनीय होते थे। जिसके पास अच्छे हथियार होते थे, वह जीत जाता था। आज वह स्थिति नहीं है। सन् १९४५ के बाद ज्यादातर ज्यादा शक्तिशाली और कम शक्तिशाली हथियार नहीं हैं। कम से कम दो राष्ट्र अमरीका और रूस, ऐसी स्थिति में पहुँच गये हैं कि अब चाहे और किसी का विकास हो या न हो, एक दूसरे का और प्रायः संसार का वह नाश कर सकते हैं। इसलिए, अब वह प्रश्न नहीं रहा गया कि किसके पास ज्यादा शक्तिशाली हथियार हैं।

१९४५ के पहले, जिसके पास ज्यादा शक्तिशाली हथियार होते थे, वह जीत जाता था। अब कौन जीतेगा ? अब जीत नहीं, संहार है। चाहे जितना ये लोग हथियार बढ़ाते रहें, उनका सम्पूर्ण प्रयोग प्रायः असम्भव दीखता है। छोटी-मोटी लड़ाई हो जाए; कोरिया, लाओस जहाँ काले लोग, रंगीन लोग रहते हैं, वहाँ थोड़ी-बहुत लड़ाई हो जाए, लेकिन बड़ी लड़ाई, रूस और अमरीका की, प्रायः असम्भव है। और अगर लड़ाई नहीं

होती है तो गोरे देशों की जनता—सभी लोग यानी अध्यापक, विद्यार्थी, नेता, किसान, दूकानदार, मजदूर आदि विद्रोह करेंगे। कहेंगे ये हथियार क्यों इकट्ठा कर रहे हो, इनका कोई प्रयोग नहीं है। रूस और अमरीका में यह विद्रोह अवश्यमेव हो कर रहेगा। प्रयोग नहीं; इकट्ठा कर रहे हैं। इसलिए, या तो उनका प्रयोग होगा और संसार का संहार होगा, और नहीं तो फिर हथियारों का अन्त होगा।

यह मैं जानता हूँ कि इसमें अपवाद हैं। कैसा खातमा होगा? मान लो अणु के हथियार खतम हो जाएँ, लेकिन ये छोटी-मोटी बन्दूकें हैं, ये कैसे खतम होंगी? बड़े भारी प्रश्न उठते हैं। कुछ झंझट होती है। तर्क से उस समाज का रूप देखने में, जहाँ बन्दूक़ न हो, सचमुच में बन्दूक़ रह गयी तो भी हथियार तो रह गये। और जहाँ बन्दूक़ रह गयी वहाँ फिर वह सिलसिला रह ही जाता है। ऐसा मत समझना कि मैं माने लेता हूँ कि यूरोप वाले बका करते हैं कि बड़े हथियार तो खतम हो गये, छोटे हथियार रह जाएँगे। यह तो बेवक़ूफ़ी है। खतम होंगे तो सब खतम होंगे, नहीं तो कोई खतम नहीं होंगे।

संसार की इस स्थिति को आप अपने दिमाग़ में रखना और अगर अगले २०-३० बरस में हथियार खतम होंगे तो उसका मतलब है कि अन्याय को भी खतम होना पड़ेगा, क्योंकि हथियार कहाँ हैं, वहीं जहाँ अन्याय है। इसलिए अन्याय को भी खतम होना पड़ेगा। तब आज जितना रुपया खर्च हो रहा है हथियारों पर—सारे संसार में एक साल में ७-८ खरब रुपया खर्च होता है—वह यदि दूसरे कामों में लगे, विशेष करके उद्योग और खेती में, तो क्या नतीजे निकलेंगे, यह आप सोच लेना।

इसी के साथ-साथ विश्व की एक दूसरी तसवीर मैं आपके सामने रखे देता हूँ और वह है उद्योग, यंत्र, इंजीनरी वग़ैरह की निरन्तर उन्नति। उसकी कोई थाम नहीं। वे इतना बढ़ते चले जा रहे हैं कि अब साधारण तौर से गोरे देशों के लोग सोचने लगे हैं कि भोजन, कपड़ा, मकान प्राय: एक जैसा सबका हो जाएगा, और ज्यादा समय में नहीं, १००-५० बरस के अन्दर-अन्दर। गोरे देशों में चेहरा एक-सा हो रहा है। पावडर और क्रीम जितनी चीजें हैं इनसे औरतों के चेहरे एक-से हो रहे हैं। जो मनचले गोरे होते हैं वे कभी-कभी इस बात पर बड़ा दु:ख प्रकट करते हैं कि एक औरत दूसरी औरत जैसी दिखाई पड़ती है; कभी सुन्दर हो रहे हैं और कभी असुन्दर हो रहे हैं। एक जैसा रूप, एक जैसा संगीत, एक जैसी पढ़ाई, एक जैसा भोजन। ये कितना एक जैसा हो रहा है और इंजीनरी वग़ैरह की इतनी ज़बरदस्त उन्नति हो रही है कि भय है, १००-५० बरस के अन्दर-अन्दर मनुष्य एक अच्छा बढ़िया खाता पीता, पहनता मशीन बन जाएगा। इसके अतिरिक्त कुछ नहीं रहेगा। उस भय का हिन्दुस्तान में आप इतना वर्णन नहीं सुनते, लेकिन गोरे देशों में यह भय भूत की तरह उपस्थित तो चुका है। बहुत से जो दिल से या मन से चतुर लोग हैं उनके सामने। इसमें भी अच्छा और बुरा दोनों हैं। या तो सब संसार एक जैसा हो करके

एक जैसा संगीत, एक जैसा रूप, एक जैसा भोजन, एक जैसा रहने-सहने का तरीक़ा; प्राय: आधा मुर्दा बन जाएगा और नहीं तो, इतिहास में पहली बार कम से कम आर्थिक मामलों में, भौतिक सामग्रियों के संबंध में संसार सुखी होगा।

विश्वभाग्य की परिधि के अन्दर हमें भारत-भाग्य को देखना है। भारत-भाग्य की मैंने कोई रेखा तो देखी नहीं है, न पंचांग की, न हाथ की। इतिहास में जो रेखा पड़ गयी है उसे देखना है, जो रेखा कि किसी भी देश के भविष्य को बहुत हद तक बनाया करती है। भारत-भाग्य की सबसे बड़ी रेखा मुझे दर्शन के संबंध में मिलती है जिसमें सगुण और निर्गुण का ऐसा विचित्र संबंध है जैसा कि संसार मे और कहीं नहीं। मैं नहीं कहता कि हमेशा ऐसा रहा है। कहीं कोई ग्रंथ है ही नहीं जिसमें कोई दूसरा संबंध है, यह भी मैं नहीं कहता। मैं केवल यही कहना चाहता हूँ कि सगुण और निर्गुण का एक विशिष्ट संबंध भारत के सामने, रहन-सहन, साधारण जनता के जीवन का आधार है। एक तरफ़ तो निकला अद्वैत, वेदान्त, सत्य। वह जो भी सत्य है, उस पर सोचने, विचारने कल्पना करने में, स्मरण करने में, जब आदमी उस लहर मे बहने लगता है तो बड़ा मज़ा आता है। वह है निर्गुण सत्य।

आदर्शवाद यूरोप में भी आया और दूसरे देशो में भी। यूरोप के और हिन्दुस्तान के दर्शन वग़ैरह के कुछ शब्दों का बहुत-से लेखक प्रयोग करते हैं जैसे आदर्शवाद, भौतिकवाद और कुछ ऐसा समझ लेते हैं कि आदर्शवाद के कुछ 'स्कूल' यूरोप में भी हैं और कुछ हिन्दुस्तान मे भी हैं। ऐसे शब्दों से कभी भी भूल नहीं होनी चाहिए। यूरोप के जो भी आदर्शवादी दर्शन हैं, उनका हिन्दुस्तान के इस अद्वैतवादी दर्शन से कोई संबंध है नहीं, क्योकि यूरोप में सगुण और निर्गुण का संबंध हमेशा चला है। आदर्शवाद मे भी केवल यही रहा है कि अपने आदर्श के अनुसार सगुण को, संसार को मोड़ना, तोड़ना, जोड़ना, जो कुछ भी हो, संसार के ऊपर अपनी प्रक्रिया करते रहना। यूरोप में कोई भी बड़ा दर्शन ऐसा नहीं है जिसने सगुण से संबंध-विच्छेद किया हो। यूरोप के जितने भी दर्शन हैं, जिस किसीने भी आदर्श माना, निर्गुण अपनाया। उसने सगुण को तोड़ना, जोड़ना, मोड़ना, बदलना चाहा और संसार को भी शुद्ध बनाना चाहा। उसके नतीजे बहुत से निकलते हैं, अच्छे और बुरे दोनों।

इस समय केवल आप हिन्दुस्तान और बाक़ी दुनिया, विशेष करके गोरी दुनिया के अन्तर को ध्यान में रखना। हिन्दुस्तान में जब निर्गुण को पकड़ लिया—**एकोऽवशिष्यच्छिवः केवलोऽहम्**—तब तो फिर उसके बाद कोई चीज़ रह नहीं जाती। अबकी बार जब मैं बद्री-नारायण गया तब मैंने अनुमान किया कि शंकराचार्य ने जब इस चीज को कहा होगा तो किस अवस्था में। वह बहुत ही अद्‌भुत है। क्या कोई शराब पीने में इतना नशा चढ़ता होगा जितना उस अवस्था में चढ़ता है। चारों तरफ़ बरफ़। गंगा में बरफ़, मकानों पर बरफ़, छोटी-मोटी

झाड़ियों पर बरफ़, सब जगह बरफ़, कैसी विभिन्न समता। ऐसी समता संसार मे और कहीं देखने को नहीं मिलती। रात को ११-११ बजे भी अलकनन्दा की बहती हुई धारा और प्रवाह को जब देखते हैं, १५ मिनट बाद चीजें कुछ-कुछ दिखाई पड़ने लगती हैं, अलगाव दिखाई पड़ने लगता है कि यह पहाड़ है, यह गंगा है। लेकिन बरफ़ एक ऐसी चीज़ है जहाँ उसने ढका तो सबको ऐसा ढका कि वहाँ अलगाव नहीं रहता। उसके बाद ही तो शंकराचार्य बोल सकते हैं—**एकोऽवशिष्यश्छिवः केवलोऽहम्**। और उसी को बोल कर पूरा एक जाड़ा बिता सकते हैं। क्या ज़रूरत है उनको संसार की, सगुण की जब संसार तो कोई चीज़ ही नहीं रह गया।

लेकिन एक बात आप बड़ी विचित्र देखोगे कि इतने ज़बरदस्त निर्गुण को पकड़ लेने के बाद भी बिलकुल एक पूरा सगुण बताते रहते हैं; राम का, कृष्ण का, शिव का मंदिर बनाते हैं। जो हमारा संसार है उसको बदलना, तोड़ना, जोड़ना, उसको राममय बनाना, उसको कृष्णमय बनाना यह क्रिया उतनी सबल नहीं हो पाती। अलग से बनाओ। कहीं पर बद्रीनाथ बनाओ, कहीं पर रामेश्वरम् बनाओ, कहीं और कोई मंदिर बनाओ, पूजापाठ करो, ये सब स्तोत्र, मंत्र वग़ैरह चलाओ।

जो सचमुच निर्गुण वाला है, अद्वैत वाला है, वह आज पूजा, पाठ, कीर्तन वग़ैरह के जाल में इतना ज़बरदस्त फँसा हुआ है कि मैं केवल आपको मथुरा और वृन्दावन की दो बातें बताता हूँ। यह सही है कि कभी-कभी आदमी को खुद अपने शरीर पर इन चीज़ों का असर डालना पड़ता है तब जा कर पता चलता है। अब जैसे वृन्दावन। वृन्दावन क्या है? मैंने कोशिश की समझने की कि जो लोग वृन्दावन में रहते हैं या ऐसी जगह पर, उनके मन में क्या होता है, क्यों जाते हैं, क्यों रहते हैं? जो आख़री सत्य है उसको पकड़ लिया। आख़री सत्य निर्गुण सत्य है, उसको पकड़ लिया। और अब और कुछ तो संसार में होना है नहीं, घटना है ही नहीं, यह संसार तो मिथ्या है, बेमतलब है। मिथ्या से भी आगे जाओ। जो कुछ है घटना, वह उसी अद्वैत, निर्गुण सत्य के बारे में है। घटनाहीन संसार बना लेना। मैं समझता हूँ कि वृन्दावन जैसी जगह, या यहाँ पर शायद थोड़ा-सा फ़र्क़ पड़ेगा, या पंढरपुर वग़ैरह जैसी जगहों में जाने वाले लोगों के मन में आकांक्षा रहती है कि हम एक घटनाहीन संसार में पहुँच जाएँ जहाँ पर कि आख़री सत्य है। और फिर अपने ही द्वारा निर्मित घटनाओं को चलाते रहें। आप देखोगे कि ये जितने भी बड़े-बड़े धर्म वाले लोग हैं, बहुत ज़बरदस्त काम में फँसे रहते हैं। इतना ज्यादा कि कभी-कभी मुझे आश्चर्य होता है और हँसी आती है। सुबह आरती, दोपहर को भोग, शाम को हवा डालना, रात को भोग दिलाना, फिर शैया दिलाना, न जाने क्या-क्या रहता है। ग्यारह-ग्यारह दफ़े भोजन और बारह-बारह दफ़े और तरह की चीजें। बहुत ज़बरदस्त काम उनको करना पड़ता है। लेकिन वे उन सब में बँधे हुए हैं; संसार से कोई मतलब नहीं।

जो सगुण संसार है, उससे उन्हें कोई मतलब नहीं। उन्होंने अपना एक अलग कल्पनामय संसार का निर्माण कर लिया है। उसी में वे अपने अद्वैत को चलाते रहते हैं। भारतभाग्य का सबसे बड़ा जो रूप है वह यह कि आदर्श को मान लो, निर्गुण को मान लो, फिर सत्य को मान लो और फिर उस सत्य को पकड़े रहो, यही है असली जीवन और फिर उसको सगुण में संसार से अलग हट कर अपना एक छोटा-सा घोंसला बना कर रहो।

इसीलिए, भारतीय का दिमाग़ जितना पौराणिक है उतना संसार में किसी का दिमाग़ नहीं; और कभी हो भी नहीं सकता। वह इतना जबरदस्त पौराणिक है कि जब कभी मैं साधारण लोगों को भी वाद-विवाद करते सुनता हूँ चाहे वह वाद-विवाद आधुनिक विषय पर हो, राजनीति पर हो, अर्थशास्त्र पर हो, १५-२० मिनट के अन्दर वह किसी न किसी पौराणिक विषय पर वाद-विवाद हो जाता है कि तब अर्जुन ने ऐसा क्यों किया और तब कृष्ण ने ऐसा क्यों किया और कर्ण ने ऐसा क्यों किया और तब रावण ने ऐसा क्यों किया और राम ने क्या किया। कोई भी वाद-विवाद होता है तो वह बड़ी जल्दी पलट जाता है कल्पनामय संसार के वाद-विवाद में, क्योंकि असली में निर्गुण का फ़ैसला तो भारतीय दिमाग़ के अनुसार किसी कल्पना वग़ैरह के जगत में होता है। भारतीय दिमाग़ ने संसार से हट कर एक निर्गुण को अपनी ही कहानियों क़िस्सों, मंदिरो इत्यादि में ढाल कर विचित्र अवस्था बना दी है।

यूरोप के बारे में मैं सिर्फ़ इतना ही कह दूं कि यूरोप वाले संसार को निरन्तर शुद्ध और पूर्ण बनाने की कोशिश में लगे रहते हैं और वे कर नहीं पाते, क्योंकि मैं यह मानता हूँ संसार कभी भी पूर्ण और शुद्ध नहीं हो पाएगा। और किसी को भी यह मानना ही पड़ेगा। देह धरे का दोष तो किसी न किसी रूप में रहेगा ही। जब तक यह दोष रहेगा, तब तक आदर्श में और संसार में, निर्गुण में और सगुण में एक खाई रहेगी। उस खाई को खतम करने की इच्छा यूरोपी दिमाग़ की है। खाई खतम नहीं हो पाती। तब क्या होता है? या तो घोर निराशा होती है कि देखो हम चले थे संसार को पूर्ण बनाने, नहीं बना पाये। तब आदमी सब छोड़ देता है और ऐय्याशी में पड़ जाता है और नहीं तो फिर एक प्रवंचना चल पड़ेगी कि जो हमने प्रलय करके संसार को बनाया, वह चाहे दूसरों को अपूर्ण हो, लेकिन इस मनुष्य को लगता है कि हाँ, पूर्ण है, शुद्ध है। यों मैं किसी भी वाद का नाम नहीं ले रहा हूँ लेकिन आज यूरोप में जितने भी वाद मिल रहे हैं, चाहे साम्यवाद, चाहे फ़ासिस्टवाद, चाहे पूँजीवाद ये सब जितने भी वाद हैं, उन पर आप इस सिद्धान्त को जो मैंने बताया लागू कर लेना। जितने भी सिद्धान्त वाले हैं वे अपने निर्गुण साम्यवाद को, या निर्गुण पूँजीवाद को, या निर्गुण फ़ासिस्टवाद को जो कुछ भी उनका वाद है, संसार के ऊपर डालते हैं। संसार को तोड़ते हैं जोड़ते, वाद लाते हैं, एक रूप निकालते हैं। उनका वह रूप कभी-कभी पूर्णतः उनके मन के मुताबिक़ नहीं हो पाता, तो घोर निराश हो जाते हैं, और अगर प्रवंचना वाले हुए तो समझते हैं, कुछ तो हमने

हासिल कर लिया। यूरोप में यह दोष रहता है। भारत का दोष है अलगाव, संसार से अलगाव।

अब आप कहोगे कि देखो फलाना दर्शन तो यों नहीं है, उसमें कर्मयोग भी है। ठीक है कर्मयोग भी दर्शन है। मुझे भी पता है कि भारत में कर्मयोग भी दर्शन है। वह सब अपवाद स्वरूप है। पिछले १,५०० बरस के पहले की बात मैं नहीं कर रहा हूँ, और भविष्य तय करने के लिए जो पिछले १,५०० बरस का भारत है, उसे अगर हमने अच्छी तरह से समझ लिया, तो बाक़ी को थोड़ा-बहुत ध्यान में लो। इन १,५०० बरसों में या १,७०० बरसों में कर्मयोग की चर्चा करना मुझे कुछ ग़लत-सा मालूम पड़ता है। कर्म केवल फलनाश नहीं है; कर्मनाश भी है। कुछ लोग यहाँ पर शायद सोचते होंगे कि मैं तो बड़ी अतिरंजित बात कह रहा हूँ। भारतीय दर्शन में कर्म, फल, नाश ये भेद हैं। कर्मनाश नहीं, लेकिन वास्तव में कर्मनाश है। क्योंकि मुक्ति क्या है? जितने संचित कर्म है, उन सबको ख़तम करो, नये कर्म मत करो। हर एक दर्शन में यह तो बिलकुल ही मुक्ति का मार्ग है कि कर्म मत करो, जो संचित कर्म हैं, उनके फल और उन कर्मों को ख़तम करने के लिए जो अति आवश्यक कर्म है, उनको करते चले जाओ। कर्मों का नाश।

जो कोई भी यह कहना चाहता है कि भारतीय दर्शन मे कर्मयोग है, वह कर्म-प्रधान है, सब बकवास है। अच्छा और बुरा मत सोचने लग जाना। यूरोप का अच्छा और बुरा दोनों देख लिया। भारत का भी हम देख लें कि यह एक बिलकुल मुख्य चीज़ है कि कर्म को मिटाओ और उसके साथ-साथ यह कि निर्गुण को पकड़ो और सगुण जो संसार है उसके द्वारा मोक्ष नहीं मिल सकता; अलग से उसको पकड़ो। उससे कुछ परिणाम निकलते हैं कि हिन्दुस्तानी इस संसार के सम्बन्ध में कमज़ोर होता चला जाता है। मैं समझता हूँ कि इधर १,५०० बरस मे भारतमाता को बलात्कार कुछ अच्छा लगा, और अगर इतिहास को सचमुच ठीक तरह से समझने की कोशिश की जाए, तो इस बड़े दर्दनाक सत्य पर पहुँचना होगा। हर बलत्कार के बाद भारतमाता स्नेह का फेरा डालने की कोशिश किया करती है। दूसरे देश भी पराधीन हुए हैं, लेकिन एक के बाद, एक के बाद एक जैसे हम लोग पराधीन होते गये हैं वैसे और कोई देश नहीं हुआ। इसी से साफ़ मालूम होता है कि वीरता के जो क़िस्से हम याद करते हैं, वे ज्यादातर पराजय के क़िस्से हैं। फलाना आदमी खूब बहादुरी से लड़ा। कैसी बहादुरी से लड़ा? उसके शरीर पर १०० घाव थे, उसके शरीर पर २०० घाव थे, ५० घाव थे, उसने अलेक्ज़ेंडर को यह कहा, उसने बाबर को वह कहा। हमारा जितना भी संसार है, इतना कपोल-कल्पित हो जाया करता है कि उसमें असली बात, विजय और हार, खतम हो जाया करती है, केवल एकाध इधर-उधर छुट-पुट वीरता का क़िस्सा है। पिछले १,५०० बरस में भारत का यह हाल रहा है।

मैं अक्सर सोचा करता हूँ जब सुनता हूँ :

सारे जहाँ से अच्छा, हिन्दोस्ताँ हमारा।

बचपन में तो मैंने भी इसे बहुत पसंद किया, और बात कुछ सच्ची भी लगी थी। लेकिन यह बिलकुल झूठी बात है। किस बात में सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्ताँ हमारा ? यूनान, मिस्र, रोम मिट गये जहाँ से ! कहाँ मिट गये। वे पड़े हुए हैं। किस अर्थ में मिट गये। जब बहुत किसी से पूछो तब वे जवाब देंगे कि भारत का अपना वैशिष्ट्य रह गया है। कहाँ है वह विशिष्टता ? क्या बच रहा है ? यूनान नहीं बचा ? रोम नहीं बचा ? ये सब तो बचे हुए हैं और अच्छी तरह से बचे हुए हैं। लोग कहेंगे कि धर्म। देखो यूनान, जो सुकरात वाला असली यूनान था, वह तो क्रिस्तान बन गया। रोम जो असली साम्राज्य वाला था बाद में क्रिस्तान बन गया, मिस्र बाद में मुसलमान बन गया। लेकिन भारत नहीं बदला। उनको जाने दो जो जबरदस्ती से अपना धर्म बदलते रहे हों, लेकिन भारत बुनियादी तौर पर अपने जो कुछ भी पुराने सिलसिले थे उसी में चलता आ रहा है। यह हिस्सा अवश्य विशिष्ट रहा। मैं पूरी बात करना चाहता हूँ, इसलिए इस अच्छी बात को निकाले लेता हूँ। बाक़ी चीजों में तो कोई अन्तर नहीं है। जैसे रोम वैसे हिन्दुस्तान, वैसे यूनान। बल्कि, सच पूछो तो वे देश हमसे कहीं ज्यादा अच्छे हैं, स्वस्थ हैं, शक्तिशाली हैं, विद्या में बढ़े हुए हैं। हर एक दिशा में देखो तो ये तीनों देश, यूनान, मिस्र और रोम। आज हमारे हिन्दुस्तान से अच्छे हैं। संसार में बढ़िया जगह पर हैं।

लेकिन एक बात दिमाग़ में आती है कि हमारा पुराना सिलसिला चला हुआ है। एक बार शायद महात्मा गाँधी ने इस विषय पर लिखते हुए कहा था कि हिन्दुस्तान का जो वैशिष्ट्य है वह यह कि वह जल्दी बदलता नहीं, हवा का हर एक झोंका उसको बदलता नहीं। वह अपनी जगह पर स्थिर रहता है। उसे आप स्थिरता भी कह सकते हैं। स्थिर, बदलता नहीं जल्दी। अपने पुरानेपन में चले आ रहा है। यह हमारे देश का वैशिष्ट्य है। इसकी अच्छाई को तो मैं बाद में बताऊँगा। पहले इसकी बुराई के ऊपर ध्यान देना। स्थिरता के क्या नतीजे होते हैं ?

अब भारत भाग्य की दूसरी रेखा जिसका स्थिरता से संबंध है वह है समन्वय। समन्वय करो। जहाँ हो समन्वय करो, दर्शनों का समन्वय करो, विचारों का समन्वय करो, रहन-सहन का समन्वय करो, सबका समन्वय करते चलो। जो कुछ भी स्थिति मिले, उसको मिलाओ, जोड़ो, किसी तरह से, झंझट से बचो, समन्वय करो। समन्वय जब सैद्धान्तिक होता हैं, तो बड़ी चीज हो सकता है। लेकिन समन्वय ने जो रूप भारत में लिया है· वह केवल यह है कि झंझट से बचो। जो भी हो चुका है उसे अपना लो।

आपने पिछले १२ बरस में एक अद्भुत बात देखी होगी कि स्वाधीनता के संग्राम में जिन चीजों को हम लोगों ने न बुरा समझा, बल्कि पाप समझा, उनकी शतवार्षिकी

स्वाधीन भारत में मनाने में बड़ा मजा आया। पुलिस की शतवार्षिकी जगह-जगह मनायी गयी। जहाँ-जहाँ हिन्दुस्तान में पुलिस को १०० बरस हुए, जैसे रवीन्द्रनाथ ठाकुर की वार्षिकी मनायी गयी वैसे पुलिस की भी वार्षिकी मनायी गयी। अदालत की वार्षिकी मनायी गयी। रेलगाड़ी की वार्षिकी मनायी गयी। कौन चीज है जिसकी वार्षिकी नहीं मनायी गयी। अंग्रेजों के जमाने में शोषण के जो-जो माध्यम माने जाते थे, उन सबकी स्वाधीन भारत में वार्षिकी या शतवार्षिकी मना कर ऊँचे उठाया। मुझे तो आश्चर्य होता है कि अभी तक भारत में अंग्रेजों के पदार्पण की वार्षिकी नहीं मनायी गयी। स्थिरता। इतनी आकांक्षा रहती है भारतीय मन में, इतनी लालसा रहती है स्थिरता की।

भारतीय इतिहास में प्रताप कोई-कोई होता है, कभी-कभी होता है। ४००–५०० बरस में कोई प्रताप हो जाता है, नहीं तो मानसिंह हुआ करते हैं। युवावस्था में मैंने मानसिंह को बहुत पसन्द किया था। एक बार का क़िस्सा है कि मैं कहीं किसी स्कूल में नाटक देखने गया था। जिस बच्चे ने मानसिंह का खेल किया था, उसको मैंने कोई पदक भी दिया था। क्यों? हिन्दुस्तान का प्रश्न कि हिन्दू-मुसलमान का किसी भी तरह समन्वय होना चाहिए। हिन्दू-मुसलमान के बारे मे मेरे मन में एक झंझट थी। वह झंझट किसी तरह से दूर हो। झंझट को दूर करने का उपाय क्या? समन्वय। समन्वय का प्रतीक है मानसिंह। लेकिन अब मैं देखता हूँ, कि भारत में समन्वय करने वाले मानसिंह तो हमेशा ही होते रहते हैं। उन्होंने भारत की आत्मा को हमेशा के लिए प्रायः खतम कर दिया है, क्योंकि फिर तो हमारा काम समन्वय ही करना होगा। जो कोई भी बाहरी आएगा उसके सामने कमज़ोर बन जाओ, दब जाओ और फिर उस बाहरी के जितने भी गुण-अवगुण हैं देश में स्थिर हो जाएँ और फिर उनका समन्वय करने बैठ जाओ।

अबकी बार मैं भारत की आखिरी स्वतंत्र राजधानी में गया था जिसका नाम है कन्नौज। २–३ दिन वहाँ रहा। ऐसी पुरानी जगहों पर एक तो मुझे आनन्द भी मिलता है और दूसरे, दुःख भी बड़ा ज़बरदस्त होता है। कन्नौज में कुछ मूर्तियाँ निकलीं। अब तक मुझे आश्चर्य होता रहा कि कन्नौज में कुछ मूर्तितां क्यों नहीं मिलीं। अब कुछ ८–१० मिली हैं। उनकी तसवीरें अभी पाठ्य पुस्तकों में नहीं आयी हैं और अभी तक वे किसी संग्रहालय में भी नहीं पहुँचीं। वे कुछ व्यक्तियों के पास हैं। राम और कृष्ण की मूर्तियाँ, उनके अपने रूप में, कन्नौज तक के भारत में आप प्रायः नहीं पाओगे। मुझे इसमें आश्चर्य रहा। विष्णु की मिलती हैं, शिव की मिलती हैं, पार्वती वग़ैरह की मिलती हैं, लक्ष्मी की हैं, लेकिन राम और कृष्ण की नहीं हैं। कन्नौज में अब की दफ़े मैंने ६ हाथ वाले चाहे विष्णु कहो, चाहे राम कहो, चाहे कृष्ण कहो, की मूर्तियों को देखा। और वे बढ़िया बनी हुई हैं। वही समन्वय। किसी के हाथ में धनुष है, तो किसी के हाथ में मुरली है। बिचारे कन्नौज वाले समन्वय करने की कोशिश कर रहे थे। खैर, वह तो घर का समन्वय था। लेकिन इसमें भी समन्वय वाली ही विचारधारा है कि जोड़ कर किसी तरह से झंझट से बचो।

आज बड़ा अद्भुत समन्वय चल रहा है। एक हाथ में धर्म लो और दूसरे हाथ में विज्ञान लो और दुनिया के ऊपर फ़तह करो। संसार ऐसा है क्या कि जिस जानवर की सबसे अच्छी पूंछ लगी उसकी पूंछ ले लो और जिस जानवर का सबसे अच्छा मुंह लगे उसका मुंह ले लो और जिस जानवर का सबसे अच्छा पंजा लगे उसका पंजा ले लो और सब मिला कर समन्वय कर दो। यों, ऐसा समन्वय मिस्र देश में हुआ है। एक जानवर बनाया गया था कल्पनामय, लेकिन मिस्र वाले इतने पागल नहीं थे कि उस कल्पना के जानवर को असलियत बना कर संसार में परिणत करने की कोशिश करते। जहाँ तक मुझे याद पड़ता है उस जानवर का शेर का पंजा था, और हिप्पो का मुंह और औरत के स्तन; इस तरह से कुछ है। जो सबसे ज्यादा शक्तिशाली हैं, उन्हें जोड़ कर एक जानवर बनाया था। इस तरह से अगर किसी देश का दर्शन, अगर किसी देश का दिमाग़ी संगठन ही बन जाए कि जो चीज़ भी जहाँ मिले उसको जोड़ो, तो नतीजे बड़े खतरनाक हुआ करते हैं।

अपना जो संविधान है, वह भी एक समन्वय है। वैसे उसमें बहुत कम समन्वय है पर सच पूछो तो एक नक़ल है, क्योंकि स्थिरता का रूप ज्यादा आ गया। जो भी है, रूस तो कम लेकिन अमरीका, इंगलिस्तान, फ्रांस इत्यादि के संविधानों से कुछ मिलाओ, जोड़ दो। एक क़लम कहीं आप महात्मा गाँधी के ग्राम की भी जोड़ दो और समन्वय बना के, संविधान तैयार कर दो। नागरिकता के क़ानून बनाना हो तो समन्वय कर दो और कितना समन्वय परिवार नियोजन में हो रहा है। एक तरफ़ तो परिवार नियोजन हो रहा है, बच्चे कम पैदा करो, और दूसरी तरफ़, कोई शादी नहीं करता है तो उसके ऊपर ज़्यादा टैक्स लगाओ। क़ानूनों में आज यह चीज़ चल रही है। एक ही नहीं, इस तरह के पचासों प्रकार हैं कि जिनमें परस्पर विरोधी समन्वय को चलाने का प्रयत्न है। यह हमारी दूसरी रेखा रही है।

उस पर इतना ज़्यादा ज़ोर मैं नहीं दे रहा हूँ जितना इस बात पर कि भारत बहुत जल्दी किसी भी सांसारिक स्थिति जो अटपटी है, गड़बड़ है उसके सामने झुक जाता है। अपने पुरानेपन को छोड़ता नहीं। यह उसका वैशिष्ट्य है कि चाहे उसकी अच्छी बात कहो, पुरानापन अपना रहता है लेकिन नयी ताक़त आयी, ज़्यादा शक्तिशाली है, उसके सामने झुक जाता है, उसको अपना लेता है। उसकी सामर्थ्य को स्वीकार लेता है और फिर अजीब तरह का एक नक़ली जीवन चलने लग जाता है जिसमें दिमाग़ में एक तरफ़ तो रहता है निर्गुण और दूसरी तरफ़ रहता है यह सगुण संसार कि जिसमें घुलमिल कर चलते रहो।

मैं समझता हूँ कि ये ही बड़े कारण हैं कि हम आज संसार के सबसे रोगी, सबसे भूखे, सबसे पिछड़े देश हैं। ये जितने विशेषण मैंने दिये उनके लिए तो तर्क हैं और प्रमाण हैं। अब मैं एक बात और कहना चाहता हूँ। मेरा अपना अनुभव यह बताता है कि हम

संसार के सबसे झूठे देश भी हैं। इसके लिए मैं तर्क नहीं दे सकता। एक ज़माना था जब अंग्रेज इस बात को कहता था तो मुझे गुस्सा चढ़ता था। लेकिन आज मैं जानता हूँ कि झूठा होना स्वाभाविक है, क्योंकि इसमें अपने निर्गुण संसार को तो अलग से बसा लिया है, सगुण संसार अलग से है। दोनों में कोई संबंध ही नहीं है। फिर झूठे नहीं होंगे तो होंगे क्या? एक विचित्र-सी बात आप और देखोगे कि कोई काम करना यह भारतीय का मुख्य ध्येय नहीं होता; मुख्य ध्येय होता है, अगर काम नहीं हुआ तो उसके कारण बताना, सफ़ाई देना, तर्क देना कि क्यों नहीं हुआ। चाहे सरकारी नौकर, चाहे राजनीतिक कार्यकर्ता, चाहे नेता सबका दिमाग़ इस ढाँचे में ढला हुआ है कि जो लक्ष्य है, जो कर्म है, जो काम करना है वह नहीं किया तो इस समय ग्लानि नहीं होती कि हमसे यह काम नहीं हुआ; कि क्यों नहीं हम दूसरे रास्ते को अपनाते हैं, बल्कि उस समय दिमाग़ की निर्गुणता इसी में लग जाती है कि अरे, वह कारण था, इससे नहीं हुआ, उससे नहीं हुआ। और फिर अगर, अगर कोई पूछता है तो कारणों की दोलड़ी सुन्दर भाषा में बता दिया जाता है जिसे सुनने वाला भी मस्त हो जाता है कि हाँ भई, यह काम नहीं हुआ जिसके ये-ये कारण हैं। तो ऐसी स्थिति में देश का क्या भाग्य होगा, इसका आप अनुमान लगा सकते हो।

थोड़ा-सा मैं उस बात को दोहरा देता हूँ कि हिन्दुस्तान संसार में सबसे कम आगे बढ़ने वाला देश है यानी ज्यादा पिछड़ा हुआ है। ५ बरस पहले जब अंग्रेज यहाँ से गये तब पिछड़े तो हम थे ही, लेकिन पिछले १२ बरस में हम अपने अतीत की, अपनी ही पुरानी हालत की तुलना में, थोड़ा आगे बढ़े हैं, रेंगे हैं। इसे मैं स्वीकार करता हूँ। लेकिन अपने पड़ोसियों की तुलना में १२-१५ बरस पहले हम जितना पीछे थे उससे और ज्यादा पीछे हो गये हैं यह बड़े अफ़सोस की बात है कि देश के पढ़े-लिखे लोग उन्नति के दोनों अर्थ नहीं बताते। केवल एक अर्थ को वे बताते हैं कि अपनी पुरानी तुलना में हम कितना आगे बढ़े। रूस और अमरीका तथा, और नजदीक आओ, चीन की तुलना में, घाना की तुलना में हम कितना बढ़े इसे भी बतलाना चाहिए। पाकिस्तान के बारे में मुझे थोड़ा संशय है, लेकिन मेरा अनुमान है कि पाकिस्तान में भी हिन्दुस्तान की तुलना में जरूर थोड़ो-बहुत ज्यादा तरक़्क़ी हुई होगी। पक्का तो नहीं कह एकता लेकिन ५ रुपया प्रति व्यक्ति, प्रति साल भारत की उन्नति है उतनी तो अवश्य है पाकिस्तान की, कुछ ज्यादा ही हो। कोई ऐसा देश नहीं है जो इतना पिछड़ा हुआ रहा है। हर साल जब हम ५ रुपये की तरक्क़ी करते हैं तो यह साफ़ बात है कि तरक्क़ी तो हुई, लेकिन रूस वाला २५०रुपया कर गया, चीन वाला ६०-७०-८० रुपया कर गया, घाना वाला ३० रुपया कर गया। यह भारत के साथ बहुत जबरदस्त अन्याय और पाप हो रहा है कि हिन्दुस्तान के पढ़े-लिखे लोग उन्नति के दूसरे अर्थ को बिलकुल बता नहीं रहे हैं। जिस तरह से १५ बरस पहले हम संसार के अजायबघर थे, आज और ज्यादा

अजायबघर बनते जा रहे हैं। कभी-कभी तो अकेले में मैं सोचता हूँ कि शायद १०-१५ बरस के बाद दुनिया हमारे बारे में यह फ़ैसला करे कि चलो भई, अपने बच्चों को बताना है कि पुराने जमाने में जंगली लोग कैसे रहा करते थे तो फिर भारत की एक सफल यात्रा करने के लिए अपने बच्चे और बच्चियों को भेज दिया करेंगे—दूसरे लोग, अफ्रीका के लोग, चीन के लोग कि जाओ, देखो, तुम्हारे पुरखे जंगली लोग कैसे रहा करते थे।

अब प्रश्न यह उठता है कि क्या इस अवस्था को, या जो आज प्रवृति चल रही है, उसे बदला नहीं जा सकेगा ? अंग्रेजी भाषा ने हमारे साथ कितना अन्याय किया है कि जो हमारे यहाँ के अर्थशास्त्री हैं वे वास्तव में अर्थशास्त्री नहीं हैं। वे तो हवाई जहाज़ की कुछ भाषा प्रयोग करने में निपुण हैं। हवाई जहाज़ जब चलता है और चलने में उसका इंजन गरम होता है, फिर इतनी गरमी आती है कि वह उड़ जाए, नहीं तो मोटर की तरह खाली जमीन पर चलता रहेगा। उसे 'टेक आफ़' कहते हैं। तो हिन्दुस्तान के अर्थशास्त्री, किताब लिखने वाले या अख़बार वाले 'टेक आफ़' से बड़े मस्त हो जाते हैं। वही उपमा हो गयी कि हिन्दुस्तान की अर्थ-व्यवस्था कब 'टेक आफ़' करने वाली है। कोई कहता है, बस, अब 'टेक आफ़' होने वाला है, कोई कहता है अब ज़्यादा से ज़्यादा २ बरस, ३ बरस और हैं। जहाँ देखो वहाँ यह बहस चलती रहती है, और हिन्दुस्तान की आर्थिक व्यवस्था में कौन-सी चीज कहाँ, क्या कम है, उसके ऊपर कहीं कोई विवेचन नहीं।

यहीं, आपके पूना के एक प्रोफ़ेसर ने एक अच्छा अध्ययन किया। मुझे वह किताब कल ही मिली। मैंने उसको पढ़ा। प्रोफ़ेसर तुलसीकर ने पूना के राजनीतिक कार्यकर्त्ताओं को संबंध में एक अध्ययन किया। उसमें कई बातें हैं। उन सबको मैं छोड़े देता हूँ क्योंकि उसकी तो मुझे टीका करनी नहीं है। उन्होंने सभी राजनैतिक कार्यकर्त्ताओं, सभी से मतलब, उनको उस समय जो बड़ी पार्टियाँ दिखाई पड़ती थीं, कांग्रेस, कम्युनिस्ट, प्रजा और जनसंघ, इन चार के कार्यकर्त्ताओं से पूछा कि तुम्हारे लिए सबसे बड़ा लक्ष्य कौन-सा है, नम्बर १ लक्ष्य, नम्बर २ लक्ष्य और नम्बर ३ लक्ष्य। जनसंघ में थोड़ा-सा वैशिष्ट्य रहा। उन्होंने अखण्ड भारत को अपना लक्ष्य, ऊँचा या पहले नम्बर या दूसरे नम्बर का कुछ बताया। लेकिन और सबने सबसे पहला लक्ष्य लोकशाही बतलाया—चाहे कांग्रेस, चाहे प्रजा, चाहे कम्युनिस्ट, तीनों का लक्ष्य लोकशाही। समझ लो, ३० कम्युनिस्टों से पूछा तो ३० में २७-२८ ने एक साथ हो कर जवाब दिया लोकशाही। इसमें चालाकी है या नहीं है, इस प्रश्न को अभी मत उठाना, क्योंकि मैंने यह भी उस किताब में पढ़ा कि इन प्रश्नों का उत्तर देने के पहले कम्युनिस्टों ने एक बैठक करके कुछ बातचीत कर ली थी। हो सकता है कि आपस में बैठ करके यह भी फ़ैसला कर लिया हो कि जवाब देने में लोकशाही को पहला लक्ष्य बता देना। खैर जो भी हो। सभी ने कांग्रेस, प्रजा, कम्युनिस्ट, अपना दूसरा लक्ष्य लोकशाही योजना और तीसरा लक्ष्य बतलाया राष्ट्रीयकरण। राष्ट्रीयकरण कितना ? कांग्रेस के चालीस में से १-२ आदमी कहते हैं। प्रजा वालों में एक ही।

अद्भुत बात है कि एक समाजवादी पार्टी और उसका केवल १ आदमी ४० में से राष्ट्रीयकरण को अपना लक्ष्य बताता और वह भी तीसरे नम्बर का लक्ष्य। और कम्युनिस्ट भी, जितने भी ३०-३५ थे, उनमें से किसी ने राष्ट्रीयकरण को अपना पहला लक्ष्य नहीं बताया; दूसरा लक्ष्य नहीं बताया, तीसरा लक्ष्य बताया। उनके अलबत्ता ७-८ आदमी निकलते हैं। बड़ी विचित्र चीज़ है।

उस अध्ययन में से कुछ नतीजे निकालने चाहिए। प्रोफ़ेसर साहब ने नतीजे नहीं निकाले। यह काम तो दूसरों का है। भारत में आज़ादी के बाद राजनीतिक पार्टियों के दिमाग़ स्थिरता की तरफ़ कितना ज़्यादा गये हैं, इससे पता चलता है। लोकशाही और योजना! यह सब क्या है? जैसे नारियल होता है, नारियल के बाहर का खोल है। नारियल के अन्दर जो पानी है या गूदा है, वह नहीं है। जैसे मनुष्य का शरीर है उसमें चमड़ा बहुत ज़रूरी है, रूप के लिए ज़रूरी है, स्वास्थ्य के लिए ज़रूरी है। अगर हमारा चमड़ा खतम हो जाए तो हम खतम हो जाएँगे। लेकिन चमड़े के अन्दर हड्डी और मांस भी उतना ही आवश्यक है, कम से कम उतना ही, कुछ लोग तो कहेंगे ज़्यादा। लेकिन आप देखोगे कि पूना के राजनीतिक कार्यकर्ताओं ने जवाब देते वक़्त अपने पहले नम्बर और दूसरे नम्बर के जो आदर्श बताये—लोकशाही और योजना ये दोनों चमड़े की तरह हैं; अंतिम मर्यादा, सीमा बाँधना या खोलें जो बाहर वाला है। अन्दर कौन-सा मांस या कौन-सा रक्त और कौन-सी हड्डी है, राष्ट्रीयकरण, उससे बहस नहीं। एक और लक्ष्य है सामाजिक बराबरी का, आर्थिक बराबरी का। उसको भी एक-दो आदमियों ने अपने तीसरे नम्बर का लक्ष्य बताया है। सामाजिक बराबरी, राष्ट्रीयकरण, आर्थिक बराबरी, ये सचमुच जो हड्डी, मांस हैं, लोगों के दिमाग़ से हट गये। कितनी ज़बरदस्त स्थिरता आ गयी है इस देश मे? इतनी ज़बरदस्त कि किसी तरह से योजना चलाओ, खेती-कारखाना चलाओ, मामला ठीक हो जाएगा। वैयक्तिक पूंजी मिटाने में कोई गड़बड़ हो जाएगी, क्रांति कौन करता है? भारतीय मानस क्रांति करना नहीं चाहता और क्रांति करने में तो झंझट होगी, न जाने सफलता मिले, न मिले तो उससे अपने विचारों को हटाओ और योजना की तरफ़ ले जाओ।

मेरा अपना विचार है कि एक पिछड़े हुए देश में ग़रीब, भूखे, रोगी और झूठे देश में वैयक्तिक पूंजी के नाश के बिना योजना एक राक्षस है और वह राक्षस आज हमको अपने देश में बिलकुल साफ़ दिखाई पड़ रहा है। पूंजीवाद आखिर है क्या? पूंजीवाद केवल व्यापारियों और उद्योगपतियों के पूंजी इकट्ठा करने का नाम नहीं है, और विशेष करके भारत में पूंजीवाद तो एक तरफ़ पूंजी का इकट्ठा करना और दूसरी तरफ़ जो लोग नौकरशाही के हैं या नेताशाही के हैं, उनकी जातियाँ भी हो चुकी है, उनके खर्चे और आमदनी का एक बड़ा विराट् स्वरूप है। हिन्दुस्तान का पूंजीवाद उद्योगपतियों और नौकरशाही और नेताओं के जोड़ से बनता है। नेता, नौकरशाही और

सेठ इन तीनों के जोड़ से हिन्दुस्तान का पूंजीवाद बनता है। नेता और नौकरशाह सम्पत्ति इकट्ठा नहीं करता और अगर करता है तो थोड़ी और उसका पता भी नहीं चलता। लेकिन उसका खर्चा पूंजीपति से कम नहीं होता, ज़्यादा होता है। आज भी हिन्दुस्तान में चाहे आधुनिकता के नाम पर और चाहे शान के नाम पर, नेता और नौकरशाह का खर्चा पूंजीपति के बराबर या उससे ज़्यादा है। इन सबको मिला कर पूंजीवाद बनता है। मेरा अनुमान है कि आज हिन्दुस्तान में सरकार की तरफ़ से योजना का खर्चा और सरकारों का ख़र्चा साल भर में जो ख़र्चा हो रहा है, वह सब मिला करके क़रीब ४०-४५ अरब रुपये का है। इस ४० अरब में २० अरब, हो सकता है कुछ लोग कहें ज़्यादा तुम बता रहे हो, तो १५ अरब निश्चित रूप से आधुनिकीकरण का खर्चा, खपत के आधुनिकीकरण का खर्चा है, पैदावार की बढ़ोतरी का नहीं, खेती-कारखानों को सुधारने का नहीं। मैंने पहले ही बतला दिया कि २० अरब रुपयों का खर्चा योजना का और सरकारी बजट वग़ैरह का, वह चाहे ग़लती से होता हो, चाहे बुद्धिमानी से होता हो, लेकिन कम से कम वह खेती-कारखानों को सुधारने का होता है। हिन्दुस्तान को भी रूस, अमरीका जैसा आधुनिक बनाना है, और पूरे ४५ करोड़ के लिए नहीं बना सकते तो कम से कम ४०-५० लाख के लिए तो बना डालो।

जो लोग कहते हैं कि हिन्दुस्तान में समाजवाद आ रहा है या आया है, वे तो पता नहीं कौन से कपोल-कल्पित संसार में रहते हैं, वही वृन्दावन वाले संसार में कि निर्गुण को मान लो भजन करते रहो,...एकोऽवशिष्यच्छिवः केवलोऽहम् रटते रहो और फिर अपना पूजापा चलाते रहो। और संसार कैसा रहे? वृन्दावन की गली-गली में कूड़ा करकट, पाखाना चलता रहता है। पाखाना इतना ज़बरदस्त चलता है मथुरा-वृन्दावन में कि कई जगह तो सूअर मेहतर हो गये हैं। मेहतर की एक बडी बुरी प्रथा है हमारे यहाँ। मनुष्य को मेहतर बनाना, इससे बढ़ कर और कोई प्रमाण नहीं होता किसी देश की गिरावट का। खैर।

इन शहरों की जो स्थिति है, वह मैंने आपको बतलायी। लेकिन निर्गुण वालों को उससे मतलब नहीं। जब कभी कोई विवेचना होती है, समझो अन्न समस्या के ऊपर, तो हर एक राजनीतिक कार्यकर्ता बोल देता है, हिन्दुस्तान की अन्न समस्या तो पिछले साल, दो साल से ठीक-ठीक चल रही है। अब इस वाक्य को समझने की कोशिश करना कि ठीक-ठीक चल रही है। किसकी दृष्टि से ठीक-ठीक चल रही है? वही ५० लाख की दृष्टि से और ५० लाख के जो भाड़े के दिमाग़ के लोग हैं उनकी दृष्टि से, क्योंकि हिन्दुस्तान के ४३ करोड़ में क़रीब १५ करोड़ ऐसे हैं जिनके सम्पूर्ण जीवन में एक बार भी बढ़िया भोजन की संतुष्टि नहीं मिलती। दिन में एक बार नहीं, मैं कहता हूँ पूरे जीवन में एक बार। १५-२० करोड़ ऐसे होंगे जो खा लेते हैं। लेकिन क्या खाते हैं? पेट भरने लायक़, भात, या बाजरी या मकई जैसी कोई चीज नमक मिरच के साथ खा लेते

हैं, न है घी, न है दूध, न है सेब, न है नासपाती, न है अंगूर। ये तो वे ५० लाख बड़े लोगों के घर जाते हैं। इनके लिए कहाँ बचेंगे। और फिर वे इसके बाद कहते हैं कि अन्न समस्या ठीक चल रही है। तो किसकी दृष्टि से देख रहे हो ?

इसी तरह से एक और बात चलती है कि हिन्दुस्तान तो बड़ा सौभाग्यशाली है। इसमें कितनी ज़बरदस्त स्थिरता रही है। हमारे पड़ोसी लोग तो बिगड़ते रहे हैं। जापान में देखो, कितनी अस्थिरता रही, लाखों लोग सड़क पर निकल गये। नेपाल कितना अस्थिर है। टर्की में देखो कितनी अस्थिरता रही। अस्थिरता बाक़ी के संसार में है। अब इन्हीं से आप तुलना करो। जितने भी ये हमारे पड़ोसी देश हैं, उनकी अस्थिरता का वर्णन होता है चाहे वह जापान है, टर्की है, कोरिया है, नेपाल है। इन चारों का विशेष रूप से वर्णन हुआ। अगर मृत्यु की बात लेते हो तो अकाल मृत्यु जितनी भारत में होती है, उसकी बात करना फ़िज़ूल है। अकाल मृत्यु भूख से, हैजे से, ताऊन से या और कोई महामारी से और पुलिस की गोली से। अगर पुलिस की गोली को भी रखा जाए कसौटी, तो मैं समझता हूँ कि भारत में, किसी भी और पड़ोसी देश में जहाँ अस्थिरता रही है उससे ज्यादा मृत्यु हुई है। इसमें कोई सन्देह नहीं। लेकिन क्या होता है ? भारत का पढ़ा-लिखा आदमी इन तथ्यों को कोई महत्त्व देता नहीं। तथ्य को सुन लिया और उसके लिए कोई न कोई कारण बता देता है कि अरे, क्या किया जाए, यहाँ की जनता बड़ी गँवार है, पत्थर फेंकती है, आग लगा देती है, इसीलिए गोली तो सरकार को चलाना ही पड़ता है। यह तो सफ़ाई देना हुआ। असली बात को देखो कि जितने ये अस्थिर देश हैं, जापान या तुर्की उनमें गोली से जितने लोग मरे या सरकार द्वारा फाँसी से जितने लोग मरे या अकाल मृत्यु जितनी हुई उनकी अगर हिन्दुस्तान से तुलना करो तो हिन्दुस्तान में अकाल मृत्यु कई हज़ार गुना ज़्यादा हुई है, क्योंकि यहाँ तो लोग मरते ही रहते हैं पचास तरह की बीमारियाँ और भुखमरी से। यह स्थिरता किस काम की ? मैं समझता हूँ कि हिन्दुस्तान दुनिया का सबसे स्थिर और सबसे कम प्रगति वाला देश है। और, शायद, दोनों में कोई सम्बन्ध है। हमारी स्थिरता ही हमारी प्रगति को कम किये हुए है। हम थोड़ा अस्थिर बनें, थोड़ा डाँवाडोल हों, उथल-पुथल हो, ज़रा चहल-पहल मचे। हम नहीं चाहते कि कहीं मार-काट हो। यह मैं अपनी राय बताये देता हूँ, गोकि अपने ऊपर कई दफ़ा ग़ुस्सा आता है कि महात्मा गाँधी ने हमको क्या बना दिया, यह मारकाट वाला हिंसा-अहिंसा वाला विचार फ़िज़ूल दिमाग़ में डाल दिया। ग़ुस्से में कभी ऐसा सोच लिया करता हूँ। ख़ैर।

मैं मारकाट की बात आपसे नहीं करता बल्कि केवल अस्थिरता, उथल-पुथल, क्रांति, बदलाव जिसके न होने के कारण आज हिन्दुस्तान पिछड़ा हुआ है। पिछड़ा हुआ है इसमें कोई सन्देह नहीं। मैंने आपको आँकड़े बतलाये, हिन्दुस्तान ५) प्रति व्यक्ति, प्रति साल जब कि घाना ३०), चीन ६०) ७०) रुपया, ये सब आगे बढ़े जा रहे हैं। हम

उनकी तुलना में ज्यादा पिछड़ते चले जा रहे हैं। मैं गति की बात कर रहा हूं, किसी स्थिति की नहीं। हमारी गति यह है कि हम अपने पड़ोसी की तुलना में ज्यादा पिछड़ते हुए चले जा रहे हैं। मुझे ऐसा लगता है कि हमारे देश की सामाजिक और राजकीय स्थिरता में और इस पिछड़ते चले जाने में कोई सम्बन्ध है। एक सम्बन्ध तो मैंने बताया। योजना तो बनायी लेकिन व्यक्तिगत पूंजी का खातमा नहीं करेंगे और आमदनी और खर्चे के बारे में कोई सम्बन्ध नहीं क़ायम करेंगे। २० अरब रुपये तो खेती कारखानों के सुधार में लगाएँगे और २० अरब रुपया खपत के आधुनिकीकरण में लगा देंगे।

खपत के आधुनिकीकरण में रुपया लगाने की क्या जरूरत पड़ी हुई है। ५ बरस पहले तक रूस में जितने यात्री जाया करते थे, बाद में आ कर अपने देशों में बयान देते थे कि रूस में तो कोई चीज अच्छी नहीं मिलती। अस्तुरा इतना खराब होता है, उसकी धार इतनी खराब है कि दाढ़ी बनाते हुए छिल जाता है। वहाँ का कपड़ा बड़ा खुरदुरा है, अच्छा नहीं लगता। लेकिन चाहे जितना उनका कपड़ा खुरदुरा था, जूता खराब था, अस्तुरे की धार अच्छी नहीं थी, आज यांत्रिक मामलों में रूस कुछ हद में अमरीका से भी आगे चला गया है। और हम यहाँ अपने अस्तुरे या लवंडर वग़ैरह के बनाने में इतना लगे हुए हैं कि हमारे खेती-कारखानों की दुर्दशा होती चली जा रही है, अपने पड़ोसियों की तुलना में। बाहर वालों से हर चीज ले कर हम समझते हैं कि हम अपनी शक्ति को बढ़ा रहे हैं, चाहे वह रूस वाला मित्र हो, और चाहे वह अमरीका या अंग्रेजों वाला, जो भी हो। इसमें जरूर निपुण हैं हम, क्योंकि निर्गुण संसार में जो टहल चुके हैं कि इसको भिड़ाते-भिड़ाते कुछ अपना रास्ता निकालते चलो। लेकिन वे कब तक निकालते जाएँगे, यह बात अलग है। ऐसी स्थिति में स्थिरता, और प्रगति का न होना, दोनों में मुझको पूरा सम्बन्ध दिखाई पड़ता है। राजनीतिक जो भी स्थिति है, वह भी मैंने आपके सामने रखी। असलियत में वह किधर जा रही है? क्रांति, राष्ट्रीयकरण, सामाजिक बराबरी, आर्थिक बराबरी इसकी तरफ़ वह नहीं जा रही है। आप कहोगे कि यह तो तुमने बड़ा ही निराशा का दृश्य सामने रख दिया। इसमें कोई संदेह नहीं। आज तो बहुत ही निराश वातावरण है। लेकिन आप जानते हो कि मेरे जैसा आदमी इस तार्किक निराशा से घबड़ा तो जाता नहीं।

अब मैं उसी भाग्य की रेखा के एक अंग को आपके सामने और रखे देता हूं कि जहाँ एक तरफ़ हमने संसार को मोड़ने, बदलने का प्रयत्न नहीं किया और एक कल्पित संसार को बनाया है, वहाँ दूसरी तरफ़, हमने शुद्ध और पूर्ण निर्गुण को भी पहचानने की कोशिश की है। क्या यह संभव हो सकता है कि अगले २०-३० बरस में जहाँ दुनिया में हथियारों का खातमा और खेती कारखानों के मामलों में कुछ पूर्णता आए, वहाँ हिन्दुस्तान में सम्पत्ति के मामलों में नये ढंग से विचार आए। और वह कौन-सा? इसमें तो मुझे कोई संदेह नहीं है कि सम्पत्ति का नाश होना चाहिए। सम्पत्ति के नाश के बिना दुनिया

का और हिन्दुस्तान का कोई कल्याण है नहीं। आज जो कुछ भी योजनाएँ यहाँ चल रही हैं, वे इसी कसौटी पर फ़ेल हो गयी हैं कि उनमें कोई भी व्यक्तिगत सम्पत्ति को खतम करने की ओर नहीं जा रही है बल्कि व्यक्तिगत सम्पत्ति का निर्माण है। मैं तो जब कभी बम्बई, पूना, हैदराबाद, कलकत्ता, दिल्ली देखता हूँ तो समझ में आता है कि समाजवाद को क़ायम करने के लिए क्या किया? समाजवाद को खतम करने के लिए, रोकने के लिए अलबत्ता बहुत कुछ किया गया है। जो १० बरस, १५ बरस मेहनत करके एक छोटा-सा पचास हज़ार रुपये का बंगला बनाता है और १० हज़ार की मोटर खरीदता है, वह समाजवादी बनेगा? यह कैसा मज़ाक़ हो गया? और पंचवर्षीय योजना में निरन्तर हर साल ३-४ लाख ऐसे आदमियों का निर्माण होता है जो २०-३० बरस की मेहनत के बाद एक छोटी-सी बंगलिया और एक छोटी मोटर ले कर सुख से बैठ जाते हैं। अहमदाबाद में आज १० हज़ार आदमी हैं, जिन्होंने ऐसा नया-सा बंगला बसा लिया है और पूना में भी, मैं समझता हूँ, पिछले १२ बरस में ४-५ हज़ार आदमी तो ऐसे निकले होंगे। ये आदमी बड़े शक्तिशाली होते हैं। इनका असर रहता है लोगों के ऊपर। लोगों के मन को ये बदलते हैं।

ऐसी योजना चलाते रहने से मुझे कोई कल्याण दिखता नहीं। ५० पुराने तर्क मैं आपको नहीं दूँगा कि सम्पत्ति से क्या होता है। बैर होता है, द्वेष होता है, वग़ैरह, वग़ैरह। वह सब तो छोड़ दो और ४ हज़ार बरस पहले हमारे पुरखे लोग उपनिषद् में सम्पत्ति के बारे में कह दिये जिसको सब लोग कहते भी हैं कि अपनी भावना से सम्पत्ति को दूर करो।

तेन त्यक्तेन भुंजीथा, मा गृध: कस्य स्विद्धनम्।

यह किसका धन है? ईश्वर का। ईश, वग़ैरह यह सब बातें आती हैं। धन के बारे में एक त्याग की भावना ले कर चलो। छोड़ो उसको। सम्पत्ति के मोह को छोड़ो। यह है ४ हज़ार, ३ हज़ार, बरस पहले के भारत के उपनिषदों का निचोड़ कि सम्पत्ति के मोह को छोड़ो। ३-४ हज़ार बरस में देखा क्या? दिमाग़ से तो वह मोह छूट गया और बद्रीनाथ व वृंदावन जाते वक़्त वह मोह छूट जाता है लेकिन हम लोग इतने दुखी, इतने कमज़ोर, रोगी हो गये कि वास्तविक संसार में जितना ज़्यादा मोह हमको है एक राष्ट की हैसियत से उतना किसी को नहीं। हम मरना नहीं चाहते। देह गल रही हैं, कोढ़ हैं, रोग है फिर भी मरना नहीं चाहते। ज़रा-सा पुलिस का डंडा देख कर इतना डर लगता है साधारण तौर पर कि भाग जाते हैं। पुलिस का डंडा पड़ जाने के बाद चोट नहीं लगा करती है, यह मैं अपने अनुभव से बताता हूँ। अश्रुगैस आ जाने के बाद दर्द नहीं होता—थोड़ा बहुत तो होता है लेकिन कोई विशेष दर्द नहीं होता। गोली लग जाने के बाद कहाँ दर्द होगा। वहाँ तो मामला ही खतम। ये सब पहले ही हुआ करते हैं। आशंका, अश्रुगैस की आशंका, गोली की आशंका, डंडे की आशंका,

पुलिस के उठे हुए डंडे के भूत को देख कर आदमी भाग जाता है। और आज सम्पत्ति और देह के मामले में अनासक्ति योग की बड़ी चर्चा है। अनासक्ति-आसक्ति ये शब्द बड़े प्रचलित हैं। मैं भी अपने बचपन में बड़ा घमंड किया करता था, हमारा देश तो अनासक्ति योग का देश है, और मैं समझता हूँ कि आप में से भी जो १५-२० बरस वाले होंगे वे घमंड करते होंगे कि हमारा देश अध्यात्म का देश, अनासक्ति का देश है। वास्तविक स्थिति यह है कि जापान में, तुर्की में, इंगलिस्तान में, रूस, अमरीका में, देह और धन के बारे में जितनी अनासक्ति आप पाओगे उतनी भारत में नहीं है। यह बिलकुल निश्चित बात है। यहाँ अनासक्ति तो नहीं लेकिन दिमाग़ के अन्दर किसी कोने में वह अनासक्ति पड़ी हुई है न। ४ हज़ार बरस से चली आ रही है। और निर्गुण अनासक्ति है और सगुण आसक्ति। यह है हमारी स्थिति।

इसमें अच्छी भी बात पकड़ना, बुरी भी; दोनों पकड़ना। यूरोप में क्या हुआ है? यूरोप में भी सम्पत्ति के प्रश्न को पकड़ा। सम्पत्ति जड है। मैं नहीं कहना चाहता कि केवल सम्पत्ति ही हमारे दुःखों को जड़ है, लेकिन सम्पत्ति एक जड़ है। यूरोप के बड़े-बड़े ऋषियों ने यह फ़ैसला किया कि सम्पत्ति की असलियत को ख़तम करो, सम्पत्ति की संस्था को ख़तम करो। हमारे यहाँ ३-४ हज़ार बरस पहले फ़ैसला हुआ था कि सम्पत्ति के मोह को ख़तम करो। रूस ने ख़तम किया, थोड़ा-बहुत चीन कर रहा है, कुछ थोड़ा-बहुत उस तरफ़ जर्मनी वग़ैरह बढ़े, फिर रुक गये। शायद फिर और आगे बढ़ेंगे। मैं जब सम्पत्ति कहता हूँ तो मेरा मतलब कोई कोट-क़मीज़ से नहीं है या छोटे-मोटे ऐसे धन से नहीं है। सम्पत्ति से मेरा मतलब कारख़ाने वग़ैरह से है। कारख़ाने हैं, बड़े-बड़े बग़ीचे हैं या बड़े-बड़े खेत हैं। ये जितनी भी सम्पत्ति हैं इनकी असलियत को ख़तम करो। इनका राष्ट्रीयकरण करो। भारत में सम्पत्ति के मोह का नाश, यूरोप में सम्पत्ति की संस्था का और असलियत का नाश।

निराशा के कर्त्तव्य का ज़िकर मैंने पहले किया था। अब इतना ही कहे देता हूँ कि हो सकता है कि हिन्दुस्तान में अगले २५-३० बरस में कुछ लोग हों, उनकी तायदाद बढ़े जो झूठे समन्वय की तरफ़ नहीं जाएँगे, जो मज़बूती के साथ अपने रास्ते पर चलते जाएँगे और जो सम्पत्ति के मोह और सम्पत्ति की असलियत दोनों का नाश करने वाले सिद्धांत को पकड़ कर न केवल भारत के भाग्य को एक दिशा देंगे, बल्कि संसार के भाग्य को भी बदलने में बहुत ज़बरदस्त सहायक बनेंगे। मुझे ऐसा लगता है कि ख्रुश्चेव साहब को जा कर बताएँ कि देखो भई, तुम खाली सम्पत्ति की असलियत का नाश करते हो, लेकिन वह मोह बना रह गया तो फिर बाद में वह असलियत किसी न किसी रूप में आ जाएगी, इसलिए ज़रा प्रयत्न करो कि सम्पत्ति के मोह और असलियत, दोनों ही शायद ख़तम हो चलें तो अच्छा, दोनों को ख़तम करो। आप कहोगे, यह तो तुमने बड़ी भारी आशा की बात बता दी। हाँ, ठीक है, आशा तो इसे कहना चाहिए पर एक तरह से यह

कर्तव्य है। जो कुछ भी पिछले २–३ हज़ार बरस के इतिहास का ज्ञान है उसमें से जो कर्तव्य की रेखा मालूम पड़ती है, वह यह है। अगर यह रेखा शक्तिशाली हो गयी, और अगर संसार में हथियार का नाश हुआ, तो संभवतः भारत का भाग्य बदलेगा, और सुधरेगा वरना तो आज की स्थिति में मुझे बहुत कम आशा दिखाई पड़ती है।

अब रह गया, अध्यक्ष ने औरतों के बारे में जो कहा। वह तो बहुत ही मुशकिल लगता है। नर-नारी का मामला बड़ा टेढ़ा है। जो सात बड़ी असमानताएँ हैं या अन्याय हैं उनमें से एक यह है। सामाजिक स्तर पर यूरोप में कुछ कम हुआ है। २–३ हज़ार बरस पुराने भारत में, गार्गी या मैत्रेयी के भारत में, ऐसा मैं अनुमान करता हूँ कि दार्शनिक और आध्यात्मिक स्तर पर यह अन्याय कुछ कम हुआ था, या काफ़ी कम हुआ था। और सच पूछो तो, असली बराबरी कब होती है, दिमाग़ वाली बराबरी, जब लोग एक-दूसरे को दिमाग़ी तौर से बराबर समझें, एक-दूसरे से बातचीत करने को तैयार हों। वह होती है असली बराबरी। आज यूरोप और अमरीका में दिमाग़ी बराबरी नहीं है। अभी एक सम्मेलन में ऐसा सवाल उठा था तो मैंने कह दिया तो कुछ औरतें तो गड़बड़ायीं और मर्द तो बहुत ही गड़बड़ाये। लेकिन वास्तविक स्थिति यह है कि औरत बहुत कम बोलती-बालती है। वह अपनी सम्पत्ति और शृंगार में ही उलझी रहती है। और हाँ, खाने के मौक़े पर वह बोलती है, सम्मेलन के मौक़े पर नहीं। मैंने यूरोप और अमरीका में देखा कि खाने के मौक़े पर और शाम के शराब पीते वक़्त तो वह अपना असर डाल देती है मर्द के ऊपर। स्वाभाविक है, काफ़ी असर डालती है। यह मैं मानता हूँ। लेकिन सम्मेलन इत्यादि के मौक़े पर वह असर नहीं डालती। वहाँ उसकी बराबरी नहीं आ पाती है। सामाजिक बराबरी है, लेकिन आध्यात्मिक और दार्शनिक बराबरी नहीं है। अब इन दोनों चीज़ों का कब सम्मिश्रण होगा। यह समन्वय नहीं है। मैं फिर आपको चेतावनी दे देना चाहता हूँ। यह ऐसा नहीं कि एक हाथ में धर्म की पुस्तक ले लो, दूसरे में विज्ञान की पुस्तक ले लो, और पुच्छलों को किसी तरह से जोड़ लो। शेर का ले लो पंजा और सूअर का ले लो मुंह, दोनों को जोड़ दो। किसी तरह से निर्माण करो, यह बात नहीं। सोच करके जो भी चीज़ें उचित और ठीक हैं, और तार्किक दृष्टि से जोड़ी जा सकती हैं, उनको जोड़ो। लेकिन फिर भी, इसमें सन्देह नहीं कि नर-नारी का मामला बहुत ही बिगड़ा हुआ है, और शायद, आधारभूत बिगड़ा हुआ है। मुझे पार्वती की माँ के दिल की जो कराह है, वही मैं आपको बता देता हूँ। कुन्ती ने इसको कहा है। जब पार्वती की शादी हुई शिव के साथ, और पार्वती जाने वाली है, तो पार्वती की माँ बड़ी दुःखी हुई कि यह लड़की जाने कहाँ जाएगी ? सब उसको समझा रहे हैं। शम्भू खुद समझा रहे हैं कि तुम्हारी लड़की बड़े मज़े में रहेगी। वह सब समझ जाती है लेकिन फिर भी कहती है

कत बिधि सृजीं नारि जग माहीं।
पराधीन सपनेहुँ सुखु नाहीं।।

हे विधाता, तुमने नारी का क्यों निर्माण किया ? पराधीन को तो सपने में भी सुख नहीं होता । यह सब खतम होगा, कहना मुशकिल है लेकिन इतना मैं मानता हूँ कि संसार में जो ७ महान् अन्याय हैं उनमें से एक यह है । वे सात अन्याय हैं : एक, गोरे-काले का; दूसरा, ऊँची जाति और छोटी जाति का; तीसरा, जो मालिक देश हैं और ग़ुलाम देश हैं, जो भी थोड़े बहुत हैं उनका; चौथा, नर-नारी का; पाँचवाँ, राज्य के अधिकार और व्यक्ति के अधिकार , निजी जीवन का संरक्षण, आज कल राजनैतिक पार्टियाँ और राज्य आदमी के व्यक्तिगत जीवन में इतना ज़बरदस्त दखल डालने लग जाते हैं कि आदमी का निजी जीवन खतम हो जाता है; छठा, हथियार; और सातवाँ, अमीर-ग़रीब का ।

ये सात बड़े अन्याय हैं जो आज संसार को दुखी बना रहे हैं । इनको ख़तम किये बिना संसार का पुनर्निर्माण नहीं होगा । और सातों क्रांतियाँ एक साथ चल रही है । यह भी निःसंदेह है । सब जगह सारे संसार में । यह आशा की बात है । अभी तक संसार के इतिहास में ऐसा नहीं हुआ । यह जो बीसवीं शताब्दी का उत्तरार्ध है, ये जो ५० बरस हैं, बड़े विशिष्ट प्रकार के हैं । इनमें एक साथ सभी अन्यायों के विरोध में क्रांति हो रही है । जो लोग कहते हैं कि क्रांति शब्द तो पुराना हो गया, वे जानते नहीं कि क्रांति का क्या मतलब है । बड़ी ज़बरदस्त क्रांति हो रही है । अलजीरिया में क्रांति नहीं तो क्या हो रहा है ? वह है राजनैतिक ग़ुलामी वाली ।

उसी तरह से ये ऊँची जाति और छोटी जाति का मामला है । हिन्दुस्तान में निर्गुण सगुण के संबंध में और समन्वय के कारण एक स्थिति पैदा हो गयी है कि ऊँची जाति वालों के ही दिमाग़ और हाथ में एक तरफ़ तो बुद्धि की सत्ता और दूसरी तरफ़ पैसे की भी सत्ता इकट्ठी हो गयी । पैसे की और राज्य की सत्ता में थोड़ा-सा किंचित् मात्र बटवारा हो रहा है । लेकिन बुद्धि की सत्ता बहुत ज़बरदस्त इकट्ठी हो गयी । नतीजा यह हुआ है कि चाहे हम अपने को ४३ करोड़ का देश कहें, लेकिन, वास्तव में, हम केवल ४-५ करोड़ या ६ करोड़ के देश हैं, वह भी बहुत कम मात्रा में । जो ऊँची जाति के ब्राह्मण, वैश्य, कायस्थ और क्षत्रिय; ये ४ समुदाय हैं । वैसे, दक्षिण में मैं नायर और मुदालियार और रेड्डी को भी गिनता हूँ क्योंकि वास्तव में ये ऊँची जाति वाले हैं । शास्त्र के अनुसार ये जो महाराष्ट्र में मराठा जाति है यह भी कुछ उसी ढंग की है, चाहे उतना न सही । इनको सिर्फ़ जनेऊ नहीं पहनायी गयी वास्तव में इनका स्थान कुछ क्षत्रिय जैसा है । सब का न सही । और आखिर शिवाजी महाराज को तो जनेऊ पहनायी ही गयी थी । इस तरह से सब चीज़ें चलती रहती हैं ।

जो ६-७ करोड़ ऊँची जाति वाले लोग हैं, इनके हाथ में बुद्धि की सत्ता आ गयी और फिर हिन्दुस्तान जाति प्रथा की चक्की में फँस गया है । आज जो ५० लाख बड़े लोग हैं उनके हाथ में सब सत्ता आ गयी । नतीजा क्या हो रहा है कि बाक़ी जो हमारी जन-

संख्या है, वह एक तरह से लोथड़ा बन गयी। उसको कोई भी आ कर जिस तरफ़ चाहे लुढ़का सकता है उसका अपना जीवन कोई है नहीं और बनाने की कोशिश भी नहीं हो पाती। सब लोग कहते हैं कि जाति प्रथा को खतम करो लेकिन हिन्दुस्तान में कोई भी जातिप्रथा को खतम नहीं करना चाहता, क्योंकि जितना भी राजनीतिक नेतृत्व हैं सब मध्यमवर्गीय, अधिकतर ऊँची जाति का और संरक्षणशील नेतृत्व है। हर एक पार्टी का नेतृत्व क्रांति से घबड़ाता है। ऐसी स्थिति में, भारत में आज एक पुकार सुनने में आती है, एकता क़ायम करो, देश को बचाओ। एकता खाक-पत्थर कायम होगी। दिमाग़ तो सब टूट टाट गया और ये लोग एकता क़ायम करेंगे ? और, एकता पहला लक्ष्य है ही नहीं।

इस पर भी आप ध्यान देना कि एकता-एकता ज्यादा चिल्लाने वाले लोगों की आज कैसी दुदर्शा हो गयी है। महाराष्ट्र में जो कोई भी स्मारक बनेगा शिवाजी का बनेगा। शिवाजी का स्मारक क्या केवल महाराष्ट्र में बनना चाहिए ? यही दिमाग़ी एकीकरण हो रहा है ? शिवाजी का स्मारक बनना चाहिए लखनऊ में, शिवाजी का स्मारक बनना चाहिए कलकत्ते में। अगर शिवाजी का स्मारक महाराष्ट्र में, पूना में या अहमदनगर में बना देते हो तो उससे क्या राष्ट्रीय एकता क़ायम होती है ? बंगाल में जाओ, बंगालियो का स्मारक बनाओ। राजपूताने में जाओ तो प्रताप वग़ैरह का स्मारक बनाओ। सारे देश के दिमाग़ी ढांचे को तोड़ने का प्रयत्न हो रहा है !

खैर, यह एक अलग चीज़ हुई। असल में जो भी जन-समुदाय है उसके सामने एकता का आदर्श रखना, ऐसा ही है जैसे घोड़े के आगे गाड़ी को रख देना। यहाँ एकता रखने की ज़रूरत क्या और उससे फ़ायदा क्या होगा ? मुर्दा या आधे मुर्दा लोगो की एकता बना देने से फ़ायदा क्या ? पहले लोगों को सजीव बनाओ, जो ४३ करोड लोग हैं उनके अन्दर प्राण डालो, उनको चेतन बनाओ। फ्रांस में, इटली में, रूस में इन सब देशों में एकता का मतलब होता है, क्योंकि वे सजीव लोग हैं, तोड़-फोड़ करने वाले हैं, क्रांति करते हैं, उथल-पुथल करते हैं। और वहाँ जब अनेकता हो जाती है तो देश और समाज टूटने लग जाता है। यहाँ तो आधे-मुर्दा लोग हैं। यहाँ तो कभी तोड़-फोड़ होती ही नहीं। १,५०० बरस से हिन्दुस्तान में आन्तरिक अन्याय के विरोध में कभी कोई क्रांति हुई नहीं; जनता कभी उठी नहीं—आन्तरिक अन्याय, जुल्म या आन्तरिक ज़ालिम के खिलाफ़। बाहरी ज़ालिम के खिलाफ़ हो गया जैसे अंग्रेजों के खिलाफ़, लेकिन आन्तरिक ज़ालिम के खिलाफ़ कोई विद्रोह १,५०० बरस में किया ही नहीं।

विद्रोह हो नहीं सकता। जातिप्रथा उसका कारण है। यूरोप के एक बड़े भारी उपन्यास लेखक ने, और उपन्यास लिखने वाले लोग कभी-कभी सत्य को कल्पना में पा जाया करते हैं, लिखा है कि क्रांति कहाँ होती है ? जहाँ सम्पूर्ण समता है, वहाँ क्रांति नहीं होती और जहाँ प्रायः असमता है वहाँ क्रांति नहीं होती। और हिन्दुस्तान में जाति-

प्रथा के कारण बहुत असमता, बहुत ग़ैर बराबरी हो गयी है। केवल रोटी, कपड़े, पैसे की ग़ैर-बराबरी नहीं बल्कि दिमाग़ की ग़ैरबराबरी हो गयी है। सरकार के सबब से ऊँची जाति वाले तो ज़्यादा बुद्धिमान हो गये हैं और छोटी जाति वाले कम बुद्धिमान हो गये हैं। संस्कारजन्य ग़ैरबराबरी हो गयी। जहाँ इतनी ज़बरदस्त ग़ैरबराबरी हो गयी, वहाँ क्रांति नहीं हो सकती। क्रांति कहाँ होगी, जहाँ तुलनात्मक, सापेक्ष दृष्टि से ग़ैरबराबरी कम है।

मैं इतना निराश तो नहीं हूँ क्योंकि जाति प्रथा का नाश हिन्दुस्तान में, ऐसा लगता है विश्व के भाग्य को देखते हुए और जो मैंने अभी बताया, शायद हो पाएगा। लेकिन नाश करो, नाश करो कहने से नहीं। यहाँ पर परसों-नरसों किसी के कहने पर, शायद मधुलिमये के कहने पर, कि ६० सैकड़ा जगहें, नाई, तेली, धोबी, माली, छोटी जाति वालों को, औरतों को दो, तो उस पर किसी ने हँसी उड़ायी, और किसी ने ताली भी पीट दी कि भारत इतना तो बरबाद हो गया और माली, तेली, नाई को दे दोगे तो और बरबाद हो जाएगा। भारत और कितना बरबाद होगा, क्या बरबाद होगा, इसकी मुझे तो कोई कल्पना है नहीं। जितना बरबाद हो चुका है, उससे ज़्यादा और क्या बरबाद होगा? संसार का सबसे रोगी, सबसे भूखा, सबसे झूठा, सबसे पतित देश है, इसके बाद और क्या बरबाद होगा? यह केवल स्थिरता की कामना है कि ऐसे देश में भी हम समझते हैं कि कोई बड़ा चमत्कार कर रखा है ऊँची जाति वालों ने। उन्हें शर्माना चाहिए कि अपने देश को क्या बना रखा है। जो कोई ऊँचो जाति वाला है, उसको बड़ा ज़बरदस्त पश्चात्ताप करना चाहिए, प्रायश्चित्त करना चाहिए। मैं जानता हूँ कि यह बड़ा कठिन काम है। प्रायश्चित्त करके किसी तरह से गिरे हुए, दबे हुए ४३ करोड़ में से जो समझो कोई ३४ करोड़ लोग हैं, उनको उठाने की कल्पना करनी चाहिए। वह कैसे हो सकता है। यह सोच करके नहीं कि अगर उनको ऊँची जगह बैठाओगे तो देश गिर जाएगा, बल्कि यह सोच कर कि उनको ऊँची जगह बैठाओगे, अवसर मिलेगा तो शायद उनके दिमाग़ में सोयी हुई योग्यता की शक्तियाँ जगें और भारत की शक्ति बढ़े। एक जोखम उठाओ। जो भी बड़ा काम होता है, उसमें जोखम लेना पड़ता है। यह जोखम उठाना चाहिए कि जो दबे हुए लोग हैं उनको ऊँची जगह पर बैठाओ, सब नहीं, ६० सैकड़ा। चालीस सैकड़ा तो योग्यता वालों को बैठाओ, ६० सैकड़ा को अवसर दो। अवसर देते-देते, सम्भवतः उनकी योग्यता बढ़ेगी और तब हम अपने पड़ोसियों के मुक़ाबले आ पाएँगे। रूस, अमरीका इत्यादि देशों का मुक़ाबला कर सकेंगे, और अपने ढंग से नया मुक़ाबला कर सकेंगे।

लेकिन जो बात मैंने आपसे कही है, उन्हें, कहीं आप इस समय जो चीज़ चल रही है, ब्राह्मण-मराठा, या समझो नायर ईडवा या समझो उत्तर में अहीर-ब्राह्मण मत समझ लेना। ये सब तो छिटपुट चीज़ें हैं, मज़ाक़ है, एक दूसरे की शक्ति को क़ायम रखने की

बात है। कुछ मराठा लोग हैं, उन्होंने शक्ति हासिल कर ली तो सोचते हैं कि ब्राह्मण लोग आखिर दिमाग़ से तेज हैं, उनके साथ समझौता कर कराके, चलो, अपनी गद्दी को क़ायम रखें। ऐसी बात मैं नहीं कह रहा हूँ। मैं तो आमूल जातिप्रथा के नाश की बात कर रहा हूँ और उसमें आमूल जो दबे हुए लोग हैं उनको ऊँची जगह पर बैठाने की बात कर रहा हूँ। मैं यह साफ़ तौर से कहता हूँ कि जो अयोग्य हैं, उनको ऊँची जगह पर बैठाओ। मैं अपनी बात को ज़रा अतिशयोक्ति का रूप दे रहा हूँ। अंग्रेज़ से जब गांधी जी तर्क किया करते थे, तो अंग्रेज़ कहता था, पहले आप योग्य बन जाओ। गांधी जी अंत में समझ गये कि इस तर्क से काम नहीं चलेगा। तब उन्होंने कहा, हम चाहे योग्य हैं, चाहे अयोग्य हैं, आप अपना बोरिया-बिस्तर बांध कर इस देश से जाओ।

आज, मैं अगर माली होता, तेली, चमार होता, अहीर होता, तो वही भाषा बोलता पर अम्बेडकर वाली नहीं। अम्बेडकर जी में दो बातें थीं। एक तो तेजस्विता थी और दूसरे जलन थी। मैं कोशिश करता कि तेजस्विता तो रहती लेकिन जलन नहीं होती और बिलकुल शुद्ध रूप से कहता कि हम हिन्दुस्तान के ३४ करोड़ छोटी जातियों के लोग दबे हुए हैं और बुद्धि से आज कमज़ोर हो गये। यह मैं मान कर चलता। आजकल छोटी जाति वाले लोग बहस चलाते हैं। कहते हैं, वाह, बुद्धि में कहाँ फ़र्क़ है, रक्त में फ़र्क़ हो गया। ३-४ हज़ार बरस के संस्कार के कारण, लगातार बुद्धि और दिमाग़ का काम करते रहने के कारण ब्राह्मण, कायस्थ और क्षत्रिय और वैश्य वग़ैरह का दिमाग़ बुद्धि के मामलों में तेज़ हो गया। संस्कार की बात हो गयी तो मैं छोटी जाति वाला होते हुए कहता कि संस्कार के कारण यह फ़र्क़ आ गया, और अब इस फ़र्क़ को संकल्प और स्नेह से मिटाना है। और कैसे मिटाना कि जिनको ३ हज़ार, ४ हज़ार बरस से यह संस्कार नहीं मिला, उनको ऊँची जगह पर बैठाओ। १०० को बैठाओगे, तो, हो सकता है, उसमें ६०-७० असफल निकलें, उससे नुक़सान हो। लेकिन १०-२०-३० भी सफल निकल गये तो अपनी पूरी जाति के लिए, दर्पण की तरह काम करेंगे और फिर उनको देख कर सारा देश ऊँचा उठेगा।

आज हिन्दुस्तान की छाती सिकुड़ गयी। अपने पड़ोसी के उत्थान को देख कर हमें डर लगता है कि कहीं हम नीचे गिर जाएँगे। मैं आपके सामने जो बात रख रहा हूँ, वह यह कि जब पड़ोसी ऊँचा उठेगा तो हम भी ऊँचे उठेंगे और इस तरह का दर्शन अगर आ गया तो, शायद, भारत भाग्य के बारे में मैंने आपसे जो बातें कहीं, वे दूसरी दिशा में चली जाएँ और हम भी नये संसार में बढ़िया तरीक़े से अपना आसन ले लें।

मैं चाहता था कि इतने बड़े विषय पर बोलते हुए पंडित जवाहरलाल नेहरू का नाम न लूं, क्योंकि वे स्पष्टतः इसके लायक़ नहीं, लेकिन एक जवान आदमी ने ज़बरदस्ती ही वह नाम दिलवा ही डाला। क्या करें? देखो, किताब लिखना एक बात है। किताबें

तो हमने भी बहुत लिखी हैं। सवाल यह है कि १०० बरस के बाद कौन-सी किताब पढ़ी जाएगी। सामयिक बड़प्पन और ऐतिहासिक बड़प्पन, दोनों में बड़ा फ़र्क़ होता है। कुछ लोग अपने समय के बड़े होते हैं और कुछ इतिहास के बड़े होते हैं। पिछले १,५०० बरस में भारत में एक तरफ़ कविता को छोड़ दो, और दूसरी तरफ़ गांधी जी को छोड़ दो, तो मामला बड़ा गड़बड़ रहा है। उसके ऊपर घमंड मत करो। मैंने शुरू में ही कह दिया। उस पर घमंड करने लगोगे तो अपनी आज़ादी की रक्षा नहीं कर पाओगे। मिथ्या पर घमंड मत करो। १,५०० बरस के पहले के भारत की बहुत-सी चीज़ें हैं, जिन पर मैं भी घमंड करता हूँ। बहुत-सी गार्गी, मैत्रेयी हैं, ईशोपनिषद् वाले हैं। उन पर मैं घमंड करता हूँ। लेकिन पिछले १,५०० बरस में आप देखें, गणित का है कोई हिन्दुस्तान में। एक भी कोई है ? और फिर मैं नाम नहीं लेना चाहता। कुछ लोगों का लोग ज़िकर कर दिया करते हैं। काहे के लिए ? बचपन में आक्सफ़ोर्ड और केम्ब्रिज विश्वविद्यालयों की परीक्षा में अच्छे नम्बर से पास हो गये, इसलिए बड़े भारी गणितज्ञ हो गये। अब कैसी शर्म की यह बात है, दर्द की बात है कि भारत जैसे महान् देश में गणितज्ञ का फ़ैसला इस बात पर होता है कि आक्सफ़ोर्ड और केम्ब्रिज के विश्वविद्यालय में कितने नम्बर ले लिये। यह तो बच्चे का खेल है। इसमें कहीं गणित आता है ? अर्थ-शास्त्र, राजनीति, दर्शन, गणित हर एक चीज़ में हम लोग सिफ़र रहे हैं पिछले १,२०० बरस में। कविता छोड़ देना, क्योंकि यहाँ जितने भी नाम गिनाये हैं, उनमें रवीन्द्रनाथ ठाकुर का नाम तो ज़रूर मैं अलग कर देता हूँ। और फिर इसमें कोई शक नहीं कि देशभक्त ये रहे हैं। अपने-अपने ढंग से उन्होंने देशभक्ति की। किसी ने गोली चलायी, किसी ने पटाखा छोड़ा, किसी ने कुछ किया। चाहे वह देशभक्ति ठीक रही हो, न रही हो, पर वह देशभक्ति थी और अपने जीवन का उत्सर्ग करने वाली देशभक्ति थी। कौन कहेगा कि लोकमान्य तिलक की देशभक्ति नहीं थी ? बड़ी ज़बरदस्त देशभक्ति थी। जहाँ तक राजनीति का सवाल है उसमें अलबत्ता गांधी जी को छोड़ कर, अब फिर आप नाम लेंगे श्री जवाहरलाल नेहरू और थोड़ी देर में तो आप श्री लाल बहादुर शास्त्री का नाम लेने लग जाओगे, फिर आप कहोगे श्री यशवंतराव चव्हाण का नाम—मेरी तो दुर्दशा आप कर डालोगे। मैं भारत-भाग्य पर बोल रहा हूँ या श्री जवाहरलाल नेहरू या श्री यशवंतराव चव्हाण पर बोल रहा हूँ। ख़ैर। ये सब तो वक़्ती हैं। असल में वह जवान आदमी थोड़ा-सा अच्छा लगता है, क्योंकि मुझे अपना पुराना ज़माना याद आता है। इसी तरह से कुछ बोलते-बोलते आदमी को आगे सोचने की पद्धति आती है। तो, केवल ब्राह्मण, वैश्य, शूद्र वाली बात कहे देता हूँ, क्योंकि वह सचमुच हमारे दिमाग़ में ज़बरदस्त रूप से बँधी हुई है।

आख़िर मैं कोई ऐसा बड़ा आदमी नहीं बन गया हूँ कि अपनी उत्पत्ति की सभी चीज़ों को मैंने ख़तम कर दिया हो। यह बात नहीं। असल में, अपने देश को ऊँचा उठाने के लिए ज़रूरी हो गया है कि ब्राह्मण, वैश्य इत्यादि प्रयत्न करें कि जो पिछले २-३

हज़ार बरस से पिछड़ी जाति के जो लोग हैं, वे ऊँचा उठे। चले कहाँ जाएँगे ? रहेंगे इसी देश में। उनको प्रयत्न करना है। अगर १०० प्रतिशत न कर पाएँ तो कम से कम ६० प्रतिशत यह कोशिश करें कि ज़रा नीचे उतर कर दूसरे लोगों को ऊपर उठाएँ। इसमें वे खुद भी ऊँचे उठेंगे। मुझे तो अफ़सोस होता है कि मेरे जैसे आदमी को ये सब बातें करनी पड़ती हैं। और ऐसा मत समझना कि मैं प्रयत्न नहीं कर रहा हूँ। कुम्हार, कहार, अहीर, तेली, चमार जहाँ कहीं मुझे ज्यादा दिन रहना पड़ता है, वहाँ ऐसे लोगों को ढूंढ़ कर निकालता हूँ। उनकी मदद करता हूँ। हमारा दल, उसकी बात आज मैं करना नहीं चाहता था, सफल नहीं हो पाया। यह बात अलग है। नहीं तो, देखो ग्वालियर में वह हमारी भंगिन सुक्खोरानी खड़ी हुई थी न, ग्वालियर की महारानी के खिलाफ़। प्रयत्न चल रहा है। इसी तरह से न जाने कितनी जगहों पर हमारे कहार और तेली और चमार लड़ रहे हैं, कुछ सीख रहे हैं, कुछ बढ़ने की कोशिश कर रहे हैं।

मैं अपनी एक और बात बताए देता हूँ। हो सकता है कि उनको बड़ी भारी सामग्री मिल जाए। मैंने इन पिछड़ी जातियों में तेजस्विता को पैदा करने में जितनी सफलता नहीं हासिल की, जितनी कि जलन। इसमें कोई शक नहीं। हो सकता है कि मैं जिस रास्ते पर चल रहा हूँ, उसमें २०-३०-४० बरस के बाद ये पिछड़ी जाति के लोग जरा शक्तिशाली हो जाएँ और फिर मारकाट के रास्ते पर उतर पड़ें। लेकिन आज की निर्जीवता के मुक़ाबले में मैं इसको पसंद करूँगा, क्योंकि अन्त में आ कर कहीं न कहीं मामला चमकेगा। और जो कोई मुझसे कहना चाहता है कि ब्राह्मण और वैश्य को खतम किया जा सकता है, वह बिलकुल मूर्ख है। ४ हज़ार बरस से ब्राह्मण, वैश्य ने इतनी, चालाकी सीख ली है कि उसको कौन खतम कर सकेगा। यह तो असंभव बात है। इसलिए ब्राह्मण वैश्य की हमेशा चिन्ता करना छोड़ देना चाहिए। आज चिन्ता इस बात बात की करो कि जहाँ वह ऊँची जगह पर बैठा हुआ है वहाँ से वह नीचे उतर कर, ज़मीन पर बैठ कर कोशिश करे कि जितने ये दबे हुए लोग हैं, वे ऊँचे उठें, क्योंकि अभी हमें मुक़ाबला रूस और अमरीका से करना है।

मैं नहीं चाहता कि जब देखो तब हम रूस और अमरीका के सामने हाथ फैलाते रहें। मैं नहीं चाहता, अब फिर से पंडित जवाहरलाल नेहरू की बात करना। उनको शायद पुश्तैनी अधिकार मिला है और पुश्तैनी चालाकी मिली है भीख माँगने की। रूस से भी भीख माँगो, अमरीका से भीख माँगो कि दोनों से भीख मिल जाए और भीख के ही सहारे सब काम चलाते रह जाओ। ऐसे कहीं देश बना करता है। मेरा बस चलता तो आज जितनी भी सहायता रूस से और अमरीका से मिल रही है, उस सब को खतम करके हिन्दुस्तान की अपनी शक्ति के द्वारा, अपने पैरों पर खड़े हो कर निर्माण करने की कोशिश करता और तब ये जितने बिड़ला-नेहरू हैं, मैंने नाम नहीं लेना चाहा था, इनको हिन्दुस्तान की जनता झाड़ू लगा कर बाहर फेंकती और फिर हिन्दुस्तान की जनता अपने

पैरों के ऊपर खड़ी हो कर कुछ करती। आज अमरीका की सहायता से और रूस की सहायता से बिलकुल निर्जीव लोग, हिन्दुस्तान के भाग्य को मिटाने वाले लोग, हमारी छाती पर बैठे हुए हैं। नहीं तो ये बैठ पाते ? इस दृष्टि से देखना।

मैं हर एक ऊँची जाति के आदमी से कहे देता हूँ कि मेहरबानी करके मेरी असली बात को पकड़ना, महज़ शब्द को नहीं पकड़ना। मेरे जितने दोस्त हैं, ज्यादातर ब्राह्मण ही हैं। तो कहाँ छुटकारा पाओगे ? गोवा में जब हम लोगों ने आन्दोलन शुरू किया, वहाँ पर बहुत-से लोग मेरे पास आये। कहने लगे, यह आन्दोलन खराब हो जाएगा। यहाँ पर जितने भी तुम्हारे लोग मिल रहे हैं, सब ब्राह्मण हैं। तो मुझको भी लगा कि हाँ, ये लोग तो आन्दोलन को कुछ पीछे घसीट रहे हैं। तो फिर बेलगाँव या कहीं पर, कोई १००–१५० गोवा के लोग इकट्ठ हुए थे। यह १९४६ का क़िस्सा है। ३ दिन तक बहस हुई और ३ दिन के बाद सबने कहा, अच्छा अब जो तुम कहोगे, वह हम करेंगे। हम जेल भी जाएँगे दुबारा। उन्होंने कहा कमेटी तुम्हीं बना दो। और जब मैं कमेटी बनाने बैठा तब, मैं आप से सच कहता हूँ, मेरे दिमाग़ में बिलकुल कोई बात नहीं थी, बल्कि यह बात थी कि ज़्यादा ब्राह्मण मत आने देना, लेकिन जब मैंने केमेटी बनायी तो १५ आदमियों में १४ ब्राह्मण निकल आये। मैंने खुद अपने हाथ से बनायी। अब मैं सचेत हो गया हूँ। अब मैं खाली यही चाहता हूँ कि केवल बुद्धि के आधार पर अगर लोगों को चुनोगे तो देश का निर्माण नहीं हो सकेगा। केवल बुद्धि के आधार पर तो ये ब्राह्मण, वैश्य आ ही जाएँगे। उस कसौटी को हटाओ। चार-पाँच-छह रखो ब्राह्मण, वैश्य, कायस्थ लेकिन ये जो माली, तेली, चमार हैं उन्हें रखो। मराठा तो आप जानते हो, वह जाति अब ज़रा लटक गयी है। वह कुछ ब्राह्मणों जैसी हो रही है। कुछ थोड़ी-बहुत उधर भी है, और कालान्तर में, हो सकता है कि मराठों के अन्दर ५–१० लाख ऐसे आदमी हो जाएँ जो ब्राह्मण, कायस्थ में शामिल हो जाएँ। उसमें कोई विशेष अन्तर नहीं रहेगा, ऐसा लगता है।

अगर हिन्दुस्तान का दुर्भाग्य है तो और सौभाग्य है तो फिर ये जितनी दबी हुई छोटी जातियाँ हैं, ये भी ऊँचे उठेंगी। यह काम करो। असल में भारत के इतिहास के संबंध में, ये जो बातें थीं, उनकी तरफ़ आप ध्यान देना।

—१९६२, मई; पूना; भाषण।

हिन्द—पाक महासंघ

हिन्द-पाक सम्बन्धों में, लगता है, सब कुछ या कुछ नहीं की हालत आ गयी है। काश्मीर का, या और कोई मसला, अब अपने-आप नहीं हल हो सकता। हमें यह देखने का साहस होना चाहिए कि विभाजन से समस्या हल नहीं हुई है, जिसके लिए कि विभाजन हुआ था। और, इसीलिए, हिन्दुस्तान और पाकिस्तान का फिर से एकीकरण, चाहे जिस रूप में हो, आवश्यक हो गया है। यह कम महत्त्व का सवाल है कि इस पुनर्एकीकरण को महासंघ या राज्यमंडल कहा जाए। बात चलाने के लिए उसे राज्यमंडल कह लीजिए। सभी यह जानते हैं कि राज्यमंडल एक संक्रमणकालीन व्यवस्था है, और वह बढ़ते-बढ़ते महासंघ हो जाता है या रफ़ता-रफ़ता खतम हो जाता है। राज्यमंडल की पृष्ठभूमि में, काश्मीर या बंगाल या उत्तर-पश्चिम सीमा प्रदेश की समस्या सुलझायी जा सकती है। जम्मू और लद्दाख हिन्दुस्तान में रह सकते हैं और पुंछ का इलाक़ा पाकिस्तान को जा सकता है और श्रीनगर घाटी हिन्दुस्तान या पाकिस्तान में जाने या न जाने अथवा अलग अस्तित्व बनाने का फ़ैसला कर सकती है। इसी प्रकार, अगर दोनों बंगाल अपने-अपने वर्तमान समूह से अलग कर दिये जाएँ और संयुक्त बंगाल का अस्तित्व बना लें, तो बंगाल की स्थिति बुनियादी तौर पर सुधर सकती है। प्रत्येक न्यायप्रिय व्यक्ति, उसी तरह, पाखतून इलाक़े का अलग अस्तित्व चाहेगा। खान अबदुल ग़फ़्फ़ार ख़ाँ और शेख अबदुल्ला को लगातार जेल में रखना हिन्दुस्तान और पाकिस्तान दोनों के लिए बड़ी शरम की बात है।

मैं जानता हूँ कि मेरे सुझाव की तफ़सील उन लोगों को भी नापसन्द होगी, जो अन्यथा राज्य मंडल के विचार को स्वीकार कर सकते हैं। ऐसे लोगों से मैं प्रार्थना करूँगा कि वे इस विचार पर अपनी खुद की तफ़सील बतलाते हुए बहस करें। असल चीज़ है, हिन्दुस्तान और पाकिस्तान के पुनर्एकीकरण के लिए प्रयत्न करना। जो विदेश नीति, प्रतिरक्षा, संचार, मुद्रा के मामलों को देखेगा, और उसी तरह नागरिकता के मसले को भी। राज्यमंडल के सभी राज्यों में, हिन्दुस्तान, पाकिस्तान, बंगाल, पाखतूनिस्तान, और श्रीनगर

घाटी—अगर वह अलग बने—में हर एक हिन्दू और मुसलमान को सुरक्षा, स्वतंत्रता और समानता का अनुभव होना चाहिए।

पाकिस्तान के जो लोग इस बात से चिन्तित हों कि उनका सबसे बड़ा हिस्सा उनसे अलग हो जाएगा, उन्हें मैं कहना चाहूँगा कि हिन्दुस्तान का मुख्य औद्योगिक केन्द्र भी तो उससे अलग हो जाएगा। हक़ीक़त में कोई भी अलग नहीं रहेगा, क्योंकि वे सब उस राज्य-मंडल के भाग होंगे। मुझे आशा है कि घाना और आयरलैंड जैसे देश, जो, कहा जाता है, काश्मीर के सवाल में दिलचस्पी ले रहे हैं, इसे महसूस करेंगे कि यहाँ पर भी वैसी ही समस्या है जैसी कि विभक्त जर्मनी में अथवा और कहीं। हालांकि पाकिस्तान और हिन्दु-स्तान की सरकारों और दोनों देशों में संगठित जनमत को मेरे सुझावों के अनुसार विचार करने में बहुत देर लग सकती है, पर मैं ऐसे व्यक्तियों और संगठनों से, जो अतीत के दुष्कर्मों से इतने ज्यादा बंधे हुए नहीं हैं, प्रार्थना करूंगा कि वे उन पर व्यग्रता से विचार करें।

—१९६२, मई २७; हैदराबाद; प्रेस वार्ता।

रूस, अमरीका और चीन

काफ़ी दिनों से मैं सोचता रहा हूँ कि यह दुनिया विशिष्ट अधिकार-सम्पन्न गोरे और पददलित रंगीन आदमी के बीच बँटी हुई है। कभी-कभी इस मत को ग़लत समझा गया कि यह गोरे लोगों के प्रति बदले से भरा बैर का काम है, जिससे दुनिया का कोई भला न होगा। जो हो, यूरोप-अमरीका के साथ मुझे रागात्मक अपनापन महसूस होता रहा है और, वास्तव में, रंगीन लोगों की बनिस्बत, मैंने उनमें अधिक विश्व-बोध पाया है। आमतौर पर रंगीन आदमी यूरोप अमरीका के प्रति रागात्मक बैर रखता है और बौद्धिक रूप से उसका ग़ुलाम होता है। मेरे जैसे आदमी यूरोप-अमरीका से रागात्मक मित्रता रखते हैं, किन्तु उससे बौद्धिक स्वतंत्रता का प्रयास करते हैं। गोरे और रंगीन दोनों ग़ुलामों को हमारी स्थिति समझने में कुछ मुश्किल रही है किन्तु रंगीन आदमी का दृष्टि-कोण, जिसे हम विश्व के निरूपण पर लागू करते हैं और उसकी घटनाएँ सत्य को उघार देती हैं। विशिष्ट-अधिकार-सम्पन्न गोरे और पददलित रंगीन के बीच हमने दीवार नहीं खड़ी की। वह तो है ही। इस दीवार के अस्तित्व को स्वीकार करने में, उसका नाश हमारा लक्ष्य है, इस मतलब से नहीं कि उनके 'रोल' को अदल-बदल दें बल्कि बराबरी हासिल करें। इसलिए, रूसी कम्युनिस्टों के बजाय चीनी कम्युनिस्टों से वाजबी ढंग से कोई ज़्यादा आशा कर सकता था, कम से कम कुछ मामलों में। इन आशाओं के मामलों का क्या हुआ, इसकी खोज की कोशिश करने के पहले मैं उनका उल्लेख कर देना चाहूँगा।

मानव जाति को अनेक मायावी किन्तु अब तक छिपे हुए साम्राज्यवाद को जान लेना चाहिए। चूँकि साम्राज्यवाद कुछ दुर्गन्ध भरा शब्द है, उससे सच्चे अवबोधन के सामने एक दीवार खड़ी हो जाती है, हालाँकि होना नहीं चाहिए। किसी को दोषी ठहराने का विचार नहीं है। मानव क्रियाकलाप के कई मामलों में साम्राज्य-उपनिवेश सम्बन्ध की एक स्थिति बन गयी है। अगर किसी को दोषी ठहराना है, तो इतिहास को। उसके लिए रंगीन लोगों को दोष स्वीकारना चाहिए, अगर ज़्यादा नहीं, तो गोरे लोग जितना ही, क्योंकि वे सुप्त, आलसी या बुद्धू थे जबकि गोरे सक्रिय, पारंगत और क्रूर थे।

रहने की ज़मीन वाला साम्राज्यवाद या अन्तर्राष्ट्रीय ज़मींदारी सबसे पहला मुजरिम है जो खुला फिर रहा है। आबादी का घनत्व कम होने के कारण अमरीका और सोवियत रूस जैसे देशों में अनापशनाप ज़मीन पड़ी है। केवल इतिहास के दुर्दैव ने ही उन्हें ज़मीन के इतने अनापशनाप टुकड़े दे दिये। प्रासंगिक रूप में, क्रूर पाशविकता ऐसे दुर्दैव की सहायक नियोगी रही। साइबीरिया और आस्ट्रेलिया में प्रतिवर्ग मील एक ही आदमी आबाद है। कैनेडा भी इससे अधिक भिन्न नहीं है। कैलिफ़ोर्निया में प्रति वर्ग मील पर १० से कम ही लोग हैं। हम इनकी तुलना हिन्दुस्तान में प्रति वर्ग मील पर ३५० और चीन में लगभग २०० आदमियों से करें। किसी देश के अन्दर ज़मींदार अगर प्रगतिशीलों के प्रति इतने कड़वे हो सकते हैं, होना ही चाहिए, तो फिर इस अन्तर्राष्ट्रीय ज़मींदारी को क्या कहा जाए ? एक न एक दिन, किसी को या शायद समूची मानवता को इतिहास की इन विषम मोड़ों को सीधा करना ही होगा।

बुद्धि वाला साम्राज्यवाद हमारे युग का भी कलंक है, जितना कि और किसी युग का। दिमाग़ के उपनिवेशियों को, यह सही है, बुद्धि-साम्राज्यवादी अपनी ओर से अपना ज्ञान देने की तैयारी में हैं, गो आवश्यक रूप से पूरा कौशल या तात्विक जागृति की स्थिति का ज्ञान नहीं, यहाँ मैं यह बतला दूं कि इसी तरह का बुद्धि-साम्राज्यवाद हिन्दुस्तान के अन्दर भी है। लम्बी परम्परा के द्वारा कुछ जातियाँ बुद्धि-साम्राज्यवादी हो गयी हैं। कोई यह कह सकता है कि जन्म से हज़ारों बरसों के श्रम-विभाजन के कारण क़रीब-क़रीब स्वाभाविक चुनाव हो जाता है। विश्व-मंच पर यह सिलसिला कोई ४०० बरसों से चल रहा है। अगर गोरा बुद्धि-साम्राज्यवादी इस स्थिति की ज़िम्मेदारी से इनकार करे और समान अवसर की जड़ी-बूटी से अपने-आप को सन्तुष्ट कर ले, तो वह भी उतना ही ग़लती पर होगा जितना कि देशी बुद्धि साम्राज्यवादी। अवसर की समानता से बुद्धि-साम्राज्यवाद का अन्याय जारी रहेगा और गहरा ही होगा। बुद्धि के उपनिवेशियों को असमान और विशिष्ट अवसर दे कर ही बुद्धि-साम्राज्यवाद को अन्त किया जा सकता है।

तीसरा छिपा अत्याचार है उत्पादन-साम्राज्यवाद। सभी जानते हैं कि दुनिया की क़रीब १।८ आबादी वाले रूस और अमरीका उसकी आधी दौलत पैदा करते हैं। हिन्दुस्तान में खेत मजूर रोज़ आठ आने या दस अमरीकी सेंट कमाता है, जबकि अमरीका में वैसा ही आदमी क़रीब २५ रुपया या ५ अमरीकी डालर रोज़ कमाता है। रूस और अमरीका प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष ८,०००–१४,००० रुपये के बीच दौलत पैदा करते हैं, जबकि हिन्दुस्तान को ४०० रुपट्टो प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष से संतोष कर लेना पड़ता है। रूस और अमरीका हर साल २५० रुपया प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष के हिसाब से बढ़ रहे हैं, जबकि हिन्दुस्तान ५ रुपये के हिसाब से बढ़ रहा है—अगर बढ़ रहा है तो। यह विचार किसी पर दोष मढ़ने के लिए नहीं रखा जा रहा है, कम से कम अभी। इस उत्पादन-साम्राज्यवाद की

बुनियाद प्राचीन शोषण में पड़ी होगी। अगर आज शोषण है, तो वह कम ज्यादा शोषितों की रजामंदी से है। इसमें किसी पर दोष मढ़ने का इरादा और किसी तरह का इलजाम लगाने की बात नहीं ढूंढ़नी चाहिए। इस स्थिति को स्वीकार करना पड़ेगा। अगर हम, मनुष्य जाति, एक-दूसरे के सदस्य हैं, तो इस स्थिति को गहराई से समझना चाहिए और निःसंदेह यह मानते हुए कि उसका उपचार किया जा सकता है, उपचार करना चाहिए।

शस्त्र-साम्राज्यवाद उपर्युक्त साम्राज्यवादों का या शायद उनके स्रोत का लाजमी उपसिद्धान्त है, और वह इतना छिपा हुआ नहीं है। रूस और अमरीका अणु अस्त्रों के ज्ञान और वास्तविकता को अपनी हद तक ही रखने के लिए, मसविदों में, अक्सर सहमत हुए हैं। कुछ प्रगतिशील अमरीकी और रूसी भौचक्के रह जाएँगे अगर उनसे कहा जाए कि इसका मतलब होता है रंगीन लोगों पर गोरों का शस्त्र-साम्राज्यवाद, लेकिन वह तो है ही। रंगीन लोगों को रोने-धोने या नाक-भौं सिकोड़ने का बेशक अधिकार नहीं है। कोई भी पुराने रूढ हथियारों को जमा करने में वे ज़रूरत से ज़्यादा तत्पर रहते हैं, जबकि वे यूरोप-अमरीका में एकतरफ़ा निःशस्त्रीकरण की आरती उतारते रहते हैं। रंगीन आदमी की बुद्धि ऐसी फटी हुई है। फिर एक बार, यह दोषारोपण अथवा दोषी ठहराने का सवाल है, बल्कि एक स्थिति को समझने का सवाल है जिसमें मानवता के एक अंग के पास हथियारों की लगभग चरमावस्था है।

दामों की लूट वाला साम्राज्यवाद पाँचवाँ साम्राज्यवाद है। उसके साथ ही मैं यह गणना अभी रोक देता हूँ। खेती और कच्चे माल के उत्पादक के लिए दामों का उतार-चढ़ाव और व्यापर की शर्तें लगभग हमेशा प्रतिकूल होती हैं। पिछले दस बरसों में अगर कारखानी माल के दाम १०० प्रतिशत बढ़े हैं, तो कच्चे माल के सिर्फ़ ७४ प्रतिशत ही। दामों की इस लूट के कारण समूचे संसार में अभूतपूर्व अन्याय होता है। सिर्फ़ इसी को ले कर हर साल अरबों की चोरी होती होगी। मैं कह सकता हूँ कि देशों के अन्दर भी कारखानी माल और कच्चे माल के बीच संबंध में इसी तरह की दामों की लूट है। किन्तु बहुत बड़ी हद तक वह अप्रत्यक्ष कराधान के कारण बढ़ जाती है। क़रीब-क़रीब रोज ही विदेशी सहायता और उसमें निहित लोकोपकारिता की बातें सुनाई पड़ती हैं। दान लेने वाले को निःसंदेह अनुतापी और विनयी होना चाहिए, कम से कम मेरी यह राय है, और और कम से कम तब तक जब तक लेने वाला दान का बेजा इस्तेमाल करना सीख जाए और वह, और देने वाला दोनों पूरी तौर पर संसार की स्थिति समझ जाएँ। परन्तु, गोरे और रंगीन लोगों के बीच अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की हर मद में जो दामों की लूट अन्तर्निहित है, उसकी बात कभी सुनाई नहीं पड़ती।

इनमें से हर एक साम्राज्यवाद के विरुद्ध, हिन्दुस्तान और चीन और सभी रंगीन देश मज़बूती से और मिल कर काम कर सकते थे। उन्हें ऐसे गोरे लोगों को जो दुनिया की

इस स्थिति को मानने के लिए तैयार हैं, निःसंदेह अपने साथ लेने का प्रयास करना चाहिए और, वास्तव में, नेतृत्व करने के लिए आमंत्रित करना चाहिए था। लेकिन इसमें से कुछ न होना था। मैं अपनी जवानी के दिनों में कभी-कभी दिवास्वप्न देखा करता था कि चीन और हिन्दुस्तान और न्यायप्रिय गोरे लोग किसी दिन आस्ट्रेलिया, साइबेरिया, कैलिफ़ोर्निया के दरवाज़ों को थपथपाएँगे और खुलवा लेंगे। लेकिन यह थपथपाना और किसी जगह हुआ। न जाने किसी शक्ति से फूट कर, पता नहीं किस चीन ने आसानी का रास्ता पकड़ लिया। उसने हिमालय पर थाप मारी है। आस्ट्रेलिया की तो बात ही छोड़ दें, उसने हांगकांग अथवा मकाऊ पर भी थाप नहीं लगायी। मामूली-से उपक्रम के लिए भी उसके जोड़ों में सकत नहीं रही। उसने वहाँ थाप मारना पसन्द किया जहाँ के लिए उसने सोचा कि उसकी शक्ति काफ़ी होगी। मैं यह राय बनाने के लिए मजबूर हो गया हूँ कि यह घटना मनुष्य जाति को हमेशा दुखी रखेगी।

गद्दीनशीन आदमी अन्याय को खतम करने के लिए चेष्टा नहीं करेगा बल्कि उसकी पहुँच के अन्दर जो लक्ष्य है उनको प्राप्त करना चाहेगा। एक लम्बे अरसे तक रंगीन आदमी की पहुँच छोटी रहेगी, असद् भी। इसीलिए, जो रंगीन आदमी गद्दी पर बैठा है, उससे ज़्यादा उम्मीद नहीं की जा सकती। उद्धार होना चाहिए, अगर कभी हुआ, तो गोरे आदमी द्वारा ही होगा। उसके पास ज़्यादा अपरिमित शक्ति और ज़्यादा सम्भाव्य मेधा है। अगर कभी वह संसार की इस स्थिति को पूरी तौर पर देख सका तो वह उसके बारे में शायद कुछ करे। रंगीन लोग बेशक पूरी तौर पर मैदान के बाहर नहीं हैं। उनमें से ऐसे जो सत्ता के टुकड़ों से भ्रष्ट नहीं किये जा सकते, व्यापक दृष्टि से देख सकते हैं और निस्बतन ज़्यादा जोखम की पहल कर सकते हैं। परन्तु, गोरे और रंगीन लोगों के संघर्ष के सिद्धान्त में मुझे एक और बात जोड़ देनी चाहिए। यह संघर्ष अगर कभी खतम किया जा सकता है, तो गोरों की मेधा और उसी मात्रा में रंगीन लोगों के स्वार्थ से ही खतम किया जा सकता है।

अब कुछ रूस और अमरीका की ओर। इन पाँच साम्राज्यवादों से संबंधित उनके अपने-अपने गुणों के बारे में बहुत-कुछ कहने का मेरा इरादा नहीं है। आज तक दोनों में से किसी ने भी काफ़ी गुण या मेधा नहीं बतलायी। कुछ इधर-उधर की एकाध प्रवृत्ति नजर आ सकती है। लगता है, पश्चिमी यूरोप की बनिस्बत, रूसी लोग इस्पात उद्योग के बारे में अपना कौशल हिन्दुस्तान को सिखलाने में अधिक तत्पर हैं। उन्होंने अपनी पूँजी पर सूद की दर कम लगायी है। उत्पादन-साम्राज्यवाद के सम्बन्ध में इससे उनकी श्रेष्ठता मालूम पड़ती है, हालांकि बहुत ही छोटे तरीक़े पर। दूसरी तरफ़, अमरीकी लोग कैलिफ़ोर्निया में रंगीन लोगों को बसाने के लिए उद्यत रहे, हालांकि सिर्फ़ गिनती के। रूसी विश्वविद्यालयों की बनिस्बत, अमरीकी बिश्वविद्यालयों में साफ़ तौर पर रंगीन विद्यार्थियों की संख्या अधिक है। मैं नहीं कह सकता कि इसका कारण किस हद तक यह है कि रंगीन

सरकारें अपने विद्यार्थियों को अमरीकी वाद की अपेक्षा रूसवाद की हवा में नहीं छोड़ना चाहतीं और कि किस हद तक यह कि रूस वाले कम से कम विदेशी विद्यार्थियों की तकनीकी और वैज्ञानिक कौशल की शिक्षा की अपेक्षा, एक खास प्रकार की सामान्य शिक्षा पर ज़ोर देते हैं। एक देश पर दूसरे देश के आधिपत्य के साम्राज्यवाद के विरुद्ध इधर के वर्षों में, रूसियों का रिकार्ड निःसंदेह अमरीकियों से श्रेष्ठ रहा है।

यहाँ पर उल्लिखित उन पाँचों साम्राज्यवादों के बारे में क्या उपलब्धियों की असमानता रहेगी, और रूस या अमरीका, कौन ज्यादा अच्छा होगा ? मुझे आशा है, और मैं प्रार्थना करता हूँ कि रूस और अमरीका दोनों, जिनके हाथों में, और किसी की अपेक्षा, मानव जाति की उन्नति है, समान रूप से संसार की सम्पूर्ण स्थिति से अवगत हों।

—१९६२, जून १; हैदराबाद।

कोई आक्रमण कर ही दे तो?

यदि कल हम पर कोई आक्रमण कर ही दे तो ? यदि इस प्रश्न का अर्थ है सम्यक् आक्रमण, दिल्ली जीतने के लिए, अथवा वर्तमान राज खतम कर दूसरा राज क़ायम करने के लिए, तब मैं ऐसे प्रश्नों का उत्तर नही देना चाहूँगा, क्योंकि ऐसे प्रश्न में सम्यक् आक्रमण और सीमित आक्रमण में फ़र्क़ किया जाता है। मेरी राय में भारत भूमि के किसी भी अंग पर हमला हो, चाहे वह सिर्फ़ उस छोटे टुकड़े पर ही हो, तो उसे आक्रमण समझना चाहिए। ऐसा आक्रमण भविष्य की कहानी का विषय नहीं है, यह हो चुका है।

सेना विसर्जन करके विराट् असहयोग और सत्याग्रह सबसे अच्छा सामना है। ऐसे सामने के लिए ठोस तरीक़े पर सोचने और काम करने के लिए मैं आज तैयार नहीं हूँ। इसके कई कारण हैं। एक कारण यह भी है कि गांधीवाद की गद्दी ऐसे आत्म प्रवंचकों के हाथ में चली गयी है, जो गांधीवाद को सारी दुनिया में चलाना चाहते हैं, सिर्फ़ हिन्दुस्तान में नहीं। इन आत्म प्रवंचकों की पोल खोलने का एकमात्र रास्ता है, मौजूदा अन्दरूनी अन्याय के खिलाफ़ लड़ते रहना। इसीलिए मुझ जैसे आदमियों को परम्परागत सैनिक सामने की ही बात सोचनी पड़ती है। भारत भूमि के किसी भी अंग पर आक्रमण, कोई भी करे, चाहे हमलावर हमसे कितना ही ज़्यादा मज़बूत हो; उसका सामना होना चाहिए। सेना रखो मत, लेकिन अगर सेना रहती है, तब उसका इस्तेमाल हर आक्रकण के अवसर पर होना चाहिए। अगर हम शुरू में कमज़ोर हैं तो मुक़ाबला करते-करते मज़बूत बन जाएँगे, जैसे रूस और इंगलिस्तान जर्मनी के खिलाफ़।

वास्तव में, इस प्रश्न का असली तात्पर्य शक्ति से है, न केवल सेना की शक्ति, बल्कि खेती कारखाने की शक्ति और वैसे ही मन की शक्ति। सेना की शक्ति एक आंशिक साक्षात्कार है खेती, कारखाने और मन की शक्ति का। जो राष्ट्र अपने मन की और खेती-कारखाने की शक्ति को लगातार बढ़ाते नहीं रहता, उसके लिए भावी आक्रमण की बात सोचना वैसे ही है जैसे बच्चों का तर्क। आजकल चीन वाले आकमण के सम्बन्ध में बच्चों का तर्क चल रहा है। भारत सरकार की नीति का

विरोध करने वाले सिर्फ़ एक ही बात चिल्लाते हैं, मुक़ाबला करो और खोयी ज़मीन को वापस लो। वे इस बात को जनता के सामने नहीं लाते कि जहाँ भारत और चीन १२-१३ वर्ष पहले बराबर की फ़ौलाद पैदा करते थे, आज चीन पैदा कर रहा है सालाना १॥ करोड़ टन या उससे भी ज्यादा और हिन्दुस्तान ३०-४० लाख टन से कम। अपनी ज़मीन के लिए जिस किसी नेता का दिल टूटता होता, चाहे सरकारी चाहे विरोधी, वह हिन्दुस्तान की सरकार को नोच खाने की कोशिश करता, कि उसकी खेती-कारख़ाने की नीति इतनी अपाहिज है। मुक़ाबला सिर्फ़ एक घटना नहीं, बल्कि एक सिलसिला है। अगर सिलसिले में हम अपनी कमज़ोरी की तरफ़ ध्यान नहीं देते तो किसी घटनागत मुक़ाबले का कोई अर्थ नहीं होता।

आक्रमण हम पर हो चुका है। कल इससे भी बड़ा आक्रमण हो सकता है। इस सबका यह इलाज नहीं कि हम सैनिक मुक़ाबले की बात बेमतलब ढंग पर चिल्लाते रहें। आज के संदर्भ में सैनिक मुक़ाबले की बात चिल्लाने वाले उतने ही देशद्रोही हैं जितने १३-१४ वर्ष पहले तिब्बत से सरकने वाले या ७-८ वर्ष पहले लद्दाख से भागने वाले। आज चिल्लाने की ज़रूरत है कि खेती-कारखाने की ताक़त को बढ़ाओ और उन कारणों को ढूंढ़ कर दूर करो जिनसे देश का उद्योगबल कमज़ोर रह जाता है। पुराने हमले का मुक़ाबला ताक़त बढ़ा कर करना चाहिए। ऐसा न हो कि कोई हमें थप्पड़ आज मारे और वह हमसे मज़बूत हो और हम दो-तीन दिन अपना गाल सहलाते रहें और फिर चौथे दिन बिना मजबूत बने और बिना सोचे समझे उस थप्पड़ मारने वाले से जूझ बैठें। यह सही है कि जब उसने हमें थप्पड़ मारा था तभी उससे हमें जूझ बैठना था। अपनी मातृभूमि पर हमला हो जाने पर नपुंसक आदमी ही शक्ति का नाप तौल करता है या गाल सहलाने बैठता है।

घूम फिर कर यह मन की शक्ति का सवाल है। जब हमला हो, फ़ौरन मुक़ाबला हो। अगर देर हो जाती है तो शक्ति अर्जन की बात सोचना चाहिए। फ़ौरन मुक़ाबला करने वाला मन आज हिन्दुस्तान का नहीं है। पिछले १,५०० वर्षों से हिन्दुस्तान मन का नपुंसक बन गया है। एक हल्दी घाटी के साथ पचास बक्सर हैं। अन्दरूनी ज़ालिम से विद्रोह करने का एक भी मामला नहीं हुआ। हम मन के बड़े कमज़ोर हो गये हैं। इस स्थिति के कारण जहाँ जाति प्रथा जैसे कारण हैं वहाँ नक़ली और स्वार्थी उदारवाद भी, जिसे मैं विश्वयारी कहता हूँ, विश्वमैत्री नहीं। विश्वयारी हिन्दुस्तान की ऐसी दुर्गति कर सकती है कि अंग्रेज़ों का आखरी वाइसराय चीन का पहला वाइसराय बनने में विशेष अड़चन महसूस न करे।

—१९६२, जुलाई।

चीनी आक्रमण और हमारे लक्ष्य

"समाजवादी दल की राष्ट्रीय समिति ने हिन्दुस्तान पर चीन के आक्रमण के कारण उस महान् संकट पर विचार किया है कि जिससे हिन्दुस्तान के राज्यत्व का आधार तक हिल सकता है। समिति ने नोट किया है कि चीन का आक्रमण, तेरह वर्ष पूर्व जब उसने तिब्बत पर हमला किया, और कुछ रुक जाने के बाद, फिर ६ बरस पहले हुआ और लद्दाख और अन्य क्षेत्र पर क़ब्ज़ा होने पर रुका, और अब उर्वसीअम् और शेष लद्दाख में हुआ और भयानक सम्भावना है कि चीनी युद्धतंत्र फिर रुकेगा ताकि कुछ अरसे बाद फिर शुरू हो।

देश की प्रतिरक्षा नीति में दिशा के सम्पूर्ण अभाव की ओर ध्यान खींचना चाहती है। हालाँकि कई जगहों पर मुठभेड़ हुई है, अभी तक न युद्ध की अवस्था और न ही लक्ष्यों की घोषणा की गयी, और जनता को कड़ी शब्दावली के घूंट पिलाये जा रहे हैं। सरकार कभी तो कहती है कि वह आखरी आदमी और आखरी बन्दूक़ तक लड़ेगी, जो सर्वथा निरर्थक बात है, और फिर कहती है कि वह आत्म-समर्पण के आधार पर बातचीत नहीं करेगी, जो बात कोई देश थक जाने पर और हार के ऐन मौक़े पर ही बोलता है। समिति सरकार से माँग करती है कि वह इन बेमतलब की या पराजयवादी बातें करके जनता की बुद्धि का अपमान न करे और इस लक्ष्य की साफ़ घोषणा करे कि हिन्दुस्तान की ज़मीन का चप्पा-चप्पा वापस लेने और तिब्बत को मुक्त करने तक अबकी बार वह हथियार नहीं डालेगी और लड़ाई जारी रहेगी।

हथियारों के इस्तेमाल के बारे में समिति कोई खुश नहीं है। आज़ाद हिन्दुस्तान निःशस्त्रीकरण, एक-तरफ़ा निःशस्त्रीकरण तक, के रास्तों की खोज करता और समिति इस बात को पसन्द करती। अगर सरकार अपनी सेनाओं को खतम करने और निःशस्त्र प्रतिरक्षा की सम्भावना पर प्रयोग करने का फ़ैसला करती है, तो अब भी समिति उसका साथ देने में नहीं हिचकेगी। किन्तु समिति दिमाग़ की उस अवस्था की ज़रूर निन्दा करेगी जो सेनाएँ तो रखता है पर उन्हें युद्ध करने लायक़ नहीं रखता। अहिंसा और

शांति की नीति और कमज़ोर हिंसा की नीति के बीच फ़र्क़ की साफ़ तमीज़ होनी चाहिए। समिति चाहती है कि देश की सेनाओं को अच्छी तरह से लैस किया जाए और उनमें स्फूर्ति भरी जाए।

समिति को दुःख है कि ब्रिटिश अफ़सरों और हथियारों और ब्रिटिश कारखानों की मदद लेना बन्द होने पर हिन्दुस्तान की सेनाओं को वह नया आधार, जो मिलना चाहिए था, नहीं मिला। समिति चाहती है कि इस लोकप्रिय आधार का, विशेषतः अफ़सर-सैनिक रिश्तों में, समावेश करने के लिए जो भी सम्भव हो किया जाए। इसके पहले क़दम के रूप में, वह सिफ़ारिश करती है कि किसी भी आयु-समूह के लोगों की अनिवार्य भरती करे, मिसाल के लिए, २५ से २६ का आयु-समूह, जिससे देश की सेनाएँ पेशेवरों की अपेक्षा जनता का रूप ग्रहण करेंगी। समिति माँग करती है कि जहाँ कहीं से भी सरकार को हथियार मिल सकते हैं वह उन्हें खरीदे, और इस बारे में, 'मिग' और दूसरे हवाई जहाज़ों की खरीदी के सम्बन्ध में जो-जो बातें की गयीं और जो काम हुए, उनके बीच ज़बरदस्त अन्तर को समिति नोट करती है।

समाजवादी दल जनता से कहना चाहता है कि अपनी फ़ौजें जो पिट रही हैं, उससे चिन्तित न हो, पर उसमें एक बात है। यह विश्वास रखते हुए कि आखरी लड़ाई का जो नतीजा होता है उस पर कोई युद्ध जीता या हारा है, शुरू की पिटाई और पीछे हटने का तभी मतलब होता है जब लक्ष्य स्पष्ट घोषित हो और जवाब देने की ताक़त बढ़े और उसका इस्तेमाल हो। समिति हैरान है कि सीमान्त चौकियों पर वायुसेना की मदद क्यों नहीं पहुँचायी गयी। इसके साथ ही, समिति चाहती है कि जनता और सेना आश्वस्त रहें कि, हालाँकि फ़िलवक़्त उन्हें पीछे हटना पड़ रहा है और आगे कुछ और समय के लिए उन्हें पीछे हटने के लिए शायद मजबूर होना पड़े, उनका काम तब तक खतम नहीं होगा, जब तक वे अपनी सारी खोयी हुई ज़मीन वापस न ले लें और तिब्बत को स्वतंत्र न करा दें। इस सम्बन्ध में, समिति अपने दल के मत का पुनः उल्लेख कर देना चाहती है कि स्वतंत्र तिब्बत और हिन्दुस्तान के बीच तो मैकमोहन रेखा सीमा रेखा बन सकती है, पर चीन और हिन्दुस्तान के बीच केवल कैलाश-मानसरोवर और पूर्व-वाहिनी ब्रह्मपुत्र ही सीमा हो सकती है।

तिब्बत की आज़ादी के लिए हिन्दुस्तान के वचन और तिब्बत की आर्थिक और सामाजिक व्यवस्था के क्रान्तिकारी निर्माण के लिए तिब्बत के वचन का तसविया करने के लिए यह समिति दलाई लामा और तिब्बती जनता के अन्य प्रतिनिधियों से फ़ौरन बातचीत करने की माँग करती है।

हालाँकि देश की विदेश नीति की भयंकर भूलों जिसके साथ उसकी प्रतिरक्षा नीति का गहरा सम्बन्ध है, या उसके रचनात्मक अंग के अभाव का बखान करना समिति का

इरादा नहीं है, पर वह भविष्य में स्पष्ट लक्ष्यों और अधिक तेजस्वी कर्म की माँग करती है। हिन्द-पाक एकीकरण की, चाहे वह एक ढीले-ढाले राज्यमंडल की शकल में ही क्यों न हो, और नेपाल की जनता और सरकार के साथ ज्यादा पक्की दोस्ती की शुरूआत करनी चाहिए। विदेशी मामलों और प्रतिरक्षा पोर्टफ़ोलियो में भयंकर ग़लतियों को दृष्टिगत रखते हुए, राष्ट्रीय रचनात्मक प्रयत्न को प्रोत्साहन देने के हेतु से समिति उन दोनों मंत्रियों के त्यागपत्र की माँग करती है।

राष्ट्रीय एकता और विवाद समाप्त करने की बेहूदा बातों को समिति ने नोट किया है। यह राष्ट्र जानता है कि उसे एकत्रित और अकेले सामना करना होगा, क्योंकि चीनी हत्यारा इस या उस हिन्दुस्तानी के बीच तमीज नहीं करेगा, और इस धरती पर और किसी देश ने राज्यत्व छिन जाने के कारण उससे अधिक कष्ट नहीं भोगे। अब राष्ट्र को जो जानना है वह यह कि इस चीनी युद्ध राक्षस को कैसे पछाड़ें। विवाद खड़ा करने के डर से इस मामले पर चुप रहने का मतलब होगा राष्ट्र की निष्ठा से विश्वासघात। और, समिति यह पूछना चाहती है कि विवाद कौन खड़ा कर रहा है; वे जो संविधान के स्पष्ट आदेश के विपरीत अंग्रेजी लादना चाहते हैं, या वे जो उसके सार्वजनिक प्रयोग को खतम करने की माँग करते हैं। अगर जनता की समझ में यह आ जाए कि बड़े आदमी और साधारण आदमी के बीच फ़र्क़ कम होगा, कि ज़रूरी चीज़ों के दाम कुछ हितकारी सिद्धान्तों के अनुसार होंगे, कि अंग्रेज़ी हट गयी है, कि विशेष अवसर के द्वारा पिछड़ी जातियों और समूहों का उत्थान होगा, तो जनता अपनी पुरानी सुस्ती को झाड़ कर उठ खड़ी होगी। सर्वोपरि, जनता को यह समझना है कि अपने छोटे भाई तिब्बत, जिसकी स्वाधीनता की उसने उस समय इतनी निर्दयता से हत्या करने दी थी, उसको मुक्त करने का और जिस हिंस्र पशु ने हमारी अपनी ज़मीन पर पंजा मारा है उसे उसकी माँद में खदेड़ देने का व्रत लिया है।"

—१९६२, अक्तूबर २४-२५; पटना; समाजवादी दल की राष्ट्रीय समिति का प्रस्ताव।

अहिंसा और हिंसा

इस खबर से मेरा जी जल कर रह गया, और लाखों का जला होगा, कि संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा में कल हिन्दुस्तान ने चीन की सदस्यता का समर्थन किया। न सिर्फ़ हिन्दुस्तान के दृष्टिकोण से बल्कि विश्व स्वाधीनता और शान्ति के भी दृष्टिकोण से यह सर्वाधिक लज्जास्पद काम है। अगर अन्तर्राष्ट्रीयता का सिद्धान्त चीन की सदस्यता के लिए प्रेरणा देता है, तो तैवान (फ़ारमोसा) को क्या कहिएगा।

हिन्दुस्तान की तटस्थता के बारे में दिक़्क़त यह रही है कि वह अकर्मण्य है और उसने अपने को दो हलके, अतलांतिक और सोवियत, बीच चुनने में सीमित कर लिया है, और नये व रचनात्मक हल ढूंढ़ने की तकलीफ़ गवारा नहीं करता। चीन और तैवान का हल भारत सरकार के सामने दस साल से पड़ा है, हालांकि उसके लिए भी वर्तमान समय उपयुक्त नहीं है, पर चीन की सदस्यता के मामले में चुप रहने या पूरा विरोध करने का समय है।

इस सन्दर्भ में, समाचारों की मरोड़ से सचेत कर दूं। समाजवादी दल ने रक्षामंत्री के त्यागपत्र की मांग नहीं की है। उसने विदेश मंत्री और रक्षामंत्री के त्यागपत्र की मांग की है। इस युद्ध के पहले इतनी गड़बड़ियां हुई हैं कि सरकार हमारे नुक़सानों को छिपाना और तिब्बत के विश्वासघाती तापमान का रोना रोते हुए मौसम या भूप्रदेश की कठिनाइयों को बढ़ा-चढ़ा कर कहना जरूरी समझती है। इसके बावजूद, अगर सरकार इस बात की स्पष्ट घोषणा कर दे कि इस बार जब तक हमारी मातृभूमि का हर इंच हम नहीं ले लेते तब तक हम हथियार नहीं छोड़ेंगे, तो हमारी फ़ौजों की मौजूदा पिटाई और पीछे हटना बरदाश्त किया जा सकता है। चीन की चाल रही है आक्रमण करना, आगे बढ़ना और रुक जाना, और यह उसका तीसरा आक्रमण है, और हिन्दुस्तान की चाल रही है कुछ मुक़ाबला करना और रुक जाना और घोषणा करना कि वह तैयारी कर रहा है।

हिन्दुस्तान को अन्तिम रूप से अपना दिमाग़ बना लेना चाहिए। या तो सरकार अपनी सारी सेना बरख़ास्त कर दे और अहिंसात्मक प्रतिरक्षा की संभावनाओं की तलाश करे। या फिर, अपनी सेनाओं का युद्ध और प्रतिरक्षा का उपयुक्त औज़ार बनाए और, जब उनका इस्तेमाल हो, उनका प्रभावकारी प्रयोग किया जाए। अहिंसा को हिंसा से घालमेल करना परले दरजे की बेवकूफ़ी है। अहिंसा कमज़ोर हिंसा नहीं हुआ करती और और अहिंसा की सम्भव नीति को कमज़ोर हिंसा की वर्तमान नीति से साफ़ अलग करना चाहिए।

हिन्दुस्तान ताक़त से क्या काश्मीर और गोवा पर ही वार करने लायक़ है? ख़रीद कर, उधार ले कर या भीख माँग कर जितने भी हथियार हमें जहाँ कहीं से मिलें, लेना चाहिए। प्रधानमंत्री को वह कविता याद दिलाना चाहता हूँ जिसे वे बहुत पसन्द किया करते थे। अगर हमारे पास सारी दुनिया पड़ी होती और समय होता, तो यह शर्माना, नाज़नीन, गुनाह न होता।

—१९६२, अक्तूबर २७; दिल्ली; प्रेस वक्तव्य।

जम्बूद्वीप, चीनी, विदेश नीति और गाँधीवाद

जनता को फिर कभी भी सांस्कृतिक हिन्दुस्तान को नहीं भुला देना चाहिए, जो कि राजनीतिक हिन्दुस्तान का पूरक है। आज के समय, सांस्कृतिक हिन्दुस्तान के नक़्शे में, उत्तर में ऐसे देश आ जाएँगे जैसे लाओस, थाईदेश, कम्बोज, वियतनाम, बर्मा, मलाया, तिब्बत और, निःसन्देह, नेपाल और भूटान। सांस्कृतिक हिन्दुस्तान नाम शायद पसन्द न किया जाए, इसलिए उसके बदले जम्बूद्वीप का प्रयोग कर सकते हैं। इस क्षेत्र के सांस्कृतिक सम्बन्धों से कोई भी आदमी, जो होश में है, इनकार नहीं कर सकता। कुछ लोग उसके एकजातीय चरित्र के बारे में शक करते हैं और आर्य व मंगोल जैसे बेहूदा और कुपरिभाषित शब्दों के चक्कर में पड़ जाते हैं। जम्बूद्वीप, मंगोल पद के किसी भी अर्थ में, मंगोल नहीं है और न ही एकजातीय है। मंगोल इत्यादि का जातीय और ऐतिहासिक वर्गीकरण ज़्यादा से ज़्यादा भाषा वैज्ञानिक त ंग है और, हर हालत में, हान और मंचू उपजातियाँ, जो चीन की आबादी के आ ार हैं, मंगोल और जम्बूद्वीप से एकजातीयता के रूप में सम्बन्धित नहीं है।

चीनी गणराज्य इतिहास की मनःकल्पित और झूठ, और युद्ध की अस्थिर नियति से जनमी अल्प-कालिक संधियों पर चल रहा है। और, चारों तरफ़ हाथ-पैर फैलाने और जिस किसी को वह मुलायम मांस समझता है, उस पर दाँत लगाने और निगल जाने की उसकी विचित्र रुचि रही है। मानवता का शत्रु, पुनर्बल लाभ किये पशु की तरह कम्युनिस्ट चीन बौरा गया है। क्योमो, मात्सू और फ़ारमोसा में पिटने के बाद, और हांगकांग या मकाओ में ज़ोर दिखलाने की बिलकुल हिम्मत न होने पर निरन्तर वह हिमालय पर, जिसे वह मुलायम समझता है, टूट पड़ा है। लटाविया, एस्टोनिया और लिथुएनिया के बारे में सोवियत रूस के पास तो कुछ कारण थे, पर वह २० बरसों तक साँस रोके रुका रहा। कम्युनिस्ट चीन को जब प्रधानमंत्री ने हिटलरी जर्मनी से भी बुरा बतलाया, तो वे जो बोल रहे हैं उसके सभी अभिप्रेत अर्थों से, शायद अवगत न रहे हों, किन्तु वह उनके अधिक स्पष्ट क्षणों में से था। धुरी राष्ट्रों और मित्रराष्ट्रों के बीच युद्ध तो दो धनी और

शक्तिशाली समूहों के बीच था, जो निःसन्देह खराब था पर न्यायरहित भी न था। हिन्दुस्तान पर चीन का आक्रमण तो एक पिछड़े और उन्नतशील का दूसरे पर क्रूर झपट्टा है, एक विशुद्ध दुष्टता का अध्याय।

जम्बूद्वीप, और चीन के पागल हमलों की जुड़वाँ पृष्ठभूमि में हिन्दुस्तान की जनता और सरकार को इच्छा से महान् शक्ति अर्जित करनी चाहिए। युद्ध कहाँ समाप्त हो, और कितनी प्रबलता से उसे लड़ा जाए, अब ये मामले किसी एक व्यक्ति के मनचाहे निर्णयों पर नहीं छोड़ने चाहिए। ये सब राष्ट्र के निर्णय होने चाहिए। ८ सितम्बर १९६२ की रेखा पर आ जाने से हिन्दुस्तान की १२ या १३ हजार वर्ग मील जमीन चीनियों के हाथ में रह जाएगी, जबकि चीनी प्रस्ताव के अनुसार १३ से १४ हजार वर्ग मील जमीन रह जाएगी जिसमें, बेशक, स्वतंत्र तिब्बत को दान की गयी जमीन शामिल नहीं है। दोनों प्रस्ताव लगभग समान रूप से गंदे हैं और राष्ट्र को इन्हें अस्वीकारना चाहिए, वरना आने वाली पीढ़ियाँ अचरज करेंगी कि आखिर युद्ध किस बात के लिए हुआ था। पीकिंग द्वारा केवल शर्तरहित समर्पण ही इस युद्ध का उचित लक्ष्य हो सकता है, पर वह वर्तमान वास्तविकताओं से मेल नहीं खाता, और उसके सैन्यवादी चरित्र के कारण मैं उसे स्वीकारूँगा नहीं। १९४७ की सीमा के उस पार चीनियों को निकाल बाहर करना या तिब्बत को स्वतंत्र करना ही उसके एकमात्र विकल्प हो सकते हैं, और मैं बाद वाले विकल्प को पसन्द करता हूँ। कोई जडमूर्ख अथवा कोई देशद्रोही ही इस पर जोर देता रहेगा कि तिब्बत चीन का हिस्सा है। एक, भाषा; दूसरे, लिपि; तीसरे, रहन-सहन का ढंग; चौथे, धर्म; पाँचवें, इतिहास, पंचन लामा की प्रार्थना सहित; छठवें, भू समोच्च; सातवें और सर्वोपरि, जनता की इच्छा तिब्बत की स्वतंत्रता और हिन्दुस्तान के साथ भाईचारे के नजदीकी सम्बन्धों की है।

इतना ही महत्त्वपूर्ण और कुछ-कुछ सम्बन्धित यह सवाल है कि इस युद्ध को हिन्दुस्तान कितनी तीव्रता से लड़े। हमेशा के लिए हमारे सिर पर कहीं कलंक का यह टीका न लग जाए कि गोवा और काश्मीर मे कमजोर दुशमनों के विरुद्ध तो हिन्दुस्तान ने अपनी वायुसेना का प्रयोग किया, पर तिब्बत में अथवा ढलानों पर चीनी फ़ौजों के जमाव के विरुद्ध नहीं, हालाँकि उसका मतलब होता जवानों और जमीन का बलिदान। इस तर्क का कि बदला लिया जा सकता है और कि हिन्दुस्तान को अब भी तैयारी करनी चाहिए, मेरे पास जवाब है कि किसी भी तरह चीन उसके मन में जो आए सो करेगा और कि कोई जनतांत्रिक देश युद्ध छिड़ने के पहले की बनिस्बत युद्ध छिड़ने के बाद ही ज्यादा अच्छी तैयारियाँ कर सकता है। हमें यह भी नहीं भूलना चाहिए कि तिब्बती पठार पर मौसम बहुत ही विश्वासघाती होता है, एक घंटे के अन्दर-अन्दर तापमान ४० से ५० डिगरी फ़ारेनहीट गिर जाता है, और जनता विद्रोही है। इस तरह चीनियों की स्थिति, विशेषतः जाड़ों में डाँवाडोल हो जाती है।

सैनिक प्रशिक्षण और फ़ौजी भरती के लिए सारहीन अपीलें करने के बजाय, जनता और सरकार को २५ से २६ अथवा अन्य आयु-समूह की अनिवार्य सेना-भरती करने पर विचार करना चाहिए। चुनिन्दा भरती से पूरित पेशेवर लोगों की सेना की अपेक्षा, युद्ध के समय में, आबादी के सभी तबक़ों से बनायी गयी सेना आवश्यक होती है।

विदेश नीति पर बहस कहीं तटस्थता-समर्थन और तटस्थता-विरोध के कूड़े मे न घुस पड़े। मेरा साफ़ आरोप है कि हिन्दुस्तान की सरकार ने तटस्थता के सिद्धान्त को ठीक से नही समझा है, कि उसने दोनों गुटों की पारी-पारी से नौकरी की ग़लत नीति को ही स्वतंत्र नीति समझ रखा है, कि वह अमरीकी अथवा रूसी प्रस्तावों पर हाँ या ना कह कर ही संतुष्ट होती रही और उसने रचनात्मक ढंग से विचार करने की तकलीफ़ गवारा नहीं की। तेरह बरसो की लम्बी अवधि में हिन्दुस्तान की सरकार की अयोग्यता और सिद्धान्तों का अभाव और अब संयुक्त राष्ट्र संघ मे चीन की सदस्यता के बारे मे कलंक उसका उदाहरण है। विश्वमैत्री के सिद्धान्त के अनुसार और वर्तमान सीमाओं को मान्य करने की नीति के आधार पर और राज्यमडलाय प्रवृत्तियो को आगे बढ़ाते हुए, हिन्दुस्तान की सरकार को पहले से ही माओ-चीन और च्यांग-तैवान दोनो की सदस्यता की बात करनी रखनी चाहिए थी। कोई आक्रान्त देश, जिसमे लज्जा न हो केवल वही अपने आक्रामक की किसी नयी अन्तर्राष्ट्रीय मान्यता का विरोध करने से या कम से कम उस पर चुप रहने से इनकार कर सकता है। आज़ादी के बाद जो मैंने किया उस पर मैं ज़ोर देना चाहता हूँ वह यह कि तटस्थता का अनिवार्य उपसिद्धान्त है ज़्यादा अलग रहना।

इस सरकार ने तो तटस्थता की नीति को बहुत ही ग़लत ढग पर चलाया। उसने अपने कुछ मंत्रियो को जैसे श्री कृष्ण मेनन को सोवियत दृष्टिकोण का और कुछ को जैसे श्री पाटिल को अतलांतिक दृष्टिकोण का इस बेवकूफ़ी की आशा मे प्रतीक बनने दिया कि वे एक दूसरे को सन्तुलित करेंगे और तटस्थता प्राप्त करने में सहायक होंगे। प्राप्त क्या हुआ फूट का घर और वे अलग-अलग दिशाओं मे बँट गये। हर एक आदमी का दिमाग़ ऐसे उत्तेजित होना चाहिए था कि वह आपस मे टकराने वाली अतटस्थता के लिए अखाड़ा बन जाता और जो खींचतान होती उससे उबरने की शक्ति उसमे आ जाती और परिणामतः वह तटस्थता प्राप्त करता। अब भी उस तरह करना चाहिए।

मैं यह साफ़ कर दूँ कि मैं अब भी हथियारों से घृणा करता हू, जिनका आज प्रयोग करने की बात मैं इतनी ज़ोर से कर रहा हूँ। इस बात के पीछे है मुझ जैसे आदमियों की, जो अपने ढंग के गांधीवादी भी हैं, और मान्य गांधीवाद की, सरकारी और संत वाले की भी पिछले १४ वर्षों की निरन्तर प्रभावहीनता। इस साफ़ दृष्टि से कि जो काम है उसे पूरा करना चाहिए। हिंसा की नीति का अहिंसा के सिद्धान्त से कोई सरोकार नहीं है, कोई भी बेसमझी की मिलावट ख़तरनाक होती है, और हिंसा और अहिंसा को तो

और भी ज्यादा। हिंसा की वर्तमान अवस्था खतम होने पर और अगर सच्चे गांधीवादी ऊपर उठें, तो एक नये युग का प्रारम्भ हो सकता है।

—१९६२, नवम्बर १४; कलकत्ता; प्रेस वार्ता।

अफ्रीकी-एशियाई नेताओं के समझौता प्रयास

कुछ अफ्रीकी-एशियाई नेताओं द्वारा हिन्दुस्तान और चीन के बीच समझौते का प्रयास बेमानी है। घाना के डा० एनक्रूमा जैसे लोग अन्तर्राष्ट्रीय राजनयिकता के दलाल हैं। मुझे अफ़सोस है कि श्रीमती भंडारनायके जैसे लोग भी उनके साथ हो रहे हैं।

मैं यह पूछना चाहूँगा कि सुवेज़ के मामले में अगर हिन्दुस्तान मिस्र और इंग्लिस्तान के बीच समझौता कराने की कोशिश करता तो क्या होता। हिन्दुस्तान ऐसे विदेशियों को कभी माफ़ नहीं कर सकता जो चाहते हैं कि हिन्दुस्तान १५ अगस्त १९४७ की हिन्दुस्तान-तिब्बत सीमा से कम पर तसफ़िया कर ले। हिन्दुस्तान को आज़ादी मिली तब जो उसके पास था, वह उसी के पास रहना चाहिए। इसलिए, सितम्बर ८, १९६२ वाली रेखा के हिन्दुस्तान सरकार के प्रस्ताव या ७ नवम्बर, १९६२ वाली रेखा के चीनी प्रस्ताव जैसी भ्रान्त उलझनों से विदेशियों को अलग रहना चाहिए, क्योंकि दोनो कीच-काई और घासपात और अन्धकाराच्छद पेड़ों से भरे जंगल में निर्बोध छोटे बिन्दु हैं

मैं यह जानता हूँ कि अलजीरिया की आज़ादी और वैसे ही अन्य मसलों पर चीन हिन्दुस्तान से ज़्यादा ज़ोर से बोला। यह भी मुमकिन है कि आपसी व्यवहार के तरीक़ों से लोग अक्सर खिन्न हुए हों। मैं अफ्रीकी-एशियाई नेताओं से निवेदन करूँगा कि भारत सरकार ने उन्हें जो भी कष्ट पहुँचाया हो, उसका बदला वे हिन्दुस्तान की जनता से न लें।

मैं डा० छेदीजगन और उनके जैसे और लोगों से निवेदन करूँगा कि वे चीन की दिखावटी क्रान्तिकारी तीक्ष्णता से प्रभावित न हों। उन्हें याद रखना चाहिए कि यहाँ मेरे जैसे लोग भी हैं जो हिन्दुस्तान में क्यूबा लाना चाहते हैं, किन्तु हिन्दुस्तान' क्यूबा जो मजबूर होने पर चीन से लड़ने के लिए लाज़मी तौर पर हर वक़्त तैयार रहे। हमेशा के लिए चीन ने यह सपना तोड़ दिया कि रंगीन लोग और उनकी सरकारें मिल कर गोरों के अत्याचारों और अन्यायों को दूर करने का प्रयत्न कर सकते हैं। चीन ने मंगोलिया या साइबेरिया या हांगकांग या मकाओ या आस्ट्रेलिया या फ़ारमोसा को भी नहीं छेड़ा, क्योंकि

इनमें से कोई भी उसके लिए ज्यादा तगड़ा साबित होता और, इनकी अपेक्षा, उसने अपनी समझ से मुलायम हिमालय पर पंजा मारा।

अफ़सोस के साथ मैं यह स्वीकार करता हूँ कि असमानता और अन्याय के विरुद्ध लड़ाई ऐसी है कि उसमें सभी रंगीन देशों का मेल करना सर्वथा निरर्थक और कपोल-कल्पना है, और कि वह मेल चमड़ी के रंग का लिहाज किये बिना ही बनेगा।

हिन्दुस्तान के भूतपूर्व राष्ट्रपति, डा० राजेन्द्रप्रसाद से मैं आज दोहपर में कोई ग्यारह बरसों बाद मिला। राजेन्द्र बाबू से मैंने अपील की कि वे हिन्दुस्तान-नेपाल के रिश्तों को सुधारने के लिए कुछ करें। मुझे लगता है कि चूँकि राजेन्द्र बाबू की बुद्धि कुछ-कुछ परम्परागत है, इसलिए, राजा महेन्द्र को उन पर भरोसा करने में कठिनाई न होगी, और चूँकि वे जनता के आदमी हैं, इसलिए, वे नेपाली राष्ट्रीय कांग्रेस के प्रति अन्याय नहीं कर सकते। मुझे यह भी लगता है कि इस वक़्त कोई स्थायी तसविया सम्भव न भी हो, पर दोनों के बीच एक तरह की काम चलाऊ व्यवस्था बनाने में राजेन्द्र बाबू बेशक सफल हो सकते हैं। यह काम हिन्दुस्तान की सरकार के बूते के बाहर का है, और डा० राजेन्द्र प्रसाद उसके लिए सबसे उपयुक्त व्यक्ति हैं।

—१९६२, नवम्बर २६; पटना; प्रेस वार्ता।

हिन्द–चीन युद्ध: सात विचार

जल्दी तरक्क़ी हो इसलिए एक नये क़िस्म की योजना आवश्यक है। लड़ाई में हिन्दुस्तान को पीछे हटना पड़ा उसकी सफ़ाई झूठा तर्क दे कर नहीं करनी चाहिए कि आर्थिक तरक़्क़ी पर ज़ोर देने से फ़ौजी तैयारी कमज़ोर रह गयी। आधुनिक टेकनालाजी के कारण आर्थिक और सैनिक शक्ति एक ही सिक्के के दो अंग बन गये हैं। हिन्दुस्तान की सैनिक स्थिति इसलिए कमज़ोर है कि उसकी आर्थिक स्थिति भी कमज़ोर है। इस कमज़ोरी को दूर करने के लिए हिन्दुस्तान को न सिर्फ़ पैदावार के मामलों में अब योजना बनानी है, बल्कि आदमियों के मामलों में भी। कामकाज करने वाले आदमियों को गरमाना चाहिए। यह तभी हो सकता है जब शक्ति को कमज़ोर करने वाली असमानता, जाति, भाषा, फ़ाक़े इत्यादि की समस्याओं को क्रांतिकारी ढंग से हल किया जाए।

हिन्दी में बोलने की कोशिश करके जनरल करियप्पा ने क़ाबिले तारीफ़ काम किया। किन्तु जनरल को नुक़सानदेह उत्तेजना नहीं फैलानी चाहिए थी न सिर्फ़ जनरल करियप्पा बल्कि दूसरे सभी तो ४५ लाख के दल के हैं। राजनीतिक दल जनता के सिर्फ़ औज़ार हैं। कुछ अच्छे हैं और कुछ बुरे। करियप्पा साहब का काम भी इन औज़ारों के बिना नहीं चल सकता। मैं चाहता हूँ कि वे इस स्थिति से अवगत हो जाएँ। अगर वे चाहते हैं कि स्वतंत्र और जनसंघ जैसी पार्टियाँ या सरकार उनका इस्तेमाल करे तो बात अलग है। ज्यादा सम्भावना तो सरकार के द्वारा इस्तेमाल किये जाने की है, क्योंकि सरकार ही अनभिज्ञता और असंगति की स्थिति से हमेशा फ़ायदा उठाती है।

किसी प्रभावशील उपयुक्त संस्था को हर महीने एक दिन मुक़र्रर कर देना चाहिए, जैसे पहला इतवार या एकादशी, जिस दिन जनता एक वक़्त खाना छोड़ दे और जो बचता है उसे युद्धकोष में दे, और एक और दिन बाँध देना चाहिए कि जिस दिन गाँव अथवा मोहल्ले में रहने वाला हर आदमी अपना बिन पका अन्न सामूहिक भोज के लिए किसी आम रसोईघर में ले आए। मैं चाहता हूँ कि ज़रूरी चीज़ें बँधे दामों पर बिकें, और

मैं दुकानदारों को सलाह दूंगा कि माल की कमी पड़ने पर वे दाम बढ़ाने के बजाय दुकान बन्द कर दें, और खरीददारों को सलाह दूंगा कि वे उन चीज़ों के बिना भी अपना काम चलाएं जिनकी क़िल्लत हो।

चीन-हिन्द युद्ध में समाजवादी दल ने जिन विचारों का समावेश करने का प्रयत्न किया है, उन्हें समाजवादियों को अच्छी तरह समझ लेना चाहिए : १. अगस्त १५, १९४७ की सीमा से कम पर, युद्ध-विराम संधि नहीं, २. तिब्बत को आज़ाद किये बिना चैन नहीं, ३. पूरे निश्चय के साथ तिब्बती पठार तक युद्ध, ४. स्वेच्छया भरती के बजाय अनिवार्य भरती, ५. अभी की तरह पारी-पारी से नौकरी और अलग-अलग दिशाओं में जुड़ने के बजाय सच्ची तटस्थता, ६. हिमालय से वचन बद्धता और जम्बूद्वीप पर ध्यान रखना, ७. क्रान्तिकारी वाणी और कर्म के द्वारा जनता के मन को गरमाना।

—१९६२, नवम्बर २८; सुपौल; भाषण से।

युद्ध में अहिंसा की सामर्थ्य

हिन्दुस्तान की महान असफलता का सुबूत है हिन्द-चीन युद्ध पर ब्रिटिश गायना के प्रधान मंत्री डा. छेदी जगन की खामोशी। डा. जगन हिन्दुस्तानी वंशज हैं। और, जिन देशो ने हिन्दुस्तान का समर्थन किया है वे अतलांतिक खेमे के हैं जिन्हें नेता क़िस्म के अधिकांश हिन्दुस्तानियों ने प्रतिक्रियावादी और दायें बाज़ू वाले समझ रखा है। मैं अपने देशवासियो से कहना चाहता हूँ कि वे दायें और बायें के बारे में अपनी धारणाओं पर पुर्नविचार करें। यह भी बहुत साफ़ हो गया है कि आज दुनिया में पृथक् करने वाली रेखा है साम्यवाद और साम्यवाद-विरोध, और हिन्दुस्तान इस रेखा को बदलने में बिलकुल असफल रहा है। युद्ध समाप्त होने पर सोवियत और अतलांतिक, और १५ सालों से आज़ाद हिन्दुस्तान के दलालो और नपुंसकों से भी, हिन्दुस्तान को स्वाधीनता और समानता की एक भिन्न छवि बनाने का महान् प्रयत्न करना चाहिए।

अमरीका को छोड़ कर दुनिया के हर देश में एक चीन दल है। हिन्दुस्तान के लिए चीन हमेशा का खतरा बन गया है और, इसीलिए, हिन्दुस्तान का पूरा दोस्त और मददगार अमरीका है। आदर्श प्रयोजन से रहित दोस्ती किसी मौक़े पर धोखा दे सकती है। समान हितो से ही सच्ची दोस्ती पैदा होती है।

युद्ध के सन्दर्भ में अहिंसा के विचार की सामर्थ्य के बारे में मुझे कहना है कि जो लोग युद्ध का शान्ति से और हिंसा का अहिंसा से मेल करते है वे, अगर और बुरे नहीं तो, उपद्रवी तो हैं ही। चूंकि अब हमलावर फ़ौजों के विरुद्ध अहिंसा पर चलने की सम्भावना नहीं है, हिन्दुस्तान के पास अपनी सैन्यशक्ति को, जितना भी हो सके, सर्वाधिक प्रभावकारी ढंग से संगठित करने के सिवाय कोई चारा नहीं है।

—१९६२, नवम्बर २८; लखनऊ; प्रेस वार्ता।

समझौता नहीं

मैं भारत सरकार से आग्रह करता हूँ कि जब तक चीन हिन्दुस्तान की १९४७ वाली सीमा से पीछे नहीं हट जाता, तब तक वह चीन से कोई भी समझौता न करे। उसका मतलब होगा लद्दाख में १२,००० वर्ग मील ज़मीन को छोड़ देना, जिसे चीन ने अक्साई चिन सड़क बनाते वक़्त ले लिया था।

चीन के मामलों में भारत सरकार शुरू से ही कमज़ोर नीति पर चलती रही है। चीन से केवल दोस्ती बनाये रखने के लिए हिन्दुस्तान ने १२ बरस पहले अपनी ज़मीन के अन्दर चीनियों को अक्साई चिन सड़क बनाने दिया। सरदार के. एम. पन्नीकर ने, जो उस समय चीन में राजदूत थे, सरकार को इस सड़क के निर्माण के बारे में पहले ही सचेत कर दिया था।

ख़राब ढंग की युद्धनीति के कारण ही हिन्दुस्तान को अपमान सहना पड़ा है। चीनियों को अपनी चाल चलने देने के बजाय, हिन्दुस्तान को चीन के कमज़ोर स्थानों पर हमला करना चाहिए था। यह कहना ग़लत है कि हम लड़ाई इसलिए हार गये कि चीन संख्या में हमसे ज्यादा था और उसके पास बेहतर हथियार थे। हिन्दुस्तान को एक जन-सेना खड़ी करनी चाहिए जिसमें एक ख़ास आयु-समूहों के योग्य शरीर वालों की अनिवार्य भरती हो। मेरा सुझाव है कि समान शत्रु का सामना करने के लिए हिन्दुस्तान और पाकिस्तान का राज्यमंडल बनाया जाए। अचरज होता है कि पाकिस्तान के वर्तमान शासकों ने इसकी आवश्यकता को महसूस नहीं किया और, इसके बजाय, हिन्दुस्तान के खिलाफ़ विद्वेषपूर्ण प्रचार करने लगे। परन्तु, मुझे अफ़सोस है कि श्री नेहरू ने पाकिस्तान के साथ प्रस्तावित वार्ता के बारे में परस्पर विरोधी बातें कीं।

—१९६२, दिसम्बर ३; दिल्ली; भाषण से।

अमरीकी सहायता

मेरे भाषण की रपटों में जो असन्तुलन आ गया है उसे दुरुस्त करने की खातिर, कुछ दूसरे अंश प्रकाशित करने के लिए मैं आपको धन्यवाद दूंगा।

हिन्दुस्तान को क्यूबा बनाना मेरा लक्ष्य है, पर ऐसा भारतीय क्यूबा जो कि चीन के खिलाफ़ और ज़रूरत पड़ने पर सोवियत खेमे के भी खिलाफ़, लड़ने को तैयार रहेगा।

मौजूदा लड़ाई के दौरान में सत्याग्रह और हड़तालें बेशक नहीं होनी चाहिए। किन्तु अमीर और ग़रीब के बीच लड़ाई हमेशा रहनी चाहिए, कम से कम दिमाग़ में। सामान्य जनता को गरमाने का यही एकमात्र मार्ग है। साम्यवाद बुरा पंथ है पर उसमें एक अच्छी बात यह है कि वह आम जनता को गरमाता है। चीन के खिलाफ़ लड़ाई में जब मैंने अमरीका से सम्पूर्ण सम्भव सैनिक सहायता की बात की तो, हालांकि मेरे दिमाग़ में आम संधियों की कोई बात नहीं है, मैं इस तथ्य को भी जानता हूँ कि अमरीका का सामूहिक राजनीतिक बरताव कुछ-कुछ अपरिपक्व है। कुछ अमरीकी व्यक्तिगत रूप मे तो दुनिया में सबसे अच्छे हैं। लेकिन अपने सामूहिक रूप में अमरीका प्रत्येक देश को मुक्त उद्यम की छवि मे उतारना चाहता है, और कुछ अमरीकी संगठन हिन्दुस्तान की कुछ राजनीतिक पार्टियो को पैसे की मदद देने की ग़लती कर रहे हैं।

जब मैं यह कहता हूँ कि चीन के विरुद्ध समूचे संसार में अमरीका हमारा सबसे अच्छा दोस्त है, मैं जानता हूँ कि उसकी कुछ अन्य लालसाओं का हमें मुक़ाबला करना पड़ेगा। पहले ही की तरह मैं पूरी मज़बूती के साथ समान-दूरी के सिद्धान्त को मानता हूँ। भारत सरकार पर मेरा आरोप है कि उसने तटस्थता की नीति का ठीक से पालन नहीं किया। मंत्रिमंडल का एक हिस्सा, जैसे श्री मेनन, रूस के साथ और दूसरा, जैसे श्री पाटिल, अमरीका के साथ दोस्ती की फ़िकर में पड़ गया, कम से कम मन में। भविष्य में, हिन्दुस्तान को तटस्थता की सच्ची और रचनात्मक नीति पर चलना चाहिए। यह पूछा जा सकता है कि जिस विशाल सहायता की मैं अमरीका से आशा करता हूँ, उसके बदले में

मैं क्या दे सकता हूँ। अफ्रीका-एशियाई खेमे में सिद्धान्त का टकराव और रंगीन जनता के एक तबक़े की घनिष्ट मित्रता के अतिरिक्त उसे मैं और कुछ नहीं दे सकता। इससे और क्या अच्छा हो सकता है, क्योंकि अब तक उसकी दोस्ती पैसे की रही है।

—१९६२, दिसम्बर ४; दिल्ली; समाचार-पत्र-सम्पादकों को लिखा गया पत्र।

अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में तीन संकल्प

युद्ध का संकल्प, आत्मसमर्पण का संकल्प और शान्ति का संकल्प, इन तीनो में से किसी एक संकल्प से कोई देश अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में प्रेरित होता है। ये संकल्प कभी-कभी परस्पर संयुक्त और कभी-कभी परस्पर विरोधी होते हैं। प्रतिरक्षात्मक युद्ध का संकल्प लाज़मी तौर पर शान्ति के संकल्प से असम्बद्ध नहीं होता। किन्तु हिन्दुस्तान के राजनीतिज्ञ, सेनाएँ और जनता लड़ने के कमज़ोर संकल्प और आत्मसर्पण के संकल्प के बीच झूलते रहे। प्रधानमंत्री का कोलम्बो प्रस्तावों के समर्थन वाला भाषण लड़ाई के कमज़ोर संकल्प से प्रेरित था। इसके बाद बोमदिला के गिरने पर रोने-धोने और, दो या तीन दिन बाद, चीनी गोली बन्दी पर बालिश उल्लास से आत्मसमर्पण का भयानक संकल्प ज़ाहिर होता है। सेला में हिन्दुस्तानी फ़ौजों का रवैया और जितनी आसानी से कठिन पहाड़ी भूप्रदेश पर १५० मील तक चीनी बढ़े चले आये, उसकी सफ़ाई मिलनी चाहिए। युद्ध का संकल्प और शान्ति का संकल्प भी इससे कहीं अधिक कड़े धातु में से बनता है। इस सम्बन्ध मे मैं फ्रांस की मैंजिनाट लाइन वाले मामले की याद दिलाना चाहूँगा।

मैं जानता हूँ कि इससे पहले वाली सदियों में अच्छे आदमियों ने हथियारों को बुरा बतलाया है और इस सदी ने उन्हें बेकार बना दिया है, किन्तु कौन-से हथियार? सिवाय डराने के काम के, अमरीका और रूस के अणु-अस्त्र बेकार हैं। किन्तु रूढिगत हथियारों से अब भी काम लिया जाता है। अणु-अस्त्रों की समाप्ति तब तक निरर्थक है जब तक उनके साथ-साथ या उनके पहले रूढिगत हथियार भी नहीं समाप्त किये जाते। किन्तु तब तक हथियारों को खतम करना सम्भव नहीं है, जब तक अन्याय क़ायम है—चाहे अत्याचारी या गुंडे की अन्याय करने की मरज़ी हो या साधारण आदमी की सत्याग्रह द्वारा अन्याय का मुक़ाबला करने की अनिच्छा हो। इसलिए मुख्य चीज़ है अन्याय का प्रतिकार करना। प्रतिकार और अहिंसा अन्दरूनी मामलों में साथ-साथ चल सकते हैं, पर अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में उनको एक साथ ले चलने का अब तक कोई रास्ता नहीं निकल पाया है। एक बार युद्ध छिड़ जाने के बाद उपचारक अहिंसा जैसी कोई

चीज़ नहीं है। जो सम्भव है शायद वह है निरोधक अहिंसा, ताकि लड़ाई न छिड़े या कि लोग बिना सेनाओं के रहना सीखना शुरू करें।

या तो चीन मुलायम मांस की तलाश में फिरता पागल कुत्ता है जो उसे तैवान में तो मिल नहीं सका पर हिमालय मे उसकी आशा थी। या फिर, हिमालय को निगल कर दिल्ली की गद्दी पर कम्युनिस्टों को बैठाने की वह योजना बना रहा है। उसकी आंशिक वापसी से आभास-सा मिलता है कि फ़िलवक़्त वह हिन्दुस्तानी जनता के संकल्प को नष्ट करके, सरकार और सेना का हौसला पस्त करके सन्तुष्ट हो गया है। अगर जनता भावुक शब्दाडंबर से नहीं, पर समझदारी से सचेत नहीं होती तो कोई आशा नहीं है।

—१९६२, दिसम्बर ६; दिल्ली; भाषण से।

अफ्रीकी-एशियाई नेताओं से

कोलम्बो की अफ्रीकी-एशियाई नेताओं की सभा के सामने, बिना सरकारी अधिकार या सीमा वाला एक नागरिक, एक तर्क प्रस्तुत करना चाहता है जो न्याय-संगत, इतिहास सम्मत और हिन्दुस्तान का सही मामला है। मैकमोहन-लद्दाख रेखाएँ साम्राज्यवादी सीमाएँ हैं; आप चाहें तो उन्हें ग़ैरक़ानूनी कह लें। इस सीमा के बीसियों मील उत्तर स्थित मानसर नामक एक गाँव है जिसकी जनगणना १९४१ तक तिब्बत के साथ नहीं बल्कि हिन्दुस्तान के साथ होती थी। यह कि उसने हिन्दुस्तान को लगान दिया, उसकी मिसाल और भी मिल सकती है, किन्तु सारे संसार में ऐसा कोई और उदाहरण मुझे नहीं मिला कि किसी इलाक़े की आबादी की गणना उसके अपने देश के साथ न हो कर और किसी के साथ होती हो। यह इस बात का पर्याप्त प्रमाण है कि हिन्दुस्तान की सीमा कैलाश-मानसरोवर और सिन्ध-ब्रह्मपुत्र रेखा के उस पार रही और कि किसी हिन्दुस्तानी राजा ने इस सारे इलाक़े को इन्तज़ाम के लिए तिब्बत को दे दिया पर मानसर गाँव को अपने प्रभुत्व के प्रतीक स्वरूप रख छोड़ा। और, किसी देश ने कभी भी ऐसी कथाएँ नहीं बनायीं कि जिसके मुख्य देवी-देवता पार्वती और शंकर परायी धरती पर कैलाशवासी हों।

किन्तु मैं कैलाश-ब्रह्मपुत्र रेखा वाली इस सारी ज़मीन का हिन्दुस्तान के लिए दावा नहीं कर रहा हूँ। तिब्बत के लिए हम हमारी ज़मीन और प्रभुता को त्याग करने को तैयार हैं, बशर्ते कि तिब्बत फिर स्वतंत्र हो जाए। चीनी आक्रमणकारियों और साम्राज्यवादियों के तर्क से मैं अवगत हूँ। वे झट से साम्राज्यवादी इंग्लिस्तान द्वारा तिब्बत पर चीन के अधिकार की मान्यता का उल्लेख कर देंगे, पर वे दूसरी व्यवस्थाओं को साम्राज्यवादी और ग़ैरक़ानूनी कह कर निन्दा करेंगे। किसी भी निष्फल प्रभुत्व को स्वीकार करके उसकी ओर से काम करना, ब्रिटेन का परंपरागत तरीक़ा रहा है। ऐसा उसने अपने राज के शुरू में मंगोल और फिर हिन्दुस्तान के सम्बन्ध में किया और तिब्बत की व्यवस्था के सम्बन्ध में भी। और, आज के ब्रिटेन की आँखें चीन के बढ़ते व्यापार हांगकांग के भविष्य पर लगी हुई हैं। चीन के बारे में पहले भी जैसे कि अब भी ब्रिटेन

को नीतियाँ, और उनसे निकली स्वीकृतियाँ, इसीलिए, कोई खास मूल्य नहीं रखतीं। हिन्दुस्तान पर ब्रिटिश साम्राज्य के बारे में अंग्रेजी-रूसी प्रतिद्वन्द्विता को भी हमें नहीं भुला देना चाहिए। उन्नीसवीं सदी में और उसके बाद चीन और तिब्बत के साथ अंग्रेज़ों ने जो व्यवस्थाएँ कीं वे इसी प्रतिद्वन्द्विता से चालित हुईं।

तिब्बत पर चीन का उचित अधिराजत्व साबित करने वाले पिछले ६ सौ बरस पुराने इधर-उधर के दस्तावेज़ों से मैं अवगत हूँ। किन्तु उसी तरह का एक और दस्तावेज़ है जिससे चीन पर एक समय तिब्बत का अधिराजत्व साबित होता है। इसके अतिरिक्त, पिछले एक हज़ार बरस हिन्दुस्तान की अवनति के रहे हैं और हिमालय व उसके उत्तर के इलाक़ों से सम्बन्धित काफ़ी व्यवस्थाएँ भूगोल और इतिहास और इस इलाक़े के विभिन्न लोगों की आवश्यकताओं को प्रतिबिम्बित नहीं करतीं। विशेषत: तिब्बत के बारे में, भाषा, लिपि, धर्म, रहन-सहन का ढंग, जमीन का समोच्च इतिहास और, सर्वोपरि जन-इच्छा यह बतलाते हैं कि तिब्बत चीन की अपेक्षा हिन्दुस्तान के ज्यादा नज़दीक है और कि, हर हालत में, उसे स्वतंत्र रहना चाहिए।

सभी जानते हैं कि चीन ने नहीं के बराबर प्रमाण के साथ इधर-उधर के नक़्शे पेश किये हैं। सिंकियांग या भीतरी मंगोलिया को हिन्दुस्तान में दिखलाने वाले वैसे ही नक़्शे मैं भी पेश कर सकता हूँ। इस तरह की बेवक़ूफ़ी से हमें बाज़ आना चाहिए। हिन्दुस्तान तिब्बत को अथवा और किसी इलाक़े को हड़पना नहीं चाहता। चीन भी इस उदाहरण पर चले। तिब्बती जनता की इच्छा है कि वह स्वतंत्र रहे और यही तर्क निर्णायक है। अगर हिन्दुस्तान की अवनति का काल समाप्त हो रहा है, तो तिब्बत जैसे हिमालयी देशों की सुरक्षा और कम्बोज जैसे जम्बूद्वीपीय देशों की स्वतंत्रता की चिन्ता के बारे में हिन्दुस्तान के वचन को सभी समझ लें तो अच्छा होगा।

इसलिए, कोलम्बो में मिलने वाले अफ़्रीकी-एशियाई नेताओं और महान् सिंघली जनता और अन्य देशों की जनता से, जिनके कि ये नेता प्रतिनिधि हैं, अपील करूँगा कि वे सीमाओं और समर्पण की बहस के दलदल में न फँसें और न्यायसंगत और स्वतंत्रता-सम्मत ढंग पर काम करें। १५ अगस्त, १९४७ की सीमा के अनुसार ही युद्ध-विराम-संधि का प्रयास होना चाहिए और तिब्बत की स्वतंत्रता के आधार पर ही शान्ति संभव है ऐसा मानना चाहिए। हिन्दुस्तान सरकार की कमज़ोर स्थिति से किसी भी अफ़्रीकी-एशियाई हुकूमत को धोखे में नहीं रहना चाहिए, जैसे कि पहले जार्डन के बारे में वे धोखे में नहीं रहे। चीन की औद्योगिक और सैनिक शक्ति के बारे में एक सम्भव तर्क का मेरे पास जवाब है : फ़िलवक़्त हिन्दुस्तान को गिर जाने दो, और उससे उसके विशिष्ट वर्ग का भ्रष्टाचार और उसकी जनता की मुलायमियत दूर हो सकेगी।

—१९६२, दिसम्बर १०; दिल्ली; प्रेस वक्तव्य।

विचारधारा की बुनियाद

"समाजवादी दल ने प्रयत्न किया है कि हिन्द-चीन युद्ध सम्बन्धी कुछ विचारों को जगाया जाए :

१. १५ अगस्त १९४७ की सीमा रेखा के बिना युद्ध-विराम नहीं।

२. तिब्बत मुक्ति के सिवा शान्ति नहीं।

३. दुविधा के बिना और तिब्बत पठार तक युद्ध चालन।

४. स्वयं प्रेरित फ़ौजी भरती की जगह अनिवार्य सेना भरती।

५. अलग-अलग दिशाओं में आज की अदल-बदल सेवा तथा दोस्ती की विदेश नीति के स्थान पर असली निरपेक्ष नीति।

६. हिमालय के प्रति जिम्मेदारी और जम्बूद्वीप पर सचेत।

७. क्रान्तिकारी उक्ति तथा कृति से लोगों को उत्साहित करना। सम्मेलन पार्टी सदस्यों को आदेश देता है कि वे जनता में इन विचारों को प्रचारित करें ताकि वे इस विषय पर उनकी विचारधारा की बुनियाद बन सकें।"

—१९६२, दिसम्बर २८-३१; भरतपुर; समाजवादी दल के छठवें राष्ट्रीय सम्मेलन का प्रस्ताव।

संकट क़ानून

"इस बात को मानते हुए कि संकट क़ानून तभी चलना चाहिए जब युद्ध हो रहा हो, समाजवादी दल का यह राष्ट्रीय सम्मेलन मांग करता है कि संकट क़ानून खतम किया जाए। जब युद्ध चलता रहता है तब पूरी जनता को, छोटे-बड़े, सभी को, क़रीब-क़रीब बराबर मात्रा में त्याग और तकलीफ़ उठानी पड़ती है और देशभक्ति भी गरमाती है। ऐसी अवस्था में जनता और उसके संगठन अपनी नागरिक आज़ादियों को किसी हद तक छोड़ना नापसन्द नहीं करते। देश-भक्ति की गरमी और तकलीफ़ की बराबरी के बिना संकट कानून असहाय और हानिकर होता है।"

—१९६२, दिसम्बर २८-३१; भरतपुर; समाजवादी दल के छठवें राष्ट्रीय सम्मेलन का प्रस्ताव।

मन गरमाओ

"सम्मेलन की राय में हिन्द-चीन युद्ध ने साबित किया है कि साधारण लोगों और ग़रीबों का मन गरमाये बिना, न आर्थिक ढांचा और उत्पत्ति सुधर सकते हैं और न राज्य की रक्षा हेतु साधन। साधारण लोगों का मन गरमाने के लिए ज़रूरी है कि उनकी आमदनी, भाषा, सम्पत्ति, जाति भेद वग़ैरह के सवाल उठाये जाएँ। क्योंकि सरकार बुनियादी तौर पर बड़े लोगों की प्रतीत होती है, सलिए ग़रीब-अमीर की लड़ाई चलाये बिना साधारण और छोटे लोगों का मन गरमा नहीं सकता।

हिन्द-चीन लड़ाई एक ज़िच की हालत में पहुँच चुकी है। सरकार से इस ज़िच का खुलना मुशकिल है। इसलिए, सम्मेलन जनता को न्योता देता है कि वह राज्य रक्षा के अपने मन को मज़बूत करे, हिन्द-चीन लड़ाई के तत्वों को अच्छी तरह समझे, देश के अर्थ और बल को मज़बूत करने के लिए सरकार की नीतियों को बदलवाए या सरकार बदले।"

—१९६२, दिसम्बर २८-३१; भरतपुर; समाजवादी दल के छठवें राष्ट्रीय सम्मेलन का प्रस्ताव।

हिन्दुस्तान-पाकिस्तान महासंघ

"समाजवादी दल का राष्ट्रीय सम्मेलन हिन्दुस्तान और पाकिस्तान के लोगों से माँग करता है कि वे दोनों देशों के महासंघ के निर्माण पर गम्भीरता से सोचें।

देश के बँटवारे के और कारणों के अलावा, एक तरफ़, कांग्रेस और मुसलिम लीग की, दूसरी तरफ़, हिन्दू और मुसलमान की, छोटी और स्वार्थी बुद्धि थी कि वे अपने घर को बना कर परम स्वतंत्र और बेटोक सुख से रहें। घर अलग होने से अपनी स्वतंत्रता और सुख में कमी हुई। इस अनुभव के बाद सम्भावना बढ़ी है कि लोग दोनों की निरंकुश इच्छाओं को दबा कर संयम के साथ किसी हद तक मिल कर रहना चाहें। उदाहरण के लिए महासंघ के संविधान में फ़िलहाल एक क़लम रह सकती है कि राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री में से एक पाकिस्तान का हो।

महासंघ की पृष्ठभूमि में श्रीनगर घाटी अथवा संयुक्त बंगाल जैसे प्रश्न सुलझाना सम्भव हो जाता है।

सम्मेलन की राय है कि महासंघ का सबसे जरूरी अधिकार एक नागरिक का हो। रण और विदेश नीतियाँ तथा यातायात, महासंघ के सर्वमान्य अधिकार हैं।"

—१९६२, दिसम्बर २८-३१; भरतपुर; समाजवादी दल के छठवें राष्ट्रीय सम्मेलन का प्रस्ताव।

हिमालय बचाओ

हिमालय के जैसी मौसम है, हवा भी है, ठंड भी है, और एक मानी में यह ठीक ही है जब हमलोग हिमालय पर कुछ सोच-विचार करें।

सबसे पहले तो हमें अपने दिमाग़ से यह बात दूर कर देनी चाहिए कि हिमालय किसी तरह का संतरी है, पहरेदार। बहुत से हिन्दुस्तानियों के दिमाग़ में यह बात घुसी हुई है कि वह दुनिया का सबसे ऊँचा पर्वत है, इसलिए वह हमारा पहरेदार है। लेकिन यह विचार हमेशा उसी ज़माने में हिन्दुस्तानियों के मन में आया है जब वे लोग बेखबर रहे हैं। ताक़त के दिनों में हिमालय कभी भी किसी चीज़ का पहरेदार नहीं रहा। दोनों तरफ़ की ताक़त, हिमालय के उस पार के देशों में अगर ताक़त रही है, और हिमालय के इस पार हिन्दुस्तान में अगर ताक़त रही है, तो हिमालय संतरी और पहरेदार की शकल में नहीं सोचा गया। आना-जाना बहुत रहता था। न जाने कितने दर्रे हैं। उनकी गिनती करें तो सैकड़ों की तादाद में निकलें—पूर्व से पश्चिम तक, खैबर से लगा कर उधर वह जोज़िला, नाथूला वग़ैरह, और सिर्फ़ ऐसे दर्रे नहीं कि जिनसे सौ-पचास हज़ार यात्री आते-जाते रहे हों, धर्म वाले या सौदागर, बल्कि लाखों की तायदाद में लोग। पलटन कितनी, आयी-गयी है, इस पर मुझे बताने की ज्यादा जरूरत नहीं, आखिर खैबर दर्रा तो मशहूर है। हिन्दुस्तान न जाने कितनी बार ग़ुलाम हुआ है, इसी हिमालय के रास्ते से ही ताक़त के दिनों में हिन्दुस्तान कितनी बार उस तरफ़ गया है, चाहे हमला करने न गया हो, यह भी किसी से छिपा नहीं है।

आज भी, अगर पूरा हिमालय पार करके न सही लेकिन मध्य हिमालय के कुछ इलाक़ों तक लाखों की तादाद में हिन्दुस्तानी हर साल सफ़र किया करते हैं। हज़ारों की तायदाद में नहीं, लाखों की तादाद में, क्योंकि बद्रीनाथ, निचले हिमालय का हिस्सा नहीं, बल्कि मध्य हिमालय का, गंगोत्री, केदारनाथ आदि। हर साल ४ लाख, ५ लाख, ६ लाख लोग यात्रा करते हैं और चाहे जिस लिए करते हों। बहुतों के मन में धर्म ही रहता है लेकिन जाते तो हैं उतनी ऊँचाई पर चढ़ करके।

जब से पहाड़ों पर चढ़ाई आदमी का एक बड़ा खेल और बड़ा पराक्रम बन चुका है, तब से सरगामाथा की शकल, उसके रास्ते, उसकी गलियाँ—जिस किसी को भी पहाड़ों से दिलचस्पी रही है, उसके लिए एक दूर के शहर की सड़कों से ज़्यादा पहचानी हुई हैं। जो कोई भी चढ़ाई करता था, वह किताबें लिखता था—उत्तरी रास्ता, दक्षिणी रास्ता, फिर बर्फ़ की गलियाँ जिनके अलग-अलग नाम भी हैं।

ऐसी सूरत में, हिमालय के बारे में दिमाग़ में पहला खयाल हमें यह बनाना है कि वह हमारा संतरी नहीं है। वह दुनिया का सबसे ऊँचा पर्वत है जरूर, बर्फ़ भी इसमें बहुत है, इतनी बर्फ़ जितनी और किसी पर्वत में नहीं, लेकिन आने-जाने के रास्ते इसमें बहुत हैं और कभी इस पार से उस पार आना-जाना रुका नहीं। ताक़त के ज़माने में यह आना-जाना अगर इधर वाले लोग ताक़त के रहे तो उधर तक उन्होंने अपना असर जमाया है, और उधर वाले ताक़त के रहे तो इधर तक अपना असर जमाया है। इधर कुछ बरसों से और ख़ास तौर से पिछले ३ महीनों में जो कुछ हमें भुगतना पड़ा है, उसका मैं समझता हूँ, सबसे बड़ा सबब है दिमाग़ की तैयारी की कमी। दिमाग़ के अन्दर इतिहास के बारे में ग़लत खयाल हैं—यही ग़लत खयाल कि वह तो हिमालय है, इतना ऊँचा है, वहाँ क्या हो सकता है, वह तो हमारा संतरी और पहरेदार है और वहाँ के लोग तो एक खास क़िस्म के लोग हैं, वे अगर अपने पुराने ढंग से रहते हैं, न इधर से न उधर से उन्हें बिगाड़ा जाता है न बदलने की कोशिश की जाती है, तो कोई ख़ास घबड़ाने वग़ैरह की बात नहीं।

अब हिमालय गरमा गया है। यह बात मैं आज ही सिर्फ़ नहीं कह रहा हूँ, आज से कोई १३ बरस पहले, जुमला ही मेरा यह था कि दुनिया के सबसे ठंडे पर्वत भी गरमा रहे हैं, और सिर्फ़ इसी मतलब में नहीं कि हवाई-जहाज़ों ने उन ऊँचाइयों को खतम-सा कर डाला या लड़ाई के नये-नये सामान ने सारी शकल बदल दी, बल्कि इस मानी में भी कि अब दुनिया में जो-जो विचारधाराएँ चल रही हैं, हिन्दुस्तान और दूसरे देशों में, उनको देखते हुए हिमालय में बसने वाले लोग अब हमेशा एक पुरानी सभ्यता, पुराने तरीक़े, नाच-गाने, कपड़े-लत्ते में फँसे नहीं रह सकते बल्कि उनको नयी दुनिया वाला बनना है। यह बात बिलकुल साफ़ हो चली थी, जिस किसी के आँख थी उसके लिए, कि हिमालय में बसने वाले लोग अब एक पुराने ज़माने के तरीक़ों में फाँस कर नहीं रखे जा सकते, रखे नहीं रहेंगे। उनको या तो हिन्दुस्तान नये ज़माने में लाएगा और अगर वह लाने से इन्कार करता है, तो कोई पराया आ कर उनको नये ज़माने में लाएगा। यह बात आज नहीं, १३-१४ बरस से बिलकुल साफ़ थी हर एक आदमी के लिए, और वह इसलिए ख़ास तौर से हिमालय के उस पार जो देश हैं, वह ताक़तवर बनने की सीढ़ियों पर चल पड़ा है जैसे हम हिन्दुस्तानी चल पड़े। कितना हमारी दोनों की ताक़त में फ़र्क़ रहा, इस बात को अभी छोड़ दें। लेकिन जो युग अब शुरू हुआ है, वह हिन्दुस्तान और चीन दोनों की कमज़ोरी के युग का ख़ात्मा है और शुरूआत है नये युग की। जब चीन ताक़त के

रास्ते पर चल पड़ा, इधर हिन्दुस्तान भी चल पड़ा, तब यह बात बिलकुल तय हो चली थी कि या तो हिन्दुस्तान अपने हिमालय को ठीक-ठीक रखेगा वरना ताक़तवर चीन उस पर किसी न किसी रूप में क़ब्ज़ा करने की कोशिश करेगा,—चाहे राजकीय क़ब्ज़ा, चाहे वहाँ अपनी सलतनतें बनाना, चाहे उस इलाक़े के राज्यों को अपने असर में लाना, चाहे वहाँ के लोगों को क्रांतिकारी बना कर अपने दोस्त बनाना व बदलना।

पहले ज़माने में राष्ट्रीय फैलाव के कारण हिमालय के कुछ इलाक़े इधर और उधर हुआ करते थे। इस बार चीन जिस ताक़त के रास्ते पर चला, वह सिर्फ़ राष्ट्रीय ताक़त नहीं थी, बल्कि उसके साथ दुनिया के इनक़लाब का सोचने का एक तरीक़ा भी उससे जुड़ा हुआ था। चीन के अन्दर सिर्फ़ एक ही गरमी नहीं है कि अपने मुल्क की सीमाओं को बढ़ाना, वह तो है ही, राष्ट्रीय फैलाव, राष्ट्रीय ताक़त, राष्ट्रीय घमंड की। चीन के अन्दर अब एक दूसरी गरमी भी आ गयी है और वह यह कि दुनिया भर के लोगों को पूँजीवादी, साम्राज्यवादी, दक़ियानूसी पुराने ज़माने से हटा कर नये ज़माने में लाना, दुनिया में क्रांति फैलाना और ख़ास तौर से अपने आस-पास-पड़ोस के लोगों में क्रान्ति फैलाना। चीन जैसे देश के लिए यह शर्म की बात रहती है अगर उसके आस-पास-पड़ोस के लोग किसी पुराने ज़माने में फँसे रहते हैं। थोड़ी देर के लिए मान लो चीन ईमानदार है। किसी हद तक आख़िर ईमानदार तो वह होगा ही, कम से कम अपने से सही। ख़ुद तो वह ऐसा सोचेगा ही कि आस-पास-पड़ोस के लोगों को इनक़लाबी बनाओ, उनको अच्छा बनाओ, नये ज़माने में लाओ, उनके खेती-कारख़ाने सुधारो, उनके कपड़े-लत्ते, पढ़ाई-लिखाई सुधारो। तो चीन में अब दो गरमियाँ इकट्ठी हो गयी हैं। एक तरफ़ तो राष्ट्रीय फैलाव और दूसरी तरफ़, विश्वशान्ति के नाम पर दुनिया के लोगों की, ख़ास तौर से अपने पड़ोसी यानी हिमालय को सुधारने की तबियत। जब ये दोनों चीज़ें जुड़ गयी हैं—और यह साफ़ था, सन् १९४८ से साफ़ था—तब किसी भी हिन्दुस्तानी के लिए, चाहे वह कितना भी नासमझ हो, चाहे उसने इतिहास बिलकुल न पढ़ा हो, यह नामुमकिन हो गया था सोचना कि चीन हिन्दुस्तान का हमेशा दोस्त बना रहेगा या चीन हिन्दुस्तान या दुनिया के और किसी इलाक़े को रास्ता दिखाता रहेगा या चीन के साथ ठन नहीं सकती। लेकिन फिर भी लोगों ने ऐसा सोचा और ग़लती हुई।

सबसे पहले हिमालय के बारे में मुझे यह अर्ज़ कर देना है कि हिमालय में आने-जाने के रास्ते हमेशा रहे हैं। जब कभी ताक़त हिन्दुस्तान की रही या उस तरफ़ के मुल्क की, आना-जाना वास्तव में चला है। यों भी, बिना ताक़त के ज़माने में मध्य हिमालय में लाखों की तादाद में लोग आते रहे हैं और इस वक़्त हिमालय के उस पार एक ऐसा देश गरमाया है कि जिसे दो तरह की चाह ने—एक तो राष्ट्रीय फैलाव की चाह और दूसरे दुनिया के सुधार की चाह—क़रीब क़रीब मतवाला बना दिया; देश बड़ा बनाओ, दुनिया

सुधारो। अगर कहीं ये दोनों आगें एक साथ सुलग गयीं तो फिर उसके बाद आप समझ सकते हो क्या किसी देश का हाल होगा, और वही हो रहा है चीन में।

इस हिमालय को हमें ज़रा और अच्छी तरह जानना चाहिए। कभी भी हिन्दुस्तान की पुरानी कविता में या साहित्य में, इतिहास तो ख़ैर साफ़ ही है, इस वक़्त जो पुरानी बातों को ज्यादा जानते हैं, उनके दिमाग़ में हिमालय की संतरी वाली शकल नहीं रही, बल्कि रही है एक तपस्या की भूमि की शकल या देवालय की। बरफ़ का घर और देवों का घर, यह क़रीब-क़रीब एक मतलब के शब्द रहे हैं—हिमालय, देवालय। हिन्दुओं के जितने भी छह, सात या आठ बड़े देवता होंगे, उनमें से कम से कम दो—छोटे देवताओं का मैं इस वक़्त ज़िक्र नहीं करता, वे इधर-उधर भी बसते हैं—तो हिमालय में ही रहते हैं। हिमालय की लड़की है उनमें से एक। उन दोनों के साथ-साथ वक़्त-वक़्त पर जो और दो बड़े देवता हैं, या तीन हैं, वे भी किसी न किसी शकल में वहाँ बसा दिये गये हैं। देवताओं का या तपस्या का यह इलाक़ा कितना रहा है। यह थोड़ा बहुत मैं सामने लाने की कोशिश करूँगा। पहले ज़रा एक मोटी निगाह इस हिमालय पर मैं दौड़ा दूं। एक तो निचला हिमालय है। वह क़रीब-क़रीब सारा हिन्दुस्तान का राजकीय हिस्सा है। बिलकुल ऐसा आँकड़ा तो मैं नहीं दे सकता कि जो सैकड़ों में सही हो, लेकिन लाखों में ज़रूर सही है। इस भारतीय हिमालय की आबादी—या थोड़ा-सा इसमें निचले हिमालय का हिस्सा आ जाए क्योंकि कई दफ़ा बड़ा मुशकिल हो जाता है पाकिस्तान-हिन्दुस्तान को अलग-अलग करना—मोटी तौर से आप क़रीब १ करोड़ आदमी समझो। दूसरा, जो भाई हिमालय है, मध्य हिमालय का ज़्यादा बड़ा हिस्सा और ऊपर वाले हिमालय का और भी आगे जा कर, उसकी आबादी भी मोटे तौर से क़रीब २ करोड़ आप समझो। पूरे हिमालय में आख़िर आदमी तो बसते ही हैं। बिलकुल हिमालय की जो तराई है, वहाँ का तो कहना ही क्या। उसको मैं छोड़े देता हूँ—तराई वाला हिस्सा, मैदान वाला हिस्सा। मैं तो सिर्फ़ हिमालय की पहाड़ी जहाँ शुरू होती है, उस आबादी के आँकड़ों को बता रहा हूँ। मोटे तौर से हिन्दुस्तानी हिमालय १ करोड़, और भाई हिमालय जैसे नेपाल है, तिब्बत है, उनकी जनसंख्या २ करोड़ है।

अब हिन्दुस्तानी हिमालय के अलग-अलग हिस्सों को थोड़ा-सा हम जान लें। सबसे पहले तो मैं उस इलाक़े की बातें बताऊँगा जहाँ पिछले २-३ महीनों में ख़ास तौर से लड़ाई चली और जहाँ हिन्दुस्तान की ताक़त ने बहुत बुरी तरह से ठोकर खायी। वह है उर्वसीअम् जिसे आमतौर से सरकार की तरफ़ से और उनकी नक़ल करते हुए सब अख़बार वालों की तरफ़ से 'नेफ़ा' कहा जाता है। हिन्दुस्तानी हिमालय का यह हिस्सा क़रीब-क़रीब ३५ हज़ार वर्ग मील का है और इसकी आबादी क़रीब ६ लाख है। वहाँ कई तरह के लोग हैं। जातियों और भाषा के हिसाब से उनके नाम अलग-अलग हैं। अभोर, दाफला, मिशमी, मोनपा जैसी २०-२२ जातियाँ हैं। इस हिमालय के बारे में

एक खास बात हमें याद रखनी है कि वहाँ आबादी घनी नहीं है। जैसे उर्वसीअम् में ३५ हजार वर्ग मील पर ६ लाख आदमी हैं, यानी एक वर्ग मील पर कोई २० से भी कम आदमी पड़े, समझो १६-१७ आदमी। इतनी कम आबादी इसलिए है कि वहाँ रहने की इतनी सुविधाएँ नहीं हैं। ऐसे इलाक़ों में, ऊँचाई-निचाई का फ़र्क़, बरफ़ के कारण अलगाव, बोलियाँ बहुत क़िस्म की हैं कि इकट्ठा नहीं हो पाते। इसीलिए, वहाँ राष्ट्रीय गठन होना, इतना आसान नहीं रहा है जितना कि मैदानी इलाक़ों में। यह बात सिर्फ़ उर्वसीअम् में ही नहीं, बल्कि सारे हिमालय में—भारतीय हिमालय और भाई हिमालय में—यह कमी रही है। नये ज़माने की कसौटी पर वहाँ के लोग बँटे हुए हैं, इलाक़े के हिसाब से बँटे हुए हैं, बोली के हिसाब से, राज्य के गठन के हिसाब से। और, अगर हिन्दुस्तानी राज ने अपनी आँखों को ज़रा भी खोल कर रखा होता तो इस बात को अच्छी तरह जान लिया होता कि यह इलाक़ा बहुत ज़्यादा बँटा हुआ रहा है और अगर इसे नये ज़माने के लायक़ बनाना है तो फिर कोई न कोई दवा इस्तेमाल करनी पड़ेगी कि जिससे यह इलाक़ा गुँथे, बँधे, एक धागे में समेटा जा सके। क्योंकि नये ज़माने की ताक़त तभी आया करती है जब कोई इलाक़ा इकट्ठा होता है। इतने छोटे इलाक़े रह जाते हैं जैसे मिशमी, जिनकी तायदाद क़रीब ४० हज़ार या ५० हज़ार है। उसी तरह से दाफला, कुछ हज़ारों में ही रह जाते हैं। खाली अभोर हैं, जो १ लाख के आसपास पहुँचते होंगे।

अब, उस उर्वसीअम् को किस तरह से हिन्दुस्तान की सरकार ने रखा? मैं तो बहुत पहले ही कह चुका था कि अगर उर्वसीअम् को समाज व राजकाज की निगाह से बाक़ी हिन्दुस्तान से अलग रखोगे, अगर उर्वसीअम् की सीमा को बाक़ी हिन्दुस्तान से बंद करके रखोगे तो जो तिब्बत के साथ उसकी सीमा है, उस पर से चीनी सिपाही पार करके अन्दर आएगा। या तो दक्षिण की सीमा खोलो या उत्तर की सीमा खोलो, दोनों में से एक सीमा खुल करके रहेगी। आज बहस इस पर बहुत चल रही है, लेकिन मोटी बात कोई नहीं पकड़ रहा है। खाली सरकार की बात पर कतर ब्योंत चल रही है कि कितनी सही है, कितनी ग़लत है। उर्वसीअम् सीमा को हिन्दुस्तान के साथ बंद करके रखते हो या उर्वसीअम् की तिब्बत के साथ सीमा खोलते हो, यह बड़ी बहस अभी तक नहीं चल पायी। मैं तो आपसे अर्ज़ करूँगा, चाहे वह १-२ दिन की ही गिरफ़तारी रही हो, इसको ज़रूर ध्यान में रखना कि उर्वसीअम् के कई शहरों में, तेजो जैसे में, महात्मा गाँधी और शिव पार्वती की तसवीर रखने वाले लोगों को इस सरकार ने गिरफ़तार किया है और जेलों में रखा है, क्योंकि उसके दिमाग़ में उर्वसीअम् के बारे में एक ख़याल धँसा हुआ था कि इसको बाक़ी हिन्दुस्तान से अलग रखो, इसके लोगों के रहने-सहने का ढंग अपना अलग है, कपड़ा अलग है, नाचना अलग है। मैं तो यहाँ तक कहूँगा कि उन लोगों की अहमियत हिन्दुस्तान के लिए इतनी ही समझी गयी कि उन्हें २६ जनवरी को या १५ अगस्त को यहाँ नाचने की टोलियों में ला कर दिखाया जाए कि भई हमारे उर्वसीअम् में

कैसे-कैसे क़बायली बसते हैं और किस-किस ढंग के हैं, ज़रा उनको देख तो लो। राजधानी की तफ़रीह के लिए, नाचने गाने वालों की टोलियाँ बना करके ज़रूर उर्वसीअम् को इस्तेमाल किया गया पर इसके अलावा उसका हिन्दुस्तान से कोई भी सम्बन्ध बढ़ाया नहीं गया।

उर्वसीअम् के बारे में आप अगर और भी सोच-विचार करो तो चीनियों ने काफ़ी लोगों पर अपने डोरे डाले। न सिर्फ़ छुपा-छुपा करके, वहाँ के चुने-चुने लोग चीन ले जाये गये, बल्कि, मुझे जो बताया गया है वह यह कि माओ-त्से-तुंग साहब—या तो वे बड़ी सादगी से रहते हैं या कम से कम जब उनसे ऐसे लोगों को मिलाया जाता है तब उनकी सादगी दिखाई पड़ती है—को दिखा-दिखा कर बताया गया कि देखो यह चीन का राजा है, कितनी सादगी से रहता है, और तुम जिस हिन्दुस्तान के साथ मिले हुए हो, वहाँ के राजा कितनी फ़िज़ूल-खर्ची के साथ रहते हैं। यह सारा सिलसिला पिछले १३ साल से चल रहा था।

हिन्दुस्तान के कौन आदमी उर्वसीअम् में जाते थे ? एक तो सरकारी नौकर; दूसरे, व्यापारी; तीसरे, पादरी। कोई एकाएक आना-जाना रुक गया था बिलकुल, यह बात सही नहीं है। ये तीनों आते-जाते रहते थे। इनके लिए दरवाज़े खुले थे। दरवाज़ा बंद किनके लिए था ? बाक़ी हिन्दुस्तान के नुमाइन्दा बन कर सचमुच उर्वसीअम् के लोगों के दिमाग़ों को जो बदल सकते थे और उन्हें एक धागे में बाँध सकते थे, उनके लिए बंद था और वह क्यों बंद रहा ? आप अचरज करते होंगे कि ऐसी बेवक़ूफ़ी का काम कैसे किया इस दिल्ली सरकार ने। मैं नहीं समझता कि वह बेवक़ूफ़ी भी सोच कर किया करती है। आम तौर से बेवक़ूफ़ी उससे हो जाया करती है। अगर कोई पुरानी चीज़ है तो उसे वे चलाते रहते हैं—पुराने क़ायदे-क़ानून, पुरानी परम्परा। अंग्रेज़ों ने उस दरवाज़े को बंद कर रखा था और वह क़ानून बनी हुई थी, इसलिए वह चालू रह गयी। फिर इसके बाद, कई तरह के तर्क सोचे गये कि हमको उर्वसीअम् में एक अलग दर्शन चलाना है, वहाँ के लोगों को सभ्यता और वहाँ के निज़ाम की रखवाली करनी है। ये सब बाद में सोचा गया। लेकिन दरअसल पिछले ७०-८०-९० बरस से अंग्रेज़ों ने इस उर्वसीअम् वाले इलाक़े, क़बायलियों के इलाक़े को बाक़ी हिन्दुस्तान के लिए बंद कर रखा था। उसका क्या सबब था ? साफ़ था कि वे डरते थे। हिन्दुस्तान के लोग आज़ादी के लिए लड़ रहे हैं, उनमें कई एक आतंकवादी हैं, बंदूक़, पिस्तौल से भी लड़ते हैं, उनमें से कई भाग जाया करते हैं। कुछ आराकान की तरफ़ भागे। कई बार लोगों ने कोशिश की थी कि बर्मा वग़ैरह से भी सम्बन्ध जोड़ें या जब लड़ाई चलती थी तो जापान या जर्मनी से। उस इलाक़े में क़बायली लोग थे, पहाड़ी थे; घने जंगल जहाँ थे, वहाँ अगर हिन्दुस्तान के आतंकवादी, हथियारों से लड़ाई लड़ने वाले, आज़ादी के लिए पहुँच जाते, तो अंग्रेज़ों को डर था कि वहाँ से वे अपना सारा कामकाज चलाएँगे, उसे अपना पड़ाव बना लेंगे, वहाँ,

हो सकता है, आरज़ी हुकूमत वग़ैरह बना लेते। वह बात तो समझ में आती है, एक साम्राज्यशाही विदेशी हुकूमत के लिए, लेकिन जब एक देशी हुकूमत आ जाती है तो उसे इन सब पुरानी चालों को समझ करके बदल देना चाहिए। ऐसा इन्होंने किया नहीं। या तो इन्हें फ़ुरसत नहीं थी, या आम तौर से जैसा किया है, अंग्रेज़ों की हर बात की नक़ल की, इसलिए इसमें भी नक़ल कर डाली। ग़लती हो गयी तो उसके लिए ५० तरह के दर्शन बताने लग गये, जैसा कि आम तौर से हिन्दुस्तानियों का तरीक़ा हुआ करता है कि जब कोई ग़लती हो जाए तो कोई बड़े भारी उसूल की बात कह डालें। ये कहते हैं कि उर्वसीअम् की ज़मीनों को पहाड़ियों के पास सुरक्षित रखने के लिए, जिसमें कि मैदान के व्यापारी या मैदान के पैसे वाले लोग वहाँ आ कर बस न जाएँ, ज़मीनें ख़रीद न लें, इसलिए हमने सीमा बंद कर रखी थी। यह बात बिलकुल ग़लत है। उसके लिए दूसरे क़ानून बन सकते थे; ज़मीन के क़ानून कि किसी मैदानी को ज़मीन ख़रीदने का हक़ न रहेगा। अगर और इसी तरह की कुछ ज़रूरतें थीं तो उसके क़ानून बन सकते थे। लेकिन हिन्दुस्तानी के लिए अपनी मातृभूमि की ३५ हज़ार वर्ग मील ज़मीन को बन्द रखना यह किसी नीति के हिसाब से, किसी क़ानून के हिसाब से, किसी लोक कल्याण के हिसाब से, सही नहीं साबित किया जा सकता। यह तो बहुत ग़लत काम हुआ, जिसका नतीजा हम भुगत रहे हैं। और बातों को हम छोड़ भी दें, तो इस इलाक़े में कितने जासूस चीनियों को मिले। सिर्फ़ एक बात पर थोड़ा विचार करें कि सेला से सेलादर्रा, बमडीला, वालोंग वग़ैरह, चीनियों ने ५ दिन में सारा रास्ता तय किया और क़रीब १५० मील का। अगर कोई तफ़रीह के लिए पहाड़ों में घूमने जाए और सोचे कि हम तेज़ जाएँगे, तो भी, रोज़ ३० मील की रफ़तार से ज़्यादा वह नहीं बढ़ पाएगा। और यहाँ लड़ाई, कम से कम कहते हैं लड़ाई थी जिसके बीच १५० मील का फ़ासला चीनी पलटन ने ५ दिन में तय किया। लोगों को भुलावा देने के लिए इसके इधर-उधर के सबब बता दिये जाएँगे और तहक़ीक़ात वग़ैरह भी बैठा दी जाएगी, और उसकी कुछ रपटें वग़ैरह भी निकल जाएँगी। यह सभी जानते ही हैं कि जितनी तहक़ीक़ात बैठेगी, नित नये-नये सबब बना करके लोगों को इतना चक्मे में डाल दिया जाएगा कि कोई सबब रह ही नहीं जाएगा, जैसा कि पहले तहक़ीक़ातों के साथ हुआ है। कौन दोषी है? पटेल साहब दोषी हैं, कृष्णमाचारी साहब दोषी हैं या और कोई साहब दोषी हैं; एक के बाद एक नयी रपट आएगी, नया दोषी मिलता जाएगा और आखिर में कोई भी दोषी नहीं रह जाएगा। इसलिए, सिर्फ़ तहक़ीक़ात करने से काम नहीं चलेगा। यह बात दिमाग़ में रखनी होगी कि ५ दिन में १५० मील का फ़ासला चढ़ाई करने वाली पलटन ने तय किया है। मैं यह हिन्दुस्तान के किसी एक ख़ास संगठन के लिए नहीं कहूँगा, सेना के लिए नहीं, सरकार के लिए नहीं या और राजनीतिक पार्टियों के लिए नहीं बल्कि हम सब हिन्दुस्तानियों के लिए कितने शर्म की बात है। इसका अंदाज़ा नहीं लगाया जा सकता कि चढ़ाई करने वाली विदेशी

पलटन हमारे देश में ३० मील की रफ़्तार से रोज़ बढ़ जाए इससे ज़्यादा शर्म की और ग्लानि की बात और कोई हो नहीं सकती। यह है उर्वसीअम्, हिमालय का एक हिस्सा।

हाँ, इतना मैं आपको बता दूं कि इसमें साल में २-३ दिन के लिए साधुओं के लिए भी यह इलाक़ा खुला छोड़ दिया जाता है—खोल दिया जाता है, क्योंकि वहाँ एक परशुराम कुण्ड है, जो पुराने परशुराम से ताल्लुक़ रखता है। और एक शहर है जिसका नाम है रुक्मणी नगर। वह शहर तो नहीं है, मामूली-सी बस्ती है। वहाँ शहर क्या? वह बहुत ऊँचे जा कर, बिलकुल ऊपरी हिमालय मे है। लोगों का यह खयाल है, किंवदंती चली आयी है, वह कहाँ तक सच है, कहाँ तक ग़लत है, इस बात को छोड़ दीजिए, यह भी हो सकता है कि कृष्ण के ज़माने से शायद वह कहावत नहीं आ रही है बल्कि कुछ हिन्दुस्तानियों ने, हो सकता है, मध्यकालीन युग में या पुराण युग में उन क़बायली मिशमी लोगों को बता दिया कि तुम तो रुक्मिणी के खानदान के हो। मैं इस बहस में नहीं पड़ता कि कब बात चली। यह बात ८० बरस पहले चली या ८०० बरस या १८०० बरस पहले, या कृष्ण के ज़माने से चली आ रही है यानी तीन एक हज़ार बरस पहले या ४ हज़ार बरस पहले, लेकिन यह बात वहाँ के लोगों में धँसी हुई है कि वे रुक्मिणी की औलाद हैं या रुक्मिणी उनके घर की थी। वह है रुक्मणि नगर। परशुराम कुण्ड तक तो साधुओं और यात्रियों को साल में २-३ दिन जाने देते हैं, लेकिन रुक्मिणी नगर तक, जहाँ तक मुझे मालूम है, कभी किसी को जाने नहीं दिया, अगर वह व्यापारी या पादरी या सरकारी नौकर न रहा हो। इतना तो सभी जानते ही हैं कि किसी एक क़ौम की, किसी देश की राष्ट्रीयता को ले जाने के लिए अगर सबसे खराब कोई तबक़े ढूंढ़ने हों, तो फिर ये तीन है। इनमें भी खराबी का आप ओहदा या रुतबा बना सकते हैं। सबसे ज़्यादा खराब तो हैं सरकारी नौकर, क्योंकि उनके कारण से उर्वसीअम् के लोगों को हिन्दुस्तान की सरकार और जनता का जो पता चला वह भाईचारे का नहीं था, लोकनीति का नहीं था, वह नौकरशाही का था, और नौकरशाही के स्वाद से अगर कोई क़ौम या तबक़ा किसी दूसरी क़ौम का पता चलाना चाहे, तो वह बहुत ही ग़लत और खराब होगा। इसमें कोई शक नहीं।

उसी तरह से जो भारतीय हिमालय का कुमाऊँ या दार्जिलिंग वाला हिस्सा है, उस पर मैं कुछ ज़्यादा इस वक़्त नहीं कहूँगा। हाँ, कुछ अच्छे दिलचस्प क़िस्से जो मेरे साथ बीते, थोड़े बहुत मैं बता देता हूँ कि हिमालय का कितना ज़्यादा स्थान है हिन्दुस्तान के इतिहास में, साहित्य और लोकमन में। लोकमन सबसे बड़ी चीज़ है। वैसे, इन सब चीज़ों को मैंने स्कूल कालेज में नहीं पढ़ा है, लेकिन लोकमन हिमालय के साथ कितना जुड़ा हुआ है, वह इसी बात से साबित है कि मेरे साथ एक संस्कृत का प्रोफ़ेसर बद्रीनाथ की यात्रा में हो लिया और रास्ते भर यानी ३ दिन में जो क़िस्से और श्लोक उसने मुझे सुनाये, वे अब तक कम या ज़्यादा दिमाग़ में हैं। जैसे उन्होंने मुझे क़िस्सा बताया

कि मध्य हिमालय में जहाँ बद्रीनाथ हैं, और दूसरे इलाक़े, वहाँ पार्वती की तपस्या की अब तक दो जगहें हैं। उनके नाम भी अब तक ऐसे हैं कि जो पार्वती की याद दिलाते हैं। उस इलाक़े को शहर, क़स्बा या गाँव कहना ग़लत होगा, क्योंकि बड़े निर्जन स्थान होते हैं। एक का नाम है परणा जहाँ पार्वती पत्ता खाती हुई, तपस्या करती थी, परणा, पत्ते वाली। दूसरे का नाम है अपरणा, बिना पत्ते। जब वह तपस्या करते-करते और आगे बढ़ना चाहती थी तो पत्ता खाना भी उसने छोड़ दिया। दोनों में कोई ७–८ मील का फ़र्क़ है। एक जगह गरम सोते का पानी है, शायद अपरणा में। और फिर, कालिदास तो सबसे ज़्यादा रस और रंग के कवि हैं। संस्कृत में कालिदास ने लिखा और सबसे बड़ा है कुमारसम्भव। शिव तक पिघल गये। मैं समझता हूँ, बरफ़ भी पिघली होगी। मेरे बोलने के तरीक़े से आप समझ गये होंगे कि मुझे इस बहस से मतलब नहीं कि शिव और पार्वती हुए या नहीं हुए। यह बहस उठाना ही फ़िज़ूल है, हालाँकि कुछ लोग साबित करने की कोशिश करते हैं कि शिव महाराज शुरू में बहुत बड़े इंजीनर थे जो गंगा को ऐसी पहाड़ियों से तोड़ कर लाये जहाँ वह क़ैद पड़ी हुई थी, इसीलिए, हिन्दुस्तान में उनकी बहुत बड़ी इज़्ज़त हो गयी। इन सब क़िस्सेबाज़ियों को मैं पसंद नहीं करता। असल में वे देवताओं की शक़्ल में ही हिन्दुस्तानी दिमाग़ में आये हैं। शिव महाराज के मुँह में कालिदास ने जो श्लोक रखा है वह क्या है? पार्वती से आ कर शिव कहते हैं कि यह तुम क्या कर रही हो, क्यों इतनी तकलीफ़ उठा रही हो? पहले अपने शरीर को ठीक रखो, फिर उसके बाद दूसरे कोई धर्म तुम्हें मिल सकेंगे। वह सारा इलाक़ा है बद्रीनाथ वाला, परणा-अपरणा वाला, गंगोत्री और गोमुख वाला।

वैसे, मैं तो माना तक गया था। माना हिन्दुस्तान का सबसे आख़िरी गाँव है। सर्दी के दिनों में वह ख़ाली हो जाता है। गर्मी के दिनों में वह बसता है। वहाँ अपने जो देशवासी रहते हैं, उनका नाम, उनकी जाति का नाम है तालचा और मालचा। वे कैसे लोग हैं, उसकी एक तसवीर मैं बताये देता हूँ। जब मैं बद्रीनाथ से लौट कर आ रहा था, तो बग़ल से एक तालचा या मालचा लड़की बहुत तेज़ी के साथ निकल गयी। एक आवाज़ सर्र जैसी हुई और फिर मैंने देखा, पर चेहरा तो मैं उसका देख नहीं पाया था। मैंने देखा कि एक लड़की अपने दोनों हाथों को पीठ के पीछे कोहनी से मोड़ करके रखे हुए है और थोड़ा-सा सामने की तरफ़ झुकी हुई ऐसी तेज़ी से जा रही है कि जैसा किसी हट्टे-कट्टे अच्छे नौजवान के लिए मैदान में चलना मुश्किल हो जाए। शरीर तो, जिसको आम तौर से आप लोग कहते हो, अप्सरा जैसा शरीर, जितना मैं देख पा रहा था, क्योंकि वह तो इतनी तेज़ी से चली जा रही थी कि पता नहीं चल पा रहा था। मन में मैंने बहुत मनाया कि वह ज़रा पीछे मुड़ कर देखे, तो देखूं तो सही चेहरा कैसा है। लेकिन वह मुड़ी नहीं, और इतनी देर बाद जा कर मुड़ी कि बहुत अच्छी तरह से मैं देख नहीं पाया उसके चेहरे को। लेकिन इतना मुझे याद है

कि जो क़िस्से कहानियाँ हम लोग अप्सराओं के बारे में, किन्नरियों के बारे में, सुना और पढ़ा करते थे, उसका एक नमूना उस दिन मुझे देखने को मिला। कैसी शरीर की ताक़त और उसके साथ-साथ सुन्दरता, और किस ढंग से वह चली जा रही थी, वह अलकरमणा तो थी नहीं, वह तो तेज़ चली जा रही थी और श्रोणी का भार था नहीं, वह तो पीठ पर सामान का बंडल भी रखे हुए थी।

इस इलाक़े के लोग अपने भाई-बहन हैं; अपने देशवासी हैं; माना में उस ठंड में जा कर रहते हैं। बद्रीनाथ, माना, बद्रीनाथ का सारा इलाक़ा इस वक़्त बर्फ़ से ढँका हुआ होगा। वहीं जा कर मुझे पता लगा कि क्यों हमारे पुरखे यहाँ तपस्या करने आते थे। बरफ़ के बारे में मुझे पहले ही पता था। कुछ थोड़ा-बहुत उस बरफ़ को देखा, दूर वाली बरफ़ को, जैसे नीलकंठ वाली बरफ़ को और सरगामाथा या कंचनजंगा वाली बरफ़ को। बचपन से ही बरफ़ देखता आ रहा हूँ। फिर एकाएक ख़याल आया जब लोगों ने मुझे यह बताया कि यह पूरा इलाक़ा बर्फ़ से ढँक जाता है, सिर्फ़ वह जगह जहाँ गर्म पानी का सोता है, थोड़ा-सा खुला रहता है, लेकिन दूर से देखने पर वह भी ढका हुआ दिखाई देता है। गंगा भी बर्फ़ से ढक जाती है। सब बर्फ़, सब सफ़ेद। मुझे एकाएक लगा कि दुनिया में अगर कोई चीज़ है जो सब चीज़ें बराबर कर देती है तो वह बर्फ़ है, और कोई चीज़ नहीं। बद्रीनाथ की उसी यात्रा में एक बार मैंने रात के कोई ११।–१२ बजे पहाड़, गंगा, छोटी-मोटी झोंपड़ियाँ, इन सबको अलग-अलग देखने की कोशिश की। रात बहुत हो चुकी थी, अँधेरा था इसलिए पहले १०–१५ मिनट कुछ नहीं दिखाई पड़ा। सब बराबर-सा दिखाई पड़ा। लेकिन कोई २५–३० मिनट के बाद कुछ थोड़ा-थोड़ा आकार दिखाई पड़ने लगा। चाहे जितना अँधेरा हो, कुछ न कुछ दिखाई पड़ने लग जाता है। लेकिन जब बरफ़ गिर जाती है, सब चीज़ों पर गिर जाती है, मकान पर, पहाड़ पर, नदी पर, तो फिर सब समान हो जाता है। और, मैं समझता हूँ ऐसे ही किसी इलाक़े में खड़े हो कर शंकराचार्य ने वह बात कह होगी—एकोऽवशिष्यच्छिव: केवलोऽहम्—वही एक है, और कुछ नहीं—एक वशिष्ठ, एक शिव, एक केवल। तो यह है हिमालय। हिन्दुस्तान के साथ कितना जुड़ा हुआ है वह। अगर मैं थोड़ी भी बात आपके सामने रख पाया हूँ तो यह है भारतीय हिमालय।

हालाँकि, असल में वह भाई हिमालय का क़िस्सा होगा, लेकिन मैं सिक्किम को अलग देश नहीं मानता, है भी नहीं। वह तो एक मानी में हिन्दुस्तान का एक ज़िला है। बहुत-से लोग भूटान, सिक्किम वग़ैरह गिना जाया करते हैं लेकिन सिक्किम तो थोड़ी-बहुत बातों को छोड़ कर, हिन्दुस्तान का एक ज़िला जैसा है। तो वहाँ जो तिब्बत के साथ बहुत घना व्यापार चला था, क़रीब ८-९ बरस चला, गंगटोक में और कलिमपोंग में भी चला, कलिमपोंग वाला हिस्सा आप चाहे छोड़ दो। गंगटोक को लो। गंगटोक में एक पुराना बाज़ार है। पुराने बाज़ार के अलावा वहाँ एक बिलकुल नया बाज़ार अब बस

गया। बड़ी चहल-पहल, याक और सामान ढोने के दूसरे जानवर। याक तो एक तरह के गाय या बैल समझो। वहाँ तो मैंने देखा, नाथूला के रास्ते में, पेड़ के भी बाल उग आते हैं। शायद ठंड से बचने की उनकी कोशिश है, खूब लम्बे-लम्बे बाल जैसे पेड़ में लटके थे। उसी तरह से ये याक। बहुत चहल-पहल हो चली। हम लोगों ने पूछा, क्या-क्या सामान वहाँ जाता है? दो बार मैं गया हूँ गंगटोक। पता चला कि न सिर्फ़ खाने-पहनने का सामान, बल्कि काफ़ी और सामान जाता था, जो छोटी-मोटी लड़ाई में भी काम आ जाए, जैसे लोहे के कुछ पहिये या मशीन या मोटर साइकिल, ऐसे भी सामान गये और खैर, खाने-पहनने के तो बहुत ही गये। तब उनकी तरफ़ से आता क्या था? चाँदी के डालर १९०९-१० वाले जब कि चीन में एक दूसरी हुकूमत थी उसके चाँदी के डालर। कई करोड़ रुपयों का व्यापार हुआ। हिन्दुस्तान के व्यापारियों को चाँदी के डालर बहुत प्रिय होते थे क्योंकि उनको गला कर काफ़ी नफ़ा होता था। १०-१५ करोड़ रुपये का व्यापार हुआ हो उन दिनों, तो आसानी से १५ करोड़ में से ३-४ करोड़ रुपये का नफ़ा हुआ हो, या ५ का हुआ हो, तो मुझे ताज्जुब नहीं होगा। यह सिलसिला ७-८ बरस तक चलता रहा। मुझ जैसे लोगों को ताज्जुब हुआ कि यह क्या हो रहा है। आखिर कहाँ यह व्यापार हमको ले जाएगा। लेकिन हिन्दुस्तान की सरकार और हिन्दुस्तान के व्यापारी इतने ज़्यादा लालची हैं कि उनको अपने देश की मर्यादा, देश के हित और देश की ताक़त का भान नहीं रहा करता जब वे ऐसी चीज़ें चलने देते हैं।

यह तो मैंने आपको गंगटोक की हालत बतायी। वैसे, जो थोड़ा-सा भूटान के नीचे, तराई में, जहाँ से भूटान जाने का रास्ता है, वहाँ की कुछ बातें मैंने देखी थीं और सुनी थीं। एक चीनी वहाँ पर एक लकड़ी का कारखाना चला रहा था, और खुशी से हिन्दुस्तान की सरकार उसे कारखाना चलाने देती थी। भूटान की राजधानी में जो थोड़े बहुत मकान राजा या राजा के दरबार के लिए बनाये गये थे, उनका बनाने वाला भी चीनी था। चीनियों की कैसी हालत थी, यह माकूम वाले क़िस्से से पता चलता है। माकूम एक हिन्दुस्तानी चाय बग़ानों का क़स्बा है। वहाँ से चारों तरफ़ के चाय के बग़ीचों से सम्बन्ध रहता है। वहाँ चीनी लोगों की काफ़ी बस्ती है। उनके होटल, रेस्तराँ भी हैं। वे आपस में खेलते-कूदते भी हैं। कुछ काफ़ी तायदाद में चीनी वहाँ बस भी गये हैं। इस सिलसिले में मैं एक चीज़ और बताये देता हूँ। हम हिन्दुस्तानी एक बात में बड़े नालायक़ हैं। एक बात में क्या, बहुत-सी बातों में, लेकिन इस एक बात में जिसका मैं ज़िक्र करता हूँ, वह यह कि वहाँ से आया हुआ चीनी केन्टोन से या दक्षिण चीन से यहाँ आसाम और उर्वसीअम् के इलाक़ों में बसता है, यहाँ के लोगों से दोस्ती करता है, उनके साथ उठता-बैठता है, खाता-पीता है और शादियाँ भी कर लेता है, उन्हीं जैसा बन जाता है और अपने देश के प्रति ऐसे इलाक़ों में ममता जगाता है। और हम हिन्दुस्तानी, खैर दोस्तियाँ तो करना जानते हैं लेकिन शादी विवाह करना नहीं जानते, इसलिए कि वह,

पता नहीं, कौन जाति के हैं, पता नहीं कौन धर्म के हैं। खाने-पीने में भी हममें से कई लोग एक दूसरे ढाँचे में ढले हुए हैं। मैं यह मान सकता हूँ कि कोई आदमी मांस खाता है, कोई नहीं खाता है। यह फ़र्क़ रहे। लेकिन यह कि किसी के साथ खाने-पीने में हमारी जाति चली जाएगी, किसी के साथ शादी होने पर हम कहाँ अपना मुंह दिखाने लायक़ रह जाएँगे, मैं नहीं मानता। नतीजा होता है कि हिन्दुस्तान का जो प्रतीक जाता है इन इलाक़ों में चाहे वह सरकारी नौकर हो, चाहे वह व्यापारी हो, वह उनमें उनका बन कर नहीं रह सकता, उनके मन को अपनी तरफ़ नहीं खींच पाता। चीनी लोग तो बाक़ायदा मार्गेरिका में, लीडो में, न जाने कितनी जगहों पर बस गये हैं। चीनी बढ़ई सवा रुपये रोज़ पर वहाँ काम करता था। एक मुझसे मिला था, २१-२२ बरस का। उससे तो और भी बहुत दिलचस्प बातें हुई थीं। उसने मुझे बताना चाहा था कि किस तरह तुम्हारी सरकार और तुम्हारा देश खराब है और माओ के चीन में कितनी तरक्क़ी हो रही है। मैंने भी उसे कुछ समझाने की कोशिश की। पहले तो कहा, हाँ, बात तो सही है, हमारा देश तो बहुत ही गंदा है यहाँ तरक्क़ी वग़ैरह नहीं हो रही है। लेकिन फिर थोड़ा-बहुत माओ के देश की गंदगी बतायी। इस पर वह एकाएक कुछ चौंक गया। उसने कहा, यह कैसे कहते हो, चीन में तो आलस खतम हो गया, चीन में नये ढंग से काम हो रहा है, चीन की जनता तो बिलकुल मालिक हो गयी है अपने इलाक़े की। फिर मैंने थोड़ी बहुत आज़ादियों के बारे में जब बातचीत की तो फिर खैर वह छटक गया। जब दूसरी बार मैं वहाँ गया, तब वह वहाँ नहीं था। लेकिन उस होटल के मालिक से कुछ बातें हुईं। कुछ तनातनी हो चली थी। मैंने पूछा कि क्या तुम्हारी राय है तो इस चीनी ने जवाब दिया—हमसे हमारी राय क्यों पूछते हो। हम कौन चीन सरकार के साथ थे, हमें माओत्सेतुंग और चाऊएन लाई कौन-सा पसंद हैं। वह तो पसंद नहीं, लेकिन आपकी सरकार ने हमें मजबूर किया कि हम उन्हें पसंद करें। मैंने कहा, वह कैसे? उसने जवाब दिया, चीनी राजदूत दिल्ली से अपनी संदूक़ में चीनी सरकार के झंडे, चीनी सरकार की किताबें, कुछ अहदनामे भी शायद, ये झब्बे वाले ले कर जाया करते थे और जहाँ कहीं चीनियों की बस्ती काफ़ी होती थी, वहाँ इनको बाँट कर जो कोई भी चीनी लोग थोड़ा-बहुत फ़ारमोसा और चांग काई शेक की सरकार की तरफ़ राय रखते थे, उन्हें अपनी तरफ़ खींचता था। ये चीनी सोचते थे कि जब दिल्ली की सरकार भी यही चाहती है तो दोनों सरकारों से कहाँ लड़ा जाए, चलो अपनी पिकिंग वाली सरकार है, उसी को अपनी भक्ति समर्पित करें। मैं नहीं जानता कि कहाँ तक यह क़िस्सा सही है लेकिन माकूम के होटल के मालिक ने मुझे यह क़िस्सा बताया और आम तौर से मैं किसी क़िस्से को बहुत तहक़ीकात करने के बाद ही माना करता हूँ। माकूम तिनसुखिया से लीडो जाने के रास्ते पर है।

भारतीय हिमालय के बारे में मैं इस वक़्त पाकिस्तान या हिमालय प्रदेश और पंजाब का नाम नहीं लूं तो इससे मत समझना कि वहाँ मामले ठीक हैं। वे सब एक से ही

हैं। पाकिस्तान और काश्मीर वाला जो इलाक़ा है, उस पर कुछ ज़्यादा न कह कर खाली एक मोटी चीज़ आपके सामने रखे देता हूँ। मैं उनमें तो हूँ नहीं कि जो कहें कि काश्मीर का मामला किसी तरह से हल कर दो, काश्मीर पाकिस्तान को दे दो या श्रीनगर घाटी में राय ले लो। यह बात तो मैं हरगिज़ पसंद नहीं करता। पाकिस्तान-हिन्दुस्तान की बातचीत से एक अच्छा काम शुरू हुआ है, हालांकि उसकी कई शक़लें बहुत बुरी हैं। ये दोनों इलाक़ों की सरकारों की इच्छा से नहीं, बल्कि अमरीका और इंगलिस्तान के दबाव से यह बात हो रही है सो मुझे बहुत नापसन्द आयी। इससे ठेस लगती है। हम आज़ाद हैं क्या? अगर हम आज़ाद हैं तो हमें अपनी नीतियाँ खुद सोचनी-समझनी हैं, हमें किन पर चलना है। यह नहीं हो कि कोई पराया आदमी हमें सलाह देता रहे। अगर अमरीका और इंगलिस्तान की सलाह से ही हम अपनी नीतियाँ चलाते हैं, तो फिर हम आज़ाद कहाँ रह गये? यह बहुत बुरी बात हुई, और यह भी बुरी बात हो रही है कि श्रीनगर घाटी का मामला अलग से सोचा जा रहा है। उसके बारे में कोई नतीजा या रास्ता निकालना जब तक कि हिन्दुस्तान और पाकिस्तान के कुल मसले के बारे में रास्ता नहीं निकालते हो, मेरी राय में बहुत ग़लत है। इस बहस पर ज़्यादा कुछ न कह कर मैं इतनी ही अपनी राय बता दूँ कि हिन्दुस्तान-पाकिस्तान का अलगाव, हिमालय के इस इलाक़े का—क्योंकि मुझे हिमालय ही से अभी ज़्यादा मतलब है—क्यों हुआ? उसका सबसे बड़ा सबब, सबसे बड़ा तो नहीं, सबब तो बहुत थे, बड़े-बड़े सबब ६–७ थे, लेकिन एक यह भी था कि हिन्दुस्तान की उस वक़्त की दो बड़ी पार्टियाँ, एक तो कांग्रेस पार्टी और दूसरे मुसलिम लीग एक-दूसरे से इतने ज़्यादा नाराज़ हो गये थे कि २-३-४ महीने एक सरकार को साथ-साथ चलाते-चलाते इतना ज़्यादा कड़वा घूंट उन दोनों ने पिया कि फ़ैसला किया कि चाहे मुल्क टूट जाए, अपना छोटा-सा ही इलाक़ा रह जाए, उसमें मुख़्तार बनो, पूर्ण स्वतन्त्र बन जाओ, जिसमें कि हम अपने मन से काम कर सकें। इससे कोई इनकार नहीं करेगा कि हिन्दुस्तान और पाकिस्तान के बँटवारे में यह भी बहुत बड़ा सबब रहा है। वरना दोनों की तरफ़ से अगर मान लो आज फिर से वही हालत हो जाए या जो आज है वही हालत १५ बरस पहले होती तो शायद मुमकिन था कि दोनों लोग सोचते कि जो आफ़त सामने आने वाली है, इतनी भयंकर टूट, इतना अलगाव, इतनी क़तलें, इतना बेघरबार होना, उजड़ना, इस सबसे ज़्यादा अच्छा है कि थोड़ा बहुत संयम रख करके, दब करके चलो, आपस में एक-दूसरे से कुछ ले-दे लो, कुछ पूरी बात न भी हो पाए, तो अधूरी हो जाए। तो, इस तरह से अब सोचना है कि क्या फिर से हम दोनों का ढीला-ढाला महासंघ हम नहीं बना सकते। इसलिए, मेरे लिए श्रीनगर घाटी का सवाल अलग कुछ अहमियत नहीं रखता। अहमियत यह रखता है कि क्या हम इन दोनों देशों को फिर से एक ढीलेढाले धागे में बाँध सकते हैं या नहीं। शुरूआत ढीलेढाले से हो, फिर बाद में मज़बूत हो जाए।

अगर ऐसा सम्भव हो सके तो जितना भी यह भारतीय हिमालय है, एक और शकल ले लेगा। आज तो चीनी लोग बड़े ताव से कहते हैं कि हम ६० करोड़ आदमी हैं। फिर हम भी, कोई ज्यादा छाती तानने की ज़रूरत नहीं लेकिन गम्भीर हो कर सोच सकेंगे कि हम भी ६० करोड़ हैं, और जितना भी यह भारतीय हिमालय का मामला है, कुछ हल हो सकेगा। मैंने तो बहुत बरसों पहले से कहा है कि इस भारतीय हिमालय के लिए अगर हो सके तो एक नीति बनाओ, अलग से मंत्रालय ज़रूरी हो तो बनाओ। मिसाल के लिए, उन सब पहाड़ियों में, जहाँ छत की जैसी खेती होती है, कुमाऊँ वग़ैरह मे, यानी छोटा-सा टुकड़ा पहाड़ से छीन लिया फिर उसके ऊपर छोटा-सा टुकड़ा छीन लिया, फिर उसके ऊपर छोटा-सा टुकड़ा छीन लिया। इसी तरह, इस पूरे हिमालय की घाटियों में सैकड़ों मील की फलों की खेती करायी जा सकती है, एक तरह की फल सेना भरती करके। वहाँ के लोग मेहनत बहुत करते हैं। जैसे बद्रीनाथ जाते वक़्त कुलियों को आप देखते होंगे, कि वे अपनी पीठ पर मन, डेढ़ मन का बोझा लाद करके १२,००० फ़ीट ऊँचा चढ़ते हैं या १–२ आदमी को डंडी में बैठा कर वही १२ हज़ार फ़ीट ऊँचा ले जाते हैं। ये लोग कम मेहनत नहीं करते। माथे से पट्टी बाँधते हैं और उससे १॥ मन बोझ ढोते है। वह माथा क्या रह जाता होगा, यह सवाल अलग है। यही लोग किसी और काम मे लगाये जा सकते है। मैंने लोगों से एक बार कहा था कि यहाँ तो क़ानूनी तौर से आदमी आदमी को न ढो सके, ऐसा क़ानून पास कर देना चाहिए। इस पर उन्होंने कहा, ये क्या खाएँगे बेचारे। इसका तो सीधा-सादा जवाब है कि अगर निजी दायरा न कर सके तो सरकारी दायरे की तरफ़ से सैकड़ों मील की खेती हो। तो, हिमालय का एक मंत्रालय हो, हिमालय के बारे मे आर्थिक योजना बना करके पूरे सैकड़ों मील की बात सोचने के लिए कुछ लोग हों, जो उस काम को करें जिसमें कि वहाँ के लोग नये ज़माने के लायक़ बनें।

इस वक़्त सब जगह के लोग टूटे हुए हैं। कुछ तफ़रीह के, कुछ हँसी के, मज़ाक़ के या खुशी के पात्र बन गये हैं। जो अपने को सभ्य कहने वाले राजधानियों के नागरिक हैं, उनकी तफ़रीह के वे पात्र बन गये हैं। ऐसी सूरत में, भारतीय हिमालय को नये ज़माने के लायक़ बनाना बहुत ही ज़रूरी हो गया है, इकट्ठा करना, उनके मन को बाँधना, राष्ट्रीयता लाना, उनमें एक तरह की विश्व नागरिकता भी खड़ी करना, उनके खेती कारखाने को सुधारना, उनके बग़ीचों को, उनके फलों की नयी खेती को। यह सारा इलाक़ा पुकार-पुकार कर कह रहा है। जो हमने खो दिया वह तो खोया ही है। पता नहीं कब उसको वापस ले सकेंगे।

भाई-हिमालय के, मोटी तौर से, मैं सिर्फ़ दो का ज़िक्र करूँगा, बाक़ी को छोड़े देता हूँ। सिक्यांग को छोड़ दूँगा। अफ़ग़ानिस्तान का भी कुछ हिस्सा पड़ता है। रूस का तो बहुत ज़रा-सा, और कुछ उधर चीन का भी। उन्हें छोड़ देता हूँ। लेकिन तिब्बत,

नेपाल और भूटान की चर्चा करूँगा। मैं ठीक नहीं कर पा रहा हूँ कि भूटान को शामिल करूँ, या न करूँ, थोड़ा तो करना पड़ता है। सच पूछो तो नेपाल का भी हाल कुछ और होता, क्योंकि मुझे एक क़िस्सा मालूम हुआ है, इधर कोई ४–६ महीनो मे ही। दस्तावेज़ तो मुझे मिला नहीं है, लेकिन काफ़ी ऐसे लोगों से मालूम हुआ कि सुन कर मैं दंग रह गया, हालाँकि आश्चर्य करने की कोई बात नहीं है। पिछले १०० बरस में नेपाल का राजा एक क़ैदी की तरह था, और कुछ उसके दूर के रिश्तेदारों ने, पूरी जाति ही बन गयी राणा लोगों की, उसे क़ैद करके प्रधान मंत्री, पैदायिशी प्रधान मंत्री, की ताक़त अपने घर में ले ली। भाई से भाई वह गद्दी बदला करती थी। राणा लोगों के हाथ मे ताक़त थी, राजा को क़ैदी बनाये हुए थे। खास तौर से पहाडी इलाक़ों में अलग-अलग पहाड़ो में बाँट-बाँट करके इन राजाओं को ऐसा मजबूर कर दिया जाता था कि इकट्ठा नहीं हो पाते थे। खैर, राणाशाही खतम हुई। मैं कुछ ज़्यादा उस बारे में न कह कर यही बता दूं कि जब राणाशाही को खतम करने का ज़माना था तो हिन्दुस्तान की सरकार या और कोई भी दल इस काम को करने को तैयार नहीं थे। उनके जो भी सबब रहे हों। शायद कुछ ने तो यह सोचा कि अकेला हिन्दू राज है नेपाल, उसे छेड़ो मत और वहाँ के राजाओं या राणाओं के साथ दोस्ती रखो। शायद कुछ ने सोचा हो कि बर्रे का छत्ता है, छेड़ोगे तो न जाने बर्रे कहाँ-कहाँ किसको-किसको काट डालें। कुछ ने सोचा हो कि और किसी के ज़रिये कराओ। खैर।

बहुत दिनों तक नेपाल कांग्रेस सब जगह से थक गयी तो मुझ जैसे लोगो के पास आयी थी। इसी दिल्ली में शायद पहली दफ़ा हम लोग हिन्द सरकार से टकराये थे नेपाल के मामले को ले कर। तब हिन्द सरकार ने हम लोगों पर आँसू की गोलियाँ चलायी थीं और नेपाल वाला मामला उठा था। वह राणाशाही खतम हुई राजा आये और पहले राजा थे त्रिभुवन। अब हैं राजा महेन्द्र। मैंने सुना है कि राजा त्रिभुवन को कुछ अन्दाज़ लग गया था कि क्या होने वाला है और वे यह नहीं चाहते थे कि नेपाल का विदेश मामला और रक्षा का मामला नेपाल के ही हाथ में रहे। उन्होंने हिन्द सरकार के सामने एक प्रस्ताव रखा कि हम स्वतंत्र रहें अपने इलाक़े में, अपने राज को हम खुद चलाएँ, हमारे यहाँ लोक शाही क़ायम होगी, चुनाव होंगे, सरकार हमारे यहाँ बनेगी लेकिन मेहरबानी करके पलटन का मामला और विदेश का मामला हिन्द सरकार अपने हाथों में ले ले। वह नहीं लिया गया। जैसा मैंने आपसे कहा, इसके दस्तावेज़ तो हैं नहीं। जिन लोगों ने मुझे यह खबर दी, उनसे मैंने पूछा, कहीं तुम्हारे पास चिट्ठी-विट्ठी है, उसकी नक़ल ही हो। उन्होंने कहा, यह एक ऐसा मामला है कि हमारे यहाँ कुछ नहीं है। जो कुछ होगा, दिल्ली की सरकार के राष्ट्रीय अभिलेखागार में होगा। मुझे उस बारे में भी कुछ खबर मिली है कि उसमें कोई कागज ज़्यादा अड़चन वाले होते हैं तो उन्हें हटा देना कोई बड़ा मुश्किल काम नहीं हुआ करता। अच्छा, अगर यह बात सही है और हिन्दुस्तान ने नेपाल

के विदेशी और पलटनी मामलों को हाथ में लेने से इनकार किया तो उसका सबब क्या है ? साफ़ है कि हिन्दुस्तान का दिमाग़ विश्वशान्ति और दूसरे देशों की खुदमुखतारी के मामले में इतना ज़्यादा जालों से ढक गया है, कई तरह के भ्रम, कई तरह के जाल कि वे सोच नहीं पाते कि कब क्या ज़माना आने वाला है और क्या करना चाहिए। उन्होंने यह अन्दाज़ लगा रखा था कि अब तो दुनिया शान्ति की तरफ़ जा रही है, कुछ बिगाड़ होने वाला है नहीं, चीन हमारा दोस्त है तो अगर हिन्दुस्तान नेपाल के विदेश और पलटनी मामले अपने हाथों में लेता है तो बाक़ी दुनिया को बेमतलब यह कहने का मौक़ा दे देता है कि हिन्दुस्तान तो विस्तारवादी है, हिन्दुस्तान तो अपना फैलाव कर रहा है। खुद नेपाल के अन्दर कुछ लोगों को मौक़ा मिल जाएगा हिन्दुस्तान के खिलाफ़ बातचीत करने का। यह तो खैर बिना मामला लिये ही मौक़ा आ गया। यह बहुत अचरज की बात है और बहुत शर्म की बात है कि इतना हमारा दोस्त, इतना हमारा भाई नेपाल जिस पर इतना हमारे दूसरे लोग नाज़ किया करते थे, इस हिन्द-चीन के मामले में कैसा किनारे खड़ा रहा। यह तो मैं नहीं कहूँगा कि उसने चीन का साथ दिया, लेकिन उसे हिन्दुस्तान का साथ देना चाहिए था जो उसने नहीं किया। अब इस पर खाली उसी को दोष दोगे तो काम नहीं चलेगा। दोष आखिर हमारा भी तो रहा है। एक की तो मैंने अभी मिसाल दी कि हिन्दुस्तान ने नक़ली और झूठी विश्व आज़ादी के मोह में फँस कर अपने हिमालय की ओर उत्तर की नीति को ठीक-ठीक नहीं चलाया। यह काफ़ी बड़ा सबूत है। उसके अलावा और भी सबूत मैं देता हूँ। भूटान और यह जो ज़िला सिक्किम है—बार-बार मैं इसको ज़िला ही कहना चाहूँगा, कुछ बातों में सिक्किम का राजा ज़रूर एक ज़मींदार के मुक़ाबले में ज़्यादा ताक़त वाला है—उसकी जनता लोकशाही के लिए पिछले कई बरसों से लड़ रही है। सैकड़ों की तादाद में लोग जेल गये। जिस तरह से नेपाल में हज़ारों की तादाद पहुँच गयी और एक बार तो मामला ऐसा हो गया कि छोटी-मोटी लड़ाई भी हो गयी थी और आरज़ी हुकूमत क़ायम हुई थी बिराटनगर वग़ैरह में, उस तरह से भूटान और सिक्किम में कोई पलटनी लड़ाई तो नहीं हुई वहाँ के राजाओं के खिलाफ़, लेकिन सत्याग्रह वाली, जेल जाने वाली लड़ाइयाँ दोनों जगह हुईं। भूटान में फैल नहीं पायीं। उसका सबब यह रहा कि भूटान बहुत दूर था। यहाँ हमारे जैसे लोगों का आना-जाना तो बिलकुल बंद था। खबरें तक नहीं पहुँच पाती थीं। एक क़िस्सा पता नहीं कहाँ तक सही है। उस इलाक़े में इतना ज़्यादा आतंक, इतना ज़्यादा अज्ञान है कि जो भी १०-५ आदमी आये वही कार्यकर्त्ता, वही नेता। एक नेता को भूटान की हुकूमत ने ज़िन्दा एक बोरे में बाँध दिया और उसे एक नदी में फेंक दिया। इस तरह की कई एक घटनाएँ हुई हैं लेकिन एक का तो मुझे नाम समेत पता दिया गया। भूटान और सिक्किम में खास बात ध्यान देने वाली यह है कि हालाँकि वहाँ के दरबार और राजा की जाति और उनके कुटुम्ब तिब्बती पैदाइश के हैं—तिब्बती नहीं, तिब्बती पैदाइश के—लेकिन लोगों की जनसंख्या

का बड़ा हिस्सा नेपाली पैदाइश का है। अब यह बात बिलकुल साफ़ हो जाती है कि अगर नेपाल के साथ हम लोगों की नीति ठीक-ठाक रही होती और नेपालियों का मन हिन्दुस्तानियों के मन के साथ मित्रता और भाईचारे के धागे में बँध गया होता तो फिर भूटान और सिक्किम का मामला अपने-आप हल हो जाता। नेपाली पैदाइश का सारा असर पड़ता। उस ज़माने में नेपाली लोग मुझे भी कुछ अपना आदमी समझते थे, तो जहाँ कहीं इन इलाकों में मैं चला जाता था, बड़े प्रेम और आदर के साथ वे मुझसे मिला करते थे। वह चीज़ नेपाल के साथ बढ़ क्यों नहीं पायी। थोड़ा तो मुझे इस पर वक़्ती गुस्सा आ ही जाता है पर अभी उसको मैं हटाए देता हूँ। खाली जो बड़ी बात है, वह आपके सामने रखे देता हूँ। रहा यह कि जिन लोगों से हमारी दोस्ती थी और ६-७ बरस चली, जब पिटना था तब दोस्ती थी और जब वे काठमंडू की गद्दी पर बैठे तब उनकी दोस्ती दिल्ली के साथ हो गयी। इसमें कोई अचरज नहीं करना चाहिए। यह आस-पास पड़ोस की जितनी गद्दियाँ हैं, उनमें आपस में एक खिचाव, एक कशिश अपने-आप हो जाएगी। जो दिल्ली की गद्दी पर बैठेगा, वह काठमंडू की गद्दी को ज़रूर अपनी तरफ़ खीचेगा और काठमंडू वाली छोटी गद्दी है वह दिल्ली के साथ ज़रूर दोस्ती करने की कोशिश करेगी। यह बिलकुल नामुमकिन बात है कि वह अपने पुराने ज़माने के दोस्तों को याद रख कर गद्दी की भी लडाई को चलाती रहे। यह तो मैंने समझ लिया था। इस पर मुझे किसी तरह का अचरज या दुःख नहीं हुआ। लेकिन एक बात बिलकुल साफ़ है कि नेपाल के साथ हिन्दुस्तान ने जो भी रवैया अपनाया वह क्या था? कूटनीति का था। चतुराई का था। होना क्या चाहिए? सिर्फ़ पडोसी नहीं; बहुत नज़दीक के पड़ोसी, रिश्तेदारी है, भाई है। वह चीन और रूस वाला भाई नहीं जैसा रूसी कहता है कि चीन तो हमारा भाई है। वह तो खाली दिमाग़ी भाई है। यहाँ तो भाईपन बिलकुल एक ही मुल्क जैसा है। उस नेपाल के साथ कौन-सी नीति चलानी चाहिए थी? कूटनीति नहीं, लोक नीति। वैसे तो आज पूरी दुनिया में अन्तर्राष्ट्रीय संबंध ज़्यादा कूटनीति पर चलाने ही नहीं चाहिए। रूस के सबसे अच्छे दोस्त, चीन के सबसे अच्छे दोस्त कौन होते हैं? कूटनीति वाले। जैसे रूस की हिन्दुस्तान के साथ दोस्ती कूटनीति वाली है लेकिन रूस की रूमानिया या पोलंड या जेकोस्लावाकिया या चीन या मुख़्तलिफ़ देशों की कम्युनिस्ट पार्टियाँ हैं उनके साथ दोस्ती कूटनीति वाली नहीं, लोक नीति वाली है, विचार वाली है, वह इनक़लाब के लिए लड़ने वालों में जो मोहब्बत होती है वैसी नीति है। लोकनीति है राजनीति। मुझे ऐसा लगता है कि हिन्दुस्तान की सरकार ने नेपाल के साथ अपना संबंध ज़्यादा कूटनीति के आधार पर रखा। वहाँ की जनता, वहाँ की जनता के संगठन के साथ संबंध गहरा नहीं रखा। कहा जा सकता है कि कांग्रेस पार्टी की सरकार है; अगर कांग्रस पार्टी सीधे नेपाल के मामलों में दखल देने लग जाए तो कुछ नेपाली लोगों को बुरा लगे और वह एक मौक़ा ढूंढ करके हिन्दुस्तान के ख़िलाफ़ जेहाद बोल दें। यह भी मैं माने

लेता हूँ। ऐसी हालत में हर एक सरकार यह कोशिश किया करती है कि जनता के अन्दर कुछ ऐसे संगठन खड़ा कर दे कि जिनके कामकाज के लिए उनकी कोई जिम्मेदारी न आए और उनके ज़रियें से वह लोकनीति चलाया करे क्योंकि आखिरकार नेपाली हमारे सिर्फ़ पड़ोसी नहीं, हमारे भाई हैं। जो भी नेपाली ८० लाख, ९० लाख हैं, उनका मन, उनके खाने-पीने का स्तर, उनके रहने का स्तर, उनकी विचारधारा, उनके सोचने के तरीक़े, जब तक पक्की तौर से एक तरफ़ आज़ादी पसंद और दूसरी तरफ़ सच्चे मानी में विश्वशान्ति वाले और हिन्दुस्तान से दोस्ती वाले नहीं बनते तब तक नेपाल के साथ हमारा संबंध ठीक रह नहीं सकता। खाली कूटनीति के आधार पर नहीं। मुझे शक होता है कि जब नेपाल के राजा दिल्ली सरकार से बात करते थे तब बात के तराज़ू को ऐसी डंडी मार दी जाती थी कि नेपाल का राजा भी अपने मन में थोड़ा खुश हो लेकिन हिन्द सरकार मेरे जैसा कुछ सोच रही है या कम से कम मेरे कामों में दखल नहीं देगी। और जब नेपाली कांग्रेस के नेता दिल्ली सरकार से बात करते थे, तब बात के तराज़ू की डंडी कुछ ऐसी मार देती थी दिल्ली सरकार कि नेपाली जनता का प्रतिनिधि सोच बैठता था कि दिल्ली सरकार कुछ हमारी तरफ़ झुकी हुई है। और मैं यह बहुत दृढता के साथ कहना चाहता हूँ, कि ऐसे मामलों में सरकार को दोनों के साथ बिलकुल एक जैसी बात करनी चाहिए ती, कुछ हेरफेर नहीं, बिलकुल खुली एक-सी, बिना लल्लो-चप्पो की, बिना डंडी मारे हुए, ताकि नेपाल के राजा और नेपाल के प्रधान मंत्री दोनों को अच्छी तरह मालूम हो जाता कि दिल्ली सरकार की क्या राय है। कोई ग़लतफ़हमी की गुंजायिश नहीं रहती और हिन्दुस्तान की राजनीतिक पार्टियों या संगठनों में ऐसे लोग रहते, संगठन रहते जो नेपाल की पार्टी और संगठन के साथ न सिर्फ़ ऊपरी भाईचारा रखते, बल्कि विचार का, मन का भाईचारा रखते। ऐसे भाईचारे से क्या फ़ायदा कि नेपाल की गद्दी को खाली इस्तेमाल कर लिया जाए इसलिए कि कभी कोई अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन हो तो वे भी चार आदमी बैठ जाएँ, हम भी चार आदमी बैठ जाएँ, आपस में कुछ थोड़ी मोहब्बत की बातें हो जाएँ और ज़रूरत पड़ने पर जब चुनाव आएँ तब हम उनको कुछ रुपयों की मदद कर दें हो सके तो या जब चुनाव आएँ तो वे हमारी मदद कर दें। इस तरह से राष्ट्र की नीतियाँ नहीं चला करतीं। नेपाल से हमारी दोस्ती के मानी होते थे कि नेपाल में अन्दरूनी राजनीति में चाहे सरकार, चाहे ग़ैर सरकार, चाहे कोई राजनीतिक पार्टी के ज़रिये से विचार और कर्म का ऐसा संबंध जोड़ा जाता कि दोनों इलाक़ों के लोगों का मन एक दिशा में चलता। जब मन एक दिशा में चलता तब ताक़त होती। चीन की क्या ताक़त, यही तो उसकी ताक़त थी। चाहे वह राक्षसी ढंग से इस काम को करता, मुझे उसका काम क़तई पसंद नहीं लेकिन चीन की ताक़त इसलिए बढ़ जाती है कि चीन इन सब इलाक़ों के लोगों के मन ऐसे बदलता है कि मन उसके मन के साथ गुँथ जाता है और फिर सब इलाक़े के लोग एक दिशा में चल पड़ते हैं। नेपाल में ऐसा नहीं हुआ। इतना मुझे नेपाल भूटान, सिक्किम के बारे में कहना था।

अब भी बदलें उस नीति को। एक बार तो मैंने यह सलाह दी थी। मामला तो बहुत बिगड़ गया है। मैं नहीं समझता कि इन्हें कोई एक व्यक्ति सुधार सकता है, सिवाय राजेन्द्र बाबू कोशिश करें तो, क्योंकि राजेन्द्र बाबू का दिमाग़ कुछ सचमुच पुरातनवादी है इसलिए नेपाल का राजा भी उनसे झिझकेगा नहीं। वह यह नहीं सोचेगा कि वे हमारा कुछ नुक़सान कर देंगे। उसके साथ-साथ, राजेन्द्र बाबू जनता के भी आदमी हैं इसलिए नेपाल कांग्रेस के लोग उनसे झिझकेंगे नहीं। अगर फैलाव का मौक़ा होता तो और लोग भी अपना हाथ इस काम में लगा सकते थे। लेकिन आज तोड़ के मौक़े पर अगर राजेन्द्र बाबू कुछ अपनी तरफ़ से पहल करें और नेपाली राजा और नेपाली कांग्रेस के नेता, जिनमें से बहुतेरे अभी जेलों में बंद हैं, दोनों में कुछ मोहब्बत की शुरूआत करा देते तो अच्छा होता। ज़रूरी नहीं है कि उनकी कोई ज़िम्मेदार हुकूमत क़ायम हो जाए। यह सब तो उनके अपने निजी मामले हैं लेकिन कम से कम शुरूआत हो जाती।

हाँ, एक चीज़ और। दिल्ली सरकार के कुछ तरीक़ों की नक़ल आसपास पड़ोस के भी प्रधानमंत्री कर लिया करते हैं और वह तरीक़ा बड़ा ख़तरनाक है। मैं कई बार बता चुका हूँ कि हिन्दुस्तानी प्रधानमंत्री बिन लगाव वाली नीति ज़रूर कहते हैं कि हम अमरीका के खेमे से भी अलग हैं और रूस के भी खेमे से अलग हैं, लेकिन, दरअसल, हिन्दुस्तान को दो टुकड़ों में बाँट दिया है कि जो लगे जा रहे हैं एक या दूसरे के साथ। खुद सरकार के अन्दर—मंत्रिमंडल के अन्दर एक तरफ़ तो अतलांतिक खेमे के आदमी और दूसरी तरफ़ सोवियत खेमे के आदमी लग गये हैं। चिपक गये हैं, हिन्दुस्तान टूट गया है और उसी की नक़ल करते-करते नेपाल में भी वहाँ की सरकार ने चाहा कि नेपाल सरकार में दोनों तरह के लोग रख लिये जाएँ जो कि चीन से भी दोस्ती कराने वाले हैं, जोकि हिन्दुस्तान से भी कराने वाले हैं। तराज़ू को ज़रा ठीक-ठाक रखे रहें और उससे अपना काम निकल जाए।

आज आप जिस एक आदमी का बड़ा ज़िक्र सुनते हो तुलसीगिरी साहब, उन्हें दरअसल नेपाल के प्रधानमंत्री अपनी पार्टी की मर्ज़ी के खिलाफ़ सरकार में लाये थे, करीब-क़रीब उसी सतह पर जिस सतह पर हिन्दुस्तान के प्रधानमंत्री नेहरू महाराज कृष्ण मेनन साहब को लाये हुए थे। उनसे कुछ तो उनका काम निकलता था। इसमें कोई शक नहीं श्री कृष्ण मेनन बड़े लायक़ हैं; लायक़ मतलब लायक़ और नालायक़ वाले अर्थ में नहीं। लायक़ मानी योग्य हैं। किसी एक काम को उन्हें दे दिया जाए तो उसको वे अपने मालिक के लिए बड़ी खूबी के साथ पूरा कर सकेंगे, इसमें तो कोई शक ही नहीं। उनको यह काम दे दिया गया कि तुम सोवियत खेमे से दोस्ती करो। बिचारे ने दोस्ती की। दोस्ती करते-करते वह भी उनका गहरा दोस्त बन गया, इतना गहरा दोस्त बन गया कि हिन्दुस्तान हो गया नम्बर दो और सोवियत खेमा हो गया नम्बर एक। और उसकी देखादेखी आज मुल्क का एक हिस्सा सोवियत खेमे के साथ जुड़ गया है।

और किसी मौक़े पर इस बात को कहूँगा जरा विस्तार के साथ, लेकिन इस पर आप ध्यान देना कि बहुत से पढ़े-लिखे लोगों में आज हिन्दुस्तान और चीन की लड़ाई ने इतना ज्यादा असर नहीं किया है जितना मुल्क के अन्दर की लड़ाई ने। एक तरफ़ हैं दक्षिणपंथी लोग और दूसरी तरफ़ हैं वामपंथी लोग। दक्षिणपंथी चिल्लाते हैं कि ये कम्युनिस्ट खतम हैं, ये बदमाश हैं, इनको खतम करो, कम्युनिस्टों ने सारे हिन्दुस्तान को बिगाड़ रखा है। कम्युनिस्ट और उनके साथ वालों का—मैं कम्युनिस्ट तो अब नहीं कहना चाहूँगा, सच पूछो तो उनका नाम ८ सितम्बर वाले कहना चाहिए जिनका कभी-कभी झुकाव ७ नवम्बर की तरफ़ भी हो जाया करता है तो ८ सितम्बरी लोग—खाली एक पेशा रह गया है यह कहना कि वह दक्षिणपंथी, वह करोड़पतियों का आदमी, वह बड़ा पीछे देखू है, वह साम्राज्यशाही का एजेन्ट है। बजाय इसके कि हिन्दुस्तान-चीन की लड़ाई के ऊपर हम दिमाग़ ठीक करके सोच-विचार करें, हम खुद अन्दर इस तरह की लडाई चला रहे हैं, दो तबक़ों में बँट करके—एक वामपंथी तबक़ा और एक दक्षिणपंथी तबक़ा—कि मालूम होता है कि ज्यादा बड़ी लड़ाई है कि कहीं कोई किसी से दाँव न ले जाए, इसी लड़ाई को ज्यादा ज़ोर से चलाते रहो।

ख़ैर, यह मामला फिर कभी आएगा। अभी मैं आपको बता दूँ कि नेपाल में भी शुरूआत हो गयी थी क्योंकि नेपाल के भी प्रधानमंत्री ने चाहा कि वह अपनी सरकार और मंत्रिमंडल को उसी तरह से अखाड़ा बना दे जिस तरह से हिन्दुस्तान के प्रधानमंत्री ने बना रखा है, और अगर हिन्दुस्तान का प्रधानमंत्री इस काम को करते हुए मज़ा ले रहा है तो नेपाल वाला क्यों न ले। मैंने तो एकाध दफ़े अपने भाषणों में कहा कि हिन्दुस्तान ४५ करोड का देश है, बहुत कुछ बेवक़ूफ़ियाँ करके भी वह और उसका प्रधानमंत्री ज़िन्दा रह सकता है और तुम हो ८० लाख वाले। तुम अगर उसी तरह नक़ल करोगे तो बहुत बुरी तरह से पिटोगे और आखिर तो वह पिटा लेकिन उस पिटने से फ़ायदा किसका क्या होता है? तो. इतना तो हुआ नेपाल के बारे में।

अब तिब्बत। तिब्बत की बात तो कई बार मैं दोहरा चुका हूँ। उसे तो खाली गिना देता हूँ। एक, भाषा; दूसरे, लिपि; तीसरे रहन-सहन; चौथे, धर्म; पाँचवें, ज़मीन का ढलाव; छठे, इतिहास; और सातवें, लोक इच्छा। इन सातों कसौटियों पर तिब्बत चीन का हिस्सा हरगिज़ नहीं है, चीन से ज्यादा हिन्दुस्तान के नज़दीक है, मैं हिस्से की बात नहीं कह रहा हूँ। मैं यह नहीं कहना चाहता कि तिब्बत हिन्दुस्तान का अंग है, लेकिन तिब्बत का और हिन्दुस्तान का बिलकुल नज़दीकी सम्बन्ध है। अगर मोटी बाज़ारू भाषा में मुझे कहना पड़े, तो तिब्बत तिब्बत है, स्वतंत्र है, उसका अपना ढंग है, उसके लोगों के स्वतंत्र रहने की इच्छा है। वही सबसे बड़ा सत्य है, क्योंकि मैं यह कहना चाहता हूँ, चाहे जितने सत्य किसी तरफ़ जा रहे हों लेकिन अगर किसी बड़े इलाक़े के लोग चाहते हैं कि वे स्वतंत्र रहें तब वही बात सबसे बड़ी हुआ करती है। तिब्बत के लोग

स्वतंत्र रहना चाहते हैं। उनका इलाक़ा कोई ५ लाख वर्ग मील का है। उनकी आबादी कोई ४०-५० लाख की है। वह कोई छोटा-मोटा इलाक़ा तो है नहीं। रहन-सहन का उनका ढंग रहा है। उनका अपना इतिहास है। स्वतंत्र रहना चाहते हैं; उनको स्वतंत्र रहना चाहिए। लेकिन उसके बाद दूसरे नम्बर का सवाल उठता है कि तिब्बती किसके ज़्यादा नज़दीक हैं? ८० सैकड़ा वे हिन्दुस्तानियों के नज़दीक हैं तो मुश्किल से १५-२० सैकड़ा वे चीनियों के नज़दीक होंगे। इससे ज़्यादा उनका चीन से कोई ताल्लुक़ है नहीं।

मुश्किल यह है कि पिछले हज़ार बरसों में जो कुछ घटनाएँ हुई हैं वे कौन-सी? जब तक इतिहास पर एक लम्बान की दृष्टि से सोच-विचार नहीं करेंगे, बड़ी चीज़ को पकड़ नहीं पाएँगे। पिछले हज़ार बरसों में हिन्दुस्तान गिरा हुआ रहा, पिटा हुआ रहा है। ग़ुलाम रहा है, कमज़ोर रहा है। जब मैं यह बात कहता हूँ तो कोई एक सेकंड के लिए यह न सोच बैठे कि हिन्दू मुसलमान का मामला रहा। उसका हिन्दू मुसलमान से कोई मतलब नहीं। पिछले हज़ार बरसों में हिन्दुस्तान की गद्दी देशियों के हाथ में रह नहीं पायी है। जब कभी कोई परदेशी आया, उसने हमला किया, उसने यहाँ पर अपनी हुकूमत चलायी, उसके खानदान वाले देशी बनने लगे। जैसे वे देशी बनने लगे, वे कमज़ोर और नपुंसक हो गये और फिर कोई परदेशी आया और उसका गला दबोच कर अपनी हुकूमत बना ली। दिल्ली क्या है? आठ सौ, हज़ार बरस का यह शहर है। दिल्ली का पूरा इतिहास यही है कि जब परदेशी आता है, और काफ़ी तायदाद में, वह अपनी दिल्ली बसाता है। सात दिल्ली हैं यानी सात बार दिल्ली फ़तह हुई, छह या सात बार। पराधीनता का ताँता चलता गया है।

क्या इसके सबब रहे, उसे छोड़ दीजिए। हम यह मान कर चलें कि पिछले हज़ार बरस में हिन्दुस्तानी नपुंसक रहा है और परदेशी अपनी ताक़त से इस मुल्क को ग़ुलाम बनाता रहा है। बाबर आता है परदेशी की शकल में तो फ़तह करता है मुल्क को, और तैमूर-लंग का तो कहना ही क्या? और जब बाबर की औलाद बहादुर शाह की शकल में देशी बन जाती है, तो शायरी करने के सिवाय उसके पास और कुछ रह नहीं जाता। देशी और परदेशी की यह लड़ाई रही और इस हज़ार बरस में जो कुछ भी हिमालय के बारे में हुआ है, संधियों, लड़ाई या हिमालय के ऊपर राजकीय अधिकार, उसको नज़ीर या उदाहरण बना कर कहना कि यह हिमालय की शकल है, निहायत गंदी बात होगी। पिछले हज़ार बरस को ही क्यों देखा जाए? क्यों न पिछले २-३ हज़ार बरस को देखा जाए, चार हज़ार बरस को देखा जाए। आख़िर पिछले हज़ार बरस में चंगेज़ ख़ाँ और क़ुबलाई ख़ाँ भी तो हुए हैं। उसके अलावा, चीनी राजाओं की कभी ताक़त रही, वे आगे बढ़े, हमारे हिमालय की तरफ़ भी किसी-किसी ज़माने में आये। और हम हिन्दुस्तानी पिछले हज़ार बरस में, कभी भी अपने मुल्क के बाहर की बात सोचने के लायक़ थे ही नहीं। मुल्क के अन्दर की बातों में ही इतना फँसे रहते थे कि हमेशा हमको ग़ुलामी से बचने के लिए

तैयार रहना पड़ता था, लड़ाई करनी पड़ती थी। यह रही हिन्दुस्तान की हालत। हमेशा बार-बार मैं अर्ज़ करूँगा कि पिछले हज़ार बरस के इतिहास और सुलहनामों को कोई भी हिन्दुस्तानी कभी उदाहरण के रूप में न ले। यह बड़ी भारी ग़लती होगी अगर वह लेगा।

तिब्बत और चीन के मामलों में जितने भी सुलहनामे हैं, उनसे एक बात तो यह साबित होती है कि चाहे १०-१५-२० बरस के लिए सही क्यों न हो, तिब्बत ने चीन के ऊपर राज किया। अगर सुलहनामों को ही, संधियों को ही आप आधार बनाना चाहते हो, तो क्यों न चीन को तिब्बत के मातहत बना दिया जाए। दूसरे, यह बात साबित होगी कि जो कोई सुलहनामे मिलते भी हैं तिब्बत और चीन का संबंध बताने वाले, तो वे सिर्फ़ इतना बताते है कि तिब्बत का राजा चीन को किसी प्रकार की भेंट दिया करता था। उसे सत्ता नहीं, एक तरह का दूर का आधिपत्य कहा जा सकता है। अन्दरूनी मामलों में कोई मतलब रहता नहीं था तिब्बत के राज से, उस वक़्त भी जब चीन की ताक़त ज्यादा होती थी। अन्दरूनी मामलो मे बिलकुल नहीं, विदेशी मामलों में भी नहीं क्योंकि तिब्बत ने जाने कितनी संधियाँ की है दूसरे देशों से बिना चीन के रहते हुए या चीन जिसमें दखल नहीं देता था।

इसी सिलसिले में एक बात और ध्यान देने लायक़ है। वह यह कि हिन्दुस्तान में अंग्रेज़ी सरकार के काम करने के तरीक़े और दृष्टि। एक बड़ी बढ़िया किताब छपी थी। मुझे नहीं मालूम उसका अंग्रेज़ी में तर्जुमा हुआ या नहीं हुआ। प्रोफ़ेसर हेरमन ओकिन ने एक किताब लिखी है, छोटी है, १२५ सफ़े की लेकिन मैंने बहुत कम किताबें पढ़ी हैं जो दिमाग़ की दिशा को बताने वाली हों, और वह किताब हैं "अंग्रेज़ी विदेश नीति : एक सौ बीस बरस या हिन्दुस्तान की पलटनी सुरक्षा का सवाल"। जर्मन लोग अपनी किताब के नाम बड़े लम्बे रखा करते हैं। किताब के नाम से ही आप समझ गये होंगे कि लन्दन की विदेश नीति, १२५ बरस यानी पूरी १८ वीं सदी और २० वीं सदी के कुछ बरस में ऐसी रही है कि उसका अगर कोई केन्द्र ढूंढना हो या कि उसकी सबसे बड़ी बात; तो उसकी सबसे बड़ी बात भी कि किस तरह से हिन्दुस्तान को सुरक्षित रखो सेना के हिसाब से। और हिन्दुस्तान को सुरक्षित करने में अंग्रेज़ों के दुश्मन कौन होते थे? एक तरफ़, फ़ांस; दूसरी तरफ़, रूस; और तीसरी तरफ़, जर्मनी। फ़्रांस, रूस और जर्मनी, इन तीनों से अंग्रेज़ों की होड़ चलती थी।

इस लम्बे क़िस्से को छोटा करके, इतना ही मैं बता दूं कि जब रूस से अंग्रेज़ अपनी होड़ चलाता था और रूस से डरता था कि कभी रूस हिन्दुस्तान पर क़ब्ज़ा न कर ले तो उसे ज़रूरत थी किसी ऐसे दोस्त को पकड़ने की जो कमज़ोर है, और कमज़ोर की हुकूमत या इलाक़े में वह कम से कम अपनी मेनेजरी क़ायम कर देता। उसने ऐसे दोस्त को पकड़ा। चीन १९ वीं सदी में कमज़ोर रहा है। अंग्रेज़ों ने चीन को पकड़ा। औरों ने

भी पकड़ा लेकिन ज्यादा अंग्रेज़ों ने। चीन का सम्राट और जो भी संधि, सुलहनामे पुराने थे, बड़े लचर थे, बड़े पतले थे। उनका सहारा ले कर अंग्रेज़ ने चीन के आधिपत्य को तिब्बत पर क़ायम किया क़ानूनी ढंग से और उसको असल में चलाया खुद क्योंकि वे चीन की तरफ़ हो कर बोल सकते थे, काम कर लेते थे।

और, इनका यह नया तरीक़ा नहीं। हिन्दुस्तान में भी जब उन्होंने अपनी हुकूमत क़ायम की तो शुरू में उन्होंने अपने नाम से राज नहीं चलाया। राज चलाया मुग़ल के नाम पर और खुद बन गये मेनेजर। बंगाल में जब उन्होंने अपनी पहली हुकूमत क़ायम की तो पहले ५-१० बरस तक अंग्रेज़ों की सीधी हुकूमत नहीं थी। वह तो नवाब की थी और नवाब के नाम पर ये मेनेजर बन गये, मुनीम बन गये। यह अंग्रेजों का तरीक़ा रहा, और हर अक़लमन्द क़ौम का यही रहता है जो दुनिया के ऊपर—अक़लमन्द मत कहो, अक़लमन्द और बदमाश क़ौम का—राज करना चाहती है।

जब चीनी लोग अंग्रेज़ों की नज़ीर देते हैं कि अंग्रेज़ों ने मान ली थी तिब्बत के ऊपर चीन की सत्ता, तो अंग्रेज़ों ने तो इसीलिए मानी कि चीन का राजा कमज़ोर, नपुंसक था इसलिए उसकी सत्ता मान ली और उस सत्ता का इस्तेमाल इन्होंने खुद किया। तिब्बत के ऊपर इनका सिक्का चलता था। तो, अंग्रेज़ों का तिब्बत के ऊपर चीन की सत्ता मान लेना कोई भी मतलब नहीं रखता। यह तो १८वीं सदी की होड़ का नतीजा रहा है। उनके अपने अन्तर्राष्ट्रीय रिश्तों को चलाने तरीक़ों का नतीजा रहा है।

और, जब चीन वाले कहते हैं कि यह मेकमोहन रेखा तो अंग्रेज़ों की बनायी हुई है, साम्राज्यशाही रेखा है तो मैं खुद भी कहता हूँ कि यह साम्राज्यशाही रेखा है, मेकमोहन रेखा उसकी असली रेखा नहीं। असली रेखा बनानी है तो कहीं और बनेगी। पहले तो मैं यह सबब बतलाना चाहता हूँ कि मेकमोहन रेखा तो अंग्रेज़ों की बनायी हुई है, साम्राज्यशाही की है, लेकिन तिब्बत के ऊपर चीन का आधिपत्य साबित करने के लिए अंग्रेज़ों के क़ायदे-क़ानून और जुमलों और अंग्रेज़ों की लिखी हुई बातों को क्यों चीनी लोग इतनी अहमियत देते हैं। एक को तो कह देते हैं साम्राज्यशाही की और उन्हीं अंग्रेज़ों की बातों को सिर पर चढ़ा कर कहते हैं नज़ीर की तरह कि देखो अंग्रेज़ों ने भी मान ली, तुम कौन होते हो इसे इनकार करने वाले। मैं कहना चाहता हूँ कि तिब्बत के ऊपर चीन की प्रभुसत्ता मानने के लिए अंग्रेज़ों की साम्राज्यशाही चालें बहुत बड़ा सबब रही हैं और इसलिए उनको ले कर कोई खास उदाहरण नहीं दिया जा सकता।

इस मेकमोहन रेखा के मामले मे तिब्बत का जो कैलाश मानसरोवर वग़ैरह का इलाक़ा है—मनसर का एक प्रमाण मैंने दिया ही है—उसके अलावा मोटा-सा सवाल है। कौन क़ौम है जो अपने बड़े देवी देवताओं को परदेश में बसाया करती है? छोटे-मोटे को बसा भी दें लेकिन बड़ों को, शिव और पार्वती को परदेश में बसाएँ? यह कभी हुआ है?

उन्हें कब बसाया, मैं नहीं कह सकता। शिव पार्वती के क़िस्से कब गढ़े गये? मैं तो बिलकुल एक आधुनिक आदमी की तरह बोल रहा हूँ। हो सकता है कि कुछ आधुनिक लोग कहें कि अन्तर्राष्ट्रीय बहस में, कूटनीति की बहस में शिव पार्वती को क्यों लाते हो। मैं यह मान कर चलता हूँ कि ये क़िस्से कभी भी गढ़े, कभी भी ये क़िस्से बनाये गये, हिन्दुस्तानियों ने बनाये। कब बनाये इसके ऊपर तहक़ीकात करो। मान लो ४००-५०० बरस पहले बनाये या ४-५ हज़ार बरस पहले। जब भी ये क़िस्से बनाये गये तब कैलाश और मानसरोवर हिन्दुस्तान का हिस्सा ज़रूर रहा होगा। तभी तो कैलाश और मानसरोवर में इन बड़े देवी देवताओं को बसाया; नहीं तो और कहीं नहीं बसाते। खाली पिछले २-३ सौ बरस की टूटी-फूटी, सड़ी किसी संधि को, दस्तावेज़ को ले कर साबित कर देना कि तिब्बत चीन के साथ जुड़ा हुआ है, यह कोई मतलब नहीं रखता है। तिब्बत में कैलाश और मानसरोवर का इलाक़ा है। कैलाश और मानसरोवर हिन्दुस्तान का कभी न कभी रहा होगा। यह बात बिलकुल तय है। एक तो मनसर की सबब से और दूसरे कैलाश मानसरोवर की सबब से। और खैर, ज़मीन का ढलाव वग़ैरह तो है ही। मानसरोवर से जो नदियाँ निकलती हैं वे हिन्दुस्तान की तरफ़ बहती हैं। जो चीन की तरफ़ बहती हैं मान लो जल स्रोत या पानी का बहाव वे ज़मीन का ढलाव, ये सबब जो होते हैं, उनके ऊपर हिन्दुस्तानी और चीनी अफ़सरों ने बड़ी लम्बी चौड़ी बातें की हैं। वह इलाक़ा ले लो जहाँ की नदियाँ चीन की तरफ़ बहती हैं। लेकिन इधर जो बहती हैं, वह तो बिलकुल साफ़ कैलाश और मानसरोवर और पूर्ववाहिनी ब्रह्मपुत्र का इलाक़ा है।

इसीलिए, बार-बार मुझ जैसे लोगों ने कहा है कि मेकमोहन रेखा हिन्दुस्तान और चीन की रेखा तो है ही नहीं, थी नहीं, हो नहीं सकती, होनी नहीं चाहिए। अगर तिब्बत आज़ाद रहता है तब हम अपने कैलाश और मानसरोवर के इलाक़े को जो कभी हिन्दुस्तान के राजकीय हिस्से थे, तिब्बत की रखवाली में रख सकते हैं, क्योंकि तिब्बत हमारा भाई है नेपाल की ही तरह क़रीब-क़रीब। लेकिन अगर तिब्बत आज़ाद नहीं रहता है तब हिन्दुस्तान और चीन की सीमा रेखा मेकमोहन न हो करके और ७०-८०-९० मील उत्तर जा करके जहाँ पर कि कैलाश और मानसरोवर हैं, होती है। हो सकता है कि कुछ कहें कि यहाँ तो १५ अगस्त १९४७ की रक्षा कर ही नहीं पाते, जो १९४७ को मिला था उसकी रक्षा नहीं कर पाते, उसमें भी ८ सितम्बर और ७ नवम्बर चल रहे हैं और तुम तो मेकमोहन से भी ७० मील, ८० मील दूर उत्तर जा रहे हो। इस पर मेरा एक छोटा ही सा जवाब होगा। हिन्दुस्तान की गद्दी पर हमेशा नपुंसक लोग नहीं बैठे रहेंगे। इसके अलावा मेरा और कोई जवाब नहीं है। हिन्दुस्तान की जनता कभी न कभी इन मामलों के ऊपर सोच-विचार करके तय करेगी।

एक खबर मैं आपको दे दूँ। एक नक़्शा हम लोगों की तरफ़ से बना है जो इस चीज़ को सामने लाता है। उस नक़्शे को सिर्फ़ छाप देने से कोई बात हासिल हो जाती

है सो नहीं, लेकिन आखिर चीनियों ने भी तो अपने नक़्शे छापे जो भूल के, लड़ाने के, ग़लती के हैं और यह तो एक सही नक़्शा है। अगर आपको यह नक़्शा पसंद हो तो उसे लीजिए सिर्फ़ शौक़ के लिए नहीं, बल्कि आप इस नक़्शे को अपने घर की दीवार पर टाँग कर रखें ताकि यह चीज आपकी आँखों के सामने और दिमाग़ के सामने हमेशा रहे। मैं नहीं चाहता कि तिब्बत का वह हिस्सा कैलाश और मानसरोवर वाला, हिन्दुस्तान में मिला दिया जाए। यह मेरी पहली ख्वाहिश नहीं। मेरी पहली ख्वाहिश है कि तिब्बत आजाद हो क्योंकि तिब्बत की गुलामी ने ही हम लोगों को इस संकट के दलदल में फाँसा है, और तिब्बत को गुलाम हो जाने दिया १३ बरस पहले। यही हिन्दुस्तान की सबसे बड़ी बेवक़ूफ़ी, नालायक़ी, हर दृष्टि से, विश्व शांति की दृष्टि से और खुद हिन्दुस्तान की दृष्टि से, बहुत बड़ा खराब और गंदा क़दम रहा है।

यह हुई कुछ भाई हिमालय के बारे में मोटी बातें। एक चीज से आप जरूर बच कर रहना कि इस इलाक़े के बारे में—हिमालय, भाई हिमालय और भारतीय हिमालय—एक ग़लतफ़हमी चीनियों ने बड़ी अच्छी तरह से फैलायी, असल में शुरूआत उन्होंने नहीं की। शुरूआत तो की है दूसरो ने। मेरी समझ से जो यह पादरी—क्रिस्तान पादरी हुआ करते थे—बड़े लायक़ हुआ करते थे। कोई-कोई इतिहास भी पढ़ा करते थे, किताबें लिखते थे। उन्होंने खोज-खाज कर एक बात को निकाला कि हिमालय के इलाक़े में मंगोल लोग बसते हैं। हम भी इसी इतिहास को पढ़ते हैं। हमारे बच्चों को क़रीब-क़रीब हर स्कूल, कालेज में क्या सिखाया जाता है? शुरू का जो हिस्सा है इतिहास का, उसमें बताया जाता है कि आर्य, मंगोल, द्रविड ये सब जातियाँ थीं जो अलग-अलग इलाक़ो मे बसी हुई हैं और इधर-उधर फैलती हैं और हिमालय के इलाक़े में जो लोग बसे हुए हैं नेपाली या तिब्बती या मोनपा या अभोर या डाफला इन सबको मंगोल नाम दिया जाता है। और हम ४५ करोड़ हिन्दुस्तानी भी इस ग़लतफ़हमी के शिकार बन जाते हैं। प्रत्यक्ष अपनी आँखों से देखते हैं कि चीनी का पीला रंग, चपटी नाक, तिरछी आँखें और हिमालय के लोगो का पीला रंग, चपटी नाक और तिरछी आँखें। हिमालय के उन लोगों को छोड़ दीजिए जो भारतीय हिमालय के, कश्मीर के या कुछ हिमाचल प्रदेश और पंजाब के इलाक़े में पड़ते हैं, लेकिन ज्यादातर ये तिरछी आँख और चपटी नाक और पीले रंग ने इतना सितम ढाया है हिन्दुस्तानी दिमाग़ के ऊपर कि वह सोच बैठा है कि हिमालय तो ऐसे लोगों से बसा हुआ है कि जो चीनियों के साथ ज्यादा नजदीक हैं।

इस संबंध में मैं एक बात बता दूं कि परदेशी को जब हम देखते हैं, अगर बड़ी सावधानी से न देखें, खूब ग़ौर करके उसके एक-एक अंग को, तब तक परदेशी के नखशिख को पहचानने में बड़ी कठिनाई हुआ करती है। अपने आपस के जो देशी लोग हैं उनको देख लेना तो आसान होता है। उनका क्या नखशिख है, उनका क्या रंग है, पहचानने भी लगते हैं क्योंकि दिन-रात उनको देखा करते हैं। लेकिन परदेशी सामने आया जैसे बर्मी है,

चीनी है, तिब्बती है, नेपाली है तो इतना फ़ौरन आँखें हमारे दिमाग़ को संदेशा पहुँचा देती हैं कि यह परदेशी है, और जहाँ यह संदेशा पहुँचा कि यह परदेशी है कि आँखें और दिमाग़ दोनों ढीले पड़ जाते हैं, ज्यादा ग़ौर से देखते नहीं, समझ बैठते हैं सब एक जैसे हैं, तिरछी आँखें, चपटी नाक, पीला रंग वग़ैरह, वग़ैरह। अगर हम ग़ौर से देखें जिस तरह से हम अपने देश में ग़ौर से देखते हैं या उनको जिनके साथ बहुत ज्यादा नाता-रिश्ता रहा है ग़ौर से देखते हैं तो फ़र्क़ मालूम पड़ जाएँगे।

वास्तव में देखा जाए तो हिमालय के इलाक़े में जो लोग बसते हैं उनका चीनियों के साथ शारीरिक संबंध भी क़रीब-क़रीब नहीं है। दिमाग़ी तो है ही नहीं, लिखावट, भाषा का है ही नहीं, लेकिन शारीरिक संबंध तक भी नहीं है। जिन्हें आप मंगोल कहते हो, मंगोलिया के लोग, कुबलाई खाँ और चंगेज़ खाँ वाले लोग, उन मंगोलों के साथ चीनियों का बहुत कम रिश्ता है। ६० करोड़ चीनी जनसंख्या में से तीन चौथाई से बल्कि सच पूछो तो ६० करोड़ में ५० करोड़ के आसपास—४५–५० करोड़ दो जातियों से बनी हैं जिनका आधार था ३-४ हज़ार बरस पहले; एक तो हान जाति और एक मंचू जाति। मंगोल से उसका कोई ताल्लुक़ नहीं था। और हिमालय के इलाक़े में जो लोग बसते हैं, उनका ३-४-५ हज़ार बरस पहले कोई संबंध मंगोल वग़ैरह से शायद रहा हो; हान और मंचू से तो बिलकुल नहीं था हालाँकि मुझे उसमें भी शक है, अभी जो मैंने परदेशी वाला तर्क बताया उसके कारण। लेकिन पिछले ३ हज़ार बरस में तो यह तर्क बिलकुल ग़लत है, क्योंकि पिछले ३ हज़ार बरस में रक्त-बीज के सिद्धान्त ने बहुत ज्यादा काम किया है।

रक्त-बीज का सिद्धान्त क्या है? जिस तरह से पौधों का बीज होता है, उसी तरह से अलग-अलग क़ौमों और नसलों को मिलाने का जो रक्तबीज होता है, उसकी सबब से यह हिमालय का इलाक़ा बिलकुल ही मंगोल या चीन से अलग पड़ गया है और यह इलाक़ा नख और शिख के हिसाब से अपनी अलग खास हैसियत रखता है जो हैसियत उसकी अपनी खुद की है। मैं उसे मानता हूँ, लेकिन अगर किसी के नज़दीक है तो वह ज्यादा हिन्दुस्तान के नज़दीक है। शारीरिक ढंग से भी नज़दीक है। भाई हिमालय के इलाक़ों को तो आप जानते ही हो, लेकिन तिब्बत और नेपाल वाला इलाक़ा, भूटान वाला इलाक़ा और उसके साथ—मैं तो खैर, चीन की मौजूदा ताक़त को देखते हुए, यह बात ज़रा बड़े मुँह की हो जाएगी हालाँकि ताक़त तो क्या उसकी है, हमारी बेवक़ूफ़ी की सबब से ताक़त उसकी रही है—सिक्यांग भी जो चीन का एक सूबा है, वह भी चीन से दूर है, शायद इस हिमालय वाले इलाक़े के नज़दीक हो और उस मानी में हिन्दुस्तान के भी नज़दीक हो। तो इन सब बातो पर ध्यान करते हुए मैं आप सब लोगों से अर्ज़ करूँगा कि हिमालय के इस पूरे चित्र को अपनी आँखों के सामने रखें।

जो दो श्लोक उसी बद्रीनाथ की यात्रा में, संस्कृत के अध्यापक ने मुझे सुनाये और कम से कम १२-१५-२० दफ़े सुना होगा, उनका दिमाग़ पर असर रहा। वे याद भी रह गये। बद्रीनाथ का पूरा रास्ता, जोशीमठ है क़रीब ७००० फीट की ऊँचाई पर, वहाँ तक तो अभी मोटर पहुँच जाती है। जोशीमठ अब नाम पड़ गया है। लोग कहते हैं कि शंकराचार्य ने जब उसे बसाया था तो ज्योतिमंठ था। ज्योतिर्मठ से जोशीमठ हो गया। तो, जोशीमठ तक मोटर जाती है। उसके बाद ७ हज़ार से १२ हज़ार फ़ीट तक पैदल जाना पड़ता है। बड़े सुहावने दृश्य मिलते हैं जो दिमाग़ पर हमेशा का असर डालने वाले हैं, और शांति का कितना ज़बरदस्त असर पड़ता है। कहीं छोटे-मोटे झरने, पानी ज़रा-ज़रा-सा सैंकड़ों जगह पहाड़ों मे, कोई पहाड़ २ हज़ार फ़ीट ऊँचा है, कहीं पर १ हज़ार फ़ीट ऊँचा है पानी के नाले बह रहे हैं, अलग-अलग जगहों के नाम बताये जा रहे हैं, कहाँ कौन-सा हिन्दुस्तान के साथ संबंध था। उसी हिमालय के बारे में कालिदास ने कुमारसंभव में जो दो सबसे पहले श्लोक लिखे हैं, फिर मैं आपको बता दूँ, संतरी वाले श्लोक नहीं, वे श्लोक हैं हिमालय की तपस्या के बारे में; देवालय तो नहीं लेकिन सारी दुनिया के लिए हिमालय की कितनी ज़बरदस्त जगह रहती है उसके बारे में। उसका अर्थ मैं पहले बता देता हूँ, फिर मैं श्लोक पढ़ दूंगा। उत्तर दिशा में एक पर्वतराज है जिसका नाम है हिमालय, जो पूर्व और पश्चिम के समुद्र में इस तरह ग़ोता लगाये बैठा है जैसे मानो दुनिया को नाप रहा हो, जिसके हज़ारों अनन्त क़िस्म के, अनेक क़िस्म के धन हैं, रत्न हैं, फिर भी एक दोष जो उसकी तक़दीर को खराब करता है, नहीं जाता, और वह है बर्फ़, हिम, जिससे उसका नाम पड़ा हिमालय। लेकिन अगर गुणों का समूह, इकट्ठा हो जाए—सब गुण हा गुण हों—तो एक दोष के होने से कुछ बिगड़ता नहीं जैसे चन्द्रमा की किरणें आती हैं तो उसके एक दोष को, धब्बे को, वे छिपा लिया करती हैं। अब मैं यह दो श्लोक पढ़ देता हूँ। मैंने कई बार अध्यापकों से कहा कि आप कोशिश करो, पता लगाओ, चीनी साहित्य में, वाङमय में, चीनी कथाओं, किवदंतियों में भी, कि हिमालय के लिए कुछ है क्या ? कोई कविता इस ढंग की है, इस पैमाने की या इस तरह के क़िस्से कहानियाँ हैं। अभी तक किसी ने मुझको वह ढूंढ़ कर नहीं दिया। शायद है भी नहीं। इस पैमाने का तो खैर है ही नहीं, लेकिन कोई छोटे पैमाने का भी नहीं है। अगर कोई हिन्दुस्तानी विद्यार्थी या प्रोफ़ेसर इस काम को करे तो बड़ा अच्छा होगा। एक तरफ़ तो पिछले ३-४ हज़ार बरस का हिमालय का हिन्दुस्तानी दिमाग़ के लिए स्थान और दूसरी तरफ़ चीनी दिमाग़ के लिए हिमालय का स्थान, इसका पता चलेगा। मेरा जो खयाल है वह बिलकुल साबित हो जाएगा कि चीन का हिमालय के साथ संबंध बहुत नाज़ुक है और वह चंगेज़ ख़ाँ और कुबलाई ख़ाँ जैसों तक ही सीमित है और हिन्दुस्तान का हिमालय के साथ संबंध वैसा ही है जैसा एक देश के कई इलाक़ों का या भाई इलाक़े का। वे श्लोक हैं :

अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवात्मा हियालयो नाम नगाधिराजः।
पूर्वापरौ तोयनिधि वगाह्यस्थितः पृथिव्या इव मानदण्डः॥

अनन्तरत्नप्रभवस्य यस्य हिमं न सौभाग्यविलोपि जातम्।
एको हि दोषो गुणसंनिपाते निमज्जतीन्दोः किरणेष्विवांकः ॥

अब इस हिमालय की रक्षा करने की बारी आ गयी। मुझे इस सिलसिले में आज नहीं कहना है। और भाषण होंगे, उनमें यह बात ज्यादा सामने आएगी लेकिन इस वक़्त कौन से हिमालय की रक्षा करने का कर्तव्य हमारा हो उठा है, यह मैंने आपके सामने रखा। अभी जो पिछले २॥–३ महीनों में चपत खायी है, उसके और सबब न बता कर, खाली इतना कहूँ कि हिन्दुस्तानी दिमाग़ में, सरकार ने खास तौर से और जनता ने भी, इस हिमालय की अवहेलना की है, जो हिमालय हमारे साहित्य, हमारी किंवदन्ती, हमारी कथाओं, हमारे देवालयों के साथ जुड़ा हुआ है, और कैसी अवहेलना की है उस वक़्त जब हिमालय के एक हिस्से पर चीनियों ने अपना क़ब्ज़ा जमाया, अक्साई चिन का रास्ता बनाने के लिए, सिक्यांग और तिब्बत से सड़क। एक बार चीन ने अपनी प्रभुसत्ता तिब्बत पर क़ायम करने के लिए अपना सबसे बड़ा जरनैल सेनापति भेजा था, यह दिखाने के लिए कि हम तिब्बत के मालिक हैं। वह सरसेनापति किस रास्ते से आया था? गंगटोक के रास्ते आया था। हिन्दुस्तान ने उसे रास्ता दिया था, और यह तो आज ही मुझे किसी ने बताया कि दलाई लामा ने, जब अंग्रेज़ी राज खतम हुआ और चीनियों ने तिब्बत की तरफ़ आँखें उठायीं, तो चार खत लिखे थे। एक अंग्रेज़ों को, एक अमरीकियों को, एक हिन्दुस्तान को और चौथा किसे, यह उन साहब को याद नहीं रहा। दलाई लामा की एक किताब निकली है। अभी वह हिन्दुस्तान में काफ़ी संख्या में नहीं आयी है। सभी का यही जवाब आया—अमरीका का तो यह कि बड़ी दूर है मामला, और भौगोलिक कारणों से हम इसमें दिलचस्पी नहीं ले सकते; अंग्रेज़ों का यह कि हम अपना हाथ धो चुके हैं इस मामले से, हिन्दुस्तानी जानें और आप जानो; और हिन्दुस्तानियों का जवाब कि अच्छा हुआ, आप चीनियों से दोस्ती कर लो। एक राक्षस ने एक नन्हे बच्चे की हत्या की थी। जिस वक़्त यह हत्या हुई थी, उस वक़्त हिन्दुस्तान में बहुत कम लोग बोले। प्रायः सभी अचेत थे, चीन से दोस्ती करने की इतनी उत्कट इच्छा हो रही थी कि सब नीति, सब धर्म, सब आदर्श भूल कर न सिर्फ़ चुप रहे, बल्कि उस हत्या में किसी हद तक मदद पहुँचायी, यह कह कर कि चीन से समझौता कर लो, चीन से दोस्ती कर लो।

और लद्दाख के इलाक़े पर जब दूसरी बार चीन ने क़ब्ज़ा किया, १३ बरस पहले तिब्बत पर, ६–७ बरस पहले लद्दाख पर, और सिक्यांग और तिब्बत में सड़क बनाने के लिए लद्दाख का इस्तेमाल किया, तब दिल्ली सरकार के अफ़सरों ने क्या कहा था? वह जुमला भी अपने मुँह से निकालना बहुत ही गंदी चीज़ है। मैं समझ नहीं सकता कि किसी हिन्दुस्तानी के मुँह से वह जुमला निकल कैसे सकता है, सो भी प्रधान मंत्री के मुँह से। वह था कि लद्दाख का कुछ इलाक़ा जो चीनियों के क़ब्ज़े में चला गया है, वह ऐसा है, पथरीला है ऊसर है, और उस पर घास की एक दूब तक उगती नहीं। इसमें कई

दोष हैं। एक दोष हो और कई गुण हों तो वह तो छिप जाता है। इसमें तो दोष ही दोष हैं। मातृभाषा का कोई भी टुकड़ा परदेशियों के हाथ मे चला जाए तब उसके बारे में निरादर के शब्द कहना सपूत का काम नहीं, कपूत का काम है। जब वह परदेशियों के क़बज़े में न रहे, अपना हो, स्वतन्त्र हो, खुद मुखतारी वहाँ पर हो, तब उसको सुधारने के लिए जो भी आप बोलो, लेकिन जब वह परदेशियों के क़बज़े में चला जाए उस वक़्त उसका निरादर करना क्या मतलब रखता है। सिर्फ़ इतना हो नहीं, हम इतिहास को ले करके और आज के भूगोल और आज के आर्थिक जीवन को ले कर बड़े गुमान के साथ बातें कर दिया करते हैं कि फ़लाना हिस्सा तो मतलब रखता है, फ़लाना हिस्सा नहीं रखता, यह ज़मीन पथरीली, वह ज़मीन खराब है, सो अब ऐसी बातें कहना बन्द करो। एक तरफ़ तो कहेंगे दुनिया बदल रही है, तेज़ी से बदल रही है, अणुशस्त्र बन रहे हैं, विज्ञान बढ़ रहा है, और दूसरी तरफ़ ज़मीन के बारे में इस तरह से मज़बूती के साथ एक पुराने खयाल को बताएँ, क्या मतलब रखता है? खाली घास ही उगा करती है! हो सकता है कि वही ज़मीन औरो के हाथ में जा कर कुछ ऐसी चीज़ें पैदा कर दे कि जिससे बाद मे हिन्दुस्तान की सरकार को सोचना पड़े, कहना पड़े कि अरे वह हिस्सा तो बड़ा ही मतलब वाला था, क्योंकि खाली घास ही तो नहीं उगा करती, कई दफ़े खनिज पदार्थ भी मिल जाया करते हैं, कई दफ़े न जाने और कौन-सी चीज़ें मिल जाया करती है। उस मानी में भी यह जुमला खराब है।

जो कुछ भी हिमालय के बारे में बातें हुई हैं इधर १३ बरस में, वे इतनी गंदी हुई हैं कि जब तक उनके ऊपर सोच-विचार करके हिन्दुस्तान के लोग अपना दिमाग़ नहीं बनाते, तब तक यह मामला आगे बढ़ने वाला नहीं, ठीक होने वाला नहीं। कभी हम दुरुस्त कर पाएँगे? इस सवाल को तो मैं कल परसों उठाऊँगा। जो नीतियाँ हैं विदेश और रणनीति, उन्हें भी बाद में ही उठाऊँगा। अभी खाली बार-बार मैं यही कह करके बात खतम करता हूँ कि यह हिमालय, निचला पूरा का पूरा और मध्य हिमालय का काफ़ी बड़ा हिस्सा हिन्दुस्तान का अंग रहा है, राजकीय अंग रहा है, और बाक़ी जितना हिमालय है तिब्बत, नेपाल जैसा, वह भाई हिमालय रहा है, चीन का उससे कोई सरोकार नहीं रहा, और इसी हिमालय की रक्षा करना ताक़त का सवाल है। वह ताक़त किस तरह की होगी, कब आएगी यह बात अलग है लेकिन कम से कम हम अपना दिमाग़ तो बनाएँ कि हिमालय कौन? अगर हमारे दिमाग़ में वह फ़ितूर बना रह गया तिब्बत वाला, अंग्रेज़ी साम्राज्यशाही के दस्तावेज़ों वाला, मंगोल वाला या यह कि एक उधर वाली ताक़त के साथ दोस्ती रखने के लिए इन सब सच्चे मामलों के ऊपर पर्दा डाल देना है, तब हम हिमालय पर कुछ भी सोच समझ नहीं पाएँगे।

आज के भाषण को मैं यही खतम करता हूँ यही कह करके कि आप इस हिमालय की रक्षा के लिए तैयार रहो, और इतना यह भी याद रखना कि अभी एक हिमालय

बचाओ सम्मेलन हुआ था तो उसमें एक संकल्प पास हुआ था। अगर आपको ये बातें पसंद आयी हों, और आप हिमालय बचाओ सम्मेलन को मदद देना चाहते हो तो उसके सदस्य बनना। उसका कोई विधान नहीं है, कोई लम्बे-चौड़े क़ानून नहीं हैं। अलग-अलग इलाक़ों से खूब सदस्य बनाओ, कमेटियाँ बनाओ। हो सकता है कि दिल्ली में कोई बड़ी ताक़त हिमालय बचाओ वाली खड़ी हो जाए जो कि यहाँ के लोगों का भी मन बदले, बाक़ी हिन्दुस्तान का मन बदले, तो कोई चीज़ हाथ लगे।

—१९६३, जनवरी २; दिल्ली; भाषण।

आर्थिक, विदेश और रणनीति

कल मुझसे एक ग़लती हो गयी। सभापति जी, आप मुझे एक घंटे में रोक दीजिए ताकि अगर आप में से कोई कुछ कहना चाहें या सवाल जवाब या विवाद हो तो हो सके। बोलने वाले में और सुनने वाले में अगर संबंध रहता है तो अच्छा नतीजा निकलता है और यहाँ आने के पहले ही मुझे उसका एक प्रमाण मिला। अध्यापक विनय मिश्र ने मुझे दसवीं सदी के एक कवि राजशेखर का एक सूत्र सुनाया। उसका मतलब होता है कि कन्या कुमारी से ले कर बिन्दु सरोवर तक राज करने वाला चक्रवर्ती होता है, और कोई नहीं, चक्रवर्ती राजा की परिभाषा। बिन्दु सरोवर उस ज़माने में मानसरोवर का नाम था। दसवीं सदी के काफ़ी बड़े प्रमाण का मैं ज़िक्र कर रहा हूँ। चाहे पराये लोग, इस साहित्यिक प्रमाण को न मानें, लेकिन हिन्दुस्तान के लिए तो यह काफ़ी होना चाहिए और ख़ास तौर से मैंने आपके सामने यह अर्ज़ भी किया कि पिछले हज़ार बरस में तो हिन्दुस्तान गिरा हुआ, पड़ा हुआ रहा है। इसलिए तिब्बत वग़ैरह के मामलों में वह ठीक काम नहीं कर पाया और अंग्रेज़ी साम्राज्यशाही के भी चक्कर में पिछले १००-१२५-१५० बरस में रहा।

अब मैं आज के विषय पर बोलने के पहले ख़ाली कल वाले दो-तीन वाक्य आपको याद दिला दूँ। एक तो यह कि हिमालय ने भारत की कभी भी रक्षा नहीं की। हमेशा जब कभी भारत सुखी रहा है तो वह इतना बली भी रहा है कि उसने हिमालय की रक्षा की। आम तौर से जो बात मशहूर है हिमालय के बारे में, ठीक उससे उलट बात सही है कि सशक्त भारत को हिमालय की रक्षा करनी पड़ी है हमेशा। और भाई हिमालय में क़रीब २ करोड़ आदमी बसते हैं और भारतीय हिमालय से क़रीब १ करोड़ आदमी; सब मिला-कर ३ करोड़।

आज की विदेश नीति, रणनीति और अर्थ नीति पर सोचते वक़्त हमें एक तसवीर अपनी आँखों के सामने रखनी चाहिए, ऐसी तीन नहरें जो एक दूसरे के साथ जुड़ी हुई हैं और अगर एक का पानी कम है तो लाज़मी तौर से दूसरे का पानी कम होगा। ऐसा मुम-किन है कि कभी थोड़े समय के लिए एक नहर को बाँध दो तो उसमें पानी ज़्यादा दिखाई

पड़ेगा और दूसरी में कम, लेकिन वह थोड़े ही समय के लिए हो सकता है और जहाँ पानी का आना-जाना स्वभाव की तरह से रहा, वहाँ वह क़रीब-क़रीब बराबर ही रहेगा। इसलिए, आज कल जो बात बड़े ज़ोरों से चल पड़ी है कि चीन ने हमला हिन्दुस्तान पर किया क्योंकि हिन्दुस्तान की आर्थिक प्रगति से चीन को जलन होने लगी, यह बिलकुल झूठ है। आर्थिक प्रगति कहाँ, कौन-सी ? जलन होना चाहिए तो उलट, लेकिन सिर्फ़ अपने दोष को छुपाने के लिए ग़लत काकण बता दिये जाते हैं और जनता के दिमाग़ में वही ग़लत कारण घसे रह जाते हैं। चीन ने बुनियादी, आर्थिक ढाँचे में हमसे कम से कम तो दो गुना, तीन गुना नहीं तो, तरक्क़ी की। ऐसी सूरत में, ग़लत कारण बता कर, जनता के दिमाग़ को कमज़ोर बना कर हम आगे बढ़ नहीं पाएँगे।

अब वह लड़ाई बंद है, जो लड़ाई कभी शुरू ही नहीं हुई। इसीलिए, हमें मौक़ा मिला है कि इन सब मामलों पर हम अपना दिमाग़ ख़ूब ठंडा करके सोचें। एक बड़ी दिक्क़त आ जाती है कि जब कभी हम लोग असलियत पर सोच विचार करते हैं तो अपने राष्ट्रीय अभिमान को ठेस लग जाया करती है, कभी-कभी झूठा राष्ट्रीय अभिमान, और उसके कारण हमारा सोचना रुक जाता है। वैसा कम से कम आज न हो।

क्या बात है कि हमारी ये तीनों नहरें इतने कम पानी की रहीं। सबसे बड़ा सबब यह है कि आज़ाद हिन्दुस्तान ने पिछले १२-१३ बरस में पुराने ढर्रों से टूट नहीं की, और एक मामले को छोड़ कर बाक़ी सब मामलों में अंग्रेज़ी राज की नक़ल चलती रही। यह तो पिछले कई सौ बरसों का हमारा सिलसिला है कि हम अपनी राजनीति में एक अजीब किस्म की स्थिरता और धारावाहिकता चलाते हैं। कोई ज़माना आए-जाए, लेकिन कुछ बड़ी-बड़ी बातें एक जैसी चलती रहती हैं, उनमें फ़र्क़ नहीं पड़ता, टूट नहीं आती। १३-१४ बरस पहले टूट आ जानी चाहिए थी। एक नया हिन्दुस्तान बना। नये तरीक़े पर क़रीब-क़रीब हर बड़े विषय पर हमको सोचना और काम करना चाहिए था। तब ताक़त बन पाती। वह नहीं हुआ।

सबसे बड़ी मिसाल सेना के बारे में है। चाहे जितना राष्ट्रीय अभिमान को ठेस लगे, कम से कम आज मौक़ा है जबकि लड़ाई बंद है कि हम इन सब मसलों पर सोचें ताकि अगली दफ़ा धोखा न हो पाए। हमेशा कहा जाता है कि हिन्दुस्तान की सेना ने अपनी सुनहली परम्पराओं और गाथाओं को निभाया। कौन-सी सुनहली परम्पराएँ, कौन-सी सुनहली गाथाएँ ? कब थी यह हिन्दुस्तान की सेना ? हमेशा कहने वालों का मतलब होता है, हिन्दुस्तान की वह सेना जो अंग्रेज़ी राज में अंग्रेज़ अफ़सरों ने बनायी थी और जिसने फ्रांस में या अफ्रीका के या दूसरे किसी मैदान में कुछ करतब दिखाये थे। अब मैं आपको दिल्ली सरकार के मौजूदा राजा, जो उस ज़माने की सुनहली परम्पराओं और गाथाओं को याद करके इतना ख़ुश हो लिया करते है, उन्हीं के शब्द याद दिलाऊँ जो

अंग्रेजों से लड़ते वक़्त इस सेना के बारे में कहा करते थे। वे कहते थे, ये तो भात सिपाही हैं, क्योंकि पेट भर खाने को नहीं मिलता इसलिए अंग्रेज़ी सेना में भरती हो कर ये देश के बाहर लड़ने जाया करते हैं। १५ बरस पहले ये भात सिपाही थे, आज यह सुनहली गाथा-वाली हिन्दुस्तान की पलटन हैं। किस तरह से मौजूदा शासक वर्ग ने थूके हुए को चाटा है। यह क्या चीज़ है? असल में यह सेना क्या है? यह सही है कि हिन्दुस्तानी सिपाही अंग्रेज़ी राज के १०० बरस में वक़्त-वक़्त पर अच्छा लड़े, शारीरिक वीरता दिखायी, आगे भी शायद दिखा सकते हैं, लेकिन इसे नहीं भूल जाना चाहिए कि उन्होंने जो कुछ भी वीरता अंग्रेज़ी ज़माने में दिखायी थी, वह अंग्रेज़ी अफ़सरों की मातहती में अंग्रेज़ी राज के सिपाही बन कर। उनके पीछे अंग्रेज़ों की आर्थिक व्यवस्था, अंग्रेज़ों के कारखाने, रानी विक्टोरिया या रानी एलिज़ाबेथ और अंग्रेज़ी अफ़सर रहा करते थे।

जिस हिन्दुस्तानी पलटन की तारीफ़ करते-करते, परम्परा और गाथाओं के मामले में आज के राष्ट्रीय नेता अघाते नहीं, उन्हें भूल नहीं जाना चाहिए कि इस पलटन के पीछे उस वक़्त कौन थे? अब न विक्टोरिया है, न एलिज़ाबेथ, न अंग्रेज़ों के कारखाने हैं और न अंग्रेज़ी अफ़सर। अब तो एक तरफ़ हिन्दुस्तानी सिपाही हैं और दूसरी तरफ़ हिन्दुस्तान की सरकार, हिन्दुस्तान के अफ़सर। इस पलटन के बारे में बिलकुल नये ढंग से सोच-विचार करना पड़ेगा। सेला से बमडिला और दूसरे इलाक़े में ५ दिन में चीनी पलटन १५० मील तय कर लेती है, मानो वह चहलक़दमी करने निकली है, घूमने निकली है। क्या चीज़ है? उसके अलावा, हमारी मातृभूमि के ३५ हज़ार वर्ग मील चले जाते हैं कितने नुक़सान पर? अफ़वाहें तो बहुत हैं, लेकिन जो अधिकृत आँकड़े दिये गये हैं, उनके हिसाब से कोई ३००–४०० आदमी मरे और १५००-१७०० घायल हुए। मान लो थोड़ी देर के लिए कि सब मर गये, तो भी हर हालत में २ हज़ार से ज़्यादा नहीं पहुँचते। ३५,००० वर्ग मील ज़मीन हाथ से खसक जाए और २,००० आदमी मरे। क्या चीज़ है, कहाँ है, कौन-सी पलटन है?

इस पलटन को सचमुच हमें आज़ाद हिन्दुस्तान के अनुरूप बनाना है तो फिर उस सुनहली याद को छोड़ देना पड़ेगा। अब तो आग की शकल हमको अपनी आँखो के सामने रखनी पड़ेगी। कैसे अफ़सर? बिलकुल साफ़ बात है कि हिन्दुस्तानी पलटन का अफ़सर आज मध्यम वर्ग से आता है। मध्यम वर्ग में दो हिस्से हैं। एक मध्यम वर्ग तो ज़रा कड़े दिल का कुछ अपने कर्त्तव्य को पूरी तरह से निभाने वाला और दूसरा मध्यम वर्ग जो अपने लड़कों को अच्छी तनख़्वाह और कुछ रुतबा और आदर और सम्मान दिलाने के लिए पलटन को भी उसी तरह पेशा समझता है जिस तरह से और पेशा हो। १५-२० बरस तक तो खूब आदर और सम्मान पाते रहो। और मज़े में खूब नाचते-गाते रहो और दायें-बायें करते रहो; फिर जब मौक़ा आए तो सोचो कि हम तो आये थे आदर और सम्मान पाने के लिए। अफ़सरों के बारे में हमें बहुत बुनियादी तौर से सोचना पड़ेगा। हिन्दुस्तानी सिपाही

अगर भारत सिपाही होते हुए इतना बहादुर हो सकता था, तो अब आजाद हिन्दुस्तान का सिपाही बन करके उससे दुगना, चौगुना बहादुर हो सकता था, बशर्ते कि उसको अच्छी नेताई मिले, अफ़सरी अच्छी मिले।

मुझे जरनेलों के बारे में इस वक्त ज्यादा नहीं कहना है : जरनेलों के साथ बहुत खिलवाड़ हुआ है, ऐसा कहा जाता है। मैं पक्का नहीं कह सकता। किस मंत्री ने किस जरनेल के साथ कितना खिलवाड़ किया या जरनेल ने मंत्री के साथ किया, वह बात अलग है। हर हालत में यह खिलवाड होना नहीं चाहिए। चाहे और क्षेत्रों में जाति बिरादरी को ले कर तरक्की होती रहे, लेकिन कम से कम पलटन के मामले में तो अपनी रिश्तेदारी के सबब से तरक्की देने का काम नहीं होना चाहिए। उससे तो पलटन खतम हो जाती है। और, अफ़सरी के मामले में मैं एक सवाल पूछना चाहता हूँ कि जरनेल, मेजर जरनेल वग़ैरह और फिर ब्रिगेडियर तक के जो हमारे अफ़सर हैं, उनमें से कितने किस अनुपात में पलटन की नीचे से नीची कडी से अनुभव और योग्यता के कारण तरक्की पाये हैं और कुल कितने हैं जो सिर्फ़ अपनी पढ़ाई-लिखाई के कारण तरक्की पाये हैं। पढ़ाई-लिखाई तो हिन्दुस्तान की इतनी सड़ गयी है, अंग्रेज़ी भाषा के मामले में, और नाचने-गाने के मामले में, और कांटा-छुरी इस्तेमाल करने में, कि इन तीनों चीज़ों में उनकी काफ़ी योग्यता है। और नेताई करने में उनकी कैसी योग्यता है उसका कोई अन्दाज नहीं रहता। मैं जानता हूँ कि बहुत-से बड़े-बड़े नेता हैं, बहुत ऊँचे जगहों पर हैं, जो किसी जरनेल की तारीफ़ करते-करते कह दिया करते हैं, वह जरनेल तो बड़ा लायक़ है क्योंकि वह बड़ी बढ़िया अंग्रेज़ी बोल लेता है। पर चीनी अंग्रेज़ी सुन कर तो नहीं हट जाएँगे ? उन्हें तो योग्यता चाहिए। आपने सुना ही होगा कि पिछली बडी लड़ाई में रोमेल, जो शायद सबसे बड़ा जरनेल था, उसकी तरक्की बिलकुल नीचे दर्जे से ऊपरले दर्जे तक हुई। अभी तक मुझे आज़ाद हिन्दुस्तान का कोई जरनेल नहीं मालूम है कि जो सिपाही हो कर ऊपर पहुँचा। वही तबक़े, वही गुट, वही गिरोह मध्यम वर्ग के, या ज़मींदारी गुट के बचपन से कुछ खास ढंग से उठना, बैठना, बोलना जानते हैं, वे अफ़सर बन जाते हैं।

अंग्रेज़ अफ़सर दूसरा था। अंग्रेज़ जब यहाँ आता था हिन्दुस्तान में पलटन की अफ़सरी करने तो वह ज्यादातर किस तबक़े का होता था ? साधारण जनता का बल्कि साधारण से भी साधारण, नहीं तो हिन्दुस्तान में आ कर वह सिपाहीगिरी क्यों करने बैठता। वह मामूली आदमी होता था लेकिन उसका मन दूसरे क़िसम का बन जाता था और वह हिन्दुस्तानी सिपाही को नेतागिरी दे सकता था। अब जरूरत है हमें ऐसे अफ़सरों की जो हिन्दुस्तानी पलटन को नेताई दे सकें। इस मामले में बिलकुल बुनियादी परिवर्तन और हेरफ़ेर होना चाहिए। मैं फिर से अपना वह सवाल दोहराये देता हूँ, कि मैं हिन्दुस्तान के जो सबसे बड़े २-३ हजार अफ़सर हैं, उनमें उस अनुपात को जानना चाहता हूँ कि कितने तो पलटन मे नीचे से ले कर ऊपर तक तरक्की पाये हैं, अपनी क़ाबिलियत

और अनुभव के आधार पर, और कितने शुरू से ही अफ़सर रहे हैं और तरक्की पाते गये, क्योंकि बूढ़े होते गये इसलिए तरक्क़ी पाते गये और जरनेल हो गये वग़ैरह, वग़ैरह।

अब, यह सही है कि हथियारों का ज़िक्र हुआ। उसे मैं कोई ज़्यादा महत्त्व नहीं देता। चीनी सेना और हिन्दुस्तानी सेना के हथियारों में कोई विशेष अन्तर नहीं था। यह हो सकता है कि जितनी हिन्दुस्तानी सेना अपने खुद के गठन के कारण कमज़ोर रही, उससे ज़्यादा कमज़ोरी आयी है सरकारी नेतृत्व की दुविधा के कारण। सरकार ठीक तरह से फ़ैसला नहीं कर पायी। क्षण-क्षण में उसका फ़ैसला बदला। कभी तो क्षण में उसकी छाती इतनी फूली है कि उसने एलानिया सारी दुनिया को संदेशा दिया कि खदेड़ो चीनी सिपाहियों को, और कभी खुद खदेड़े गये तो इतनी ज़्यादा छाती सिकुड़ गयी कि गले में घिग्घी बँध गयी, जनता को बोलते वक़्त पता ही नहीं रहा कि अब क्या है। फिर जब चीनियों ने अपनी तरफ़ से एकतरफ़ा गोलीबंदी की तो मालूम होता है कि छाती फिर से फूल गयी कि जान बची लाखों पाये। सरकार का जो नेतृत्व रहा है, वह इतना बोदू और इतना दुविधा वाला रहा है। पलटन ऐसे नेतृत्व को ले कर आगे नहीं बढ़ सकती। और, मैं मोटी तरह से बात कह दूँ कि जहाँ चीनी पलटन के जमाव थे जैसे तिब्बत के पठार पर, या जितने भी हमारे पास पलटनी साधन थे उन सबके प्रयोग से लड़ाई क्यों नहीं लड़ी गयी ? अगर कोई मुझे यह बताता है कि शुरू-शुरू में हम कमज़ोर थे इसलिए ऐसा नहीं हुआ तब तो मैं उस बात को किसी हद तक समझ सकता हूँ, लेकिन उसका असर अब यह है कि दिल्ली सरकार की राजकीय, राजनीतिक दृष्टि में यह फ़र्क़ था कि लड़ाई लड़ो हाथ खींच करके, तब मुझे कहना पड़ता है कि वह पलटन तो कमज़ोर होगी ही। लड़ाई या तो लड़ो मत और लड़ो तो फिर हाथ खींच कर मत लड़ो, हाथ खोल कर लड़ो।

और वह दुविधा बड़ी ज़बरदस्त रही। कुछ हम लोगों की तरफ़ से यानी जनता की तरफ़ से भी दुविधा रही। रणनीति के बारे में सोचते हुए इस पर ज़रूर ध्यान देना चाहिए। हिन्दुस्तानी मन कुछ अच्छे कारणों से, कुछ बुरे कारणों से आकस्मिक मौत से ज़रा घबराता है, उसे अच्छी नहीं लगती और कुछ ही मौत हो जाने पर वह मैदान छोड़ने के लिए तैयार-सा हो जाता है। हममे कइयों का मन बहुत उछला था कि चीनियों से कुछ जम कर लड़ा जाए। मेरा मन तो नहीं उछला था। लेकिन बहुत ही ठंडे दिमाग़ से मैंने सोचा था कि १५ अगस्त १९४७ में हमारी जो सीमा थी वह मिलनी चाहिए। जिन लोगों का मन उछला था उन्हें यह पता नहीं था कि अगर सचमुच खुली और पूरी लड़ाई हो जाती तो क्या-क्या नतीजे निकल सकते हैं ? हो सकता है कि अस्पताल हमारे इतने न होते कि घायलों की सबकी मरहमपट्टी हो सकती, हो सकता है हमारे शहरों पर बम गिराये जाते, या गोली वर्षा होती। उसके लिए मन मज़बूत होना चाहिए। जब एक दफ़े निकल पड़े तो आख़िर तक इसको निभाएँगे और जैसे भी हो, इसको ख़तम करेंगे, ऐसा मन नहीं था।

इसी के साथ-साथ एक और दिमाग़ी कमज़ोरी आयी। गाँधी जी खुद तो नहीं, लेकिन गांधीवाद, जो पिछले १३-१४ बरस का गांधीवाद रहा है, एक तो सरकारी गांधीवाद और दूसरा मठों का गांधीवाद, उन दोनों गांधीवादों में आप एक अजीब चीज़ पाओगे कि जहाँ ये पिटते हैं, वहाँ आत्मबल की याद आने लगती है, जहाँ खदेड़े जाते हैं वहाँ अहिंसा याद आने लगती है। अहिंसा को याद करने का वक़्त वह नहीं है जब पिट जाओ। अहिंसा को याद करने का वक़्त वह है जब लड़ाई शुरू न करो या पलटन को बरखास्त करो। आपने तो शायद उन सब प्रयत्नों को देखा नहीं होगा, पढ़ा नहीं होगा, जो इस वक़्त चल रहे हैं। इस लड़ाई के मामले में अहिंसा के पुट को डालने की मठी गांधीवादियों की तरफ़ से एक बात बड़ी फैली है कि कभी दुनिया में ऐसा हुआ है कि विजयी पलटन ख़ुदबख़ुद पीछे हट जाए जैसा चीनी लोग पीछे हट गये, जीत चुके थे, आगे बढ़ सकते थे लेकिन फिर भी पीछे हट गये, क्या बात है? इस पर खुद उन्होंने जवाब दिया कि विश्व मन बन रहा है, सारी दुनिया में एक मन बन रहा है, लोग चाहे लुढ़कते हुए ही क्यों न हों, अहिंसा की तरफ़ जा रहे हैं, पसंद नहीं करते मारपीट, लड़ाई और युद्ध। इसलिए चीन को इस विश्वमन के दबाव के कारण विजयी हो जाने के बाद भी पीछे हटना पड़ा। मैं ऐसे लोगों से इतिहास की बहस नहीं करूँगा। नहीं तो लोग कहेंगे, यह अपना ज्ञान दिखा रहा है अज्ञानियों के सामने। लेकिन ख़ाली इनको इतना ही बता दूं कि ऐ अशोक के देश वालो, २,३०० बरस पहले जीत जाने पर भी कलिंग से पीछे क्यों हटा था अशोक, या १९ वीं सदी में सोलफरीनो मजेन्टा में पलटन जीत जाने के बाद पीछे क्यों हटी, या अंग्रेज़ों की और फ्रांसीसियों की और यहूदियों की पलटनें कुछ इलाक़ों पर क़ब्ज़ा करने के बाद पीछे क्यों हटी, या सन् '२३ में जर्मनी की पलटन रूस पर क़ब्ज़ा करने के बाद पीछे क्यो हटी? २,३०० बरस से लगा कर अब तक कुछ ही उदाहरण मैंने दिये। ऐसे न जाने कितने और गिनाये जा सकते हैं। लोग पीछे हट जाते हैं कई कारणों से।

मैं तो एक कारण बता चुका हूँ। यह न समझना कि वह अकेला कारण है, एक है। कई कारण हैं, तीन, चार, पाँच हैं। एक यह भी है कि चीनियों को शायद लगा कि और ज़्यादा आगे बढ़ेंगे, तो दिल्ली की सरकार, ढुलमुल सरकार, लुढ़क जाएगी और इसकी जगह पर कोई मज़बूत सरकार आ जाएगी। यह भी तो एक सबब हो सकता है। इस पर लोगों ने ध्यान नहीं दिया। याद करो, बमडीला और वालोंग के वक़्त लोगों का मन कितना उखड़ा था, और जब मैं लोगों का मन कहता हूँ, तो उसमें पलटन भी शामिल है, सरकार के दूसरे अंग भी शामिल हैं, खुद सरकारी पार्टी के लोग शामिल हैं। सब का मन उखड़ा हुआ था। अगर कहीं चीनी महाराज थोड़ा और आगे बढ़ जाता, तेजपुर ले लेता, गौहाटी ले लेता, तब जनता का मन कितना उखड़ जाता और उखड़ जाने पर न जाने वह सरकार को भी कितना उखाड़ देता। चीनी पीछे क्यों हटे, इस पर लम्बी

बहस मत चलाओ। अहिंसा की बहस अगर चलाना है, तो मैं इतना कह दूं कि मैं न तो सरकारी गांधीवादी हूँ और न मठी गांधीवादी हूँ। अगर मैं आज अपने को गांधीवादी कहूँ तो सब चिल्ला पड़ेंगे, कहेंगे, क्या तुम बकवास कर रहे हो। इसलिए मैं अपने को कुजात गांधीवादी कहता हूं, ऐसा गांधीवादी जो मौजूदा अधिकृत गांधीवादियों के दरबार में जाने के लायक़ नहीं है और अगर जाने की कोशिश करे तो निकाल दिया जाएगा।

यहां मैं अहिंसा के बारे में एक बात और कह देना चाहता हूं, कि इधर २-३ महीनों में जो मन में ग्लानि हुई उसके बाद जो सोच-विचार मैंने किया, उससे इस नतीजे पर पहुँचा हूं कि इस सदी के जो दो बड़े मौलिक आविष्कार हुए हैं, एक, महात्मा गांधी और दूसरा, अणुबम या हाईड्रोजन बम ये दोनों इतने ज़्यादा अलग नहीं हैं जितने कि लोग समझते हैं। कुछ तो अलग हैं ही। कहां अलगाव है उसे मैं आपको बताये देता हूं, लेकिन कहां दोनों एक ही धारा, एक ही गंगोत्री, से निकलते हैं, मैं पहले उसे बता दूं। वह है अन्याय का प्रतिकार, जुल्म और अन्याय से लड़ना और जूझना और आखिर तक जूझना। दिमाग़ की जो ऐसी तबियत है, उससे महात्मा गांधी भी निकलते हैं और हाइड्रोजन बम भी निकलता है। दोनों में फ़र्क़ इतना है कि महात्मा गांधी तो खाली अन्याय का प्रतिकार है, और हाइड्रोजन बम अन्याय का प्रतिकार भी है और अन्याय करने वाला भी है—अन्याय करता है और अन्याय से लड़ता भी है। दोनों काम करता है, यह फ़र्क़ है। तो, मुझसे बन पड़े या आपसे बन पड़े तो हमें जरूर उद्जन बम और हाइड्रोजन बम और अणुबम से लड़ना चाहिए, उन्हें खतम करना चाहिए। सिर्फ़ उन्हीं से नहीं। यह भी मैं चेतावनी दे दूं कि जब हथियारों से लड़ने निकलो तब सभी हथियारों से लड़ो। खाली ये बम नहीं, यहां तक कि गोली, पिस्तौल और बन्दूक़ भी। अगर वे रह गये तो उसमें और अणुबम में अबकी बार दुनिया को ४-६ महीने से ज़्यादा नहीं लगेंगे, कुछ ही महीने लगेंगे बल्कि। मान लो आज दुनिया में सब बम खतम कर दिये जाएँ लेकिन पिस्तौल, बन्दूक़ रह जाएं तो रूस और अमरीका जैसे देश तो दो-तीन महीने के अन्दर फिर से अपना अणुबम पैदा कर कर लेंगे। जैसे पुराने ज़माने में समझो ५ सौ बरस या ६ सौ बरस लग गये, वैसे अब समय नहीं लगने वाला है।

अहिंसा के मामले में बिलकुल दिल कड़ा करके अब हमें सोचना चाहिए। इस वक़्त तो मैं सोचने को तैयार नहीं हूं, इसलिए कि हमारी मातृभूमि का एक हिस्सा विदेशियों ने अपने क़ब्ज़े में कर लिया और जब तक वह वापिस नहीं होता, तब तक जिस तरीक़े पर अब तक हिन्दुस्तान का राज्य निर्भर है, उसको बदलना मुशकिल है। अगर १९४७ में पलटन बरखास्त कर दी गयी होती और हिन्दुस्तान की जनता से कहा गया होता कि अब सेना नहीं रहेगी, अब हिंसा से हम अपनी मातृभूमि की रक्षा नहीं करेंगे, अब दूसरे रास्ते पर आओ, निकालो वो दूसरे रास्ते अन्याय से लड़ने के, अन्दरूनी अन्याय से लड़ने के लिए सत्याग्रह और अन्तर्राष्ट्रीय अन्याय से लड़ने के लिए भी आओ, चलो,

रास्ता निकालो। फिर, सन् ४७ और ६२ के बीच में जो १५ बरस बीते, उनमें राज्य को और जनता को, दोनों को अनुभव हुआ होता दिमाग़ से और कर्म से कि किस तरह देश की अहिंसक रक्षा, सुरक्षा हो सकती है। हालाँकि, मैं पहले आपको यह भी बता दूँ कि सन् ६२ तक मामला नहीं आता, क्योंकि सन् ५४-५५ में जब लद्दाख पर क़बज़ा हुआ था, तभी कुछ मामला भिड़ जाता अगर सचमुच अहिंसा होती तो, या यों कहो सन् ४९ में जब तिब्बत के ऊपर चीन ने क़बज़ा जमाया तभी झगड़ा होता अगर अहिंसक तरीक़े पर चलते। मुझे उस अहिंसा पर बड़ी हँसी आती है जो देश के सभी अन्यायों को, सभी ज़ुल्म और अत्याचारों को बड़े मज़े में निगल जाए और चिल्लाते रहो अहिंसा, निरस्त्रीकरण। और जो सरकार दूसरे और तीसरे दर्जे के हथियारों को खरीद-खरीद कर अपनी पलटन को बनाती है, छोटी-मोटी रक़में ले करके उसके ऊपर चलती रहे, ऐसी अहिंसा और गांधीवाद से हम लोगों को कोई खास रिश्ता रखना नहीं चाहिए। वह तो बिलकुल नक़ली बात हो जाती है। पर हाँ, अगर मुझ जैसे आदमी अन्दरूनी अन्याय से लड़ते-लड़ते हिन्दुस्तान में जनता की निगाहों में एक हैसियत पा जाते कि ये हैं गांधीवादी, तो मैं बहुत खुल कर कहना चाहता हूँ कि मेरा दिमाग़ अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में भी अहिंसक प्रतिकार की तरफ़ जाता। लेकिन आज नहीं जाता है। आज तो गांधीवादी, चाहे नक़ली ही क्यों न हो, दूसरे लोग हैं। रुतबा उनको मिला हुआ है मठी गद्दी उनको, सरकारी गद्दी उनको। हम अन्दरूनी अन्याय से लड़ ही नहीं पा रहे हैं और फट से कहते हो कि चलो अन्तर्राष्ट्रीय मामले में अहिंसा इस्तेमाल करो।

यह रणनीति कमज़ोर रह गयी, पलटन कमज़ोर रह गयी, पर विदेश नीति बहुत अच्छी रही है, मज़बूत रही है, ऐसा सोचना तार्किक ढंग से ग़लत होगा और दरअसल भी ग़लत होगा। आज़ाद हिन्दुस्तान को तीन बड़ी पूँजी मिली थीं। जो कोई हिन्दुस्तान के बाहर घूमने जाते हैं, उन्हें यह बात मालूम है। एक, जनसंख्या, बड़ी जनसंख्या, बड़ा देश; दूसरे, महात्मा गांधी; तीसरे, पुराना देश, वेदों का देश। अगर गधा भी दिल्ली की गद्दी पर बैठता, तो इन तीन पूँजियों को ले कर वह ज़रूर इज्ज़त पाता और शुरू-शुरू में हिन्दुस्तान की भी इज्ज़त करता और करवाता। ये तीन बड़ी पूँजियाँ थीं लेकिन इन तीन पूँजियों के रहते हुए विदेश नीति में जो हमारी आज हैसियत और क़िस्मत है, उस पर सोच-विचार करो।

कुछ ही दिनों में लंका की प्रधानमंत्री श्रीमाव बंडारनायके आ रही हैं। वे समझौते के प्रस्तावों पर बातचीत करेंगी दिल्ली सरकार से कि किस तरह चीन के साथ समझौता हिन्दुस्तान करे। और वही नहीं, उनके जैसे कुछ और लोग भी आ रहे हैं जैसे घाना के एन्क्रूमा साहब, बर्मा वाले और मिस्र वाले आदि। श्रीमाव के बारे में एक चीज़ मैं ज़रूर कह देना चाहता हूँ, और सिर्फ उन्हीं के बारे में नहीं, हमारे लिए भी वह लागू होती है, थोड़ा-बहुत दुनिया के हर हिस्से के लिए लागू होती है, लेकिन गोरे लोगों के लिए

उतनी नहीं जितनी हम रंगीन लोगों के लिए। वह यह कि हम अपनी विदेश नीति को इस ढंग से चलाते हैं कि उससे हमारी देशी हैसियत कुछ मज़बूत हो जाए। गोरे लोग इस काम को इतनी गंदगी से नहीं करते जितना हम लोग करते हैं। विदेश नीति को ऐसे चलाओ कि जिससे देश के अन्दर अपनी वोट, अपनी ताक़त, बढ़ी हुई रहे और बढ़ती रहे। हिन्दुस्तान में तो आप बिलकुल साफ़ देख ही रहे हो कि किस तरह यह हिन्दुस्तान-चीन की लड़ाई, दो देशों की लड़ाई न हो कर मुल्क के अन्दर दो गिरोहों की लड़ाई हो गयी है, कि किस तरह से वामपंथी और दक्षिण पंथी, जो भी मतलब हो इन दोनों शब्दों का, आपसी ताक़त के अनुपात को घटाते-बढ़ाते रहे हैं। श्रीमती बंडारनायके से बहुत अदब के साथ मैं एक सवाल पूछना चाहूँगा। मेरा सवाल उन तक पहुँच जाए, अगर अखबार वाले पहुँचा दें कि कहीं लंका की अन्दरूनी राजनीति का तो असर नहीं पड़ रहा है कि वहाँ जो डडली सेनानायक की पार्टी है, वह अतलांतिक खेमे के साथ जुड़ी हुई है, जो हर किसी साम्यवाद के शिकार के साथ एक क्षण में सहानुभूति प्रकट कर देती है इसलिए अगर हिन्दुस्तान के साथ कहीं सहानुभूति का नद खुल गया तो शायद सेनानायक की ताक़त बढ़ जाए और उसकी वोट बढ़ जाए। खैर।

आपसे मैं यह भी बता दूं कि श्री कृष्ण मेनन को ले कर केरल में और तमिलनाड में अभी जो हुआ, वह बड़ा बढ़िया उदाहरण है अन्दरूनी राजनीति का, क्योंकि केरल में एक तरफ़ शंकर साहब हैं और दूसरी तरफ़ कम्युनिस्टों के साथ जुड़े हुए लोग हैं। शंकर साहब जो कि कांग्रेस पार्टी के इस वक़्त मुख्य मंत्री हैं, उनसे आपसी टकराव ऐसा है कि बिचारे का प्रोग्राम १०–१५ दिन का बना था, लेकिन अन्त में वह खतम कर दिया गया, क्योंकि मुख्यमंत्री साहब नहीं चाहते थे। उनको डर लग गया था कि कहीं वे आएँ तो अन्दरूनी ताक़त के अनुपात को बदल डालें। तमिलनाड में इसका उलट हुआ, क्योंकि वहाँ पर श्री कामराज नाडार को इसका डर नहीं था कि कम्यूनिस्टों के पक्ष में ताक़त का अनुपात बदल जाएगा, बल्कि इस बात का अनुमान था कि अगर ये आएँ तो द्रविड मुनेत्र खषगम जैसे लोगों की ताक़त का अनुपात घट जाएगा।

देशी राजनीति का कितना ज़बरदस्त असर विदेश राजनीति पर पड़ा करता है, इस पर ध्यान देना हम सबके लिए ज़रूरी होता है। मैं अदब से श्रीमती बंडारनायके से कहूँगा कि वे अपने दिमाग़ को टटोलें, और ऐसी बात है तो मेहरबानी करके इस हिन्द-चीन मामले में नये सिरे से सोच करके जो न्यायपक्ष है, उसको लें।

राष्ट्रीय हित, मैं समझता हूँ आज दुनिया में हिन्दुस्तान को छोड़ कर बाक़ी हर देश के लिए सर्वोपरि है। उसके बाद सब चीज़ें आती हैं, विदेश नीति, आदर्श, विश्व-सरकार, विश्व संगठन। ये सब आदर्श हैं। कम या ज्यादा दूसरे देशों में भी हैं। लेकिन कोई देश हिन्दुस्तान के सिवाय ऐसा नहीं है जो इन आदर्शों को इतना ज्यादा अपना ले,

ज़्यादा नहीं कहना चाहिए, इतना ज़्यादा शाब्दिक ढंग पर, अपना ले कि अपने राष्ट्रहित को भूल जाए। मिसाल के लिए, मैं एक सवाल पूछता हूँ कि चीन ने नेपाल और बर्मा के साथ सीमा का समझौता इतनी जल्दी और इतना अच्छा क्यों कर लिया? यह सही है कि उसका बड़ा बुरा नतीजा निकला है, दुनिया के काफ़ी लोग समझते हैं कि चीन तो उदार है, कुछ ले-दे कर समझौता कर लेता है, देखो कितनी जल्दी इसने बर्मा के साथ कर लिया, नेपाल के साथ कर लिया, मंगोलिया के साथ भी कर रहा है, और हिन्दुस्तान कितना उखड़ा हुआ है कि या कितना ज़िद्दी है, कितना तेज़ है कि वह चीन के साथ समझौता नहीं कर रहा है। असलियत क्या है? चीन को इस बात का बिलकुल पता था कि अगर वह नेपाल और बर्मा पर चढ़ाई कर देता है, उनकी ज़मीन में ज़रा भी घुस पड़ता है तो बर्मी और नेपाली एक क्षण के लिए नहीं झिझकेंगे और जिस किसी से, जहाँ कहीं से, जो कोई मदद मिल सकेगी, उसे तार से, बेतार से फ़ौरन मँगा लेंगे, चाहे सिपाही हो, चाहे हथियार हो, चाहे जो कुछ हो। तो चीन क्या नादान है कि वह बर्मा और नेपाल के साथ वही बर्ताव करे, जो हमारे साथ करता है। चीन को पता था कि हिन्दुस्तान की ज़मीन में घुस आओ और धीरे-धीरे उसने घुस कर देख भी लिया था अक्साई चिन और लद्दाख वाली ज़मीन में कि कुछ नतीजा तो होता नहीं इसलिए और घुस लो। हिन्दुस्तानी लोग तो धीरे-धीरे फ़ैसला करते रहेंगे कि अब हथियार लें या न लें, दूसरा फ़ैसला कि ख़रीद कर लें या न लें; तीसरा फ़ैसला कि उधार लें या न लें; फिर चौथा फ़ैसला कि हवाई जहाज़ सिखाने वाले लें या न लें; फिर अगर मामला बढ़ा तो पाँचवाँ फ़ैसला कि हाँ, सिपाही भी ले लिये जाएँ। बर्मा और नेपाल के लिए यह बात लागू नहीं होती। राष्ट्रहित उनके लिए सर्वोपरि होता है।

नसर साहब का जो मिस्र देश है, वहाँ पर भी यह बात लागू होती है कि मिस्र अपने अरबी मामले को हल करने के लिए अपनी विदेश नीति बहुत कुछ चलाता है, और उसका अरबी मामला है कि यमन, सऊदी अरब जो भी ज़मींदारी वाले और पीछे देखू देश हैं, उनको किस तरह से आगे देखू अरबी राष्ट्रीयता में बाँध सके।

मैं यह मानने को तैयार नहीं कि हिन्दुस्तानी विदेश महक़मे की तरफ़ से ग़लतियाँ बड़े पैमाने की नहीं हुई हैं। एक बात का अनुमान नहीं है, वह तो बिलकुल प्रत्यक्ष है कि हिन्दुस्तान के विदेश महक़मे में सिद्धांत इतना नहीं चलता है, जितना कि मनमानी। दोनों में बड़ा फ़र्क़ होता है। मैं नहीं कहता कि बिलकुल सख़्त, कट्टर और कठोर सिद्धांत बना लो कि दायें-बायें भटकने का बिलकुल मौक़ा ही न रहे। मिसाल के लिए अलजीरिया की वक़्ती हुकूमत को माना जाए या न माना जाए इस बात को ले कर जिस तरह से हिन्दुस्तान की सरकार बोला करती थी उससे साफ़ साबित हो जाता है कि उसके सिद्धांत वग़ैरह कुछ नहीं। सरकार कहती थी कि अलजीरिया की सरकार तो आख़िर हमारी दोस्त सरकार है, हमने ख़ुद आज़ादी की लड़ाई लड़ी, वह भी लड़ रहे हैं, वह हमारे दोस्त

हैं और असल में तो हम उनको हर तरह की मदद पहुँचा रहे हैं—क्या मदद पहुँचा रहे हैं, यही कि १५–२०–२५ हज़ार के कम्बल भेजे हैं—लेकिन अगर हम उनको क़ानूनी तौर से मान लेते हैं तो इसमें क्या फ़ायदा होता है। फिर फ्रांस के ऊपर जो दबाव हम डाल सकते हैं, अलजीरिया की आज़ादी के लिए, वह न डाल पाएँ, इससे तो अलजीरिया का नुक़सान ही हो जाएगा।

हिन्दुस्तानी दिमाग़ को ऐसी बातें बड़ी अच्छी लगती हैं। क्यों? वह सोचता है कि यह आदमी कैसा जज की तरह बोल रहा है, दोनों तरफ़ की बात कह रहा है। मुझ जैसा आदमी तो सिद्धांत की बात कहेगा, एक तरफ़ा बात कहेगा और आप सोच बैठेंगे, यह आदमी कितना ज़िद्दी है, एकतरफ़ा बोल रहा है, और जज साहब तो कह रहे हैं, हाँ, यह भी ठीक है, वह भी ठीक है, एक मानी में तो हम उनके साथ हैं ही, दूसरे मानी में नहीं हैं। तो दोनों तरफ़ के लोगों को खुश कर लिया हिन्दुस्तान ने। बाक़ी दुनिया पर क्या असर पड़ता है इसे छोड़ दीजिए। लोगों ने नक़ली तौर पर सोचा कि यह जज बोल रहा है लेकिन देशी राजनीति और विदेश राजनीति में जजी से कभी कोई शक्ति नहीं बना करती। शक्ति बनती है हमेशा किसी चीज़ को पकड़ कर, किसी सिद्धांत को अपना कर। सिद्धांत में ढीलाढालापन रखो अगर आपकी इच्छा होती हो तो, लेकिन मनमानी बड़ी चलती है।

पूर्व जर्मनी के साथ भी ऐसा ही हुआ। पूर्व जर्मनी सोवियत खेमे में है। और अगर हम पूर्व जर्मनी को मान्यता देते तो इसमें कोई शक नहीं कि अतलांतिक खेमा बहुत नाराज़ होता। लेकिन जिस सिद्धांत पर हमने सभी सरकारों को मान्यता दी जो अपने मुल्क में क़ाबिज़ हैं, उस सिद्धांत पर पूर्व जर्मनी की सरकार को मान्यता देनी चाहिए थी।

क्योंकि हमने डेढ़ बरस तक लगातार अलजीरिया की वक्ती हुकूमत को मान्यता नहीं दी, इसलिए जिसे अफ्रीका-एशिया वाला रंगीन इलाक़ा कहा जाता है, उसके कई देश हमसे नाराज़ भी हुए, चिढ़े कुछ हँसे। उनका मन उतरा। पाकिस्तान जिसके बारे में हिन्दुस्तान के लोग हमेशा नाक-भौं चढ़ा कर कहा करते हैं कि यह तो अमरीकियों के हाथ बिक गया है जुड़ गया है; उसने अलजीरिया की सरकार को साल-डेढ़ साल पहले ही मान्यता दी थी और हिन्दुस्तान की सरकार ने आखिर में जब अलजीरिया की सरकार क़रीब-क़रीब क़ाबिज़ हो गयी तब जा कर मान्यता दी।

मुझे ऐसा शक है कि हिन्दुस्तान के विदेश महकमे के लोग, बड़े से ले कर छोटे तक अपने-आप को गुरु समझते हैं और आस-पास पड़ोस के देशों को चेला। इन्हें गुरु होना चाहिए था, मेरी भी यही राय है। गुरु बनने का इनको हक़ था। लेकिन गुरु वही बन सकता है जो चेले के साथ बराबरी करे, खासतौर से अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में और खासतौर से अफ्रीकी-एशियाई देशों में जो रंगीन हैं, ताज़ा-ताज़ा आज़ाद हुए हैं। गोरा तो फिर भी

सह लेता है, क्योंकि पुराना है, उमर का लिहाज़ करता है, सिद्धान्तों को समझता है, उसकी ताक़त है, थोड़ा-बहुत अपमान सह लेता है। लेकिन काला तो हमारी ही तरह से कमज़ोर है, अपमान सह नहीं पाता। और अगर काले देशों के विदेश मंत्रियों और प्रधान मंत्रियों को ज़रा आदर और सत्कार के साथ क़रोब-क़रीब ऐसा बोल करके कि भई, हम गुरु नहीं, तुम गुरु हो, आओ बातें कर लो और दूसरे ढंग से सिलसिला चलता तो शायद मामला अच्छी तरह चल पाता।

यह तो मैंने ऊपरी विदेश नीति की कमज़ोरी बतायी। अब इन सब के पीछे सिद्धान्तों की जो कमी रही है विदेश नीति के मामले में, उसे आप आज़ादी पाने के ही वर्ष से अब तक गिन सकते हो। इन १३-१४ बरस के इतिहास में मुझे सिर्फ़ एक ही चीज़ सुनहली लगती है और बाक़ी सब धुंधली या काली। सुनहली चीज़ है हिन्देशिया के बारे में। हिन्देशिया की आज़ादी की दाई हिन्दुस्तान थी, और यह बहुत बड़ी पदवी मैंने दी है। इस मानी में मैंने हिन्दुस्तान के विदेश-मंत्री की बहुत बड़ी तारीफ़ की है कि एक देश की आज़ादी की वह दाई बने। जहाँ उन्होंने एक अच्छा काम किया, उसको मैं स्वीकारता हूँ। बाक़ी काम कैसे रहे? सबसे पहली बात यह कि जब विश्व-युद्ध ख़तम हुआ उस वक़्त हिन्दुस्तान आज़ाद हुआ। जिस हिन्दुस्तान के नेताओं ने लड़ाई के ज़माने में कहा था कि जर्मनी और जापान के ख़िलाफ़ एक पाई, एक आदमी देना हराम है, उन्होंने मंत्री बन जाने के बाद, जापान और जर्मनी से क़ानूनी लड़ाई कई बरसों तक चलायी क्योंकि अंग्रेज़ों की भी लड़ाई थी जापान और जर्मनी से। जब तक संधि नहीं हो जाया करती, लड़ाई थम जाने के बाद भी क़ानूनी लड़ाई चलती रहती है। और हिन्दुस्तान की भी लड़ाई जापान और जर्मनी से चलती रही। हमें क्या मतलब था उस लड़ाई से? हमारे लिए कौन था विजयी और कौन था विजेता? हमें तो एक बढ़िय -सा एलान करना चाहिए था कि आज़ाद हिन्दुस्तान पूरे मनुष्य समाज में कोई फ़रक़ नहीं करता, न कोई हारा, न कोई जीता, हम सबके लिए बराबर हैं, हम एक नयी दुनिया बनाना चाहते हैं जिसमें न कोई विजयी है, न कोई विजेता।

इस सम्बन्ध में एक मिसाल दे दूँ। १९१८ में या १७ में रूस में लेनिन आया था और उसने ईरान वग़ैरह की संधियोंऔर सुलहनामों को जला दिया था, पुराने ढर्रे से टूट की थी। उसी तरह से हिन्दुस्तान में भी गाँधी जी के लायक़ अगर हुकूमत होती तो कहती, ख़तम करो इस पुराने अध्याय को, कम से कम हमें इससे कोई मतलब नहीं और जर्मनी, जापान से हमें किसी तरह का हरजाना लेना पसद नहीं। जर्मनी से, जापान से भी कुछ कम तादाद में, अरबों रुपयों का हरजाना रूस, और अंग्रेज ने लिया। मैं समझता हूँ, जर्मनी की मशीनों की क़ीमत मोटी तौर पर कोई ५०-६० अरब रुपये रही होगी जो इन लोगों ने ली। हिन्दुस्तान ने भी शेर के शिकार में गीदड़ का हिस्सा लिया, ३-४ करोड़ का।

वह मौक़ा था जब हिन्दुस्तान की सरकार एलान के ज़रिये, कम से कम जापान और जर्मनी की जनता के मन को हमेशा के लिए मोह सकती थी। सरकारों के साथ इस वक़्त मेरा मतलब नहीं, जनता से है। याद रहती यह चीज़, ५-१० बरस नहीं, ५०-१०० बरस याद रहती। और इन सब चीज़ों का असर पड़ा करता है, व्यापार पर पड़ता है, वैज्ञानिकों पर पड़ता है, इंजीनियरों पर पड़ता है। ये लोग जब हिन्दुस्तान में आ कर काम करते हैं तो फिर दूसरे मन से काम करते हैं। रूस के या पूर्व जर्मनी या पोलैंड के हज़ारों की तादाद में इंजीनियर और तकनीकी लोग—रूस के तो ८० हज़ार तकनीकी और इंजीनीयर लोग चीन में एक बार काम करते थे—आये, अच्छी तरह से काम किया, मन से किया, क्योंकि उन्हें एक नयी दुनिया बनानी थी। उसी ढंग का कोई हिसाब यहाँ भी चल सकता था।

इस संबंध में एक घटना मुझे सुनने को मिली थी वह कहाँ तक सही है लेकिन बहुत बड़े लोगों से सुनने को मिली थी, विदेश में यह १९४८ के आसपास का क़िस्सा है। मैं १९५१ में अमरीका गया था तब आइन्स्टाईन या उनके दरबार वालों से सुना था मैंने, या १९४९ में उनके कुछ दोस्तों से सुना था, अब ठीक से याद नहीं आ रहा है, कि बीसों की तादाद में, उनका तो कहना था सौ दो सौ, लेकिन मैं अपनी ज़बान को ज़रा नरम करके बोल रहा हूँ, बीसों की तादाद में बड़े से बड़े वैज्ञानिक और आइन्सटाईन खुद हिन्दुस्तान में आ कर वैज्ञानिक खोज करना चाहते थे। वे सरकार से सिर्फ़ एक आश्वासन माँग रहे थे कि वह उनसे युद्ध की कोई वैज्ञानिक खोज नहीं कराएगी, न दुनिया के किसी मुल्क के लिए हमें मजबूर करोगे कि हम अणु वग़ैरह की, युद्ध की कोई खोज करें।

वे इस नतीजे पर पहुँच चुके थे कि वैज्ञानिकों का धर्म होता है, कर्त्तव्य होता है कि पलटनी मामलों में उन्हें खोज नहीं करनी चाहिए। उसके लिए वे सुरक्षा चाहते थे और हिन्दुस्तान आने को तैयार थे। उन्हें इस संबंध में सिर्फ़ एक पत्र जैसा समझो, या समझौता हिन्द सरकार से चाहिए था। मामला गहरा था, यह मैं मानता हूँ, क्योंकि अगर सरकार ऐसे वैज्ञानिकों को ले लेती—और उनमें से ज़्यादातर तो वे ही होते जो अतलांतिक खेमे के हैं, क्योंकि सोवियत खेमे के वैज्ञानिक तो इतने ज़्यादा फँसे हुए हैं कि कोई वहाँ से निकल ही नहीं पाता—तो अतलांतिक खेमा बहुत ज़्यादा नाराज़ होता कि हिन्दुस्तान हमारे वैज्ञानिकों को ले रहा है। उस नाराज़ी के कुछ नतीजे भी निकल सकते थे। लेकिन मेरे जैसा आदमी कहेगा, होने देते नाराज़, नया ज़माना जो शुरू करना है। यह सब ४७-४८-४९ की बातें बतला रहा हूँ। उस मोड़ पर यह चीज़ें हो जातीं, तो हो जातीं। एक दफ़े मौक़ा चूका तो फिर से वही इनक़लाब करना पड़ता है। ये टाँय-टाँय फिस्, धीरे-धीरे लोकसभा और विधानसभा से मामला नहीं चल पाता है। मैं इस नतीजे पर पहुँच चुका हूँ।

विदेश नीति के और भी पहलू हैं। मिसाल के लिए चीन वाला यह मामला कि चीन को संयुक्त राष्ट्र संघ में भर्ती किया जाए या नहीं। यह कितने गंदे तरीक़े से हिन्दुस्तान के हाथों किया गया है। उसके जो भी कारण हों, जैसे नासमझी थी, सिद्धांत नहीं थे, चीन की ताक़त से दबे हुए थे, और रंगीन दुनिया में यह खयाल फैला हुआ था कि हम सब एशियाई अफ्रीकियों को एक साथ रहना चाहिए नहीं तो न्याय और सिद्धांत क्या कहता। शुरू से ही, १८४८-४९ से ही हिन्दुस्तान को एक बोली बोलनी चाहिए थी कि जो जिस इलाक़े में क़ाबिज़ है उसको मान्यता दो। पूरे चीन में कम्युनिस्ट हुकूमत क़ाबिज़ है, इसलिए चीन देश की मान्यता तो इस कम्युनिस्ट हुकूमत को मिलनी चाहिए, लेकिन फ़ारमोसा तैवाग पर चांग-काई-शेक क़ाबिज़ है इसलिए फ़ारमोसा की मेम्बरी उस हुकूमत को मिलनी चाहिए। जिस तरह से हिन्दुस्तान की एक मेम्बरी बँटवारा होने के बाद टूट गयी दो में—एक हिन्दुस्तान, दूसरी पाकिस्तान—उसी तरह से चीन की भी मेम्बरी दो हो जानी चाहिए थी—एक चांग-काई-शेक, फ़ारमोसा वाली, दूसरी माओत्सेतुंग चीन वाली। अगर ज्ञान और सिद्धांत के आधार पर कदम उठाया गया होता तो इस तरह करना चाहिए था। लेकिन उस वक़्त नहीं किया गया क्योंकि उस वक़्त इस बात को कहने से खतरा था कि दुनिया के बाक़ी रंगीन लोग हमें नासमझ कहते कि देखो, ये अड़ंगा डाल रहे हैं। लेकिन बुद्धिमान आदमी का काम यही है कि समय रहते अड़ंगा डाल दे, बाद में डालेंगे तो बात बिगड़ जाएगी। आठ-दस बरस तक अगर हिन्दुस्तान ने यह बातें कही होतीं १९४८ से लगा करके—८-१० बरस क्यों—१९६२ तक, तो दुनिया के काफ़ी लोगों ने इसे समझा होता, क़दर की होती, इस रास्ते को अपनाया होता। इसमें से कुछ निकल भी सकता था शायद, क्योंकि मेरा ऐसा खयाल है कि अमरीका—इंग्लिस्तान ने तो खैर चीन को मान्यता दे ही दी है कम्युनिस्ट हुकूमत को— (अमरीका इस मामले में सबसे ज़्यादा ज़िद्दी बना हुआ है, और मैं समझता हूँ कि जिस तरह का रुख़ आज अमरीका लिये हुए है वह अच्छा नहीं है। उसी तरह से एक तरफ़ गंदा है जिस तरह हिन्दुस्तान का रुख दूसरी तरफ़ से गंदा है।) में यह भावना फैल सकती थी कि कम्युनिस्ट चीन की मान्यता को रोको मत, दोनों मेम्बरी को मान लो। वीटो, रोक-वोट, के ऊपर थोड़ा-सा सवाल उठ सकता था, लेकिन वह भी हल किया जा सकता था। खैर।

इस वक़्त जो काम हिन्दुस्तान की सरकार कर रही है, वह तो मेरी समझ में हरगिज़ आता ही नहीं है। जिस वक़्त दुशमन तुम्हारी छाती पर चढ़ गया, जिस वक़्त उसने तुम्हारे देश पर हमला किया, उस वक़्त, किसी भी सिद्धांत के नाम पर, अन्तर्राष्ट्रीय जमात में उसकी मेम्बरी के लिए पैरवी करना। यह काम तो पता नहीं किसका हो सकता है। कोई भी सिद्धांत इस पर नहीं लागू हो सकता। यह कहना कि चीन को हम वहाँ ला कर थोड़ा-सा पालतू बना लेंगे; आखिर यही तो तर्क वहाँ पर चलता है कि चीन आज जंगली है और राष्ट्र संघ में आ गया तो पालतू बन जाएगा। ठीक है, इस तर्क को और मौक़े पर

चलाओ। लेकिन जब जंगली तुम्हारी गर्दन पर सवार हो, या जब तुम्हारी मातृभूमि—किस मुँह से बोलते हैं मातृभूमि, बड़ा लम्बा चौड़ा हल्ला मचा रखा है—के ऊपर चीन चढ़ आया है, उस मौक़े पर कहो, ले लो भई इसे पालतू बनाने के लिए, ज़रा मेम्बरी दे दो, तो यह कौन-सा न्याय है, कौन-सा सिद्धांत है कौन-सी अन्तर्राष्ट्रीय नीति है? और हिन्दुस्तान की जनता इतनी बेख़बर है कि इन सब मामलों में भी उसका मन इतना उठता नहीं कि वह अगर बग़ावत जैसी हालत बना दे। कैसा राष्ट्रीय अपमान है?

मैं अब विदेश नीति के और पहलुओं पर इस वक़्त न बोल कर ख़ाली आख़री सिद्धांत वाली यह बात बताये देता हूँ कि दुनिया के आपसी संबंध, देशों के आपसी संबंध, डर, लालच और आदर्श, इन तीन चीज़ों पर रहा करते हैं। हिन्दुस्तान के पास ऐसी कोई ताक़त नहीं जो दूसरों को डरा सके। अगर होगी तो शायद हिन्दुस्तान इतना ख़ूँ ख़्वार नहीं बनेगा जितना चीन बन जाता है। उसके कई सबब हैं। लालच देने जैसी कोई ताक़त भी नहीं है कि जिससे वह दूसरों को भरमा सके, ललचा सके। आदर्श ही रह जाता है। तो कौनसा आदर्श हो सकता है? आज दुनिया में सिर्फ़ दो आदर्श हैं जो दुनिया के लोगों को अपनी तरफ़ खींचते हैं। एक तो है अतलांतिक ख़ेमे का आज़ादी का आदर्श, और दूसरा है सोवियत ख़ेमे का बराबरी का आदर्श। जब हम विदेश नीति पर सोचा करें तो सैद्धांतिक मामलों पर ज्यादा सोचना ज़रूरी होता है, क्योंकि इधर-उधर के दाँव-पेंच, कतरब्योंत, पैंतरेबाज़ी में अगर हम फँस जाते हैं, तो जो जड़ की चीज़ है, उसे भूल जाया करते हैं।

आज ये दो बातें हैं—अमरीका और इंगलिस्तान का आज़ादी का चित्र और रूस और चीन का बराबरी का चित्र। अभी इस बहस में आप न पड़ें कि वहाँ कितनी आज़ादी है, वहाँ कितनी बराबरी है, लेकिन लोगों के सामने यह शकल है, अरबों आदमियों के सामने। एक ख़ेमे में इनसान की इनसान से आपसी बराबरी के आदर्श को हासिल करने की कोशिशें हो रही हैं, राज्य की तरफ़ से, दल और संगठन की तरफ़ से। इस कोशिश में राज्य बहुत ज़्यादा अपने व्यक्तियों के ऊपर दख़ल देने लग जाता है और उससे ज़ुल्म और अन्याय निकलता है। दूसरे ख़ेमे में व्यक्ति की आज़ादी की इतनी परवाह की जाती है कि राज्य या संगठन को एक हद तक ही दख़ल देने का मौक़ा दिया जाता है; उस हद से ज़्यादा नहीं। वहाँ पर हो सकता है, बराबरी के मामले में कमी रह जाती है, लेकिन शहरी आज़ादियों, बोलना, संगठन बनाना, और दूसरे मामले में, वहाँ के लोग अच्छे रहते हैं। ये दो आदर्श हैं जो लोगों को अपनी तरफ़ खींचते हैं।

पिछले १३-१४ बरस में हिन्दुस्तान ने कौन-सा तीसरा आदर्श उपस्थित किया? ख़ाली यह कह देना कि हम तो शांति नीति चलाते हैं, यह तो आदर्श होता नहीं। शांति नीति तो सभी चलाते हैं। कौन लड़ाई चाहता है? और यह शांति अजीब-सी हुई। दूसरा, पराया जो ज़रा-सा कमज़ोर दिखाई दिया तो झट से उसके ऊपर चढ़ बैठने की कोशिश

की। हाँ, अगर वह ज्यादा मजबूत निकला और एकाध अच्छी लात जमायी तो फिर शांति का सबक़ सिखाने लगे उसी को। शांति या अहिंसा या विश्व एकता की यह नीति अपने-आप एक आदर्श नहीं बन सकती। दूसरे आदर्शों का यह तो सिर्फ़ नतीजा निकल सकता है।

आदर्श तो इस वक़्त दुनिया में सिर्फ़ दो हैं—अतलांतिक खेमे का आज़ादी वाला और सोवियत खेमे का बराबरी वाला। और यह साबित भी हो गया है हमारी विदेश नीति में क्योंकि इस हिन्दुस्तान-चीन की लड़ाई में जिन देशों ने हिन्दुस्तान का साथ दिया है वे कौन हैं? बहुत गंदगी फैलायी जा रही है। बड़ा झूठ बोला जा रहा है। यह कहा जाता है कि हिन्दुस्तान की बिनलगाव नीति के कारण हिन्दुस्तान को इतना समर्थन मिल गया। असलियत क्या है? कोई ६५-७० देशों ने हिन्दुस्तान का समर्थन ज़बान से किया, काम से तो और कम हैं, चार ही पाँच हैं। ये कौन देश हैं? पचास देश ऐसे हैं जो हर हालत में—याद रखना हर हालत में—हर ऐसे देश का साथ देते हैं, जो कम्युनिस्टों का शिकार बने, क्योंकि ये ५० देश कम्युनिस्ट विरोधी हैं। वे तो साथ देंगे ही। वे थोड़े ही सोचने बैठेंगे कि चीन वाला न्यायी है या अन्यायी है उसका पक्ष क्या है। वे तो इस तरह का झगड़ा होते ही फ़ैसला कर लेते हैं कि जो कम्युनिस्टों के हमले का शिकार बना है, वह हमारा प्राकृतिक दोस्त है उसको तो मदद करनी चाहिए। इस वक़्त हिन्दुस्तान को जो मदद मिली है, वह इसलिए नहीं मिली है कि वह बिनलगाव की नीति चलाता रहा है, बल्कि इसलिए मिली है कि उस पर हमला करने वाला संयोग से कम्युनिस्ट है। ऐसे-ऐसे देश जिन पर हिन्दुस्तानी वामपंथी हमेशा नाक भौं सिकोड़ा करते थे, जैसे फ़िलीपीन, मलाया, दौड़ में सबसे आगे थे, करो भई मदद इनकी। क्यों थे, क्योंकि वे कम्युनिस्ट विरोधी देश हैं।

इससे मैं यह नतीजा नहीं निकालना चाहता हूँ कि हम लोग भी कम्युनिस्ट विरोधी बन जाएँ। हरगिज़ नहीं। मैं तो बिनलगाव की नीति का पक्का समर्थक हूँ लेकिन वैसा बिनलगाव नहीं जो आज दिल्ली की सरकार चला रही है। दिल्ली की सरकार तो अदला-बदली नौकरी की नीति चला रही है कभी इसकी नौकरी, कभी उसकी नौकरी, कभी अतलांतिक खेमे की नौकरी, कभी सोवियत खेमे की नौकरी। बिनलगाव की नीति अगर हम चलाते होते तो बहुत-से मामलों में सोच-विचार करके, बिना किसी संकोच के हम इधर या उधर होते जैसा मैंने अलजीरिया के बारे में बताया, जैसा जर्मनी का बताया, जैसा तिब्बत का बताया, जैसा हंगरी का बता सकता हूँ।

आज हम फँसे हुए हैं। हमने विदेश नीति का एक ऐसा मसला उठा लिया है कि जिसके कारण हमको हमेशा दूसरों का मुँह ताकना पड़ता है। एक तो हम मोहताज हैं रूस की रोकवोट के। अगर रूस की रोकवोट न हो तो हिन्दुस्तान-पाकिस्तान के मामले में हमारी विदेश नीति चल ही नहीं सकती। दूसरे, हम मोहताज हैं अमरीकी डालर के।

क्या खाक-पत्थर ये बिनलगाव की नीति चलाएँगे ? जो सरकार पिछले ८-१० बरस से रूस की रोकवोट और अमरीका के डालर पर मोहताज रही है उसके लिए यह संभव हो सकता है कि वह बिनलगाव की नीति चलाए ? उसके बिनलगाव का मतलब यही है कि पाटील साहब अतलांतिक खेमे से दोस्ती करें और मेनन साहब सोवियत खेमे से दोस्ती करें और सारे मुल्क को दो हिस्सों मे बाँट दें जिसमे हिन्दुस्तान रहे ही नहीं, दो हिन्दुस्तान बन जाएँ। यह विदेश नीति नहीं होती।

असली, अच्छी विदेश नीति, अगर हमने कोई आदर्श तैयार किया होता, तो वह एक ही हो सकती थी और वह यह कि बराबरी और आज़ादी को तर्कसंगत बुद्धि से सोच कर ऐसे ताने-बाने मे बुनना कि जिससे एक नया आदर्श दुनिया के सामने आए। बराबरी से हिचकना नहीं चाहिए। मैं उन लोगों में हूँ जो समझते हैं कि हिन्दुस्तान तरक्क़ी तभी कर सकता है जब मिलकियत के मामले को हल किया जाए। मैं नहीं समझता कि करोड़पतियों और अरबपतियों के रहते हुए हिन्दुस्तान में कोई भी अच्छा काम हो सकता है। सम्पत्ति का खातमा होना चाहिए, बडे कारखानों में निश्चित रूप से होना चाहिए। सम्पत्ति के मामले में, मैं नहीं कहता कि आप रूस की नक़ल करो, पर अपना रास्ता निकालो। रूस ने तो केन्द्रीय संगठन बनाया। हम उसके बजाय चार संगठन बना सकते हैं : केन्द्र, सूबा, ज़िला, गाँव में सम्पत्ति को बाँट सकते हैं। केन्द्र में अगर सारी मिलकियत दे दोगे तो उसका अधिकार बहुत ज़्यादा हो जाएगा, इसलिए मिलकियत को बाँटो और उसे पंचायती बनाओ।

एक तरफ़ मिलकियत के मामले को हल करना है और दूसरी तरफ़ आज़ादी के मामले को। मैं नहीं चाहता कि इनसान इतना अपाहिज बना दिया जाए कि उसकी ज़िन्दगी का हरेक कोना उसकी पार्टी से या उसकी सरकार से चलाया जाए। कुछ कोने हैं जिनको आज़ाद छोड़ देना चाहिए कि मन मे आए जो करो। मिसाल के लिए, मैं मानता हूँ कि इनसान को यह आज़ादी होनी चाहिए कि वह आत्महत्या करे या न करे। यह तो उसका अपना मामला है। दूसरा कौन होता है दखल देने वाला कि तुमने आत्महत्या करने की कोशिश की और उसमे नाकामयाब रह गये तो तुमको जेल भेज दिया जाए। कामयाब हुए तो फिर कहना ही क्या है, मामला खतम ही है। संसार के सब तरह के मामलों से निबट ही जाओगे। इसी से और भी बातें निकाली जा सकती हैं। जैसे, जो बहुत बीमार हो, मर जाने वाला हो, बिलकुल तय हो चुका हो कि मर जाएगा, बहुत ज़्यादा दर्द है तो उसके दर्द को रोकने के लिए खतम किया जा सके। यह सिर्फ़ मिसाल ही है। मेरी अपनी राय है कि ऐसा होना नहीं चाहिए।

असल सवाल यह है कि इन सब प्रश्नों के ऊपर सोच कर ऐसा दायरा बाँधना चाहिए कि अकेले इनसान को बिलकुल अपाहिज न बना दिया जाए। मुझे जो सबसे

ज्यादा अहिंसा या गांधी जी से मोहब्बत हुई, उसका एक कारण यह है कि इनसान अकेला रहते हुए भी बहादुर हो सकता है। संगठन न रहे, संगठन के खिलाफ़ उसको खड़ा होना हो, हाथों में हथियार न रहें लेकिन एक ऐसा रास्ता मिला है कि वह अन्याय के सामने खड़ा हो सकता है। व्यक्तिगत दायरा, ज़िन्दगी का एक कोना ऐसा होना चाहिए कि जिसमें किसी पार्टी का कोई दखल न हो। कोई पार्टी प्यारी से प्यारी पार्टी हो, कोई सरकार, देशभक्ति, कोई दखल किसी का वहाँ नहीं होना चाहिए।

एक तरफ़ यह आज़ादी वाला और दूसरी तरफ़ बराबरी वाला आदर्श, दोनों का ताना-बाना बुन करके पिछले १५ बरस में हिन्दुस्तान ने कुछ क़दम उठाये होते तो आज हम भी दुनिया में एक अच्छा आदर्श रख सकते थे। आज तो ५० देश हैं कम्युनिस्ट विरोधी जिनके लिए आज़ादी आदर्श है और १०-१५ देश हैं जिनके लिए बराबरी आदर्श है और बीच में ऐसे देश हैं। उनकी और सब चीज़ों की चर्चा न करके खाली एक बात बता दूं, क्योंकि सरकारों पर उनका असर है सिद्धान्त का, और वह है नक़ली और घूसखोर वामपंथ। मैं वामपंथी हूँ, इस मानी में कि मिल्कियत को खतम करना चाहता हूँ, लेकिन ऐसा वामपंथी नहीं जो करोड़पतियों की मिल्कियत को खतम करके सरकारी मंत्रियों की मिल्कियत को क़ायम कर दे, जो आमदनी की ग़ैरबराबरी को इस ढांचे पर रखे कि बड़े से बड़ा करोड़पति और अरबपति जिस ऐयाशी और फ़िज़ूलखर्ची से रहता है, उससे ज्यादा ऐय्याशी और फ़िज़ूलखर्ची से सरकारी मंत्री या बड़े-बड़े सरकारी नौकर रह सकें। निजी क्षेत्र और सार्वजनिक क्षेत्र में जो ऐयाशी और खर्चे का फ़र्क़ रहना चाहिए, कर्तव्य के अनुसार, उसे रखना ज़रूरी है लेकिन आज हिन्दुस्तान की मिसाल से तो आप जान ही सकते हो कि कैसा बढ़िया लाजवाब वामपंथ चला है। मिल्कियत खतम करने की बात तो वह करता नहीं, क्योंकि ऐसा करें तो टकराव हो जाए, इनक़लाब करना पड़े। तब तो शायद जेल जाना पड़े और तरह-तरह की तकलीफ़ें उठानी पड़ें। इसलिए सम्पत्ति को खतम करने की बात वह नहीं कहता। खाली यह कहता है कि जितनी नयी सम्पत्ति अब जा बनाओ, वह सब सरकारी बनाओ तो रफ़्ता-रफ़्ता सरकारी सम्पत्ति का इतना हिस्सा बढ़ जाएगा कि अपने-आप निजी सम्पत्ति खतम हो जाएगी।

वह अपने लिए बड़ा बढ़िया रास्ता निकाल रहा है कि जिसमें लड़ना न पड़े। और जो सरकारी सम्पत्ति बने, मान लो सड़क बनाने का काम, पलटन का काम, अखबार निकालने के लिए सार्वजनिक मकान और मशीनें, फ़ौलाद के कारखाने, उन सबों में एक ऐसे वामपंथ को चलाओ कि जो घूसखोर और नक़ली हो। नक़ली की मिसाल मैं आपको देता हूं कि राऊरकेला के फ़ौलाद के कारखाने में १ हज़ार अफ़सरों को महीने भर में २० लाख रुपया मिलता है सुविधा और तनख्वाह का, और ३० हज़ार मज़दूरों को ३० लाख रुपया मिलता है। यह अनुपात का फ़र्क़ है। सार्वजनिक कारखाना है, पंचायती कारखाना है लेकिन मैं कहना चाहता हूँ किसी टाटा और बिड़ला के कारखाने में इससे ज्यादा ग़ैरबराबरी नहीं होगी।

मैं समझता हूँ बात आगे बढ़ती चली जाएगी इसलिए मैं भाषण को यहीं खतम किये देता हूँ ताकि आपमें से कोई कुछ सवाल उठा सकें या वादविवाद करना चाहें, कुछ अपनी बात कहना चाहें, तो कहें। एक इत्तल्ला दे कर मैं अपनी बात खतम किये देता हूँ कि इधर सरकार ने एक कमेटी बैठायी जिसने तहकीकात की कि हिन्दुस्तान ने पिछले साल कितनी तरक्क़ी की। वह रपट तैयार हो चुकी, लेकिन सरकार ने उसको छापा नहीं। मुझे इसका कुछ पता चल गया। वह शायद महलनवीस वाली रपट है और उसने यह फ़ैसला दिया है कि पिछले साल हिन्दुस्तान ने जो तरक्क़ी की खेती-कारखाने की, आर्थिक तरक्क़ी, वह आबादी की बढ़ती की रफ़तार से कम, यानी आबादी जिस रफ़तार से बढ़ी है पिछले साल, उससे कम रफ़तार से खेती, कारखाने या आर्थिक प्रगति हुई। इसके मानी हुए हम लोग पिछड़े हैं। यह तो मैंने हमेशा कहा है कि पिछले १०-१२ बरस में पड़ोसियों के मुक़ाबले में हम पिछड़े हैं। जितने पिछड़े थे उससे ज्यादा पिछड़े हैं, क्योंकि पड़ोसी हमसे ज्यादा रफ़तार से आगे बढ़ा जा रहा है लेकिन पिछले साल तो हम अपनी पुरानी हालत के मुक़ाबले में पिछड़ गये, क्योंकि आबादी ज्यादा बढ़ी है, तरक्क़ी कम हुई है। इन सब प्रश्नों पर मैं चाहूँगा कि हम लोग सिलसिले से सोचें और किसी नतीजे पर पहुँचने की कोशिश करें।

प्रश्न : हिन्दुस्तान-पाकिस्तान महासंघ के बारे में कुछ तफ़सील बताएँ।

उत्तर : वैसे इसका संबंध कल वाले भाषण से है। मैं जरूरी समझता हूँ कि उस महासंघ में हिन्दुस्तान-पाकिस्तान के नागरिकों की एक नागरिकता हो। दूसरे, विदेश, पलटनी और यातायात की नीतियों पर महासंघ को किसी न किसी हद तक अधिकार होना चाहिए। तीसरे, उसके बाद में यह भी जोड़ देना चाहता हूँ कि हिन्दुस्तान व पाकिस्तान के किसी भी मामले को ऐसी पृष्ठभूमि में हल करने में हमें हिचकना नही चाहिए।

प्रश्न : आपने कहा था हिन्दुस्तान की फ़ौज ३० लाख होनी चाहिए। अभी ५ लाख है, तो ३० लाख के लिए फिर बजट कहाँ से आए ?

उत्तर : तीस लाख की तादाद ? इसमें आप अपनी राय मिला रहे हैं। यों जरूरत हुई तो मैं उससे भी १०–२० लाख आगे तक जाने को तैयार हूँ। ३० लाख तो मैंने चीन की पलटन के बारे में कहा था। साधारण तौर से ग़लतफ़हमी फैली हुई है कि चीन की पलटन १ करोड़ की है या ९० लाख की। यह सही नहीं है। २५-३० लाख की होगी। हमें अपनी पलटन कितनी बड़ी बनाना चाहिए, इसके बारे में मैंने कोई तादाद नहीं दी थी। मैंने खाली यह कहा था कि हम अपनी ज़मीन पर लड़ रहे हैं और हमारी संगठित और बढ़िया पलटन हो जिसका कि मैंने इशारा शुरू में किया है। हमारी १०-१५-२० लाख की भी पलटन हो तो हम बखूबी अपना काम कर सकते हैं। रह गया बजट का खर्चा, तो यह अच्छा हुआ कि आपने सवाल उठा दिया। वह चीज रह गयी थी। यह पैसा

इस वक़्त नक़ली और धोखेबाज़ वामपंथ पर बहुत ज़्यादा खर्च होता है। इसके अलावा, करोड़पतियों पर भी। ये जो दक्षिण पंथी लालची हैं, उन्हें, सारे देश की राष्ट्रीय आमदनी जो डेढ खरब की है साल की—१५० अरब रुपये—उसमें, मोटी तौर से मैंने अन्दाज़ लगाया है कि ५० लाख बड़े लोगों को ५० अरब मिल जाता है। और ४४ करोड़ को मिलता है १०० अरब। आप हिसाब लगा लेना। एक बड़ा आदमी हिन्दुस्तान में बराबर है ८८ छोटे आदमियों के। १ और ८८ का फ़र्क़ है औसत। यह औसत फ़र्क़ गोरे देशों में मुशकिल से ३ गुना, अढ़ाई गुना होता है। गोरे देशों में, धनी देशों में ग़ैरबराबरी इतनी नहीं है। हिन्दुस्तान में ज्यों-ज्यों ज़्यादा तरक़्क़ी होती है, उससे मुझे ग्लानि बहुत बढ़ती है. ग़ैरबराबरी बढ़ती जाती है। वह ५० अरब रुपया आ सकता है सिर्फ़ पलटन के लिए और बाक़ी सब मामलो के लिए भी। मैं चाहता हूँ कि पहले तो हम अपने खेती कार-खानों को सुधारें, अपनी लम्बी बाँह ठीक-ठाक करें तो मुट्ठी बाँधने मे कोई खास तरद्दुत नहीं होगा।

रही फ़िज़ूलखर्ची सो आप चाहो तो मैं फिर वही सवाल उठा सकता हूँ सबसे बड़े का कि जब सबसे बड़ा २५ हज़ार रुपये रोज़ खर्च करता है तो आप सोच सकते हो कि जितने भी ४-५ लाख बड़े आदमी हैं वे कितना खरच कर डालते हैं। कितना पैसा बच सकता है इन सबका। अगर वे अकेले खरच करते तो मैं माफ़ कर देता कि बुड्ढे को इस मौक़े पर ऐयाशी से रहने का मौक़ा दे दिया जाए। लेकिन उनकी नक़ल सब लोग करते हैं, लाखो लोग करते हैं। वहाँ भी वह खरचा बचेगा। खरचा बचाने का और नया पैसा पाने का, दोनों तरीक़े मैंने आपको बताये हैं लेकिन सिर्फ़ पलटन के लिए लिए नहीं। असल में खेती कारखानों मे नयी पूँजी लगा कर हिन्दुस्तान को तरक़्क़ी दिलाने के लिए, और फिर उसी सिलसिले में पलटन भी मज़बूत हो सकती है।

प्रश्न : भारत ने जापान से महायुद्ध के बाद कितना रुपया हरजाना लिया था ?

उत्तर : चीज़ों का तो आँकड़ा मैं इस वक़्त आपको बता सकता हूँ। मैंने जर्मनी वाला बतलाया था कि जहाँ ५० अरब रुपया शेर ने मारा, गीदड़ ने ४–५ करोड़ मारा। जापान के साथ हरजाने का आँकड़ा नहीं दे सकता, लेकिन जापान के साथ भी हमारी क़ानूनी लड़ाई सन् १९४७ के बाद जारी रही थी और काफ़ी अरसे तक जारी रही। जो दूसरा सिद्धान्त मैंने बताया कि लड़ाई के खतम होते ही हिन्दुस्तान को एलान कर देना चाहिए था कि हम विजेता और विजयी को नहीं मानते, वह जापान के साथ ज़्यादा लागू होता है और जर्मनी के साथ भी। जापान से कितना हरजाना लिया इस वक़्त मैं आपको वह आँकड़ा नहीं दे सकता।

प्रश्न : सूचना है कि भारत सरकार ने जापान को माफ़ कर दिया।

उत्तर : माफ़ करना ? आपका शब्द भी कुछ सरकारी जैसा है। माफ़ कौन किसको करने वाला है ? यह शब्द बताता है कि जैसे जापान ने कोई हमारे साथ अपराध किया हो कि हमने उसे माफ़ किया।

प्रश्न : जापान ने हम पर हमला किया था।

उत्तर : फिर अब बहुत लम्बा यह क़िस्सा चला जाएगा अगर इस वक़्त आप कहोगे कि जापान ने हमारे देश पर हमला किया था इसलिए उसका हमें हरजाना लेना था। मैं नहीं मानता कि जापान ने हिन्दुस्तान पर हमला किया। उसने हमला किया था उस हिन्दुस्तान पर जब अंग्रेज़ी हुकूमत थी। मैं चाहता हूँ कि १५ बरस के पहले हिन्दुस्तान से जो भी हमारे संबंध हैं, वे टूट जाएँ। मुझे वह मिसाल याद आ रही है। जिस तरह से बच्चे की नाल माँ के साथ जुड़ी रहती है, उस तरह से आज़ाद हिन्दुस्तान की नाल अंग्रेज़ी साम्राज्यशाही के साथ जुड़ी हुई है; हर मामले में पलटन की सुनहली गाथा में, जापान को माफ़ करने के मामले में। इस नाल को ज़रा तोड़ दीजिए। अगर इस नाल को तोड़ देंगे तो आज़ाद हिन्दुस्तान फिर अपने क़दम अच्छी तरह से उठा पाएगा।

प्रश्न : आपने ऐसी राय दी थी ?

उत्तर : कैसे राय नहीं दी थी। क्या आप कहते हैं ? मेरी राय तो बिलकुल साफ़ थी। मैं कहना नहीं चाहता क्योंकि बहुत-से नये कांग्रेसी बात को बहुत विचित्र समझेंगे। महात्मा गाँधी को मई या जून १९४२ में अंग्रेज़ों के खिलाफ़ लड़ने के लिए तैयार करने मे मेरा भी योग है। मुझे यह कहना नहीं चाहिए क्योंकि मेरी आम तौर से यह आदत नहीं है कि पुरानी बातों पर कुछ कहूँ। लेकिन बाक़ी कांग्रेसी तो उनका पैर पकड़ करके घसीट रहे थे और मैं उनका हाथ पकड़ कर कह रहा था आगे चलो, आगे चलो, अंग्रेज़ों से लड़ो। और रह गयी जापान वाली बात, तो यह बिलकुल साफ़ था कि अंग्रेज़ों से लड़ते-लड़ते, क्योंकि अंग्रेज़ों से लड़ना हमारा पहला धर्म था, और उस धर्म को निभाते-निभाते जापानियों से लड़ना पड़ता, तो मैंने एलानिया कहा था कि हम जापान से लड़ेंगे। आपने याद दिला दिया। बरेली जेल में एक आयरिश सुपरडेंट था। कुछ ऐसा मौक़ा आ गया कि वह ज़रा ताव में बोल बैठा कि आज तो आप सत्याग्रह करते हो, जेल आते हो, अंग्रेज़ों को इतनी गाली देते हो—हालांकि एक आयरिश को यह कहना नहीं चाहिए था—लेकिन अगर हिटलर आ जाए तब क्या करोगे ? तो मैंने उसे सिर्फ़ इतना ही जवाब दिया था, तुम्हारे मुल्क पर हिटलर आ जाए तब तुम क्या करोगे ? उससे हमारी अच्छी दोस्ती हो गयी थी। और आज वह कांग्रेसी जो मंत्री हो गया है, उस वक़्त कितना निकम्मा आदमी था, साथ था। उसको कोई रोग हो गया था। उसने कहा, भई, इस सुपरडेंट से इसकी दोस्ती हो गयी है, इससे सिफ़ारिश करवा कर ज़रा पेरोल-वेरोल पर छूट जाओ। मुंह से खून निकलने लग गया था पर कह रहा था, दिल से खून निकल रहा है। तो आप

सन् '४६ के बाद के तो कांग्रेसी नहीं हो ना ? पहले के हो तो आपका हमारा नाता-रिश्ता है। उस ज़माने की बहुत-सी बातें आप जानते हो। खैर। अंग्रेजों को खतम करते हुए, और मान लो, क़रीब-क़रीब अंग्रेज़ों को हम खतम कर लेते, उस वक़्त भी अगर जापान हम पर हमला करता तो उससे भी लड़ते। दोनों तरफ़ लड़ सकते थे, लेकिन हमारा पहला काम था अंग्रेज़ों से लड़ना।

प्रश्न : हिन्दुस्तान को साम्यवाद और लोकतंत्र के बीच का रास्ता निकालना चाहिए। आप सम्पत्ति को खतम कर देने की बातें करते हैं।

उत्तर : मैंने एक रास्ता तो आपको बताया कि सम्पत्ति सिर्फ़ केन्द्र की मिलकियत में न रहे। केन्द्र, प्रांत, ज़िला है, और गाँव और पाँचवाँ सहकारी भी हो सकता है। हर हालत मे ये दोनों तारे हमारी आँखों के सामने चमकते रहें और हम लुढ़कते-गिरते उसका कोई न कोई अमली रूप निकालने की कोशिश करें। आखिर जब कोई नया आदर्श बनता है तो उसके लिए कागज़ के ऊपर पूरा चित्र नहीं बना हुआ रहता। मेरे नये आदर्श में लोकतंत्र रहता है, बोलने-लिखने की आज़ादी रहती है और संगठन बनाने की। अब आप सवाल उठा सकते हो कि अखबार किसकी मिलकियत होंगे ? जब वे सरकारी हो जाते हैं तो कैसे कोई चीज़ छप पाएगी। वहाँ मैंने पाँच मिलकियत बता दीं—सहकारी से लगा कर केन्द्र तक। तो इस मिलकियत के मामले में अपने बचाव का कुछ रास्ता रख लिया है।

प्रश्न : एमरजेंसी के वक़्त ऐसी तक़रीरें करने से क्या फ़ौजी शासन क़ायम करना अच्छा है ?

उत्तर : एक तो, लड़ाई खतम है लेकिन संकट क़ायम है। चीन से हिन्दुस्तान की लड़ाई तो खतम। खतम कहना भी ग़लत होगा, क्योंकि वह कभी शुरू ही नहीं हुई। लेकिन खतम, इस मानी में कि गोलीबारी खतम। किन्तु हिन्दुस्तान की सरकार ने जनता के साथ जो लड़ाई संकट क़ानून बना कर चला दो, वह जारी है। संकट क़ानून, कब अच्छा होता है ? जब दो गरमियाँ लोगों में पैदा हो। एक, देशभक्ति की गरमी, और दूसरे, त्याग और तकलीफ़ की, तुलनात्मक बराबरी की गरमी। जब यद्ध चलता है तो बड़ा आदमी, छोटा आदमी, अमीर आदमी, ग़रीब आदमी, सब, बराबर की न सही, तो कुछ कम बराबर की तकलीफ़ उठाया करते हैं। इंगलिस्तान की मैं आपको मिसाल दूं। वहाँ कोई भी बच्चा हो, सब को दूध का और सब क़िस्म एक ढंग का राशन मिलने लग गया था। एक चीज़ और आप याद रखना। मुझे कहते हुए खुशी होती है कि आज के सभापति श्री सुरेश वैद्य इंगलिस्तान में उस ज़माने में थे और सन् १९४३ में अंग्रेज़ों ने इन्हें गिरफ़्तार किया था, जेल में रखा था इसलिए कि हिन्दुस्तान की आज़ादी के सिपाही होने के नाते, वे अंग्रेज़ों की पलटन की लामबन्दी में जाने को तैयार नहीं थे। हम लोग पहले भी साथ रहे और खुशी होती है मुझे यह कहते हुए कि फिर से ये समाजवादी दल

में आ गये हैं। अभी इन्होंने ही मुझे टोका था कि सिर्फ़ दूध नहीं और कई क़िसम की बराबरी थी। अंग्रेज जब अपनी लड़ाई चला रहे थे तब त्याग और तकलीफ़ की बराबरी की गरमी अंग्रेज जनता में बढ़ रही थी और दूसरे, देशभक्ति की गरमी।

जब ये दो गरमियाँ रहती हैं तो मेरे जैसा आदमी तैयार है कि अपनी कुछ आज़ादियों को सरकार को सौंप दे, अपनी ज़बान पर खुद ताला लगाए या मान लो, ज़बान कभी लड़खड़ा जाए तो जेल जाने को तैयार रहे। लेकिन जब ये दो गरमियाँ नहीं हैं। युद्ध नहीं है, तब मैं हरगिज़ संकट क़ानून को मानने को तैयार नहीं हूँ। अभी तो मैं तो अपनी ज़बान बहुत रोक रहा हूँ। ज़रा २-४ महीने और बीतने दीजिए तब इसके बाद मामले और ज्यादा साफ़ होंगे। अभी तो मैंने बताया कहाँ कि यह नक़ली और घूसखोर वामपंथ ऐसा है कि एक मंत्री का भाई तो न जाने कितनी-कितनी ठेकेदारी ले कर करोड़ों रुपये बना चुका। दूसरे मंत्री के न जाने कितने-कितने दोस्त और रिश्तेदार, न जाने कितने-कितने ठेकों में न जाने कितना पैसा बना कर कितनी-कितनी चीज़ें खड़ी कर चुके हैं। हम फिर इस नक़ली और घूसखोर वामपंथ को बताएँगे, और उसके साथ-साथ, करोड़ पंथ को भी यानी बिड़ला साहब वग़ैरह दूसरे जो कि आज हिन्दुस्तान में हर साल २५ से ३० सैकड़े का मुनाफ़ा कर रहे हैं। हिन्दुस्तान के मुनाफ़े की दर है ३० सैकड़ा। समझ में नहीं आती। मैं अपने दोस्तों के साथ बैठता हूँ— उनमें से कुछ हैं बड़े विद्वान् लोग, कुछ पैसा भी कमाना जानते हैं—तो उनसे समझने की कोशिश करता हूँ कि १०० रुपये में ३० पये मुनाफ़ा साल भर में हो कैसे सकता है। लेकिन हो रहा है यह आप निश्चित समझ कर रखो। इसी तरह ब्याज की दर, कुछ मामलों में १७ और १८ सैकड़ा है।

अपने मुल्क में कुछ अजीब चीज़ चल रही है। इनका जब तक आप खुलासा नहीं करते हो, मिलिटरी या पलटनी डिक्टेटरी की ज्यादा संभावना है। मेरे जैसे लोगों की तायदाद हिन्दुस्तान में बढ़ जाए तब थोड़े ही मिलिटरी डिक्टेटरी हो पाएगी। और यह मत समझना कि पलटन खुद अपनी डिक्टेटरी क़ायम कर सकेगी। उनको तो हमेशा किसी न किसी नेता की ज़रूरत पड़ेगी। उनके अन्दर कोई नेता है नहीं और न कोई जल्दी बनने वाला है। यो आपका कहना किसी हद तक सही है कि बमडीला और वालोंग के बाद मन इतना उखड़ा जा रहा था कि अगर कोई ऐसा नेता न मिल पाता, तो हो सकता है कि वे अपने ही बीच में से किसी को खड़ा कर देते। लेकिन पलटन में मुझे ऐसा आदमी कोई दिखता नहीं है जो इतना अक़लमन्द हो कि जो ४५ करोड़ इतने तबक़ों में बँटे हुए हैं इतने छँटे हुए हैं, हज़ारों गिरोह हैं, उनको ठीक-ठाक कर सके। उनको बाँधने वाली कोई एक चीज़ पहले से होनी चाहिए। हिन्दुस्तान में पलटनी डिक्टेटरी की संभावना कम दिखाई पड़ती है। पलटनी डिक्टेटरी अगर कभी हुई तो कौन बनाएगा? जो इस वक़्त हुकूमत चला रहे हैं। दूसरे लोगों के लिए मुशकिल

होगा। अगर इन्होंने देखा कि मुझ जैसे लोगों की ताक़त बढ़ रही है तो शायद आखरी दांव उसका भी ये फेंकें। उसके लिए हमें तैयार रहना चाहिए।

प्रश्न : सेना में, कुछ लोगों का ख़याल है कि जरनेल कौल को डिक्टेटर बनाया जाए। आपका क्या ख़याल है?

उत्तर : एक हद तक तो मैंने इसका जवाब आपको दे दिया था कि और सब जगह रिश्तेदारी चलाओ, लेकिन फ़ौज में रिश्तेदारी मत चलाओ। यह मैंने शुरू में ही कह दिया था। अब उस जरनेल के बारे में तो मैं कोई ज्यादा नहीं जानता सिवाय इसके कि जो भगदड़ हुई, जो ग्लानि हमको सहनी पड़ रही है, उसके लिए ज़िम्मेदार वे भी हैं। लेकिन इतना मैं ज़रूर सोचता हूँ कि ऐसा जरनेल हिन्दुस्तान में कभी प्रधानमंत्री बन सकता है, यह नामुमकिन है। और हमारा प्रधानमंत्री किसी ऐसे आदमी को बैठाएगा। क्या समझा है आपने अपने प्रधानमंत्री को? वह तो बड़ा आला आदमी है। उसने नेपोलियन के बारे में एक जगह लिखा है—नेपोलियन तो खैर बहुत बड़ा आदमी था, बहुत बड़ा आदमी था। लेकिन कभी-कभी किसी बड़े आदमी के बारे में लिखते-लिखते लेखक समझ बैठता है कि शायद मेरा भी वही हाल हो जो नेपोलियन का हुआ कि वह बहुत बड़ा आदमी था लेकिन उसमें एक बड़ी ज़बरदस्त कमी थी कि वह अपने रिश्तेदारों को जगह-जगह राजा बनाने की कोशिश करता था। तो रिश्तेदारी की जो सीढ़ी है उसमें कहाँ है बिचारा कौल? वह तो कहीं बहुत दूर जा कर पड़ेगा। ऐसे तो जितने भी कौल हैं खैर. हमारे सामने भी एक कौल बैठा हुआ है, उसी को वह आगे बढ़ा देंगे, ऐसा नामुमकिन है क्योंकि वह तो हमारे साथ है। उससे और आगे जाओ जहाँ रिश्तेदारी बिलकुल नज़दीकी होती है उसी को यह पंडित प्रधानमंत्री बनाने की तबियत रखते हैं। उनको ज़रा धक्का ज़रूर पहुँचा है, लेकिन अगर बन पड़ा तो वे इनकार करेंगे।

प्रश्न : मेनन को केबिनेट में वापस लाने जा रहे हैं। वह सही है और ठीक है क्या?

उत्तर : ये जितने भी सारे मामले चल रहे हैं मेनन वाले या नेहरू जी वाले...यह कैसे बताऊँ। मैं सिर्फ़ हिन्दुस्तान की राजनीति और उस राजनीति में जो प्रधानमंत्री साहब का स्थान है, उसके बारे में कुछ दिशा की बातें बता सकता हूँ। मैं तो उनके महल का आदमी हूँ नहीं। यह तो आप उनके महल के आदमी से पूछो। मैं आपको खाली इतना बता सकता हूँ कि उस ढंग का आदमी किस तरफ़ जाएगा। प्रधानमंत्री पिछले १० बरस में जो भी अपनी करामात और पराक्रम दिखा चुके हैं, उससे यह साबित हो जाता है कि उन्हें सिर्फ़ एक आदमी प्रिय है, और वह है पंडित जवाहरलाल नेहरू। उस आदमी को बचाने के लिए वे सब कुछ कर सकते हैं, ज़रूरी हुआ तो मेनन साहब को धक्का दे सकते हैं, ज़रूरी हुआ तो उनको वापस बुला सकते हैं। और उन्होंने कितना

ज़बरदस्त लांछन हम पर लगाया है, हमको बेवक़ूफ़ समझा है, गधा समझा है, क्या समझा है? उस जवाब में जो छपा है, क्या कहा है? उस मौक़े पर जब हार रहे थे, किसी एक को बरख़ास्त करना ज़रूरी था, मैंने एक को कर दिया, हालाँकि मेनन ने तो बहुत अच्छा काम किया था। इसके क्या मतलब हुए? एक तो यह कि अपने बारे में वे एक इत्तला आपको दे रहे हैं कि मैं कैसा आदमी हूँ। मैं अपने को बचाने के लिए किसी भी निरपराधी निर्दोषी आदमी का क़तल कर सकता हूँ। दूसरे, वे हिन्दुस्तान की जनता के बारे में आपको एक इत्तल्ला दे रहे हैं कि हिन्दुस्तान की जनता इतनी बेवक़ूफ़ है कि एक ऐसी बरख़ास्तगी जो बिलकुल नक़ली और बेईमानी की है, उसको ऐसा जामा पहना सकती है कि यहाँ के बड़े-बड़े ये जो विरोधी दल हैं, उन्होंने समझा कि मेनन साहब को हटाओ, सब काम हो जाएगा। सब काम नेहरू साहब का हो गया। उनका क्या हुआ। आप तो जानते हो नाम लेना फ़िज़ूल है विरोधी दलों का। कांग्रेस के साथ इतना ज़्यादा चिपके हुए हैं ये विरोधी दल कि उन्होंने पिछले २ महीने ज़ाया किये, बर्बाद किये मेनन के ख़िलाफ़ आन्दोलन चला कर। सच पूछो तो आन्दोलन चलाना चाहिए सिद्धान्तों के ऊपर, और यहाँ मैं अपने जवान दोस्त से कहूँगा कि जो इस वक़्त मैंने बातें कीं सिद्धान्त, नियम, क़ानून की, इनके ऊपर अगर आन्दोलन चले तो उससे वह ताक़त पैदा हो कि जो भी दोषी हो, और जो सबसे बड़ा दोषी हो, उसका गला सबसे पहले पकड़ो। ये दो नम्बर, तीन नम्बर, चार नम्बर के दोषियों को पकड़ने से क्या फ़ायदा?

—१९६३, जनवरी ३; दिल्ली; भाषण।

भारत भाग्य

जैसे हाथ देख कर या जन्मपत्री देख कर किसी की तक़दीर को लोग बनाने की कोशिश करते हैं वैसा तो काम आज मेरा नहीं है, लेकिन कुछ मिलता-जुलता है। भारत का भाग्य जानने के लिए कौन-सी लकीरें या कौन-से नक्षत्र हमें देखने हैं ? ऐसे भी लोग हैं जो देशों की जन्मपत्री बनाया करते हैं। ऐसे व्यक्तियों से मेरा कोई ताल्लुक़ नहीं।

भारत के भाग्य की एक बड़ी ख़राबी बताते वक़्त मैं इस फलित ज्योतिष की एक बात आपसे कह दूं कि जहाँ सारी दुनिया नक्षत्रों का अध्ययन कर रही है अपनी ज़िन्दगी को बदलने के लिए, वहाँ कोई छोटे पैमाने पर नहीं, शायद उतने ही बड़े और ज़्यादा बड़े पैमाने पर यहाँ नक्षत्र, चाँद, सितारे सूरज वग़ैरह का अध्ययन क़रीब-क़रीब हर गाँव में होता है, कोई न कोई ज्योतिषी रहता है। हिन्दुस्तान में जितना ज़्यादा नक्षत्रो का अध्ययन हो रहा है, उतना शायद रूस-अमरीका में भी नहीं। लेकिन यहाँ दुनिया को समझने या बदलने के लिए नहीं, यहाँ साइत (घड़ी) देखने के लिए जिसमें शादी विवाह करने से लड़की विधवा नहीं होगी, किस साइत में बच्चे ठीक तरह के होंगे वग़ैरह-वग़ैरह। इससे भी आप कुछ अंदाज़ा लगा सकते हैं कि जो क़ौम या देश ज्योतिष के, फलित ज्योतिष के अंग पर ही ज़्यादा अपनी दिमाग़ी ताक़त को ख़र्च करे, उसका भविष्य कोई बहुत अच्छा नहीं।

मैं तो प्रारब्ध के मतलब में जो कुछ किसी देश या क़ौम ने पुराने काम किये हैं उनसे जो नतीजा बन गया, उनके दिमाग़ का या उसके इतिहास की एक दिशा की तरफ़ आपका ध्यान खींचूँगा। प्रारब्ध, संचित कर्म कि जिनका नतीजा हमें किसी क़दर भुगतना ही पड़ेगा। जो पुराना हिन्दुस्तान रहा है, इस वक़्त है, उसको हम अच्छी तरह समझ गये तो आगे का जो हिन्दुस्तान आने वाला है, उसका थोड़ा बहुत पहले से अंदाज़ लगा कर समझ सकते हैं। यह सही है कि हाथ देखने वाले ज्योतिषी और जन्मपत्री पढ़ने वाले ज्योतिषी पुरानी बात बताया करते हैं रोब गाँठने के लिए। हिन्दुस्तान के मामले में रोब

गाँठने के लिए पुरानी बात न सोचें बल्कि सिर्फ़ यह जानने के लिए कि हमारा जो संचित कर्म रहा है उसके अनुसार आगे क्या होने वाला है।

जब हम किसी देश के भाग्य को जानने की कोशिश करें तो पृष्ठभूमि रहनी चाहिए दुनिया की भी तक़दीर की। थोड़ा बहुत मैं दुनिया की तक़दीर के बारे में कह देना चाहता हूँ, और उसी के भीतर भारत के भाग्य को भी समझने की कोशिश करें। दुनिया की आज की जो हालत है और जो कुछ दुनिया का पुराना इतिहास है उसको देखते हुए क्या होने वाला है। इस वक़्त दुनिया के सामने दो संभावनाएँ हैं। या तो तीन चीज़ों में से किसी एक या दो के शिकार बनें, और बड़े भारी पैमाने पर। एक तो युद्ध का विनाश। दूसरे, एक रास्ता कि सारी दुनिया एकरंगी बन जाए। इस वक़्त किसी हद तक बहुरंगी है। तीसरे, ग़रीबी। एक तरफ़ तो ये संभावनाएँ हैं, ग़रीबी, एकरंगी और युद्ध का विनाश और दूसरी तरफ़ अब संभावना थोड़ी बहुत फूट चली है कि शायद दुनिया से ग़रीबी और जंग दोनों ख़तम हों। जब मैं यह कह रहा हूँ तो अगले साल, दो साल की बात नहीं कह रहा हूँ। अगले ५० साल या ४० साल, इस सदी के ख़तम होते-होते दुनिया के आदमी मोटी तौर से बराबरी और शांति के रास्ते पर चल पड़ेंगे। मैं यह तो नहीं कहना चाहता कि कभी अन्याय रहेगा ही नहीं; अन्याय से लड़ना तो शायद हमेशा ही किसी न किसी शकल में रहेगा, लेकिन मोटी तौर से, बराबरी और शांति के रास्ते पर दुनिया चल पड़ेगी ये दो संभावनाएँ हैं।

इसके लिए मैं अपना तर्क बताये देता हूँ। हथियार और युद्ध दुनिया में हमेशा रहे। भले लोगों ने हथियारों को गंदा कहा, चाहे वह ईसूमसीह रहे हों, चाहे वह महात्मा गाँधी रहे हों। लेकिन हथियारों का हमेशा इस्तेमाल हुआ है, क्योंकि चाहे वे गंदे हैं, पर उनसे हार जीत हुआ करती है या थी। अब सन् १९४५ के बाद से, जब अणुबम गिराया गया था, एक नया सिलसिला शुरू हो गया। हथियार सिर्फ़ गंदे नहीं हैं। हथियार निकम्मे भी हो चले हैं। मेरा मतलब सब हथियारों से है। छोटे-मोटे हथियारों से नहीं। छोटे-मोटे हथियारो से लड़ाई तो पिछले १०-१५ बरसों से चल ही रही है—बड़े हथियार जिनके इस्तेमाल के लिए सिर्फ़ दो हो क़ौमें हैं, रूस और अमरीका, और जिनके इस्तेमाल की थोड़ी बहुत संभावना कुछ हफ़्तो पहले क्यूबा को ले कर हो चली थी जिससे शायद दुनिया की दो तिहाई आबादी, ३ अरब में से २ अरब आदमी मर भी जाते। उन हथियारों का जो सचमुच आज दुनिया के विकसित हथियार हैं, इस्तेमाल होना क़रीब-क़रीब नामुमकिन हो गया है, क्योंकि सब को डर लगता है कि अगर इनको इस्तेमाल करेंगे तो हम सिर्फ़ जीतेंगे ही नहीं, हम भी ख़तम हो जाएँगे। जीतने हारने वाले कोई रहेंगे नहीं। अब तो विनाशक का भी विनाश है। पहली दफ़े नाश म थोड़ा बहुत, १९-२० का फ़र्क़ हो सकेगा। अब अगर अमरीका रूस को क़रीब-क़रीब ख़तम कर सकता है। रूस चाहे तो अमरीका को क़रीब-क़रीक ख़तम कर सकता है। वहाँ कोई गुंजाइश नहीं है कि एक अपना बचाव कर ले दूसरे के ख़िलाफ़, कम से कम रूस और अमरीका का वह हिस्सा जो कुछ महत्त्व रखता है।

अब सवाल उठता है कि हथियार जब निकम्मे हो चले, उनसे हार-जीत नहीं होती, उनसे तो नाश होगा, तो फिर इन हथियारों को दुनिया कैसे इकट्ठा कर रही है। संचय तो खूब जोरों से चल रहा है ' नित नये-नये हथियार, संचय, और उनके इस्तेमाल की धमकी। मुझे ऐसा लगता है कि यह पेंच ज्यादा दिनों नहीं चल सकता। कभी न कभी यह पेंच खुलेगा। या तो ये खतरनाक हथियार इस्तेमाल होंगे, और दुनिया का आधुनिक हिस्सा बिलकुल खतम हो करके रहेगा। विनाश होगा, या ये हथियार खतम होंगे क्योंकि निकम्मी चीजों को कहाँ तक बटोरते चले जाएँगे । दस एक बरस तो हो गये, रूस अमरीका वाले बटोर रहे हैं, बहुत पैसा भी खर्च कर रहे हैं। इसको भी हम लोग थोड़ा याद रखें कि इस वक़्त दुनिया में क़रीब आठ अरब रुपया हर साल सिर्फ़ हथियारों पर खर्च हो रहा है। हिन्दुस्तान के पैमाने पर जितना हम साल भर में खाते कमाते हैं कुल सब, सरकारी सिर्फ़ नहीं, पूरी जनता, सरकार मिला करके, डेढ़ खरब रुपया, उसका पाँच गुना दुनिया में हथियारों पर खर्च हो जाया करता है। अब यह खरचा बढ़ता ही चला जा रहा है। शायद और बढ़ता रहेगा। फिर रूस के और अमरीका के साधारण आदमी, नेता, अध्यापक, विद्यार्थी, ये जितने लोग हैं, इनकी तरफ़ से कोई न कोई बलवा हो कर रहेगा। आज न सही, १० बरस बाद, १५ बरस बाद, २० बरस बाद कि इन निकम्मी चीजों पर इतना खर्चा करके कब तक हमको बरबाद करते रहोगे।

लेकिन अब इसमें से दूसरा पेंच निकल उठता है कि सिर्फ़ अणु हथियारों को तो खतम करने से काम नहीं चलेगा, बन्दूक़, पिस्तौल भी खतम होनी चाहिए, क्योंकि एक रहा तो दूसरा जरूर आएगा। और बन्दूक पिस्तौल को खतम करने की बात सोचते हुए माथा चकरा जाता है। ऐसी कौन-सी दुनिया होगी। राज कैसे चल पाएगा। छोटे राज बड़े राज्यों के बीच कैसे रह पाएँगे। आज दुनिया में सब रूस, अमरीका, चीन तो नहीं हैं। छोटे-छोटे राज भी हैं, तो वे कैसे रह पाएँगे। फिर सवाल उठता है कि देश के अन्दर भी कोई गुट एक हथियार विहीन राज में अपने को संगठित करके राज्य के ऊपर क़ब्ज़ा कर ले सकता है। छोटा-मोटा सवाल चोर डाकू का उठता है। तो, चोर डाकू के मामले में तो मुझे आपसे कोई विशेष बात नहीं कहनी है। अगर संगठित सत्याग्रह के आधार पर हथियारों के बिना राज्य का और देश का संगठन हो गया, तो फिर ये छोटे-मोटे गुण्डों का सवाल आसानी से हल हो सकता है। खाली दूसरे सवाल बाक़ी रहते हैं कि ये हथियार, छोटे-छोटे हथियार भी अगर रह जाते हैं तो फिर अणु हथियार लाजमी हो जाता है। इसको ध्यान में रखना। माथा जरूर चकरा जाता है। लेकिन मैं इसका बुनियादी जवाब देता हूँ। वह यह है कि अगर ग़ैरबराबरी और अन्याय दुनिया से खतम नहीं हो पाते तब तो छोटे-मोटे हथियार रहेंगे। आखिर हथियार किसलिए जरूरी होते हैं? या तो जुल्म करने के लिए या जुल्म को रोकने के लिए। दो में से तो कोई एक

उनका इस्तेमाल होना है। और अगर जुल्म मोटी तरह से खतम किया जाए और इनसान को कोई रास्ता मिल जाए कि हथियार खतम होने के बाद भी वह जुल्म से अपने को बचा सके, तो हथियार अलबत्ता खतम हो सकते हैं।

लेकिन जहाँ हम यह बात सोचते हैं कि दुनिया से मोटी तौर से ग़ैरबराबरी और जुल्म खतम हो, वहाँ फिर माथा चकरा जाता है। इतनी ज़बरदस्त ग़ैरबराबरी और इतना जुल्म कैसे खतम हो जाएगा ? फिर सवाल उठता है कि हथियार खतम नहीं होंगे। फिर घूम कर हम उसी चक्कर में आ जाते हैं। तो यह ८ खरब रुपया सालाना खर्च चलता रहेगा। नहीं। यह पेंच, मैं समझता हूँ, अगले २०-३० बरसों में खुल कर रहेगा। या तो उस दुनिया का जिसकी आज हैसियत है विनाश होगा—मैं दुबारा कह देता हूँ, जिसकी आज हैसियत है—पर देहात बच जाएँगे और कुछ इलाक़े के लोग भी बच जाएँगे। जो कहते हैं कि सारी दुनिया खतम हो जाएगी, सही नहीं है। अगर हथियार खतम होते हैं तो, मैं पहले परिभाषा कर ही चुका हूँ, जुल्म और ग़ैरबराबरी खतम हो जाते हैं या कम से कम वह रास्ता खुल जाता है और फिर ये ८ खरब रुपये न सिर्फ़ जिन बड़े देशों की तरफ़ से खर्च किये जा रहे हैं, उनके फ़ायदे के लिए बल्कि सारी दुनिया के फ़ायदे के लिए थोड़ा-बहुत इस्तेमाल हो करके रहेंगे।

उन लोगों में से तो मैं नहीं हूँ जो आज की मशीन और इंजीनियरी की दुनिया से यह नतीजा निकालते हैं कि हम अपना आर्थिक जीवन सुधारते चले जा रहे हैं, तरक़्क़ी होती चली जा रही है, और अब हम ऐसे युग में प्रवेश कर रहे हैं जब खाने-पहनने के मामले में कमी नहीं रहेगी, बहुतायत वाले युग में। आज का हर पढ़ा-लिखा आदमी, चाहे वह यूरोप का हो, चाहे वह हिन्दुस्तान का हो, इस अंधविश्वास का शिकार है कि हम बहुतायत, खुशी और खाने-पीने के मामले में अच्छे युग में प्रवेश कर रहे हैं। यह बात सही नहीं। जो कुछ मैंने आँकड़े पढ़े हैं, उनका अध्ययन किया है उसके आधार पर मैं कम से कम हिन्दुस्तान के लिए कह सकता हूँ कि यह बात सही है कि चाणक्य के ज़माने में, कोई २ हज़ार बरस पहले, हिन्दुस्तानी ज्यादा अच्छा खाता-पीता था बनिस्बत आज के हिन्दुस्तानी के। और, यह ज़्यादातर जो रंगीन क़ौमें हैं, उनके लिए भी लागू होता है।

लेकिन बड़े लोग और यूरोप और अमरीका वालों का तो कहना क्या, वहाँ तो सब यानी क़रीब-क़रीब १ अरब गोरों के लिए और जो काले-पीले २ अरब हैं उनके बड़े लोग—बडो में ३ को आप हमेशा याद रखना, नेता, नगरसेठ और नौकरशाह। दुनिया के हर इलाक़े में अपने जीवन को अच्छा बनाने का मौक़ा पा जाते हैं, मकान का, खाने का, पीने का, ऐश करने का, राज चलाने का और गोरे तो हैं ही इसलिए पढ़ाई-लिखाई में हमेशा कहा जाता है, हम तो ग़रीबी के युग से निकल कर अब अमीरी के युग में प्रवेश कर रहे हैं।

लेकिन यह बात ग़लत है और असलियत में तो बिलकुल ग़लत है। मैं यह अंध-विश्वास नहीं फैलाना चाहता कि कोई ऐसी चीज़ हो जाएगी कि जिससे दुनिया के लोग अगले २०-३० बरस में ग़रीबी से छुटकारा पा लेंगे। यह काम तो करना पड़ेगा, और करने के लिए मुझे इतना ही कहना है कि अगर हथियारों का खातमा होता है और आज जिस तरह से अन्याय और जुल्म के खिलाफ़ दुनिया के लोग उठ खड़े हुए हैं और वह सिलसिला जारी रहता है तो ग़रीबी खतम हो कर रहेगी। हमारी २० वीं सदी बहुत क्रूर सदी है, बहुत बेरहम सदी है। जितने जुल्म और अत्याचार इस सदी में हुए हैं उतने पहले की किसी सदी में नहीं। लेकिन उसके साथ-साथ यह एक विचित्र सदी है कि जिस तरह से इनसान क़रीब-क़रीब हर जुल्म के खिलाफ एक साथ उठ खड़ा हुआ है, वैसा पहले कभी नहीं हुआ, चाहे राजकीय अत्याचार के खिलाफ़, चाहे आर्थिक अत्याचार के खिलाफ़, चाहे रंग की ग़ैरबराबरी के खिलाफ़, चाहे नर-नारी की ग़ैरबराबरी के खिलाफ़। सब जगह, किसी न किसी रूप में, इनसान अत्याचार के खिलाफ़ उठ खड़ा हुआ है और अगर इसमें कहीं जीत गया तो ग़रीबी के मिटने की कुछ आशा हो जाती है।

एक रंग के बारे में आपसे ज्यादा नहीं कहूँगा। यह सवाल यूरोप और अमरीका वालों के सामने तो उठ गया है, खास तौर से जो बहुत पढ़े-लिखे लोग हैं। उन्हें डर लग रहा है। आपने टेलस्टार के बारे में, तो सुना ही है कि कहीं बड़ी दूर, यहाँ से दस एक हज़ार मील, ५० हज़ार की भी सोच रहे हैं, वह संदेशा भेज देंगे और टेलस्टार वह संदेशा फिर रेडियो वग़ैरह के ज़रिये एक हिस्से से दूसरे हिस्से में दुनिया में सुनाता रहेगा। यहाँ तक कि बेतार के बारे मे मुझे अमरीकियों ने बताया है कि ऐसा एक ज़माना आ सकता है कि जिसमें बम्बई से कलकत्ता जो तार भेजा जाएगा, वह सीधे नहीं, बल्कि यहाँ से कोई ५० हज़ार मील दुनिया की दूरी पर भेज दिया जाएगा और वहाँ कोई अपने सब डाकखाने में भेज देंगे और फिर वह कलकत्ते भेज दिया जाएगा। इससे खर्चा बहुत कम हो जाएगा, क्योंकि घषण बहुत कम होता है। तो खैर, दुनिया की शकल बदलती जा रही है, इतनी तेज़ी से कि अब लोगों को डर लग रहा है कि हम सब खाने-पीने मे और कपड़े-लत्ते में तो एक हो ही जाएँगे, लेकिन चेहरे-मोहरे में भी। इसमें कोई शक नहीं कि यूरोप की औरत बहुत खूबसूरत दिखती है लेकिन डर यह लग रहा है कि वह मीठी खूबसूरती ही रह जाएगी और, शायद, जो नमक वाली खूबसूरती होती है, वह न रहे। यूरोप और अमरीका के लोग इस मामले से काफ़ी घबड़ाये हुए हैं कि नमकीन खूबसूरती जब नहीं रहेगी तो मीठी खूबसूरती को ले कर क्या करेंगे। जो चेहरा देखो वह मीठा खूबसूरत है।

उसी तरह से, गाना-बजाना, रहने के और ढंग, सोचना, सब एक ढर्रे के हो जाएँगे। सब खाये-पीये मज़े में रहेंगे, लेकिन एक ढग से, एक रस से रहेंगे। इस पर मुझे इस वक़्त ज्यादा कुछ नहीं कहना है, हालाँकि वह बड़ा भारी रोग है।

अब, इसी पृष्ठभूमि में भारत के भाग्य को देखना है। भारत एक अजीब देश है। दुनिया में बैठ नहीं पाता। यह सही है कि हममें से बहुतों के मन में घमंड है अपने देश के लिए। घमंड होना भी चाहिए। मुझे भी किसी क़दर है। लेकिन मैं एक निवेदन आपसे करना चाहता हूं कि यूनान, मिस्र, रोम सब मिट गये और हिन्दुस्तान बाक़ी रहा है यह भूल और अज्ञान और झूठ बहुत-से हिन्दुस्तानियों के दिमाग़ में घुली हुई है। इसे शुरू से ही दूर कर देना चाहिए। कहाँ मिटा, कौन मिटा ? जितना यूनान और मिस्र बाक़ी हैं या रोम बाक़ी है, उससे कम हम बाक़ी हैं। आखिर इसका मतलब क्या होता है, वे तो मिट गये, हम बाक़ी हैं ? वहाँ के लोगों को देखा जाए तो वे हमसे ज्यादा खाते-पीते हैं। अच्छे हैं, ज्ञान भी उनमें ज्यादा है, पढ़ाई-लिखाई भी ज्यादा है। किस बात में वे मिट गये और हम बाक़ी हैं ? ऐसा सोचने वालों का शायद मतलब होता है, आध्यात्मिकता से, ईश्वर से, ऊँची बड़ी बातों से, कि हिन्दुस्तान के लोग अभी भी शरीर के मामलों में इतना ज्यादा नहीं फँस गये हैं कि वे आत्मा के मामलों को बिलकुल नजरअन्दाज़ कर दें।

अभी इस आत्मा पर मैं इस मौक़े पर कुछ नहीं कहूँगा, खाली इतना कि आत्मिक मामले भी अगर ठोस नहीं होते और उनके पीछे सोचने का निश्चित ढंग नहीं होता, तो बड़े खतरनाक हो जाया करते हैं। इसी सिलसिले में मैं हिन्दुस्तान के दिमाग़ और दुनिया के दिमाग़ के बारे में, बाक़ी दुनिया के बारे में, कुछ कहना चाहता हूँ। हममें व्यापक विचार और ठोस कार्यक्रम दोनों का दायरा, दोनों का हिस्सा अलग होता है। एक तरफ़ तो निर्गुण विचार, सिद्धांत साधारण विचार, और दूसरी तरफ़, सगुण अमली, कार्यक्रम, उस व्यापक विचार के लिए ठोस क़दम। दिमाग़ के ये दो हिस्से होते हैं—सगुण और निर्गुण। इनमें सब जगह फ़र्क़ होता है, लेकिन बाक़ी दुनिया में सगुण और निर्गुण, दिमाग़ के दोनों हिस्से एक दूसरे से अलग नहीं कर लिये गये हैं। दोनो मे आना जाना रहता है। दोनों में लेन देन होता है। हिन्दुस्तान में दोनों के बीच ऐसी ज़बरदस्त दीवार बना दी गयी है कि वे बिलकुल अलग कर दिये गये हैं, सगुण हिस्सा अलग और निर्गुण हिस्सा अलग।

शायद, शंकराचार्य के पहले से यह नहीं था इतना। पर शंकराचार्य के पहले भी बीज तो थे ही लेकिन शंकराचार्य ने यह कह कर कि सच के दो रूप होते हैं—एक, दुनियाई रूप, अहित रूप, लौकिक रूप, और दूसरा, पारलौकिक रूप—इन दो हिस्सों को दिमाग़ में बिलकुल ठोस बना कर रख दिया कि यह तुम्हारा सगुण हिस्सा और यह निर्गुण हिस्सा। इसीलिए कम से कम मेरा तो यह अनुभव रहा है कि अपने देशवासियों के साथ बहस चलाना, राजकीय, सार्वजनिक बहस चलाना, बिलकुल नामुमकिन हो गया है, क्योंकि वह दीवार ही खड़ी हो गयी— लौकिक सत्य और पारलौकिक सत्य की। ये इतना एक दूसरे से अलग हो गये हैं कि कोई संबंध ही नहीं रहा। और इसको अगर मैं अमली रूप में कहूँ तो नतीजा निकलता है कि जितना धोखेबाज़ हिन्दुस्तानी है उतना दुनिया में कोई नहीं। और धोखा वह दूसरों को इतना नहीं देता, जितना खुद को देता है। मैं स्वार्थी हूँ

थोड़ा-बहुत और अगर मेरा देश दूसरों को धोखा देते हुए कुछ फ़ायदा उठा लेता, तो बुरा मैं जरूर मानता लेकिन माफ़ कर देता। किन्तु हम लोग इतने धोखेबाज़ हो गये हैं कि दूसरों को धोखा देना नहीं जानते और खुद धोखा खाते हैं, क्योंकि हमारे दिमाग़ में सगुण और निर्गुण का इतना ज़बरदस्त अलगाव हो गया है। एक तरफ़, व्यापक विचार और सिद्धांत, और दूसरी तरफ़, राजकीय सार्वजनिक अमल और, इसीलिए, बहस में अक्सर जब कोई सवाल उठता है तो लोग कह दिया करते हैं तफ़सील की बात मत करो, कार्य-क्रम की बात मत करो, सिद्धांत की बात करो। कौन सिद्धांत ? क्या उसके मतलब होते हैं ? क्या उसका नतीजा निकला है ? निहित सिद्धांत की जब आप बात करने लग जाते हो तो आखिर उसके कहीं पाये तो होने चाहिए।

यूरोप और अमरीका में क्या हुआ है ? दोनों दायरे अलग हैं। लेन-देन चलता है। वहाँ एक खराबी हुई कि सिद्धांत को इतना ज़्यादा असलियत के साथ चिपका दिया जाता है कि कई बार लोग पागल बन जाते हैं, अपनी असलियत से इतना प्यार करते लगते हैं कि सोचते हैं कि यह आदर्श, यह सिद्धांत हमको मिल गया। जैसे रूस और अमरीका में। मैं समझता हूँ, रूस और अमरीका के दिमाग़ की मोटी ख़राबी मुझे बतानी हो तो मैं यह कहूँगा कि वहाँ पर लोग अपनी मौजूदा हालत को अपने आदर्श का इतना ज़बरदस्त मूर्त और सगुण रूप समझते हैं कि बहस नहीं हो पाती। समझने के लिए आदमी का दिमाग़ नहीं चलता। दिमाग़ खाली, एक तरफ़, आरोप, निन्दा करने के लिए चलता है, और दूसरी तरफ़, औचित्य बताने के लिए। या तो आरोप लगाओ, गाली दो, नहीं तो सफ़ाई दो। ऐसे दिमाग़ में जहाँ सफ़ाई देना या आरोप लगाना ही उसका काम हो गया हो वहाँ समझ कम रह जाती है। मैंने यूरोपी और अमरीकी दिमाग़ की भी ख़राबी बतायी लेकिन हिन्दु-स्तानी दिमाग़ की तो ऐसी जबरदस्त ख़राबी हो गयी है, मैं मिसाल ही खाली आपको दिये देता हूँ, कि अगर निर्गुण सिद्धांतों पर बहस हो, तब तो अद्वैत, सब एक, ब्रह्म एक, कोई फ़र्क़ नहीं, सितारा, गधा, आदमी, सब एक, एक ही ब्रह्म। लेकिन अगर समाजशास्त्र पर बहस होने लग जाए, तब, दूसरों में फ़र्क़ कौन कहे, आदमी आदमी में ज़बरदस्त फ़र्क़ हो जाता है। कहाँ चमार, कहाँ तेली, कहाँ ठाकुर, कहाँ ब्राह्मण ? अब उस अद्वैत को अगर इस जातिप्रथा के साथ जोड़ो और दिमाग़ के दोनों हिस्सों में लेन देन करने की कोशिश करो, तो हिन्दुस्तानी झट से भड़क कर कहता है, नहीं, नहीं, वह तो सिद्धांत की बात थी, यह तो लौकिक सत्य की बात है, क्योंकि शंकराचार्य ने पहले से सब तर्क दे रखा है कि लौकिक सत्य की जब बात करते हो तो फिर वह अद्वैत वाली बात मत करो। अद्वैत है आधे घंटे के लिए या बहस करने के लिए, पूजा पाठ के लिए, और बाक़ी समय के लिए लौकिक सत्य चलता है। हिन्दुस्तानी दिमाग़ का यह एक बुनियादी काम हो गया है।

यों, कथनी और करनी का फ़र्क़ सारी दुनिया में है लेकिन वह कथनी और करनी का फ़र्क़ कैसा कि हम किसी तरफ़ निशाना लगा कर निशाना ऊँचा मारने की कोशिश

करते हैं, पर आखिर को हम आदमी कमज़ोर हैं, निशाना ऊँचा नहीं जा पाता, चूक जाता है। बाक़ी दुनिया में कथनी और करनी में फ़र्क़ होता है इसलिए कि आदमी किसी हद तक नालायक़ है, लेकिन हिन्दुस्तान में कथनी और करनी का संबंध ही बिलकुल तोड़ दिया गया है। उसे रखा ही नहीं, यह गड़बड़ ही नहीं रखी, क्योंकि हिन्दुस्तानियों ने यह तय कर लिया कि करनी तो हमेशा कम पड़ेगी ही, मन को दुःख देती रहेगी। हमेशा यह सवाल उठ खड़ा होगा कि हमारा यह आदर्श है, हम उसको नहीं पा सके, कम रह गये। इसी कम रह जाने की चिंता से बरी होने के लिए ज़िन्दगी को दो हिस्सों में बाँट दो। एक हिस्सा तो वह है जहाँ हम कम रह जाते हैं और एक वह जहाँ हम पूरे रहते हैं। तो पूरे हिस्से वाले हिस्से को अलग ही सोचो, अलग से उसकी तपस्या करो, अलग से उसके बारे में बातचीत करो, अलग से बिलकुल समसच्चिदान्द बन जाओ, तब मामला अच्छा हो जाएगा। यह है हिन्दुस्तानी दिमाग़ की एक सिफ़त कि वह सगुण और निर्गुण, सिद्धांत और कार्यक्रम को इतना अलग कर देता है कि हिन्दुस्तानी दिमाग़ सार्वजनिक बातों पर सोचने के लिए कम से कम अभी नाक़ाबिल हो गया है।

इसी के साथ-साथ कुछ दूसरे नतीजे निकलते हैं कि सार्वजनिक मामलों में और इतिहास के मामलों में हम कितने बेशरम हो गये हैं, इसका एक प्रमाण मैं आपको देता हूँ जो हिन्दुस्तान की सरकार ने बाहरी यात्रियों के लिए पोस्टर निकाल कर बताया। उसमें तीन-चार तसवीरें हैं—एक चीनी की है, एक पुर्तगाली की है और एक यूरोपी की है और और एक हून की भी है। चार विभिन्न शक्लें, अलग-अलग कपड़े। दिखाया जाता है कि हिन्दुस्तान ने हमेशा विदेशी का प्रेम से स्वागत किया। कैसे स्वागत किया है? आज़ाद रह करके? अगर हिन्दुस्तान आज़ाद रहता हुआ विदेशियों का स्वागत करता पिछले हज़ार बरसों में, तब तो वह बात मेरी समझ में आती लेकिन हिन्दुस्तान ने हमेशा इन विदेशियों का स्वागत किया है पिछले हज़ार बरस में ग़ुलाम बन कर। विदेशी आया, हम दब गये, झुक गये, नहीं झेल पाये उसकी मार को। तो क्या हम उसे कहेंगे कि विदेशियों के स्वागत करने में हिन्दुस्तानियों ने ख़ूबी दिखायी।

इसी के साथ-साथ एक दूसरी बात चलती है। हर एक पढ़ा-लिखा या किसी ऊँची जगह पर बैठा हुआ हिन्दुस्तानी जब भाषण करने उ ता है और कुछ बोलने के लिए नहीं रहता तो कह जाता है कि हिन्दुस्तान तो ग़ज़ब का देश है, उदार है, सब ले लेता है, समन्वय करता है, मिला लेता है सबको। यह एक असत्य है जिसे आप अक्सर सुना करते हो कि हिन्दुस्तान में बहुत तरह के रूपरंग के बीच में एक तरह की एकता है। कोई भी सवाल उठे, कह दो, हम विभिन्न हैं और विभिन्नता के बीच में एक तरह की एकता है, यह तक़ियाक़लाम हो गया। कोई मंत्री, प्रोफ़ेसर, जब बोलने के लिए नहीं कुछ रह जाता उसके पास, तो यह कह देता है, विभिन्नता में एकता। और कोई भी विभिन्नता हो, लिखने की विभिन्नता हो, भाषा की विभिन्नता हो, कपड़े की विभिन्नता हो, हर एक चीज़ पर वह कह देता, अरे, यह तो विभिन्नता की एकता है।

विभिन्नता की एकता मैं क्या बताऊँ ? एक दिन एक कोबे में सो कर उठा। टोकियो हम लोग गये थे। सफ़र की थी। दिन भर बहुत-कुछ देखा था। रात को रेल-गाड़ी में सफ़र की थी। जब ज़्यादा सफ़र करते रहे, रोज़ एक शहर बदलता रहे तो उठते-उठते दिमाग़ एकदम से चकरा जाता है कि हैं कहाँ हम और ५-१० मिनट इसी में लग जाया करते हैं कि हैं कहाँ। कोबे में जब मैं उठा तो मुझे एकाएक विस्मरण हो गया कि मैं कहाँ हूँ, और सामने एक अद्‌भुत दृश्य दिखाई पड़ा। सकड़ों नहीं, हज़ारों की तादाद में बच्चे, लड़के और लड़कियाँ एक जैसा कपड़ा पहन कर चले जा रहे हैं—सफ़ेद क़मीज़ और नीला या तो लहँगा या पतलून। मैं तो भूल गया था कि मैं जापान में हूँ, कोबे में हूँ। फिर जब उस दृश्य को ५-७ मिनट तक मैंने देखा तब एकाएक ख़याल आया, अरे, यह तो जापान है, कोबे है, ये बच्चे स्कूल जा रहे हैं।

उसके मुक़ाबले में, एक बार इलाहाबाद में सुबह पहले अपने एक दोस्त के साथ काम पर जब मैं निकला तो देखा कि बच्चे-बच्चियाँ, तितली बने हुए जा रहे हैं। कोई लाल रंग की तितली, कोई काले रंग की तितली, कोई पीले रंग का तितली, कोई नीले रंग की, न जाने कितने बहुरंग। लोगों को मज़ा आता है, वाह, कितनी विभिन्नता में एकता है हिन्दुस्तान में। यह विभिन्नता में एकता है ? जो कोई भी मिसाल आप देखेंगे, हिन्दुस्तान में एक अजीब ढंग का ऊपरी स्वांग पाओगे। अन्दर, बुनियाद में जा कर किसी चीज को समझना, उसको टटोलना, उसमें से कुछ नतीजे निकालना, यह नहीं होता। आख़िर बच्चे कितने ढंग के कपड़े पहनते हैं, इससे क्या संस्कृति बन जाती है।

हमको हिन्दुस्तान-चीन की इस लड़ाई में जो अपमान सहना पड़ा, जो ग्लानि हुई है, जिस तरह से हमने अपनी ज़मीनें खोयी हैं, इसके पीछे यही एक विभिन्नता में एकता वाला स्वांग और ज़हरीला सिद्धान्त घुसा हुआ है। मैं बता चुका हूँ कि हिमालय, भाई हिमालय में तो क़रीब दो करोड़ आदमी बसते हैं और भारतीय हिमालय में क़रीब १ करोड़ आदमी बसते हैं। इन एक करोड़ के बारे में तो हम कुछ कर सकते थे, क्योंकि वे तो हम हैं, जैसे हम यहाँ, वैसे वे वहाँ। लेकिन इस भारतीय हिमालय के १ करोड़ आदमियों को तितली बना कर रखा गया है जैसे इलाहाबाद के स्कूल के वे बच्चे। कोई अपने माथे पर कुछ लगा कर रखो, कोई बाँह पर लगा रखो, कोई लहँगा पहन कर रखो, कोई बाण चलाते रहो, न जाने कितने क़िसम की तितलियाँ बना कर रखा। और इन १ करोड़ आदमियों में राष्ट्रीयता की भावना या सच्ची विश्व एकता की भावना को उदय नहीं होने दिया, उदय कराने के काम नहीं किये गये।

उन एक करोड़ के इलाक़े की रक्षा कौन करेंगे ? वे ख़ुद एक करोड़ नहीं या उनका कोई हिस्सा नहीं बल्कि जवान लोग आएँगे, यही जवान वाली सेना। इसी से आप समझ सकते हो कि हिन्दुस्तान का राज्य लोकसेना वाला राज्य नहीं, जवानों की सेना

वाला राज्य है। सेना में धंधे के लिए भरती होते हैं, और जैसे सब धंधे हैं वैसे ही यह एक धंधा है और भरती हो कर देश की रक्षा के लिए निकल पड़ते हैं। हिमालय में बसने वाले उन १ करोड़ आदमियों को तो हमने विभिन्नता में एकता के सिद्धान्त का शिकार बना डाला। उनको इस लायक़ नहीं बनाया कि वे अपने इलाक़े की रक्षा कर सकें। यही समन्वय, मिलाना, दूसरों से ले लेना, उदारता दिखाना, देखो हम कैसे बढ़िया हैं, हमने किसी चीज़ को छोड़ा नहीं, हमने सबको लिया।

ठीक है, मैं भी समन्वय पसंद करता हूँ, लेकिन किसको कहते हैं समन्वय? ज़बरदस्ती, दूसरों की ताक़त के कारण जो चीज़ हम ले लिया करते हैं, उसको मैं समन्वय हरगिज़ नहीं कहूँगा। उसे तो मैं कहूँगा पिट करके स्वीकार कर लेना। समन्वय सिर्फ़ उसी को कहा जाता है जब आप परदेशी को देखते हो, उसमें कुछ ताक़त की चीज़ या अच्छाई की चीज़ पाते हो, अपने दिमाग़ से उसके ऊपर अध्ययन करते हो और जब वह आपको अच्छी लगी तो उसे स्वीकार करते हो। वह तो है समन्वय। लेकिन अगर आपका देश ग़ुलाम हो जाता है, आप कमज़ोर हो जाते हो, आपका मालिक जिस ढंग से रहता है, उस ढंग की जब आप नक़ल करने लगते हो, तो मैं उसको हरगिज़ समन्वय नहीं कहूँगा। वह तो खाली ताक़तवर की नक़ल करना हुआ अपने दिमाग़ को बेच कर या कमज़ोर करके। और पिछले हज़ार बरस के हिन्दुस्तान में यह बात आप ख़ास तौर से पाओगे। जिस तरह से हमारा सगुण और निर्गुण दिमाग़ बिलकुल अलग हो गया और सार्वजनिक मामलों में समाज के, अर्थ के, राज्य के गठन के मामलों में हम अपने को धोखा देने में बहुत तेज़ हो गये, उसी तरह से नक़ली, झूठा, दब करके चीज़ों को स्वीकार करने वाला समन्वय हमने बहुत ज़बरदस्त चलाया।

अब इस नक़ली समन्वय की मिसाल मैं आपको और क्या दूं? दिल्ली है सबसे बड़ी मिसाल। दिल्ली जैसा शहर दुनिया में कोई नहीं। यह ८०० बरस पुराना है, या ज़्यादा से ज़्यादा हज़ार बरस आप रख लो। अगर कोई दिल्ली का इतिहास लिखे तो एक तरफ़ बड़ा रोचक इतिहास होगा, सच्चा इतिहास बड़ा रोचक होगा, और दूसरी तरफ़, हिन्दुस्तानी के दिमाग़ को मसोस देने वाला। यह दिल्ली एक बड़ी छबीली कुलटा है। छबीली है इसमें कोई शक नहीं, लेकिन कुलटा है। जब अंग्रेज़ों का राज खतम हुआ था तो डाक्टर अंसारी की बीबी ने कुछ लोगों से बातचीत करते हुए एक बहुत प्यारा जुमला इस्तेमाल किया था। लोग मर रहे थे। दिल्ली की गलियों में खून बह रहा था। उन्हें इस बात का पता लगा तो बोलीं, कोई ख़ास बात नहीं, दिल्ली का जब-जब सुहाग बदलता है, तब-तब सड़कें खून से भर जाती हैं। तो, दिल्ली का सुहाग बदला और पिछले हज़ार बरस में कितनी बार दिल्ली का सुहाग बदला है, इसे आप देखो। हर आदमी जानता है। सात या आठ दिल्ली तो हैं ही। रायपिथोरा, तुगलक़ाबाद, जहाँपनाह, लोधी, दिल्ली, फिर वह पुराने क़िले वाली, शाहजहाँनाबाद और फिर वह ग़ुलामाबाद—ये सब दिल्लियाँ

हैं। एक राजा का बदलना, उसी मानी में कि उसी कुटुंब के या उसी परम्परा के, उसी राज्य के दूसरे आदमी का आ जाना, वह एक अलग बात होती है। उसे राज्य बदलना नहीं कहा जाएगा, बल्कि वह तो खाली सरकार बदलती है। जैसे हुमायूँ गये, अकबर आ गये, अकबर गये और जहाँगीर आ गये, तो यह कोई सुहाग बदलना नहीं हुआ। लेकिन जब इब्राहीम लोधी हार जाता है, और पूरा लोधी घराना खतम हो जाता है, एक ढंग के राज्य का गठन खतम हो जाता है हालाँकि ये लोग जो आये थे, वे भी परदेशी बन करके, लेकिन हिन्दुस्तान में देशी बन गये थे, और जब उनका राज खतम होता है और बाबर का राज शुरू होता है तब सुहाग बदलता है। दिल्ली का सुहाग पिछले हज़ार बरस में ७–८ दफ़े बदला। इतनी छिनाल है दिल्ली, लेकिन बड़ी छबीली है। जब कोई परदेशी यहाँ आ कर अपना पैर जमाता है, जीतता है, तो फिर वह अपने हाव-भाव को खोल करके खड़ी हो जाती है, आओ रीझो। जब पानीपत के मैदान में परदेशियों को वह नहीं हरा पाती है तो दिल्ली की रंगीली सड़कों या महलों में अपनी खूबी व छटा को दिखा करके वह परदेशी को रिझाया करती है। अपनी दिल्ली को समझ लेना। और, दिल्ली के साथ-साथ अपने हिन्दुस्तान की तक़दीर को समझने के लिए पुराना इतिहास भी सामने रख लेना चाहिए। इसमें तो किसी को कोई इनकार हो नहीं सकता कि हमारा दिल्ली का अब तक का यह तजुर्बा रहा।

इसी के साथ-साथ एक हैरत की बात कि दिल्ली ने कभी भी कोई बलवा नहीं किया अन्दरूनी अन्याय के खिलाफ़। थोड़ा-बहुत हुआ है तो बाहरी जालिम के, जो परदेशी रहा है उसके खिलाफ़ हुआ है। वह भी बहुत कम, बहुत मामूली। आप कहोगे १८५७ वाला। तो, १८५७ में दिल्ली की जनता ने अपने क़ानूनी बादशाह के साथ हो कर अपने परदेशी विजेता के साथ कुछ थोड़ी-सी छटा दिखायी, और वह भी दिल्ली की जनता ने नहीं, मेरठ वालों ने। उनसे कुछ छूत की बीमारी हुई और यहाँ भी थोड़ा-बहुत हो गया। अन्दरूनी अन्याय या जालिम के खिलाफ़ दिल्ली ने कभी कोई बलवा नहीं किया। उसको भी छोड दो। मैं कहता हूँ कहीं किसी तरह का जनता की तरफ़ से भी नहीं हुआ। मैंने तो इस इतिहास को पढ़ना बहुत चाहा। बस, छोटी-मोटी छटा दिखाई पड़ जाती है जैसे रज़िया की। पर वह तो रानी थी। अकेली औरत जो दिल्ली की गद्दी पर बैठी रज़िया। रज़िया के खिलाफ़ उस ज़माने के नवाब, जरनैल और मुल्ला तीनों हो चले थे, लेकिन जनता रज़िया के साथ रहती थी। ऐसे क़िस्से पढ़े गये हैं कि रज़िया अपने क़िले के छज्जे पर खड़ी हो कर दिल्ली के हज़ारों लोगों को कुछ कहा करती थी। वह कोई खास बात नहीं हुई, लेकिन मैंने आपको एक क़िस्सा बता दिया। फिर मैंने बहुत ढूंढ़ा। कभी तो दिल्ली के लोगों ने कुछ किया हो, तो एक बहुत छोटा-सा क़िस्सा लगा हाथों, और वह औरंगज़ेब के ज़माने का। औरंगज़ेब का बड़ा भाई दारा पकड़ा गया था, वह बहुत उत्तर में, मतलब, समझो इस वक़्त सरहदी सूबा है, वहाँ पकड़ा गया था या

अफ़गानिस्तान के पास। जिसने दारा को पकड़ाया था उसे दिल्ली लाया गया और औरंगज़ेब ने उसको हाथी पर बैठा कर बहुत स्वागत के साथ दिल्ली की सड़कों पर घुमाया। उस वक़्त कुछ लोगों ने उसे गालियाँ सुनायीं। शायद थोड़ा-बहुत तमाचा-वमाचा भी मारा होगा, थूका-थाकी की। इसे आप काफ़ीखाँ के इतिहास में पढ़ सकते हैं। जिसने औरंगज़ेब के बारे में सब बयान लिखे। वरना दिल्ली ने कभी कुछ नहीं किया। यह भी मामूली-सा था। उसके दूसरे-तीसरे दिन वह पकड़ा भी गया, उसको फाँसी भी हो गयी। इसको बल नहीं कह सकते। ज़्यादा से ज़्यादा इसे हाथापाई आप कह सकते हो छोटे-मोटे पैमाने की।

यह सिर्फ़ दिल्ली के लिए नहीं लागू होता। सारे हिन्दुस्तान के लिए यह लागू होता है कि हिन्दुस्तान ने पिछले १,०००–१,२०० बरस में कभी भी अन्दरूनी अत्याचारी के खिलाफ़ बलवा नहीं किया। विदेशी की मैं बात नहीं कह रहा हूँ, क्योंकि इस बात को कहने के कारण मुझे सरकारी पार्टी ने बहुत ज़्यादा भला-बुरा कहने की कोशिश की कि देखो इस आदमी को अपने इतिहास पर कोई गौरव नहीं है, और पचासों नाम गिना दिये, महात्मा गांधी के, लोकमान्य तिलक के, वग़ैरह-वग़ैरह। इस वक़्त मैं जो कह रहा हूँ उस पर आप ध्यान देना। बाहरी ज़ालिम के खिलाफ़ तो थोड़ा बहुत हिन्दुस्तान ने हाथ दिखाया वह भी बहुत मामूली, लेकिन जो देशी ज़ालिम हैं, देशी अत्याचारी हैं उसके खिलाफ़ हिन्दुस्तान कभी उठा नहीं पिछले हज़ार बारह सौ बरस में। अब मुझे आपको भाग्य का एक सिद्धान्त बताना है कि जो देश अन्दरूनी ज़ालिम के खिलाफ़ उठना नहीं जानता, वह बाहरी आक्रमणकारी के सामने डट कर नहीं खड़ा रह सकता।

और मौक़ा होता इस वक़्त, तो मैं यूरोप के इतिहास से बिलकुल लड़ी लगा देता, फ्रांस की, इंगलिस्तान की। इंगलिस्तान ने अपने खुद के कितने देशी राजाओं को फाँसी पर लटकाया था? तीन को, शायद ४ को फाँसी पर लटकाया। ऐसा मत समझना कि इंगलिस्तान में जयचंद नहीं हुआ करते थे। सिर्फ़ जयचंद के होने से तो गुलाम नहीं हो जाता कोई देश। जयचंद तो सब जगह रहते हैं। कहाँ नहीं ग़द्दार होते? बिलकुल जयचंद की होड़ की मेरी थी इंगलिस्तान में। मेरी ने भी उसी तरह से स्पेन के राजा को सदेशा भिजवाया था जिस तरह से जयचंद ने मोहम्मदग़ोरी को संदेशा भिजवाया। फ़र्क़ सिर्फ़ इतना था कि इंगलिस्तान की जनता इतनी खबरदार थी कि उसने मेरी को गिरफ़्तार करके फाँसी पर लटका दिया और हिन्दुस्तान की जनता इतनी बेखबर रहती है कि उसने राज करने के मामले, खेती कारखानों की नीति बनाने के मामले, सार्वजनिक बातों को तय करने के मामले, सब कुछ एक छोटे-से गिरोह को सौंप करके समझ लिया कि हमारा काम सिर्फ़ खेती करना, कपड़ा बुनना, बाल बनाना, पाखाना साफ़ करना, ये सब हमारे धंधे हैं। बाक़ी तो दूसरे लोग करते रहेंगे। तब जयचंद ग़द्दारी करता है तो उसका कोई इलाज नहीं रह जाता।

अन्दरूनी ज़ालिम के ख़िलाफ़ हिन्दुस्तानी जनता ने पिछले हज़ार-पन्द्रह सौ बरस में कभी बलवा नहीं किया। और जो जनता बलवा नहीं करती भीतरी, देशी ज़ालिम के ख़िलाफ़, वह परदेशी आक्रमणकारी का मुक़ाबला नहीं कर सकती। मेहरबानी करके देशी-परदेशी के मामले में एक क्षण के लिए भी आप हिन्दू-मुसलमान वाली चीज़ मत समझ बैठना। इतिहास पढ़ने का हमको यह एक और बुरा नुस्खा मिला है कि पिछले हज़ार बरसों को हम हिन्दू-मुसलमान की कसौटी पर समझने की कोशिश करते हैं। यह निहायत बोदी और ग़लत चीज़ हैं। हिन्दू-मुसलमान अलग चीज़ है यह तो देशी-परदेशी का मामला है। क्या मुसलमान ने मुसलमान का क़त्लेआम नहीं किया। तैमूरलंग भी मुसलमान था, लेकिन वह मुग़ल मुसलमान था। उसने दिल्ली में क़त्लेआम करवाया और ऐसा कहा जाता है कि ४-५ लाख आदमियों को ३-४ दिन में मार डाला। ३-४ दिन उसको ग़ुस्सा रहा। थोड़े दिन और ग़ुस्सा रह जाता तो न जाने क्या कर डालता। क़त्लेआम में क्या हिन्दू ही हिन्दू थे। दिल्ली में तो आबादी ज्यादा मुसलमानों की ही थी, तो ५ लाख में ३ लाख मुसलमान रहे होंगे।

अगर ये मोटी-मोटी बातें पिछले १३ बरस में घर-घर पहुँचायी जातीं, हिन्दू और मुसलमानों के बीच में, करोड़ों के बीच में कि पिछले हज़ार बरस का इतिहास हिन्दू-मुसलमान इतिहास है ही नहीं। थोड़ा-बहुत चाहे रहा हो, मैं बिलकुल इनकार नहीं करूँगा। यह मैं मान लेता हूँ कि कुछ दायरों में, पिछले ६-७ सौ बरस में जो राज हुए हैं, चाहे वे मुग़ल हों, चाहे पठान हों, उन्होंने मुसलमानों के साथ थोड़ा-बहुत पक्षपात किया है। लेकिन बुनियादी तौर पर यह देशी-परदेशी का इतिहास है कि किस तरह से परदेशी आता है, मुल्क पर फ़तह करता है, दिल्ली पर रीझ जाता है, नपुंसक बन जाता है, देशी बन जाता है, और फिर कोई परदेशी आता है तो उस पर हावी हो जाता है और उसका भी वही सिलसिला शुरू हो जाता है।

इसी से कुछ और चीज़ों की तरफ़ भी हमें ग़ौर करना है और एक यह कि अजीब क़िसम की स्थिरता है, जिस स्थिरता की जब देखो तब हिन्दुस्तान की राजनीति में बड़ी तारीफ़ की जाती है। कैसे हम स्थिर हैं, हमारे यहाँ तो तख्ता पलटता नहीं। हिन्दुस्तान की ख़ूबी बताते हुए कहा जाता है कि पिछले १३ बरस में सब जगह प्रधान मंत्री बदल गये, सब जगह सरकारें बदल गयीं, पर हम कितने स्थिर हैं, हमारे यहाँ नहीं बदला कुछ। घमंड के रूप में यह कहा जाता है। जिस चीज़ पर शर्म करनी चाहिए, उसे घमंड से कहा जाता है। स्थिरता ही हमारे लिए एक मज़ेदार चीज़ बन जाया करती है कि हमारे यहाँ ख़ून ख़राबी नहीं होती, हमारे यहाँ मारपीट नहीं होती, हमारे यहाँ प्रदर्शन, जुलूस वग़ैरह नहीं होते, देखो वह जापान, देखो वह तुर्की, देखो वह कोरिया, जब देखो तब तख्ता पलटता रहता है। जहाँ तक मरने का सवाल है, मैं एक मोटी बात आपसे कह दूँ कि अपनी सरकार की गोली खा कर, युद्ध की बात मैं नहीं कहता, जापान में या तुर्की

में या कोरिया में उतने आदमी पिछले १३ बरस में नहीं मरे हैं जितने कि हिन्दुस्तान में। स्थिरता ? काहे की स्थिरता ? एक चीज़ की स्थिरता रही और वह यह कि सदैव की तरह हिन्दुस्तान के लोगों को, जनता को, अकाल, कम भोजन, और महामारियों का शिकार बनना पड़ता है। मैं मोटा आँकड़ा ही बता सकता हूँ; मैं समझता हूँ कि हिन्दुस्तान में क़रीब ३० लाख मौतें अकाल की मौतें होती हैं। जिसमें खाना न मिलने से और ताऊन, हैजा, चेचक आदि से होने वाली मौतें भी शामिल हैं।

हाँ, चेचक पर ग़ौर कीजिए। हिन्दुस्तान की तक़दीर कैसी है कि हम जा कर शीतलामाई की पूजा करते हैं कि शीतलामाई मत आओ। यूरोप वाले तो शीतलामाई को डंडा मार कर भगा देते हैं और हम उसकी पूजा करते हैं। शीतलामाई सोचती हैं, ये बड़े दुलारे बेटे हैं, पूजा करते हैं, चलो चिपको इनके और फिर चिपकती है शीतला खूब मज़े से।

अकाल मृत्यु वाली संख्या ऐसे ही नहीं बतला दी है बल्कि हिसाब लगा कर बताया है। तो यह स्थिरता ? मुझे इसमें भी एक नियम मालूम पडता है कि जो देश जितना ज्यादा स्थिर है उतना ही कम तरक़्क़ी करेगा। यह नियम है। नियम के अपवाद भी हुआ करते हैं। कहीं इससे यह नतीजा न निकाल लेना कि जो देश जितना ज्यादा चंचल है, बदलता रहता है, उतना ही ज्यादा वह तरक़्क़ी करता है। चंचलता में भी मैं हद बाँधूंगा। एक तो चंचलता ऐसी है जिससे तरक्क़ी होती है और दूसरी चंचलता ऐसी है जिससे दूर हो जाया करती है। देश में टूट करने वाली चंचलता बुरी है, लेकिन अगर मर्यादा के के भीतर चंचलता रहती है तब देश और जनता तरक्क़ी किया करते हैं। ऐसी चंचलता हिन्दुस्तान में नहीं। स्थिरता, ग़ज़ब की स्थिरता। हम स्थिर पड़े हुए हैं।

और, मैं अपने आँकड़ों से नहीं, संयुक्त राष्ट्र संघ के आँकड़ों से बताता हूँ कि खेती कारखाने यानी आर्थिक जीवन की तरक्क़ी की रफ़तार दुनिया में सबसे कम हिन्दुस्तान की रही है। सिर्फ़ १-२ छोटे-छोटे देश हैं जो हमसे पीछे रह जाते हैं। बाक़ी हर एक देश हमसे आगे रहा। हम बढ़ते हैं कोई डेढ़-दो सैकड़ा के हिसाब से। पिछले साल तो और भी कम बढ़े हैं, क्योंकि पिछले साल आबादी की बढ़ती की रफ़तार ज़्यादा रही है बनिस्बत खेती की रफ़तार के। पिछले साल हम तो बिलकुल ही डूब गये। लेकिन और सब सालों में भी देखा जाए तो खेती कारखानों के मामले में दूसरे देश हम से ज्यादा बढ़े हैं। यह कैसी स्थिरता ? क्या यह स्थिरता अच्छी है ?

कितनी ग़ज़ब की चीज़ें होती हैं। आईज़नहावर साहब जापान जा रहे थे। जापानी जनता ने उसको पसन्द नहीं किया। जापान की लोकसभा तो आईज़नहावर साहब का स्वागत कराना चाहती थी, लेकिन जनता की नापसंदगी ने इतना जबरदस्त इज़हार किया कि चार-चार, छह-छह दिन तक पचास हज़ार, लाख आदमियों की भीड़ें चक्कर लगाती रह

गयी लोक सभा की इमारत के आसपास और हल्ला मचा रहे हैं, नाच रहे हैं कि आईज़न-हावर वापस चले जाओ, और उस मौक़े पर अमरीका का राजदूत भी तो वहाँ पहुँच गया था, उसकी मोटर या उसका हेलीकाप्टर तक क़रीब-क़रीब उठा लेती है भीड़। इसे कहते हैं जान, चंचलता। यह भी सही है कि जापान की सरकार इतनी आसानी से गोली नहीं चला सकती। इसलिए भीड़ ६ दिनों तक चक्कर लगाती रही वहाँ पर शायद सिर्फ़ एक ही लड़की मरी थी, वह भी गोली से नहीं। दूसरे कारण से। न कोई पुलिस वाला मरा। और न जनता का कोई मरा। लेकिन जनता के रोब को देख कर जापानी सरकार ने आईज़नहावर की यात्रा ख़तम कर डाली।

हिन्द-चीन वाले मामले शुरू हुए। एक ऐसा आदमी जो कुछ नहीं जानता, अगर उसके सामने हिन्द-चीन के मामले की सब बातें रखी जाएँ कि किस तरह से हिन्द सरकार ने मध्य अक्तूबर में चीन को खदेड़ने के लिए न सिर्फ़ निर्णय किया, बल्कि उसका एलान दुनिया को किया। मैं युद्धवादी नहीं हूँ। युद्धवादी पंडित नेहरू हैं। मैं तो शांति-पसंद हूँ। मैं नहीं पसंद करता कि इस तरह के कोई एलान हों। मध्य अक्तूबर में यह एलान हुआ, खदेड़ो उनको, भगाओ, और फिर उसके बाद हाथ खींच कर लड़ाई लड़ी गयी। हमने अपनी ताक़त का इस्तेमाल नहीं किया, अपनी चौकियों में बैठे हुए चीन का मुक़ाबला करेंगे पर निकल कर टोहेंगे नहीं, देखेंगे नहीं कि वह कहाँ कमज़ोर हैं, तिब्बत के पठार तक भी नहीं पहुँच पाये जहाँ चीनियों की रसद और पलटनें जमा हो रही हैं। मैं यही कहूँगा कि उस वक़्त अगर दिल्ली में भी लाख, पचास हज़ार आदमी एक घंटे आधे के लिए, ४-६-८ दिन के लिए चक्कर लगाते, अपने दिल की माँग करते कि लड़ो, अब इस लड़ाई को अच्छी तरह से लड़ो, क्यों तुमने इसको मोल ली, बचाओ अपनी १५ अगस्त १९४७ तक की सीमा, तब पता चलता कि हाँ, हिन्दुस्तान के लोगों में कोई जान है। इस वक़्त मैं स्थिरता, चंचलता और टूट, तीनों में फ़र्क़ कर रहा हूँ। और जानदार चंचलता जो कि बाक़ी दुनिया के हिस्सों में कुछ पायी जाती है, उसकी तारीफ़ करना चाहता हूँ।

मैंने पुराने हिन्दुस्तान के इतिहास से कुछ दिशाएँ बताने की कोशिश की। अभी तक जो दिशाएँ बतायी हैं, वे ज़्यादा आशा वाली तो हैं नहीं। इससे मन में यह आशा नहीं जमती कि हम अपनी आज़ादी की रक्षा कर पाएँगे या चंचल बन कर देश को सुधार पाएँगे। और हाँ, इन सबके पीछे जिसे मैं सबसे बड़े कारण समझता हूँ वे भी एक-एक करके, मोटे-मोटे, जो बहुत बड़े हैं, गिनाए देता हूँ। यह स्थिरता कहाँ से आयी? क़रीब-क़रीब मौत या कम से कम आधी मौत कहाँ से आयी? परदेशी, ताक़तवर परदेशी की नक़ल करने से जो समन्वय पैदा होता है, वह कहाँ से आया? अन्दरूनी अत्याचारी के ख़िलाफ़ बग़ावत बिलकुल बंद हो जाने का रोग कहाँ से आया? अगर एक शब्द मुझे कहना पड़े तो मैं कहूँगा—जातिप्रथा। हिन्दुस्तान में जातिप्रथा ने देश को इतना ज़्यादा

तोड़ दिया है और हजारों क़िस्म की जातियाँ हो गयी हैं कि जो अपना अलग-अलग जीवन बनाये हुए हैं कि जिससे हमारे लिए कोई भी सार्वजनिक अच्छाई प्रायः नामुमकिन हो गयी है।

जाति का गोरखधंधा मैं कहाँ तक बताऊँ। ऊँची जाति वाले हैं उनकी तो बात आप छोड़ दीजिए। जो छोटी जाति वाले हैं उनमें से कइयों के साथ मुझे रहना पड़ता है, यों भी रोजमर्रा की जिन्दगी में, जेल में खास तौर से, क्योंकि वहाँ बैठ कर सुबह-शाम कुछ क़िस्सेबाजी भी हो जाया करती है। एक कहार से, अच्छा बढ़िया नेता, वह भी जेल में गया था, मेरी बातचीत हुई। मोटी तौर पर उनके दिमाग़ में क्या बात है, आपको बताये देता हूँ। कहार, जो ज्यादातर बर्तन धोते हैं या घरेलू काम करते हैं या पानी भरते हैं, कहारों की तायदाद हिन्दुस्तान में डेढ़-एक करोड़ तो होगी, ज्यादा ही होगी। ये अपने को छोटा नहीं समझते। इनका ख़याल है कि शिव महाराज के दो लड़के थे। एक का नाम था कहार और दूसरे का नाम था राजपूत और शिव महाराज ने अपनी दौलत दोनों बेटों को बराबर-बराबर बाँट दी। राजपूत था चालाक, उसने फुसला कर कहार से सब दौलत ले ली। कहार बिचारा ग़रीब रह गया। तब शिव महाराज के पास गया कि मेरे साथ तो यह जुल्म हो गया। शिव महाराज ने उससे कहा कि कोई बात नहीं, इसे तो यह लोक मिला, तुम्हें परलोक मिलेगा, तुम अब सेवा करो, इससे तुमको जितने भी सबाब हैं, पुण्य हैं सब मिल जाएँगे, तुम ऊपर उठ जाओगे, यह चतुर है, चालाक है, गिर जाएगा।

जातिप्रथा के बारे में मैं जानता हूँ, उस वक़्त से जब मैं लाहौर क़िले में क़ैदी बनाया गया था। और आप जानते हो कि ये भी सितम ढाते हैं, यह सरकार कोई कम नहीं है, लेकिन अलग-अलग दायरा है। अंग्रेजी सरकार लाहौर के क़िले में हम लोगों को दिन रात जगाया करती थी जिससे सो नहीं पाओ। अगर हममें से कोई आँखें मींच लेता, सोने का तो कोई सवाल ही नहीं, कुर्सी पर बैठाये हुए हैं, हाथ में हथकड़ी पड़ी हुई है, तो बाहर से सिपाही आते और कोई दाँयें-बायें कोई आगे पीछे सिर घुमा रहा है, और इससे कुछ नहीं हुआ तो तार की जो दरियाँ होती है जिस पर हाथ वग़ैरह छिल जाते हैं तो उन पर चक्कर दिलाते थे जैसे घानी चला रहे हों। इस तरह के मामले लाहौर के क़िले में चलते थे।

उस वक़्त मैं सोचा करता था कि आखिर ये अपने देशवासी हैं, कैसे यह सब काम करते हैं? क्यों नहीं इनकी आत्मा भड़कती? क्यों नहीं ये भी बग़ावत करते? करें कैसे, हिन्दुस्तान की ९० सैकड़ा जनता को हम लोगों ने या हमारे पुरखों ने सार्वजनिक जीवन के दायरे के बाहर कर दिया, आज से नहीं, हजार बरस से। उनको ऐसे धंधे, रोजगार दे दिये और कह दिया गया तुम फ़लाने रोजगार, धंधे करो, तुम को क्या मतलब राजकाज के मामलों से। राजकाज के लिए हम द्विज लोग ऊँची जाति वाले, जो दो बार पैदा होते

हैं, काफ़ी हैं। इनमें औरतों को भी आप शामिल कर लेना क्योंकि औरतें चाहे ऊँची जाति की हों, चाहे छोटी जाति की हों, वे भी सार्वजनिक जीवन से बाहर रखी गयीं। वैसे, खैर वे दुर्गा हैं, देवी हैं, रुक्मिणी हैं इसलिए खूब ऊँचे स्थान पर उन्हें बैठा दो। उसके बाद कहो, महादेवी, आप बड़ी देवी हैं; और अलग रखो उनको, क्योंकि अगर कहीं बराबर ले आओगे तो मज़ा किरकिरा हो जाएगा, उसमें तो झंझट पैदा हो जाएगी। यह सही है कि अगर बराबर ले जाओगे तो ज़रा उसमें नमकीन पन भी आ जाएगा लेकिन खतरा इस बात का रहेगा कि कहीं हाथों से छटक न जाएँ, क्योंकि वह तो जानदार चीज़ होगी।

हमने अपनी जाति प्रथा के कारण क़रीब ९० सैकड़ा को तो सार्वजनिक जीवन से अलग कर दिया और जो ऊँची जाति वाले भी रहे, उनमें भी ज़्यादातर लोगों को अयोग्य बनाते चले गये, क्योंकि जाति एक ऐसी चक्की है जो योग्यता और अवसर को छोटे-छोटे तबक़ों में इकट्ठा करती चली जाती है और घूमै फिर करके मामला क़रीब एक सैकड़ा आबादी तक सीमित हो गया है जिनमें योग्यता है लेकिन काहेकी योग्यता ? फैलाव वाली योग्यता नहीं। चालाकी की, सिकुड़न वाली योग्यता और सिकुड़न की मनोवृत्ति को ले कर राष्ट्रीय आमदनी या भंडार में से अपना हिस्सा किस क़दर ठीक रखा जा सके या बढ़ाया जा सके, इसकी योग्यता है। और खैर, उठना, बैठना, कपड़े-लत्ते ठीक तरह से पहनना, बातचीत करना, सिद्धांत बाज़ी चलाना, बहस करना, शब्दबाज़ी चलाना, यह सब भी आता है।

हाँ, इस शब्दबाज़ी के बारे में आपको और कह दूँ। हिन्दुस्तान बहुत शब्दबाज़ी चलाता है। वैसे, मैं भी बहुत शब्द इस्तेमाल करता हूँ, लेकिन मैं चाहूँगा कि कोई मुझे बताए कि कब मैंने बेमतलब शब्द इस्तेमाल किये हैं; उन शब्दों के पीछे कोई अर्थ होता है, बेमतलब शब्द नहीं होते। हिन्दुस्तान में बेमतलब शब्द बहुत चलते हैं। जीभ ही तो है, फर दो जिस तरफ़ चाहो। क्या बिगड़ता है, सब तरह के लोग खुश हो जाएँगे। अभी मैं भरतपुर गया था। वहाँ पर चिड़ियों को सुरक्षित रखा जाता है, कम से कम यही कहा जाता है। परदेश से आने वाली चिड़िया, देश से आने वाली चिड़िया, सुरखाब है, और न जाने कौन-कौन-सी चिड़ियाँ। वहाँ पर लिखा हुआ है, चिड़िया पनाह, अंग्रेज़ी में 'सेंक्चुअरी' शब्द होता है वह। और कभी-कभी एक-एक दिन में दो-दो, तीन-तीन हज़ार चिड़ियाँ वहाँ मार डाली जाती हैं। कभी कोई बड़ा आदमी चला जाए तो उसके साथ ५० बन्दूक़ें हैं, गोली लगाते हैं, वहाँ पर अपना हुनर दिखाते हैं, चिड़िया मारते हैं। एक तरफ़ लिखा हुआ है चिड़िया पनाह, और दूसरी तरफ़ शिकार करने की इजाज़त।

अगर कोई उनसे पूछे कि यह तुम क्या कर रहे हो, मैं सही कहता हूँ, यही जवाब मिलेगा कि क्या बकवास करते हो। चिड़िया पनाह तो निर्गुण है, वह तो सिद्धान्त का

सवाल है, उसमें चिड़िया पनाह है। अरे थोड़ी-बहुत, हजार, दो हजार चिड़िया मार लेते हैं, तो उसमें क्या हुआ और अगर नहीं मारेंगे तो चिड़ियों की तादाद इतनी ज्यादा हो जाएगी कि जिन्दा रहना मुश्किल हो जाएगा, क्योंकि पानी है कम जमीन है कम, घास है कम। यह तो खाली एक असलियत की बात हो गयी, अमल की बात हो गयी, सगुण बात बात है। निर्गुण को अलग रखो, वह तो 'सेंक्चुअरी' है, चिड़िया पनाह है।

शब्दबाजी के बारे में मैं और क्या कहूँ? मैं दावे के साथ यह कहना चाहता हूँ कि मौजूदा दिल्ली सरकार और इसके प्रधान मंत्री के पिछले १५ बरस के वाक्यों को अगर आप इकट्ठा करो तो हजारों बार एक दूसरे के विपरीत शब्द और वाक्य आप पाओगे। जीभ का मतलब कहीं कोई नहीं रह गया है। जीभ का आदर करना हिन्दुस्तानी नहीं जानता। इस हालत पर हम पहुँच गये हैं। अपनी जीभ का आदर करो। जो बोलो सो सोच-समझ कर बोलो और उस पर टिकना सीखो। लेकिन नहीं। अभी एवरल हेरिमेन और सेंडिस साहब आये थे जिनके जरिये हिन्दुस्तान-पाकिस्तान ने बात करना शुरू किया। आप जानते हो, तीन मुख़तलिफ़ क़िसम के बयान कोई चौबीस घंटे के अन्दर-अन्दर प्रधान मंत्री ने दे दिये। उनका कुछ नहीं बिगड़ता, यह भी मैं आपको बता दूं, क्योंकि हिन्दुस्तानी दिमाग़ ही ऐसा बन गया है और अगर बहुत सोचता तो यह कि कितना चालाक आदमी है कि एक तरफ़ ऐसी भी बात कह दी कि पाकिस्तान को डर लग जाए, देना-दिवाना न पड़े, दूसरी तरफ़ ऐसी बात कह दी जिसमें अंग्रेज अमरीका वाले समझ लें कि हाँ, कुछ हो रहा है, शायद पेंच से निकल जाएँगे। सब तरह की बात कह लो, क्या बिगड़ता है?

मधुलिमये ने, इस वक़्त का जो रक्षा मंत्री हैं, उसका क़िस्सा सुनाया था। दिल्ली में आने के बाद वह ८ सितम्बर का हिमायती बन गया। लेकिन जिस दिन दिल्ली आने के लिए उन्होंने बम्बई छोड़ी थी, उस दिन या उसके १ दिन पहले, बम्बई की विधान सभा में १५ अगस्त ४७ का प्रस्ताव पास हुआ था। क्या है जीभ ही तो चलाना है? बम्बई की विधान सभा में १५ अगस्त १९४७ वाला प्रस्ताव पास करवा लो और यहाँ आओ तो ८ सितम्बर १९६२ वाले बन जाओ। क्या बिगड़ता है? यह तो नीति की बात है। जब मैंने यह बात कही तो एक बड़े भारी नेता ने मुझे जवाब दिया कि भई, जैसी स्थिति है, उसके अनुसार काम करना ही पड़ता है, इसमें क्या बात। खैर, जीभ का आदर देना बहुत जरूरी हो गया है, लेकिन इस वक़्त नहीं।

अब दुनिया की पृष्ठभूमि आप देखना और पहले जो मैंने कहा उसमें इस सारे मामले को जोड़ना। जाति, भाषा, और छोटे-बड़े का फ़र्क़—ये कुछ मोटी-मोटी चीजें इससे निकलती हैं। जाति वाला तो मैंने आपको बताया। भाषा का तो कहना ही क्या है? एक तरफ़ संकट क़ानून बनाये हुए हैं, दूसरी तरफ़, एलान हो रहा है कि अगली दफ़े लोकसभा में अंग्रेजी भाषा को क़ायम रखने वाला क़ानून पास होगा। अंग्रेजी भाषा, और

तुर्रा यह कि अंग्रेज़ी भाषा के ज़रिये मुल्क को एक रखेंगे ? इस पर कभी सोचा है ? वही एक सैकड़ा वाला ? बाक़ी ९९ सैकड़ा, ९० सैकड़ा छोटी जाति वाले और औरतें, ९ सैकड़ा ऊँची जाति वाले कम पढ़े-लिखे ग़रीब लोग, ९९ सैकड़ा जो जाति की चक्की में पिसते चले जा रहे हैं, बेकार पिसते चले जा रहे हैं, उस हिन्दुस्तान को नहीं। और, हिन्दुस्तान में जितनी ज्यादा तरक्क़ी होती है, उतनी ही ज्यादा जाति और आमदनी की ग़ैरबराबरी बढ़ती है। कुछ लोग अचरज करेंगे लेकिन असलियत में यही बात है, क्योंकि पिछले २ हज़ार बरस से कुछ खास-खास जातों में संस्कार पैदा हुए हैं, वे संस्कार क़रीब-क़रीब जिस्मानी हो गये हैं। जैसे जितना अच्छा व्यापार रामगढ़ और चूरू का मारवाड़ी बनिया चला लेता है, उतना और कोई चला नहीं पाता, तो दौलत इकट्ठा हो ही जाएगी। और जितना ज्यादा राजनीति की चालाकी—मैं योग्यता नहीं कह रहा हूँ—कश्मीर से बाहर आया हुआ कश्मीरी पंडित चला लेता है, उतना और कोई नहीं चला पाता। ये सब तो जाति के कुछ मामले हो गये हैं। वैसे और भी हैं। कायस्थों में कुछ भी खास तबक़े हैं, जैसे मराठों में चितपावण ब्राह्मण का होता है। ऐसे छोटे-मोटे तबक़े वाले पूरे ४५ करोड़ में मुश्किल से ५० लाख आदमी होंगे। पचास लाख आदमियों में घूम-फिर करके सारा मामला चलता है।

और एक चेतावनी मैं देना चाहता हूँ। दिन रात आप सुनते होंगे कि चीन ने हमारा एक भला किया कि हमको एक कर दिया। यहाँ तक कि प्रधान मंत्री ने भी एक क्षण के लिए सोचा नहीं कि वह क्या ग़ज़ब की बात कर रहे हैं। उन्होंने कह डाला, यह दुर्घटना तो हुई, हमारा बड़ा नुक़सान हुआ, लेकिन एक फ़ायदा हुआ, क्या फ़ायदा हुआ, हमको एक बना दिया। कभी कोई शरमदार, हयादार आदमी ऐसी बात अपनी जीभ से निकाल सकता है ? तब तो दुनिया में हर चीज़ से फ़ायदा निकलेगा क्योंकि कीचड़ से कमल पैदा होता है। लेकिन कभी कोई राजनीति करने वाला ऐसे शब्द कहेगा ? और वह बात भी सच नहीं है। कहाँ हुई एकता ? जो लोग एकता का ढिंढोरा पीटते हैं, उनके दिमाग़ में ये ५० लाख आदमी हैं, पढ़े-लिखे मध्यमवर्गीय, शहराती लोग। इनके अलावा, अगर मुझे कहीं थोड़ी-बहुत चेतना दिखाई पड़ी तो वह नौजवान लोगों में। कालेज, स्कूल के नौजवान अलबत्ता कुछ चेते, कुलबुलाये क्योंकि नौजवान की एक अजीब स्थिति होती है। उसे घर द्वार का इतना मोह नहीं रहता, खाली माँ-बाप रहते हैं पर बीबी बच्चे नहीं होते। इसलिए भारत माता के साथ थोड़ी मोहब्बत करने के लिए आज़ाद रहता है। लेकिन हिन्दुस्तान में जहाँ बीबी बच्चे हुए कि फिर होड़ लग जाती है कि भारत माता से मोहब्बत करें या बीबी बच्चों से मोहब्बत करें। तो मुझे सिर्फ़ मध्यमवर्गीय ऊँची जाति के पढ़े-लिखे लोगों और नौजवानों में चेतना मिली। बाक़ी हिन्दुस्तान के लोगों में, कोई कहे कि युद्ध का सामना करने वाली चेतना मिली है, तो वह ग़लत है। इस चीज़ को बड़े लोग समझेंगे नहीं। उन्हें तो मतलब सिर्फ़ उन्हीं ५० लाख से है। ५० लाख में जो थोड़ी-बहुत

उछल-कूद होती रहती है, उसी को देख कर वे कह दिया करते हैं कि बड़ी भारी तरक़्क़ी हुई, एकता हो गयी।

ऐसी सूरत में, हिन्दुस्तान के भाग्य के मामले में कुछ दिशाएँ लेनी चाहिए। मैंने आपके सामने रोग बतला दिया और दिशाओं का संकेत किया। जो अच्छी चीज़ है वह भी मैं बता देता हूँ। वह यह कि सब कुछ होते हुए भी, पिछले हज़ार बरस में हिन्दुस्तान की जनता की नस-नस में जो डर घुस गया था, वह धीरे-धीरे कम हो रहा है। हिन्दुस्तान की जनता धीरे-धीरे, बहुत धीरे-धीरे—कभी-कभी मुझ जैसे आदमी को तो उस पर बहुत ज़्यादा घबराहट होने लगती है कि इतना धीरे कैसे—निडर बन रही है। जो अध्याय गाँधीजी ने शुरू किया था वह अभी भी चालू है। ऊँचे लोगों का छोटे लोगों को, गालियाँ देना उतना सहज नहीं है, जितना २०-३० बरस पहले था। किसी भी रिक्शा वाले को, किसी भी ताँगा-चलाने वाले को, किसी भी कुली को जिस तरह से पढ़ा-लिखा या ऊँचो जाति वाला या शहर वाला, अच्छे कपड़े पहनने वाला डाँट-डपट देता था, गाली सुना देता था, अब आज वह कम मुमकिन है। मैं यह नहीं कहता कि वह ख़तम हो गया है। यह तो सिर्फ़ एक मिसाल है।

उसी तरह से, ज़िन्दगी के हर कोने में, साधारण जनता में कुछ निडराई आ रही है, और कम से कम भारत भाग्य की ये जितनी मोटी दिशाएँ हैं उनको कोई-कोई लोग हैं मुझ जैसे जो आज हिन्दुस्तान में रख तो रहे हैं, जो कह तो रहे हैं कि इस अंग्रेज़ी भाषा को चला कर खाली ५० लाख की एकता बनाये रखोगे, उससे हिन्दुस्तान की एकता कहाँ होगी और उससे ख़ाली ५० लाख में थोड़ी बहुत चेतना ला सकोगे। जो लोग कहते हैं कि अंग्रेज़ी भाषा के ज़रिये हिन्दुस्तान ने अपनी आज़ादी हासिल की, वे निहायत झूठे लोग हैं क्योंकि जब तक अंग्रेज़ी भाषा मे हिन्दुस्तान की लड़ाई चल रही थी, सन् १९१९ तक, तब तक वह जनता की लड़ाई थी ही नहीं। यह तो गाँधीजी जब मैदान में आये, उन्होंने कहा, मातृभाषा या हिन्दी—मैं हिन्दी नहीं कह रहा हूँ, मातृभाषा या हिन्दी। मैं तो यहाँ तक जाने को तैयार हूँ कि आप बंगाली को चलाओ, तमिल भाषा को चलाओ, तेलुगु को चलाओ। अपने इलाक़े में इन भाषाओं को चलाओ लेकिन अंग्रेज़ी को ख़तम करो। पूछा जाता है कि आपस में संबंध कैसे क़ायम हो? तो, अनुवाद करके चलाओ। जब तबियत हो जाती है कि हमको अपना संबंध चलाना है अपनी भाषाओं के मारफ़त, तो कोई न कोई रास्ता निकल सकता है। अगर आप हिन्दुस्तानी को नहीं अपनाना चाहते हैं तो ख़तम करो हिन्दुस्तानी को, तरजुमा करो। तरजुमे से अपने रिश्ते चलाओ। कितनी फ़िज़ूलख़र्ची हो रही है सरकार की तरफ़ से। मैं समझता हूँ, आधे के क़रीब रुपया—ये जितना कुल ख़र्च होता है सरकार का साल भर में ४०-४५ अरब रुपया उसमें से आधा—बुरी योजना और फ़िज़ूलख़र्ची में चला जाता है।

लेकिन, अब ये बातें लोगों के सामने आ रही हैं। उन पर थोड़ा-बहुत सोच-विचार हो रहा है। हालांकि यह मत समझना कि इस मामले में मेरा मन निश्चित है, क्योंकि यह जाति वाला झगड़ा कुछ ऐसा है कि रह-रह करके मुझे इसमें से कुछ पूरी आशा नहीं दिखाई पड़ती। ९०-९९ सैकड़ा, ९० सैकड़ा छोटी जाति वाले और ९ सैकड़ा ऊँची जाति वाले ग़रीब वेपढ़े को इनक़लाब चाहिए। उससे उनकी हालत सुधरेगी। लेकिन वे इतने दबे हुए हैं कि इनक़लाब कर नहीं सकते। और जो १ सैकड़ा ऊँचे हैं जो इनक़लाब कर सकते हैं, अन्दरूनी जुल्म के खिलाफ़ लड़ सकते हैं, वे इतना ज्यादा फँस गये हैं अपनी सिकुड़न वाली मनोवृत्ति में, चालाकी वाली योग्यता में कि वे बलवा करना नहीं चाहते, जो बलवा कर सकता है, वह बलवा करना नहीं चाहता। जो बलवा करना चाहता है उसमें बलवा करने की ताक़त नही है। जात-पात ने कितना ग़ज़ब ढाया है हमारे ऊपर ?

बलवा कहाँ हुआ करता है ? जहाँ न तो सम्पूर्ण बराबरी, जहाँ न सम्पूर्ण ग़ैर-बराबरी हो, क्योंकि जहाँ सम्पूर्ण बराबरी हो गयी वहाँ बलवे की जरूरत ही नहीं रह गयी और जहाँ सम्पूर्ण ग़ैरबराबरी है वहाँ सकत ही नहीं है। ग़ैरबराबरी को इस हद तक पहुँचा दिया है कि इनसान खड़ा ही नहीं हो सकता। कभी-कभी माथा भनक उठता है कि क्या होगा हिन्दुस्तान का। लेकिन मैंने आपको सारी दुनिया की जो पृष्ठभूमि बतायी कि सारी दुनिया में अगले ३० बरस में या तो हथियार खतम होंगे और ग़रीबी खतम होगी वरना दुनिया खतम होगी, एक रास्ते आएगी और, उसी के साथ-साथ, यह कि पिछले हज़ार बरस के भाग्य के दोष, तो उससे अब आप समझ गये होंगे कि मेरा मतलब नक्षत्र से नहीं है, ईश्वर से नहीं है, खुदा से नहीं है। मेरा मतलब है इससे कि इतिहास की जो दिशाएँ निकली हैं उनको हम थोड़ा-बहुत समझने के लायक़ हो रहे हैं, और शायद इस समझ के मुताबिक़ इन पर कुछ विजय पा सकें, निडराई ला सकें।

मैं अपनी बात यहीं—आशा पर, मैं खतम कर रहा हूँ लेकिन मन तो फिर भी बिचक जाता है। आज तो दिल्ली की और हालत है। मालूम होता है कि मैंने जो पुराने क़िस्से पढ़े हैं, वे प्रकट हो रहे हैं। जब कोई पुराना मुग़ल बुड्ढा हो जाता था और लगता था कि मरने वाला है, तो उस वक्त जो दरबार की हालत होती थी, जो क़िस्से-बाज़ी, जो कानाफूसी, जो अलग-अलग दरबारियों के आपस में गुट और उनकी तकरार, क़रीब-क़रीब वही हालत आज मुझे दिखलाई पड़ रही है। जहाँ जो क़िस्से सुनता हूँ, मुझे वही पुराना ज़माना याद आता है कि जब बूढ़ा मुग़ल, मरने के नजदीक आता था, तब उसके दरबारी लोग किस तरह अपना-अपना गुट बना करके कैसे अपना-अपना हित साधने में लग जाते थे। ऐसी हालत मे आप लोगों को रास्ता निकालना है। मुझे आज इस आखरी व्याख्यान में, आपसे यही अर्ज करना है कि किसी तरह से कोई तो छोटा-मोटा संगठन बनाओ जो दिल्ली में कुछ करे। इसमें छुपाने की कोई बात नहीं कि मैंने तो हथियारों को छोड़ दिया। इसलिए अब मैं बलवे की बात सोचता हूँ तो मैं कोई हिंसा

वाले बलवे की बात नहीं सोचता कि किसी को मारो, काटो, लाठी, तलवार, बन्दूक़ का इस्तेमाल करो। मेरा बलवा तो सम्पूर्ण रूप से अहिंसक बलवा है।

लेकिन इस बलवे को करने के लिए भी क्या कभी दिल्ली में कोई ताक़त आएगी ? क्या हिन्दुस्तान-चीन की लड़ाई को कभी चलाना है ? अभी तो ज़िच है, और ज़िच चलती रहेगी, शायद २-४ बरस चले। इस २-४ बरस की ज़िच के कारण हमें मौक़ा मिला है। एक रास्ता तो यह है कि हम धीरे-धीरे ठंडे पड़ते चले जाएँ, जो वक़्ती गरमी आयी है वह ख़तम हो जाए, और जैसा सरकार करती है वैसा होता रहे। दूसरा यह है कि हम हिन्दुस्तान की जनता इन सब मामलों पर अब ठंडे दिल से सोच-विचार करे। अब ख़ाली मन का उठान आने से काम नहीं चलेगा। जो चीज़ें मैंने आपके सामने रखी हैं, उन पर सोच विचार करो। यह बातें अगर अच्छी लगी हों तो उन पर अमल करने की कोशिश करें, संगठन बनाएँ, ऐसी हालत पैदा करें कि अबकी दफ़े किसी अच्छे मौक़े पर दिल्ली के लोग अपनी ताक़त दिखाएँ। और मौक़े तो ५० पाएँगे, क्योंकि मध्यवर्गीय ५० लाख आदमी हिन्दुस्तान की राजनीति पर, हिन्दुस्तान के सार्वजनिक जीवन पर ऐसे कस कर जमे हैं जैसे साँप कुंडली मार करके बैठ जाता है। वे उसे बिलकुल ख़तम किये हुए हैं, चाहे वे कांग्रेस पार्टी के हों, चाहे विरोधी पार्टी के हों।

एक चीज़ मैं आपसे और कहना चाहता हूँ। कल ही जैसे मैं जाने लगा, तो आपमें से एक ने मुझसे कहा कि हिन्दुस्तान को धोखा देने में हम सब है। एक तरह से सही बात कही कि हम सब हैं। इससे इनकार कैसे कर सकते हैं ? दोष हम सबका है। लेकिन फिर उन्होंने कहा, जितना दोष प्रधानमंत्री का है, उतना आपका भी है। उसमें कुछ थोड़ा-सा फ़र्क़ है कि वे गद्दी पर बैठे हैं, आप नहीं। तब मुझे लगा, देखो यह हिन्दुस्तान, भारत-भाग्य का एक कैसा अच्छा नमूना बता रहा है। हमारा भी दोष उतना ही है जितना राजा का है ? इस सम्बन्ध में मैं आपसे कह देना चाहता हूँ कि हिन्दुस्तानी दिमाग़ की एक बड़ी ज़बरदस्त कमज़ोरी यह है कि असली दोषी को हम पकड़ ही नहीं पाते। हम सब दोषी हैं, मैंने माना। आख़िर कूड़ा न होता तो कीड़ा कहाँ से पैदा होता ? हम सब दोषी हैं। हम कूड़ा हैं, इसमें कोई शक नहीं। हमारे पुरखों ने पिछले हज़ार बरस में जो किया वह कूड़ा था। लेकिन इस कूड़े पर कीड़ा पैदा हुआ दिल्ली सरकार का। फ़र्क़ तो करोगे ना ? मैंने दोनों बातें आपसे कहीं। पिछले हज़ार बरस में हमारे दिमाग़ में जो भी कूड़े की चीज़ें आयी हैं, उन पर मैंने ज़्यादा वक़्त लगाया, लेकिन, इसके साथ-साथ, उस कूड़े से निकली हुई दिल्ली सरकार जिसने हमको इतना अपाहिज, निकम्मा और वाहियात बना दिया, उसके भी तो दोष देखना है ना ? और यह कूड़ा—अगर कहीं कुलबुला कर इसमें से कुछ लोग धीरे-धीरे आदमी बनना शुरू करें तो मामला अच्छा हो जाए, और वही चीज़ मैं आपके सामने रख कर इस व्याख्यानमाला को यहाँ पर ख़तम करता हूँ। और जो चीज़ें कल व परसों भी कही थीं, हिमालय बचाओ वग़ैरह की

मेम्बरी है, या सोशलिस्ट पार्टी की मेम्बरी है, या जो तिब्बत का और हिन्दुस्तान का नक्शा है, इन पर भी आप ध्यान देना।

प्रश्न : सगुण और निर्गुण की व्याख्या अच्छी है। लेकिन इसको आप लिखें और उसका व्यापक प्रचार हो तो अच्छा। बड़ा सांस्कृतिक आन्दोलन होगा।

उत्तर : कुछ तो यह काम हुआ है यानी छापने तक। लेकिन किताबें ज्यादा बिकी नहीं हैं। कुछ बेचने का संगठन—अब फिर वही भारत भाग्य जो बीच में आ जाता है—संगठन हो कैसे? देखिए, पहले तो मैं आपको बता दूं कि कौन-कौन-सी किताबें छपी हैं। एक किताब का तो नाम है, वशिष्ठ और वाल्मीकि, दूसरी किताब का नाम है, राम कृष्ण और शिव, तीसरी किताब का नाम है सगुण और निर्गुण, चौथी किताब है मर्यादित, उन्मुक्त और असीमित व्यक्तित्व। चार तो इस वक़्त मुझे याद आ रही हैं। और भी हैं। लेकिन वे फैली नहीं हैं इतनी ज़्यादा जितनी ज़्यादा फैलनी चाहिए। मुझे खुशी हुई आपकी बात सुन करके। लेकिन जब थोड़ा-सा मैं कुछ, वह जो, निर्मोही तो नहीं कहना चाहिए, पर सोच बैठा हूं कि अपना काम करते चलो, क्या फल? फल मिलेगा कभी आपके बच्चों को। हमारे जमाने में तो मिलने-मिलाने वाला है नहीं।

उदारवाद में और कट्टरवाद में एक बड़ा ज़बरदस्त संघर्ष रहा है और, असल में, महात्मा गांधी की मौत इसी झगड़े में हुई; कट्टरवाद और उदारवाद जो हिन्दुओं का है। उस पर भी एक किताब है। इतिहास चक्र भी छपी है। लेकिन इस काम में आप उनसे मिल लो। शायद बदरीविशाल हों इस वक़्त। कुछ मुझे भी आप कोई सलाह दो तो ठीक है।

प्रश्न : कुछ लोग पूछा करते हैं कि आप अंग्रेज़ी में क्यों पत्रिका निकालते हैं?

उत्तर : 'मैनकाईन्ड' निकलता था। वह संस्कृति वाला आंदोलन था और कुछ उसमें सारी दुनिया की बात थी। इंगलिस्तान में साप्ताहिक और मासिक पत्रिकाएं और किताबें तो कई भाषाओं में निकलती हैं—फ्रांसीसी में, जर्मन में, रूसी में। लेकिन किसी ग़ैर-अंग्रेज़ी भाषा में कोई रोज़ाना अखबार नहीं निकला करता, खबरों वाला। वह सिर्फ़ अपनी भाषा में निकलता है। मेरी भी अपनी यही राय है कि हिन्दुस्तान में दैनिक अखबार हरगिज़ अंग्रेज़ी में नहीं निकलना चाहिए। सब दैनिक अंग्रेज़ी अखबार खतम कर देने चाहिए। और, अगर मेरे हाथ में ताक़त आए तो उसको एक दिन में खतम कर सकता हूं। कोई क़ानून बनाने की ज़रूरत नहीं, कोई ज़बरदस्ती करने की ज़रूरत नहीं। खाली ये जो दूर-मुद्रक हैं और तार हैं, इनके लिए हुकुम दे दूं कि तार और दूर मुद्रक हिन्दुस्तान की भाषा में चलेंगे, अंग्रेज़ी भाषा में नहीं चलेंगे। जासूसी की दृष्टि से भी ज़रूरी है कि अंग्रेज़ी भाषा को इस माध्यम से खतम कर दिया जाए। जब अंग्रेज़ी अखबारों को किसी हिन्दुस्तानी भाषा से अंग्रेज़ी में तरजुमा करना पड़ेगा तो मैं ज़रा देखूंगा कि कितने अंग्रेज़ी के अखबार निकल पाते हैं।

लेकिन हमारा मासिक अंग्रेज़ी में निकलता था पिछले कुछ महीनों से वह बंद है। आप जानते हो क्यों ? एक तो लगातार और ठीक तरह से काम करने वाले आदमी नहीं मिलते और दूसरे, पैसा नहीं। आपके सामने मैं यह बात रखे देता हूँ। दफ़तर तक नहीं मिल पाता। दिल्ली नगर में न जाने कैसी-कैसी सड़ी-गली पचकल्यानी संस्थाओं को दफ़तर मिल जाते हैं लेकिन हमारे अखबार, मैनकाईन्ड, जो दुनिया भर में कोई न कोई अपनी हैसियत रखता है, उसको दफ़तर नहीं मिलता। अब किसके पास जा कर रोएँ ? जो सरकार है सो है, क्या बताएँ। और वह सरकार भी यह सोचती होगी कि जब इन लोगों ने बीड़ा उठा रखा है कि हमको खतम करो तो फिर हम इनको खतम करते हैं। वह दफ़तर भी नहीं बन पा रहा है। अबकी बार सोचा है कि उसको दिल्ली से ही निकालेंगे, क्योंकि वैसे, सारी दुनिया में राजधानी का असर होता है लेकिन दिल्ली का कमबख़्त इतना ज़बरदस्त असर है—कि पूछो मत। तो ये पत्रिकाएँ निकल गयीं तो उसमें भी आप जो लोग मदद कर सको करना—दफ़तर से लगा कर आखीर तक, यानी सड़क पर बेचने तक। अगर इनको आप विचार, क्रांति और सांस्कृतिक चीज़ समझते हो, तो इन सब चीज़ों को तो सड़क पर बेचने वाले चाहिए लेकिन मैं क्या करूँ ? कहाँ तक रोऊँ ? सड़क पर बेचने की हमारी उम्र थी जब हम इस काम को किया करते थे। मैं खुद हिन्दुस्तान की अलग-अलग शहरों में और क़स्बों में कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी की किताबों और अखबारों को बेचता था। पहले मैं अपने साथियों को कुछ कहा करता था, जो नौजवान हैं, २५-३० बरस वाले। लेकिन अब मैंने कहना बंद कर दिया है। सोचता हूँ, कहने से फ़ायदा क्या, क्योंकि आजकल तो सब शिखर राजनीति चलाते हैं, ऊपर वाली, जैसी शिखर राजनीति क्रुश्चेव साहब और केनेडी साहब की चलती है। उसी तरह हिन्दुस्तान में भी शिखर राजनीति चलती है कि कब किस राजनीतिक पार्टी को तोड़ो, जोड़ो, एका करो, अलगाव करो। तलेवाली राजनीति कि लोगों के घरों में, उनके मोहल्लों में, सड़क के ऊपर एक-एक से बात करो—यह तले वाली राजनीति क़रीब-क़रीब खतम हो गयी है। यह कहना मैं आपसे भूल गया था। यह भी हमारे भारत का एक दुर्भाग्य है। लेकिन ये सब होते हुए भी, आपने सवाल उठाया तो मैंने इतना रोना रो दिया। अब, अगर कुछ दिल्ली में हो इन दो मासिक पत्रिकाओं, 'मैनकाईन्ड' और 'जन' के बारे में और होने के लिए भी आप मदद दो, जितना दे सको, दफ़तर ढूंढने की, पैसा इकट्ठा करने की, काम करने की। जरूरी है काम करना। जो भी एक घंटा, दो घंटा वहाँ काम कर सको, करो। फिर उनको बेचने की। और अगर यह दफ़तर यहाँ दिल्ली में क़ायम हो तो फिर किताबों वाला काम भी, जो किताबें हैदराबाद में छप रही हैं, वे अच्छी तरह से यहाँ फैल सकेंगी और बिक सकेंगी। और जगहें भी करने की कोशिश करें। मैंने नाम लेने के लिए दिल्ली की बात कही है।

प्रश्न : जब ये दिल्ली शासक जानते हैं कि दूसरा आएगा वह सम्हालेगा तो क्यों ये दूसरों को मौक़ा नहीं देते ?

उत्तर : आपने सवाल अच्छा उठाया। अब यह तो साफ़-सी बात है कि जहाँ तक मौक़ा देने की बात है, तो इस वक़्त जो प्रधान मंत्री हैं वे मौक़ा उसी को देना चाहेंगे जो उनके मन का है, उनके दल का है। वे कांग्रेस पार्टी के किसी आदमी को ही मौक़ा देंगे। आप इस बात का इन्तज़ार न करें कि वे किसी ग़ैरकांग्रेसी को मौक़ा देंगे। यह सोचना ग़लत होगा। हमारी तरफ़ से ग़लत होगा। जब आपने लोक राज की नींव को अपना लिया और लोकसभा है, तो उसमें एक नेता से आप यही आशा लगा सकते हैं कि वह अपने दल के आदमी को लायक़ बनाएगा। वह तो हुआ उनका काम उस पर मैं क्या सोच विचार करूँ। हाँ, इतना मैं ज़रूर कह देना चाहता हूँ कि मुग़ल बादशाह में एक और परम्परा रही है कि बादशाह जितना भी बुड्ढा बन जाता था, वह चिपके रहना चाहता था, हटना नहीं चाहता था और अगर हटना भी चाहता था, तो फिर, ख़ैर, वहाँ तो बेटे-बेटी का सवाल रहता था। उस सवाल को तो अब छोड़ दीजिए। असल में, हम क्यों नहीं लायक़ बनते, यह है।

पिछले हज़ार बरस के कूड़े को हम लोग ढो रहे हैं। किसी हद तक यह कूड़ा दोषी है, किसी हद तक हम लोग ख़ुद दोषी हैं। हम संगठन नहीं बना पाये। मैं अपना दोष स्वीकार करता हूँ कि हिन्दुस्तान में एक समाजवादी संगठन हम ऐसा नहीं बना पाये जो सरकार की मौजूदा खराबियों को खतम करता या सरकार को खतम करता। उसमें किसी हद तक आपका भी दोष है कि आप ऐसे संगठन को जानते हो पर उसमें आते नहीं। बहुत से लोग कहते हैं, पहले तुम अपने समाजवादी दलों को एक कर लो, तब हम आएँगे। आख़िर जनता का भी कुछ कर्तव्य होता है कि उसके सामने जितने भी रास्ते हैं, उनमें से जो सबसे अच्छा रास्ता है, दिमाग़ का इस्तेमाल करके, उसको चुने और उस पर चले। पर कई एक सवाल उठ जाएँगे कि एकता क़ायम करो। एकता वाली चीज़ बेमतलब होती है। फिर तो एकता क़ायम करने वाली बात यह हो जाती है कि कांग्रेस से करो, या कम्युनिस्ट से करो, फिर स्वतंत्र से करो—बीसों पचासों पार्टियाँ हैं। एक कोशिश यह चल रही है कि इन बीसों पार्टियों में एकता क़ायम करो। जहाँ तक बन सके, उसे भी करो। लेकिन दूसरी कोशिश है कि जनता अपने दिमाग़ का इस्तेमाल करके जो सबसे अच्छा रास्ता है उसको चुने और उस रास्ते पर निडर हो कर चले।

इस काम को यह सरकार नहीं करेगी। लेकिन हम भी नहीं कर रहे हैं। जैसे इस भाषा ही के मामले को लीजिए। यहाँ एक अध्यापिका है गणित की। उसका नाम है प्रोफ़ेसर रमला। वह अभी कम्युनिस्ट पूर्व जर्मनी पढ़ने गयी थी। वहाँ से डाक्टरी करके आयी है, पी. एच. डी. करके। उसने एक क़िस्सा यहाँ आ कर सुनाया। वह हिन्दी

वाली नहीं है, बंगाली है। बहुत से लोग समझ लिया करते हैं कि बंगाली और तमिल तो बहुत खिलाफ़ हैं इन भाषाओं के और वे तो अंग्रेज़ी रखना चाहते हैं। अगर अखबार वाले उससे जा कर पूछें कि तुम्हारा पूर्व जर्मनी में क्या अनुभव हुआ भाषा के मामले में तो अजीब चीज़ वह बताएगी आपको। एक चीनी लड़की भी वहाँ पढ़ रही थी, क्योंकि पूर्व जर्मनी कम्युनिस्ट और चीन भी कम्युनिस्ट। उसके कमरे में उसने जा कर देखा कि गणित की सभी किताबें, ऊँची से ऊँची किताबें, पेंच से पेंच वाली गणित की किताबें चीनी भाषा में हैं। चीनी में वह उनको पढ़ती है। चीनी भाषा हिन्दुस्तानी के मुक़ाबले कहीं ज़्यादा जटिल है। हमारे तो बहुत कम अक्षर हैं, क, ख, ग, ये सब, और उनके तो ४ हज़ार से घट कर अब चार सौ हुए हैं। चार सौ अक्षरों की भाषा का इस्तेमाल गणित की इन पेंच वाली किताबों के लिए हो गया और हमसे हमारी भाषाओं में नहीं हो पा रहा है।

यह सरकार नहीं करेगी। यह तो ५० लाख की सरकार है, बड़े लोगों की सरकार है। यह अपनी गद्दी छोड़ना नहीं चाहती। जब आपने पूछ ही लिया, तो आप जानते हो कि मेरे दिमाग़ में क्या बातें भरी हुई होंगी। मैं तो दिल मसोम कर, हँस कर बोल लेता हूँ। वरना यह सरकार क्या करेगी ? यह सरकार तो सामंती सरकार है। पिछले हज़ार बरस से हिन्दुस्तान की साधारण जनता को सामंतों ने दबा रखा है, चाहे फ़ारसी वाले रहे हों, चाहे संस्कृत वाले रहे हों, चाहे वे अरबी वाले रहे हों, और अब ये अंग्रेज़ी वाले। वह सिलसिला चला आ रहा है। उनसे आप कुछ मत आशा कीजिए। लेकिन अब सवाल है, हम लोग। ये बातें जो मैं रख रहा हूँ, ये फैल कहाँ रही हैं ? फैलें कैसे ? जैसे अब ये सभाएँ हुईं। आखिर इसमें खर्चा हुआ ना ? थोड़ी देर के लिए इस बात को नजर-अन्दाज़ कर दीजिए कि मुझे कितनी तकलीफ़ हुई क्योंकि मेरा तो यही धंधा है। लेकिन पैसा खर्च हुआ। कहाँ से आएगा यह पैसा। कब तक आदमी में इतनी गरमी रहती है। बोलने की तो मान लो थोड़ी देर के लिए आ गयी। लेकिन एकाध दफ़े दिमाग़ फिर जाता है, सोचते हैं, देखा जाएगा, चलो, कहीं से पैसा माँग ले आएँगे। खैर। मैं इसको बिलकुल असंभव समझता हूँ कि हिन्दुस्तान में अंग्रेज़ी के ज़रिये चीनियों का मुक़ाबला किया जाए। यह बात कोई बहुत ही धोखेबाज़ या बहुत ही नादान आदमी सोच सकता है। अभी मैंने चीनियों वाली गणित की बात बतायी। चीनियों ने ज्ञान को सीमित नहीं रखा। उनका जो भी ज्ञान है, राक्षसी ज्ञान है, सात्विक ज्ञान है, उसको फैलाया, अपनी जनता में फैलाया। एक होता है ज्ञान को सीमित रखना, छोटे से तबक़े में उसे बाँध कर रखना, और दूसरा है सारी जनता में उस ज्ञान को फैलाना। एक तरफ़ साक्षरता बढ़ा कर, पूरी आबादी को कम से कम क, ख, ग, अलीफ़, बे, पे सिखा कर ज्ञान को बढ़ाना और दूसरी तरफ़ जो ऊँचा और बड़ा ज्ञान है उसे अपनी भाषा के माध्यम से करोड़ों नहीं, तो लाखों तक पहुँचाना। ज्ञान को फ़ैला दो, रोक करके मत रखो, समेट कर मत रखो,

यह तो है चीन का तरीक़ा। मैं पूरी तारीफ़ नहीं कर रहा हूँ। मैं समझता हूँ ज्ञान में वहाँ बड़ा राक्षसी हिसाब भी है। लेकिन हिन्दुस्तान का क्या है? हिन्दुस्तान के ज्ञान में राक्षसी तो है ही, इसमें कोई शक ही नहीं, लेकिन जो भी राक्षसी, सात्विक, वह समेट कर रखा जाता है। वही जो ५० लाख हैं उन्हीं तक बटोर करके रखा जाता है। कहाँ जनता में चेतना आ पाएगी? कहाँ जनता गरम हो पाएगी? कैसे वह मुक़ाबला कर पाएगी? कहाँ चीन से लड़ पाएगी?

चीन की पलटन जब हमारी ज़मीन में घुसती है तो चीन का अफ़सर और चीन का सिपाही, दोनों एक ही भाषा बोलते हैं। उनके यहाँ अलग-अलग इलाक़ों की अलग-अलग भाषाएँ हैं, लेकिन कोई सामंती फ़र्क़ नहीं है कि अफ़सर एक भाषा जानता हो और सिपाही एक भाषा जानता हो। उनका आपस में रहन-सहन का फ़र्क़ भी ज़्यादा नहीं है। यहाँ तो जरनेली मिलती है, अगर आप अंग्रेज़ी में अच्छी गिटपिट कर लो तो।

चीज़ बहुत आगे बढ़ गयी है। सिर्फ़ मुझे थोड़ा-सा सहारा है तो मैंने आपको बता दिया, दो कारण हैं। एक, सारी दुनिया अगले ३० बरस में इस पेंच को हल करेगी, और दूसरे, हम निडर धीरे-धीरे बन रहे हैं। शायद ये दोनों चीज़ें मेल खा जाएँ कि अगले ३० बरस में हिन्दुस्तान के ४५ करोड़, या तब तक ६० करोड़ हो जाएँगे, उनकी निडराई पूरी हो जाए और उस वक़्त दुनिया भी बची रहे और हथियार भी खतम हो जाएँ। ३० बरस के बाद, मुमकिन है, यह सवाल कहीं इधर-उधर हो पाए। अगर चमत्कार हो गया तो, शायद, आपकी ज़िन्दगी में तो हो पाए, लेकिन मुझे अपने जीवन काल में आशा नहीं है। जैसे चीन वाला मामला उठा, तो सोचा था कि शायद हिन्दुस्तान की जनता चमके, थोड़ी-बहुत वह चमकी भी, थोड़ी बहुत गरमायी भी, लेकिन मुझे लगता है कि वह कुछ ऊपरी सतह की गरमी रह गयी और फिर से जाल में फँसा लिया गया है। पर कोशिश तो हम लोग करते रहें, वह बात अलग है।

अभी जब मैं यहाँ आ रहा था, तो आते-आते मुझे एक चिट्ठी मिली। तब से मैं सोच रहा हूँ कि मैं क्या करूँ? किन लोगों के साथ हम काम कर सकते हैं? मान लो, अभी सब लोगों को इकट्ठा करना शुरू करो कि हिन्द-चीन के मामले में कुछ किया जाए, तो कौन लोग इकट्ठा होंगे। सबसे पहले तो अलगाव उनका मेरा यहीं हो जाएगा कि मैं हूँ मातृभाषा या हिन्दी वाला—मातृभाषा या हिन्दी, हिन्दी नहीं कह रहा हूँ। एक दफ़े कलकत्ते में चीन के ऊपर किसी ने ऐसे ही सम्वाद रखा था, कोई प्रोफ़ेसर थे, कोई कमेटी वग़ैरह थी। तरह-तरह के लोग बुलाये गये थे। उसमें मेरा एक दोस्त था। उसने बड़ा दबाव डाला। मैंने कहा, एक शर्त मेरी मान लेते हो तो मैं आऊँगा और वह मातृ-भाषा या हिन्दी। हिन्दी मत बोलो, बंगला में चलाओ, कलकत्ते में है। लेकिन कमबख्त अंग्रेज़ी में चलाते हैं और सोचते हैं ये चीन को हटा लेंगे। दिल्ली में पचासों कमेटियाँ बनी

हुई हैं; चीन के खिलाफ़ कमेटी बनी है, तिब्बत आज़ादी की कमेटी बनी है। माथा ठोक कर मैं रह जाता हूँ कि इन लोगों को कौन समझाने जाए? अंग्रेज़ी से तुम अपना काम चलाना चाहते हो? किसी को काम से मतलब नहीं, नाम से सिर्फ़ रह गया है। थोड़ा हल्ला मच जाए, थोड़ा नाम हो जाए, थोड़ा पैसा मिल जाए। इस तरह के लोग आज हिन्दुस्तान में हो गये हैं। क्या करें जो अपने इर्द-गिर्द हैं, चारों तरफ़। कितना दिल मसोस कर रखना पड़ता है। जो हमारे साथ हैं, उनका यह हाल है और जो बाहर हैं उनको कौन कहे? यह मातृभाषा या हिन्दी हिन्दुस्तानी वाला जो नुस्खा मैंने आपको बताया, यह तक अभी नहीं पहुँच पाया लोगों तक।

खैर, ये सब चीजें तो चल ही रही हैं। इन सबके होते हुए, अगर आप में से कुछ लोग हैं जो इस मामले को आगे बढ़ाना चाहते हो तो अभी ज़रूर सदस्य बन कर जाना। और वह एक नक़्शा भी है। उसको तो ले जा कर घर में टाँग देना। सामने रहे वह चीज़ हमेशा के लिए कि अगर तिब्बत आज़ाद नहीं रहता तो फिर हिन्दुस्तान की सीमा चीन के साथ कैलाश मानसरोवर और पूर्ववाहिनी ब्रह्मपुत्र हो सकती है, लेकिन अगर तिब्बत आज़ाद होता है तो उसके साथ मेकमोहन रेखा हो सकती है।

प्रश्न: सन् १९४७ की सीमा रेखा मानते हैं तो बेरूबारी का क्या होता है?

उत्तर: हाँ, पाकिस्तान वाले आप जितने सवाल उठाते हो, उनका मैं ज़रा लम्बान में जवाब दूँगा। पहले सीमा वाला आप देख लो। मुझे मालूम है कि इस सीमा को ग़लत साबित करने के लिए बड़े बेमतलब सवाल उठाये गये हैं जैसे हैदराबाद का क्या होगा, गोवा का क्या होगा, लद्दाख का क्या होगा? एक चीज़ आप याद रखना। मैं १५ अगस्त १९४७ की सीमा बता रहा हूँ दो देशों के बीच जिनमें आपस में लड़ाई हो गयी। हिन्दुस्तान और तिब्बत की सीमा मैं बता रहा हूँ १५ अगस्त १९४७। उसमें लद्दाख वग़ैरह सब शामिल होंगे। हैदराबाद और गोवा का सवाल मतलब ही नहीं रखता वे अलग देश नहीं हैं, एक देश के अन्दर ही एक टुकड़ी बनी हुई थी और वह सब मिल गयी। अब पाकिस्तान का जो सवाल उठाते हैं, तो पहले तो यह जान लेना कि कुछ लोग कहते हैं, काश्मीर १५ अगस्त १९४७ को न इधर था, न उधर था। उस पर मैं एक क़ानूनी सिद्धान्त बता देता हूँ कि जब कोई चीज़ किसी दूसरी चीज़ में मिल जाती है तो उस पहली चीज़ की जितनी भी पूँजी या उधार रहते हैं, वे सब, जिस चीज़ में वह मिली है, उसको मिल जाते हैं। यह अन्तर्राष्ट्रीय क़ानून सब का क़ानून है। इसीलिए यह सवाल तो उठाना ही नहीं चाहिए था। काश्मीर हिन्दुस्तान का या पाकिस्तान का या जहाँ वह है, इस सवाल को मैं नहीं उठा रहा हूँ कि काश्मीर किसका। जिस किसी का भी हो, लेकिन काश्मीर भारत में मिला तो काश्मीर की जो सीमा थी वह लाज़मी तौर से उस दूसरे देश की हो गयी; लद्दाख की जो थी वह लाज़मी तौर से उसकी हो गयी।

अब बेरूबारी या काश्मीर या पाकिस्तान के सवाल पर मेरी यह राय है, लम्बान की, कि पाकिस्तान और हिन्दुस्तान की—दोस्ती शब्द मैं नहीं कहना चाहता, और कुछ, या दोस्ती भी आप कहो—जो स्थिति है, उसमें अगर दोस्ती शुरू होती है तो वह या तो एके में जा कर खतम होगी और या वह फिर टूट जाएगी। दोस्ती दोस्ती तक नहीं रह सकती। मैंने एक दफ़े एक किताब में, यह भी सिद्धान्त बताया कि हिन्दुस्तान-पाकिस्तान की दोस्ती न ीं रह सकती; या दुशमनी होगी या एका होगा, और काफ़ी तर्क के साथ मैंने बताया था, क्योंकि जहाँ एक दफ़े दोस्ती का सिलसिला शुरू हुआ, दुनिया में कोई ऐसी ताक़त नहीं है जो दोस्ती को रोक दे, थाम दे कि दोस्ती तू यहाँ रुक जा। वह दोस्ती आगे बढ़ेगी और बढ़ कर अगर सम्पूर्ण एके में न जाए, तो कम से कम महासंघ बन जाएगा और इसीलिए मैं उस दोस्ती की शुरूआत करके उस दोस्ती को बढ़ाना चाहता हूँ। इसीलिए मैं बिलकुल खुलासा और साफ़, अपने मन की बात कह देता हूँ कि अगर हिन्दुस्तान और पाकिस्तान का महासंघ बनता है तो मैं हर तरह की बातचीत करने को तैयार हूँ और हर तरह का समझौता करने को तैयार हूँ। इसीलिए मेरे लिए और सब सवाल छोटी हैसियत के हो जाएँगे जैसे श्रीनगर घाटी है, बेरूबारी है, या और कोई इलाक़ा है, वह पाकिस्तान में रहे या हिन्दुस्तान में रहे या स्वतंत्र इकाई बने। यह बात कइयों को बुरी लग जाती है, पाकिस्तानियों को, खास तौर से, जब तक वे समझ नहीं पाते कि मैंने दो-तीन साल पहले कही थी कि महासंघ की ५ इकाइयाँ बनें। एक तो संयुक्त बंगाल, मतलब यह जो हिन्दुस्तान वाला ंगाल है और पाकिस्तान वाला बंगाल है दोनों को मिला कर एक कर दिया जाए; दूसरे, जो बचा हुआ हिन्दुस्तान है जिसमें लद्दाख रहे या जम्मू रहे, ये सब; तीसरे, पाकिस्तान जो बचा हुआ रहता है; चौथे, श्रीनगर घाटी जो कि झगड़े का कारण बनी हुई है; और पाँचवें, अगर किसी तरह से हो सके तो पख्तूनिस्तान की बात भी उस वक़्त मैंने सोची थी। लेकिन यह सही बात है कि इन पाँचों इकाइयों की बात पर तो पाकिस्तान वाले सोच-विचार करेंगे नहीं। इस-लिए, अब मैंने इन पाँचों इकाइयों पर अलग से बात करना बन्द कर दिया है। पर मैं यह भी जानता हूँ कि कुछ भी हो, पाँच हों, दो हों, जिस किसी तरह से हो, महासंघ का यह सिल-सिला अगर शुरू हो जाए तो मामला कुछ पार लगे। आखिर हम कभी एक थे, फिर कभी एक होंगे। इसलिए कौन ज़मीन कहाँ रहती है, इसमें कोई खास फ़र्क़ नहीं पड़ता। चीन और हम तो जल्दी एक होते नज़र नहीं आते। और वह दुनिया कितनी बदलेगी, शायद २०५० के आसपास, हिन्दुस्तान और चीन का भी कोई महासंघ ढीलाढाला बने। लेकिन वह १०० बरस बाद की बात है। मगर हिन्दुस्तान पाकिस्तान का तो महासंघ अगले ५-१० बरस की भी चीज़ हो सकती है, बशर्ते कि हम, हिन्दुस्तानी जनता बदले। इसलिए मैं चाहता हूँ, जनता में ये सब बातें जाएँ, क्योंकि सरकार को बदल े वाले लोगों में मैं नहीं हूँ। सरकार अभी नहीं बदले इस मानी में कि सरकार का दिमाग़ नहीं बदला जा सकता ऐसा मेरा खयाल है, हालाँकि कोशिश आप करो, क्योंकि हम तो सिद्धान्तों ही की लड़ाई

कर रहे हैं। सरकार का दिमाग़ बदल जाए, बड़ा अच्छा। लेकिन तैयार रहो कि सरकार को बदलना पड़े।

—१९६३, जनवरी ४; दिल्ली; भाषण।

तीन एशिया

अफ्रीकी-एशियाई मुल्कों की एकता का विचार ज्यादा से ज्यादा भ्रान्त रहा और प्राय: धोखा और झूठा घमंड। हिमालय में इस विचार के झूठा पड़ जाने पर भी उसे आगे बढ़ाने के लिए चीनी प्रधानमंत्री के साथ श्रीलंका की प्रधानमंत्री श्रीमती बंडारनायके का मिलना अच्छा नहीं है।

१९५० से मैं चाह रहा हूं कि तीनों एशिया, कम्युनिस्ट एशिया, सोशलिस्ट एशिया, और यथास्थित एशिया, को उनकी अपनी खासियत और कभी-कभी टकराव वाली शक्ल में जान लेना चाहिए। सिर्फ़ एक के मामले में घटनाओं ने मुझे ग़लत साबित किया है। सोशलिस्ट एशिया केवल लोकस्तर पर है और सरकारी स्तर पर बिलकुल नहीं है। सरकारी स्तर पर, भ्रष्ट और नक़ली वामपंथी एशिया है, जिसका सार्वजनिक क्षेत्र वेतन और सुविधाओं में निजी क्षेत्र से भी बदतर फ़र्क़ करता है। नक़ली-वामपंथ और कम्युनिस्ट एशिया कभी-कभी टकराते हैं और अक्सर मिल कर व्यक्तिगत मक़सदों के लिए अफ्रीकी एशियाई एकता के विचार को आगे बढ़ाते हैं।

अगर अमरीका, जर्मनी या जापान से हथियार लेना अफ्रीकी एशियाई एकता के विरुद्ध है, तो चीन या संयुक्त अरब गणतंत्र द्वारा अपनी अर्थव्यवस्था और सेना को सुदृढ करने के लिए रूस और दूसरे पूर्वी यूरोपी देशों से जो सहायता ली गयी उसे क्या कहा जाए। एक वक़्त, अकेले रूस के ८० हज़ार तकनीकी लोग और इंजीनियर चीन में लगे हुए थे। हिन्दुस्तान को विदेशी चीज़ों और कार्मिकों के रूप में जो सहायता उपलब्ध हो रही थी, उसके लेने में लजाने के कारण उसकी अर्थव्यवस्था और प्रतिरक्षा कमज़ोर रही।

चीन की बर्मा और नेपाल के साथ सीमा-समस्याओं को सलटा लेने की तत्परता का कारण है कि उसने ठीक हिसाब लगा लिया था कि ये देश, जैसे ही उन पर आक्रमण होगा, वे सभी तरह की सैनिक सहायता हर कहीं से मांग बैठेंगे जब कि हिन्दुस्तान उसको लेने में देर करेगा।

कम्युनिस्ट यूरोप से कम्युनिस्ट एशिया भिन्न है। कम्युनिस्ट एशिया ज्यादा जोखम उठाता है, ज्यादा सिद्धान्तहीन है, कम सतर्क और ज्यादा क्रान्तिकारी है। यह तर्क कि कम्युनिस्ट चीन सोवियत रूस की तरह परिपक्व हो जाएगा कोई मानी नहीं रखता, क्योंकि कम्युनिस्ट रूस ने अपने सर्वाधिक शैशवकाल में भी कभी लटाविया, इस्टोनिया या लिथुआनिया को ज़बरदस्ती हथिया लेने की कोशिश नहीं की। ये क्षेत्र ऐसे थे कि जिन पर वह कुछ तो दावा कर सकता था, जब कि हिमालय पर चीन का कोई दावा नहीं हो सकता।

कम्युनिस्ट एशिया के विरुद्ध भ्रष्ट और नक़ली-वामपंथी एशिया यथास्थित एशिया की बनिस्बत ज्यादा कमज़ोर साबित होगा। उसके पास सामाजिक क्रान्ति के लिए न तो अन्दरूनी ताक़त होगी और न यथास्थित यूरोप से उसे विदेशी सहायता मिलेगी। वह बाहरी आक्रमण को नज़रअन्दाज़ करते हुए अपनी पार्टी के हितों के पीछे पड़ा रहेगा, जैसा कि हिन्दुस्तान की कांग्रेस पार्टी और लंका की फ्रीडम पार्टी आदि की हिन्द-चीन समझौते के बारे में चालबाज़ियों से ज़ाहिर है। नक़ली-वामपंथी एशिया कम्युनिस्ट और यथास्थित राजनयिकता का सिर्फ़ पारी-पारी से दलाल बन सकता है।

यह सम्भव है कि हिन्दुस्तान सरकार के कायर उकसावे के कारण श्रीलंका और दूसरे देश हिन्दुस्तान की सीमाओं को नुक़सान पहुँचा रहे हैं। उन्हें महसूस करना चाहिए कि हिन्दुस्तान स्वतंत्र एजंट नहीं रहा है। काश्मीर के लिए रूसी रोक-वोट पर और पंचवर्षीय योजनाओं के लिए अमरीकी डालरों पर निर्भर रहते हुए, दिल्ली सरकार बिन-लगाव अथवा राष्ट्रीय सुरक्षा की नीतियों पर नहीं चल सकी है। हिन्दुस्तान की ज़मीन को कम करने की साजिश के कारण हिन्दुस्तान की आने वाली पीढ़ियाँ लंका और दूसरे देशों की वर्तमान सरकार को कभी माफ़ नहीं करेंगी।

चीन के साथ हिन्दुस्तान लिखित अथवा अलिखित ज़िच में पड़ रहा है। जो ज़मीन हाथ से निकल गयी है उसे वापस लेने की जम कर तैयारी करने का दिल्ली सरकार में न तो साहस है और न ही वह इतनी बेशर्म है कि खोयी हुई ज़मीन के आधार पर चीन से संधि कर ले। यह ज़िच कई बरसों तक चल सकती है। इस अवधि में सामाजिक क्रान्ति के लिए गरमाने और सम्पृक्त आर्थिक, विदेश और रणनीतियों पर जनता को सोच-विचार करना चाहिए।

—१९६३, जनवरी ८; कलकत्ता; भाषण-सारांश।

एक प्रेस सम्मेलन

यूरोपी और एशियाई साम्यवाद : यूरोपी और एशियाई साम्यवाद के बीच जो फ़र्क़ है वह जवानी और परिपक्वता का फ़र्क़ नहीं है। यूरोपी साम्यवाद, जब वह जवान था, तब भी उसने एस्टोनिया, लटाविया और लिथुआनिया पर हमला नहीं किया। सभ्यताओं में सदाचार का कोई मतलब नहीं होता, जितना दुश्मन की ताक़त का। यूरोपी साम्यवाद ताक़तवर यूरोपी पूंजीवाद के खिलाफ़ ऊपर उभरा है, जबकि एशियाई साम्यवाद कमज़ोर, नपुंसक, दक्षिणपंथ या भ्रष्ट नक़ली वामपंथ के। कोई भी चीज़ एशियाई साम्यवाद को पालतू नहीं बना सकती और, इसीलिए, स्वभावतः वह असभ्य है।

एशियाई एका : आज तीन एशिया हैं : पूंजीवादी और प्रतिक्रियावादी एशिया, साम्यवादी और तोड़-फोड़ वाला एशिया, और भ्रष्ट नक़ली-वामपंथ वाला एशिया। समाजवाद और परिवर्तन वाला चौथा एशिया अभी बन रहा है। अफ्रीकी-एशियाई मैत्री हासिल करने के लिए कौन और किससे मिलेगा ? मैं बिलकुल निश्चित हूँ कि अगर चीन बर्मा या नेपाल पर हमला करता, तो सब कहीं से सब तरह की मदद लेने में दोनों सरकारों में से कोई भी एक घंटे से ज्यादा जाया न करती। इसीलिए चीन ने उन पर हमला नहीं किया। हमें यह भी याद रखना चाहिए कि 'इंगलिस्तान के और मिस्र के पक्ष में रूस ने हस्तक्षेप करने की धमकी दी थी। अगली बार जब गाज़ा को ले कर मिस्र और इजराइल लड़ेंगे तो मैं प्रतिकार नहीं करूँगा, भले ही, संयुक्त अरब गणतंत्र के प्रधान मंत्री की तरह, मेरे कुछ देशवासी उसे सामा-विवाद कहें।

संयुक्त अरब गणतंत्र के प्रति प्रेस का बरताव : संयुक्त अरब गणतंत्र के प्रधान मंत्री की बोलती बन्द कर देनी चाहिए थी। मैं अकेला ही ऐसा आदमी हूँ जो निरन्तर उनका पूरा समर्थन करता रहा। लेकिन अब मुझे उनका पूरा समर्थन नहीं करना चाहिए।

कोलम्बो प्रस्ताव : हर एक विदेशी और विदेशी हुकूमत के लिए हिन्दुस्तान की १५ अगस्त, १९४७ वाली सीमा अकाट्य रहनी चाहिए। वे सभी कोलम्बो सत्ताओं ने,

जिन्होंनें इस सीमा से बहुत कम के ऊपर समझौता कराना चाहा है, उनके प्रति मेरे आदर और ध्यान को भी छीन लिया है। अगर वे यह दावा करें कि इस मामले में उन्हें भारत सरकार की अनुमति मिली है, तो मेरा जवाब है कि भारत सरकार कमज़ोर है और अपने दृष्टिकोण में भी असंतुलित है और कि आने वाली पीढ़ियाँ ऐसे विदेशियो को माफ़ नहीं करेंगी कि जिन्होंने भारत सरकार की कमज़ोरी में समर्थन किया।

प्रश्न : मौजूदा हालत से उबरने के लिए आपके क्या सुझाव हैं ?

उत्तर : मेरा पहला काम होगा मौजूदा सरकार को उलट देना और आर्थिक नीति का क्रान्तिकरण करना। सैनिक शक्ति मुट्ठी की तरह है और आर्थिक शक्ति बाँह। सिर्फ़ मूर्ख ही कह सकते हैं कि बाँह और मुट्ठी का टकराव है।

१५,००० करोड़ सालाना राष्ट्रीय आय में से ५० लाख बड़े लोग ५ हज़ार करोड़ ले लेते हैं और ४३ करोड़ जनता को १० हज़ार करोड़ से सन्तुष्ट हो जाना पड़ता है। जब तक इस स्थिति को बड़े पैमाने पर बदला नहीं जाता तब तक हम उद्योगीकरण या बेहतर सेनाएं या लोक निश्चय नहीं हासिल कर सकते।

लड़ाई छेड़ने में चीन का मक़सद : चीन के सिर्फ़ दो मक़सद हैं : १. खुद के लिए हिमालय और २. हिन्दुस्तानी कम्युनिस्टों के लिए दिल्ली की गद्दी।

प्रश्न : चीनी-रूसी झगड़े के बारे में आप क्या सोचते हैं ?

उत्तर : रूस की फ़ौजी ताक़त ऐसी है कि वह चीन को दो घंटे के अन्दर मसल डाल सकता है। वैसे ही अमरीका भी। रूस-चीन विवाद का उनकी अपनी-अपनी फ़ौजी ताक़त से कोई मतलब नहीं है, बल्कि आदर्शों से है। रूस ने ऊपर से वामपंथ ग्रहण किया जिसका अफ्रीकी-एशियाई देशों में लाज़मी मतलब होता है भ्रष्ट नक़ली-वामपंथ। इसके विपरीत, चीन वामपंथ को तले से आगे बढ़ा रहा है। लेकिन वह उसे बहुत ही खतरनाक तरीके से विदेशी हस्तक्षेप और विजय में घालमेल कर रहा है। रूस और चीन के बीच जो भेद पड़ गया है, वह ऊपर वाले भ्रष्ट वामपंथ और तले वाले वहशी वामपंथ के बीच झगड़ा है, और स्वस्थ तेजस्वी वामपंथ को विकसित करने में कठिनाई हो रही है।

मैं चाहता हूँ कि रूस और अमरीका के बीच बहुत ही दोस्ताना रिश्ते बनें, और रूस तथा अमरीका की इस गठजोड़ से मैं चाहूँगा कि वह हिन्द-पाक महासंघ और तिब्बत की आज़ादी के दोनों प्रश्नों पर सहानुभूति से विचार करे, जिसके बिना दक्षिणी एशिया में वास्तविक शान्ति सम्भव नहीं है। इन दोनों बातों को आगे बढ़ाना रूस के हित में है, क्योंकि चीन जो तले से वहशी वामपंथ की तैयारी कर रहा है, लाज़मी तौर पर रूस की सुरक्षा, सीमा और बहबूदगी के लिए खतरा है, और समूचे संसार को विपत्ति में डाल रहा है। एक न एक दिन रूस को महसूस करना चाहिए कि तिब्बत चीन का अंग नहीं है।

रूस और अमरीका के बीच एक गठजोड़ तो है, लेकिन वह निर्गुण है, सगुण नहीं। दोनों एक-दूसरे से डरते हैं; पुराने बोझ और सभी तरह की दोस्तियाँ ढोना पड़ता है। गोरी दुनिया को अपने मत आमूल दुहराने चाहिए। खेती और कारखाने की चीजों के दाम में समानता होनी चाहिए। रूस समेत गोरी दुनिया ने औद्योगिक वस्तुओं के दाम में जो लूट मचा रखी है उसकी तुलना में जो सहायता वे देते हैं वह कुछ भी नहीं है। दामों का भी एक साम्राज्यवाद है जो पूँजीवाद, साम्यवाद आदि को भी मात देता है। चीन से मैं इसलिए नाराज़ हूँ कि उन्नत और पिछड़े इलाक़ों के बीच दामों के सवाल को उठाने के बजाय, उसने खुद पिछड़े इलाक़ों के अन्दर ही इस सवाल को उठा दिया है।

हिटलरी जर्मनी और मित्र-राष्ट्रों के बीच जो युद्ध हुआ वह दो शक्तिशाली और सम्पन्न शक्तियों के बीच था। हर युद्ध से लाज़मी तौर पर बुराई निकलती है किन्तु इस युद्ध से कुछ अच्छाई भी सामने आयी; क्योंकि अगर हिन्दुस्तान की आजादी के लिए कोई दो आदमी ज़िम्मेदार हैं तो वे हैं भले आदमी श्री गांधी और बुरे आदमी श्री हिटलर। चीन और हिन्दुस्तान के बीच युद्ध पिछड़े और कमज़ोर लोगों के बीच युद्ध है, एक दूसरे से कम कमज़ोर हैं, किन्तु मूलतः पिछड़े हुए हैं, और उससे कोई अच्छाई नहीं निकल सकती।

आगामी १०० बरसों में कोई भी रंगीन देश अमरीका के स्तर पर नहीं पहुँच सकता। इस मामले में मुझे १५ बरस पहले जो भी भ्रम रहे हों, अब नहीं हैं।

चीन ने अचानक गोलीबन्दी का एलान क्यों किया : रूस का दबाव या अमरीका का डर तो है ही, और इससे मैं इनकार नहीं करूँगा। लेकिन चीन को एक और खतरा था। चीन हिन्दुस्तान पर तभी तक हमला कर सकता है जब तक कि हिन्दुस्तान में विजय का उल्लास और पराजय की हताशा के बीच पेंग मारने का ख़याल रखने वाली ढुलमुल और अनिश्चयवादी सरकार क़ायम है। बमडिला और वलांग के गिरने के बाद और फ़ुटहिल तक चीनियों के बढ़ने की रपटों से जनता का मन गरमा रहा था, और कौन जानता है कि मौजूदा दिल्ली सरकार को किसी दूसरी ज़्यादा दृढ़ निश्चय वाली सरकार के लिए जगह ख़ाली करनी पड़ती। जनता का मन कैसा है, यह जानने के लिए चीनियों के पास सब साधन हैं, क्योंकि उनका दूतावास शुरू से यहाँ है और, मैं समझता हूँ, उन्हें राजनायिक निरापदता और दूर-मुद्रक यंत्रों का भी अधिकार रहा होगा। उन्होंने बमडिला और वलांग के गिरने के बाद जनता के गुस्से की ख़बर पीकिंग में अपनी सरकार को दी होगी जिसने सोचा होगा कि बस, अब बहुत हो गया।

संयुक्त राष्ट्र संघ में चीन की सदस्यता की पैरवी का कारण : यह माँ के बलात्कार को शादी की रसमअदायगी से धो देने जैसा ही है। संयुक्तराष्ट्र संघ में चीन की सदस्यता की हिन्दुस्तान द्वारा पैरवी करने को मैं कभी समझ नहीं पाया। इस वक़्त पैरवी करना

तो बिलकुल ही समझ में नहीं आता। संयुक्त राष्ट्र संघ की सदस्यता दिला कर चीन को पालतू बना लेने वाली सारी बात बकवास है। हर हालत में, जिस देश पर आक्रमण हुआ हो वह ऐसे निरर्थक साधनों से आक्रमणकर्त्ता को पालतू बनाने की इच्छा नहीं रखता, और यह काम दूसरों के लिए छोड़ देना चाहिए। जहां तक विश्वबंधुत्व का तर्क है, मैं जानना चाहूंगा कि हिन्दुस्तान ने कितनी बार स्पेन का मामला उठाया। और फिर, विश्वबंधुत्व के इस सिद्धान्त के चलते दोनों की सदस्यता होनी चाहिए, एक, चीन मुख्यदेश की, और दूसरी, फ़ारमोसा (तैवान) की। अपने-अपने इलाक़ों के दोनों पूरे राज्य हैं और, खुद श्री नेहरू की व्याख्या के अनुसार, दोनों संयुक्त राष्ट्र संघ की सदस्यता के अधिकारी हैं।

हिन्दुस्तान में राजनीति में बोलने वाला तबक़ा चीनी हमले की बनिस्बत देश में दक्षिणपंथ और वामपंथ के बीच झगड़े को ज्यादा महत्त्वपूर्ण समझता है।

—१९६३, फ़रवरी २; हैदराबाद।

बाँह और मुट्ठी

हिन्दुस्तान के प्रधान मंत्री ने स्वयं यह बात केवल अपनी सेना को नहीं कही, सारे संसार को कही कि सेना को यह आदेश दिया गया है कि वह चीनियों को खदेड़ दे। हिन्दुस्तान वाले दूसरों को युद्धवादी कहते हैं, तब उन्हें भूलना नहीं चाहिए कि उनका प्रधान मंत्री अक्टूबर महीने में भारत का सबसे बड़ा युद्धवादी था। उसने कहा, चीनियों को भारत भूमि से खदेड़ो। आश्चर्य होता है कि क्यों उन्होंने ऐसा कहा। क्या इसमें रहस्य था ? क्या उनको कुछ भी पता नहीं था ? क्या कारण हुआ कि उन्होंने अपने मुँह से ऐसी बात निकाली ? अक्तूबर के मध्य में उन्होंने यह बात कही और २० अक्तूबर को चीनी सेनाओं ने भारतीय सेनाओं को हराना शुरू किया। यहाँ तक हराया कि बमडिला से ले कर सेला, जो द्वार है, दर्रा है, और वलांग और फुटहिल्स, कोई १५० मील का रास्ता भारतीय और चीनी सैनिकों ने ५ दिन में पूरा किया। ३० मील रोज़। पर्वतीय भूमि पर, ऊँची-नीची भूमि पर, १ दिन में ३० मील चलना, यह तो आराम से चलने से भी ज़्यादा है, ऐसा है जैसे कोई घूमने निकला हो। ऐसा मालूम होता है कि भारतीय और चीनी सेना में एक होड़ लगी थी कि कौन जल्दी दौड़ता है। अफ़सोस केवल इतना है कि वे दौड़े थे भारत की तरफ़ मुँह करके। प्रधान मंत्री अक्तूबर के मध्य के पहले कहता है, चीनियों को बाहर खदेड़ो और स्वयं उसकी सेना अपने देश में खदेड़ी जाती है।

इस रहस्य का खुलासा होना चाहिए। मैं अनुमान लगाता हूँ, ऐसा क्यों हुआ। क्यों दिल्ली की सरकार इतनी कम जानकारी रखती रही चीनी सेना के बारे में और अपनी सेना के बारे में। दिल्ली सरकार की एक परम्परा है कि वह बड़ी घमंडी होती है, पड़ोसी की शक्ति को जानती नहीं, और प्रायः अन्धी हो कर अपने छोटे-से शहर में सारे देश का राज चलाना चाहती है। एक पुराने मुग़ल का क़िस्सा है कि जब उत्तर सीमा पर विदेशी सैनिक बड़ी संख्या में इकट्ठे होने लगे थे और किसी सरदार ने उसको चेतावनी दी, तब उसने उत्तर दिया था, मालूम होता है, तुमको बड़ी दूर की दिखाई पड़ती है, तुम्हारा मकान बड़ा ऊँचा हो गया है। उसी तरह से प्रधान मंत्री ने भी सोचा कि जो लोग चीनी

सैनिक शक्ति की बात करते हैं, उनका मकान बड़ा ऊँचा हो गया है। भारतीय सेना और भारतीय सरकार की जासूसी बिलकुल नहीं है। और जिस देश में चाणक्य हुआ हो, जो २ हज़ार बरस पहले गुप्तचारिता के बारे में इतना अधिक बोल गया हो, उस देश की सरकार और उस देश की सेना, और वह भी आज़ाद देश की, इतनी निकम्मी हो कि पता नहीं कि बाहर, दूर जा कर, सीमा के पार विदेशी हमलावर शत्रु की कितनी शक्ति है और कह दे कि उसको खदेड़ो। और इसमें तो गुप्तचारिता की भी बड़ी आवश्यकता नहीं थी क्योंकि सभी लोग जानते थे कि चीनी सैनिक शक्ति बहुत इकट्ठा हो चुकी है। फिर प्रधान मंत्री ने क्यों कहा कि चीनियों को भारत भूमि से निकाल बाहर करो। यह बात इतनी रहस्यमय है कि जब तक वह स्वयं नहीं बताते कि उन्होंने ऐसी बात क्यों कही, मन में बड़ा सन्देह बना रहेगा। यह तो स्पष्ट है कि भारत की गुप्तचारिता बिलकुल नहीं है। यह कारण मैं एक अनुमान के रूप में लगाता हूँ कि शायद भारत सरकार ने चाहा, आप लोगों का, हम लोगों का गर्व मर्दन करना है। सब लोग कहते थे कि चीनियों से लड़ो, उनको भगाओ, जनता की यह माँग थी। तब भारत सरकार ने यह सोचा कि चलो थोड़ा-सा चीनी से लड़ जाओ, भिड़ जाओ और जनता को दिखा दो कि हम लोग बिलकुल अशक्य हैं और चीनियों से लड़ नहीं सकते। मैं आपसे सही कहता हूँ कि यह इतना बड़ा रहस्य है कि मेरी समझ में बिलकुल नहीं आता, किसी भी समझदार आदमी की समझ में नहीं आता। खाली पागल आदमी इसका मतलब निकाल सकता है कि क्यों प्रधान मंत्री ने अक्तूबर के मध्य में चीनियों को खदेड़ने की बात कही। अब आपने देख लिया कि यह प्रश्न ज़रूरी है। समाचारपत्रों में यह प्रश्न छपना चाहिए। प्रधान मंत्री को बाध्य करना चाहिए इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए। किन्तु समाचारपत्र ऐसा कुछ नहीं करेंगे।

ऐसा रहस्य नहीं जानने के कारण सबसे कठिन समस्या अब यह हो गयी है कि भारत सरकार क्या करे ? युद्ध करे या संधि करे। उसके लिए पहला प्रश्न है। यह क्या है, युद्ध है, सीमा मतभेद है, घटना है, आक्रमण है, क्या है, इसका भी निर्णय नहीं हो पाया। हम और आप, भारत की जनता इतनी नपुंसक है कि अभी तक अपने प्रधानमंत्री और अपनी सरकार को बाध्य नहीं कर पायी कि वह स्पष्ट उत्तर दे कि यह घटना है, युद्ध है या सीमा मतभेद है या साधारण-सी कोई बात है। सरकार के दिमाग़ में एक तो यह बात है कि यह सीमा मतभेद है, इसलिए छोटी बात है, इसलिए थोड़ा ले-दे करके फ़ैसला करो, इसलिए कोलम्बो प्रस्ताव इत्यादि पर बातचीत करो और फिर से किसी तरह से देखते हुए हिन्दुस्तान की शक्ति कम है, चीन के साथ समझौता करो। दूसरी बात दिमाग़ में है कि थोड़ा लेने-देने से तो राष्ट्रीय सम्मान गिरता है, यह केवल सीमा मतभेद का प्रश्न नहीं है, यह तो बड़ा व्यापक और विराट आक्रमण का प्रश्न है इसलिए चीन से अंतिम रूप से निर्णय करना आवश्यक है। दुविधा है एक बात। दूसरी बात सर्वप्रथम आवश्यक है कि इस दुविधा को खतम किया जाए और या तो भारत सरकार चीन के

साथ सीमा मतभेद समझ करके थोड़ा ले-दे करके समस्या खतम और नहीं तो दिल कड़ा करके भारत को तैयार करे।

मैं स्वयं इसको सीमा मतभेद नहीं मानता और मैं स्वतंत्र भारत के एक स्वाभिमानी नागरिक की हैसियत से कहना चाहता हूँ कि जो सीमा हमारी १५ अगस्त, १९४७ को हमें मिली—स्वतंत्रता के दिन, उस सीमा से कम चीन से हमारी समझौते की कोई बातचीत नहीं होनी चाहिए। किन्तु मैं यह भी मानता हूँ कि १५ बरस में कांग्रेसी सरकार ने भारत के अर्थ को, भारत की सेना को, भारत की विदेश नीति को और भारत की सभी शक्ति के सागरों को क्षीण किया है, उनको कम किया है। इसलिए मैं सीधा नहीं कहता कि अभी चीन के ऊपर आक्रमण कर दो। मैं प्रधान मंत्री की अक्तूबर की भूल को दुहराना नहीं चाहता।

अब हमें सोचना है कि वे कौन-से कारण थे कि जिनसे हमारी शक्ति क्षीण रही, और उन कारणों को दूर करके हमें अपनी शक्ति को बढ़ाना है। जहाँ तक चीन-हिन्दुस्तान के युद्ध का प्रश्न है। उसका तो एक निकाल निकल सकता है और वह यह कि अभी भी गोलीबन्दी एकतरफ़ा है। चीन की ओर से है तो चीन अपनी ओर से हट गया है, और हिन्दुस्तान उस पर किसी प्रकार की अपनी छाप लगाये बिना इस स्थिति को चलाये रख सकता है। आप आश्चर्य करते होंगे कि चीन इतनी विजय करके स्वयं पीछे क्यों हटा ? कुछ लोग कहते हैं. इसका कारण है रूस का दबाव चीन के ऊपर। कुछ लोग कहते हैं कि अमरीका के अस्त्र-शस्त्र का चीन को भय लगा। ये कारण हो सकते हैं। लेकिन मैं आपको कम से कम उतना ही मज़बूत या शायद उससे भी मज़बूत कारण बताना चाहता हूँ। जब सेला, वलांग, बमडिला इत्यादि गिर गये, तो भारतीय जनता को ग़ुस्सा चढ़ रहा था। ठंडी दिल्ली की जनता को भी थोड़ी गरमी आने लग गयी। भय होने लगा था कि शायद यह दुविधा वाली सरकार को अब जनता हटा दे और इसकी जगह पर कोई निर्णय, निश्चय वाली सरकार क़ायम करे और चीन तभी तक भारत से युद्ध कर सकता है जब तक दिल्ली की गद्दी पर दुविधा वाली सरकार है। मैं मानता हूँ कि चीन की शक्ति हिन्दुस्तान से कुछ ज्यादा है। पर वे हमारी भूमि पर युद्ध कर रहे हैं इसलिए सब मिला-जुला करके हमारी शक्ति उनसे ज्यादा है। किन्तु हम अपनी भूमि पर भी क्षीण और कमजोर हो जाते हैं क्योंकि हमारी सरकार दुविधा वाली है और चीन के राजदूत अब तक दिल्ली में हैं। उन लोगों को राजदूत के प्रकार से चिट्ठी-पत्री भेजने का अधिकार है और वह मशीन भी उनके पास है जिससे कि दूर तक वे अपनी ख़बर भी भेज सकते हैं। तो, चीनी राजदूत ने दिल्ली की जनता का, और भारत की जनता का कुछ तो मन देखा होगा—चाहे राजदूत नहीं हो, उसकी जगह पर जो कोई अफ़सर हो—कि भई वापस हटो, नहीं तो शायद पंडित नेहरू चले जाएँगे और फिर क्या होगा ? कोई अच्छी सरकार आ जाए जो चीन से अच्छी तरह लड़े तो मामला बिगड़ जाएगा। इसलिए बहुत आवश्यक है

कि हम लोग अब अपनी कमज़ोरी को दूर करने के उपाय सोचें। जो भी २-४-५ बरस या एक बरस हमको आवश्यक रहे, कोई विशेष अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति में हो सकता है कि वह समय फिर से दो महीने बाद आ जाए, कोई निश्चित नहीं है कि किस तरह से हम हिन्दुस्तान की जनता अपनी शक्ति को और अपने खोये हुए स्वाभिमान को ठीक-ठीक काम में लगाएँ।

सर्वप्रथम आर्थिक शक्ति और सामरिक शक्ति का सम्बन्ध आप लोग अवश्य समझना। प्रधानमंत्री और समाचारपत्र और विदेशी लोग सभी ने एक झूठ बात कही है कि भारत की सामरिक शक्ति कम रही, क्योंकि उसने अपनी आर्थिक योजनाओं पर ज़्यादा ध्यान दिया। श्री गालब्रेथ जैसा अमरीकी विद्वान् राजदूत भी, कोई मामूली आदमी नहीं, एक कालेज में वह प्रोफ़ेसर था—बोला कि चीन को ईर्ष्या हुई, जलन हुई भारत की आर्थिक उन्नति से। ऐसे विद्वान् आदमी को ऐसी झूठ बात नहीं बोलनी चाहिए। आर्थिक शक्ति और सामरिक शक्ति का वही सम्बन्ध है जैसे भुजा का और मुठ्ठी का। अगर भुजा लम्बी है तो हो सकता है २-४ महीने का या ६ महीने का अन्तर आ जाए। किन्तु यदि भुजा लम्बी है तो मुठ्ठी ज़रूर मजबूत होगी। जब हम लोग खेती, कारखाना सुधार रहे थे तो क्या चीन वाले अफ़ीस पी रहे थे? चीन अपनी आर्थिक योजना को हमसे अच्छा चला रहा था और क्योंकि उसकी आर्थिक योजना अच्छी थी, इसलिए उसकी सामरिक शक्ति भी हमसे अच्छी रही। एक कारण तो संगठन का है कि उसने संगठन भी अपनी सामरिक शक्ति का अच्छा किया। १२-१३ बरस पहले हिन्दुस्तान ११ लाख टन फ़ौलाद १ साल में पैदा करता था और चीन १० लाख टन। आज भारत ३५ लाख टन और चीन डेढ़ करोड़ टन फ़ौलाद पैदा कर रहा है। एक वर्ष में चीन २४-२५ करोड़ टन अनाज, भारत ८ करोड़ टन। चीन ४० करोड़ टन कोयले से अधिक, हिन्दुस्तान ६-७ करोड़ टन, और अन्त मे सरकारी लोग बोलेंगे कि पेट्रोल का फ़र्क़ है, तेल का है, तो मैं आपको बता दूं कि पेट्रोल में प्रायः दोनों समान है। ५-१० लाख टन ज़्यादा होगा पर प्रायः समान है। अपने शत्रु की शक्ति को पहचानना चाहिए यदि शत्रु से स्वाभिमान के साथ और शान्ति के साथ रहना चाहते हो।

चीन एक राक्षस है, इसमें कोई सन्देह नहीं। किन्तु इस राक्षस की आर्थिक शक्ति हमारी तुलना में कहाँ से आयी? वह हमारी तुलना में शक्तिशाली है। अमरीका और रूस की तुलना में तो चीन बिलकुल एक ६ महीने का बालक है। और अमरीका और रूस यदि आपस में एक कर लें, तो कोई भी, चीन के सभी उद्योग, कारखानों को घंटे, दो घंटे के अन्दर घर बैठे हुए सत्यानाश कर सकता है।

चीन ने तुलनात्मक ढंग से यह शक्ति कैसे की और हमारी क्यों कम रही, क्योंकि भारत की पंचवर्षीय योजनाएँ नक़ली और बेईमान वामपंथ की योजना है। कहने को यह

समाजवादी और सार्वजनिक कल कारखाने की योजना है। वास्तव में, यह योजना क्या है, वह मैं आपको आज के राष्ट्रीय आय के बँटवारे से बताना चाहता हूँ। हम इस समय समझो, ४४ करोड़ हैं। इसमें ५० लाख बड़े लोग हैं। बड़े लोग कौन? धनी लोग और राजकीय लोग क्योंकि आज दोनों को समझना चाहिए। निजी क्षेत्र के धनी लोग और सार्वजनिक क्षेत्र के राजकीय लोग दोनों मिल करके हिन्दुस्तान के ५० लाख बड़े लोग होते हैं। उदाहरण के लिए, निजी क्षेत्र के श्री बिड़ला और सार्वजनिक क्षेत्र के श्री नेहरू, दोनों मिल करके भारत के ५० लाख बड़े लोग बनते हैं। ५० लाख लोगों को सम्पूर्ण राष्ट्रीय आय का ५ हज़ार करोड़ रुपया मिलता है। और बाक़ी ४४ करोड़ जनता को १० हज़ार करोड़ रुपया मिलता है। तो कैसी योजना बनेगी? कैसे नये-नये कारखाने खुलेंगे? खेती में कैसे सुधार होगा? राष्ट्रीय आय का एक बड़ा अंश तो ५० लाख बड़े लोग अपने ऐश्वर्य, भोग, आधुनिकता, यूरोप और अमरीका की नक़ल करने में उड़ा देते हैं।

जब मैंने प्रधान मंत्री के बारे में कहा कि उनके ऊपर एक दिन में २५ हज़ार रुपया खर्च होता है तो उनको गुस्सा आया। बोले, झूठ बोलते हो। इस पर मैं क्या यह कह सकता हूँ कि तुम महा झूठे हो। मैं क्या उत्तर दे सकता हूँ। बिड़ला परिवार का—उसमें १५-२० आदमी होंगे, ३० होंगे—१ दिन में ३ लाख रुपया आमदनी होती है। बर्नपुर के लोहे के मालिक श्री बीरेन मुखर्जी का एक दिन में ३० हज़ार रुपया होता है। यह मैंने केवल उदाहरण दिया। कम या अधिक ५० लाख बड़े लोग हैं जो हमारी राष्ट्रीय आय का काफ़ी बड़ा हिस्सा ऐश्वर्य और आधुनिकता मे बरबाद करते हैं। यदि चीन के समान या उससे भी अधिक शक्तिशाली होना चाहते हो तो इस भोग, ऐश्वर्य, आधुनिकता को समाप्त करके या कम करके उसको पूँजी के स्वरूप खेती या कारखाने में लगाओ।

मनुष्य का परिवर्तन करने और उत्थान करने के उपाय हैं, उनका भी अनुसरण करना है, क्योंकि इधर १५ बरस में भारतीय मनुष्य को बदलने का कोई काम नहीं हुआ। केवल कारखाना, खेती के माल का हिसाब-किताब हुआ। उदाहरण के लिए, सरकारी नौकर का प्रश्न। आप लोग तो बेंगलूर में बहुत अधिक संख्या में कोई न कोई तरह के सरकारी नौकर हो। यहाँ पर हवाई जहाज़ का कारखाना है, एलेक्ट्रॉनिक्स का कारखाना है, फिर और सब कारखाने हैं—ये सरकारी कारखाने हैं और इनमें जो काम करने वाले लोग हैं, वे राजकीय पार्टियों के सदस्य नहीं बन सकते। सरकारी स्कूल में या कालेज में जो अध्यापक हैं वे भी राजनीतिक पार्टियों के सदस्य नहीं बन सकते। रेल इत्यादि के मज़दूर तो राजकीय पार्टियों के सदस्य बन ही नहीं सकते। इसका क्या परिणाम होता है? एक तरफ़ तो सरकारी पार्टी का कहना है कि सार्वजनिक क्षेत्र को बढ़ाओ और निजी क्षेत्र को कम करो, कारख़ाना, रेल, स्कूल इत्यादि सभी सरकारी बनाओ, समाजवाद लाओ। समाजवाद का अर्थ होता है कि निजी क्षेत्र कम हो और सार्वजनिक क्षेत्र बढ़े

अर्थ होता है सरकारी नौकरों की संख्या बढ़े। जैसे-जैसे भारत में समाजवाद बढ़े, वैसे-वैसे भारत की जनता का अधिकतर हिस्सा सरकारी नौकर बनता रहे और वैसे-वैसे वे सरकारी नौकरों को राजकीय अधिकार नहीं रहें, दलों में नहीं जाएँ, राजकीय पार्टियों का काम नहीं करें, राजनीति नहीं करें। तो फिर समाजवाद ग़ुलामी, पराधीनता हो जाएगा। प्रत्येक नागरिक को संगठन का अधिकार, राजनीति का अधिकार नहीं रहेगा। जिस देश में निजी क्षेत्र बड़ा है और सार्वजनिक क्षेत्र कम है, जहाँ पूंजीवाद है, जहाँ सरकारी नौकर कम हैं, वहाँ सरकारी नौकर को राजकीय अधिकारों से वंचित रखा जा सकता है। लेकिन इस देश में सरकारी नौकरों की संख्या बढ़ती चली जा रही है, वहाँ पर सरकारी नौकरों को राजकीय अधिकारों से वंचित रखने का मतलब है, समाजवाद माने ग़ुलामी। इसीलिए समाजवादी घोषणापत्र में लिखा है कि सेना को छोड़ कर बाक़ी सभी सरकारी नौकरों को संगठन और राजनीतिक दलों में प्रवेश का अधिकार होना चाहिए। कुछ लोगों को डर लगता है कि राजकीय पार्टियों का शासन तो आज न सही, कुछ दिनों बाद किसी का आएगा, किसी का जाएगा और यदि सरकारी नौकर भी राजकीय पार्टी के साथ जुड़ जाएँगे तो इसका परिणाम बुरा हो सकता है। किन्तु वास्तविकता यह है कि बिना राजकीय संगठन और दलों में प्रवेश के सरकारी नौकर स्वार्थी बन जाता है या ग़ैरज़िम्मेदार। राजकीय दलों में यदि प्रवेश कर सकेगा तो ज़िम्मेदार बनेगा, उसका माथा खुलेगा। वह सभी प्रश्नों पर थोड़ा सोच-विचार करेगा। ईमानदारी भी थोड़ी-बहुत बढ़ेगी।

इसी तरह से मैं आपको भाषा का प्रश्न भी बताना चाहूँगा। एक क़िस्सा सुनो आप भारतीय महिला का, जो पूर्व जर्मनी में गणित पढ़ने गयी थी। उस महिला का नाम है रमला। वह हिन्दी भाषा-भाषी नहीं है। हिन्दी वाली होती, तो लोग झट से कह देंगे, अरे, वह तो हिन्दी वाली। वह तो बंगाली है और वह पूर्व जर्मनी में उच्च गणित पढ़ने गयी थी, और वहाँ से पी-एच. डी. हो कर आयी है गणित में। वहाँ पर एक चीनी लड़की भी गणित में पी-एच. डी. करने गयी थी। रमला और वह चीनी लड़की दोनों मित्र थे। कभी रमला चीनी लड़की के कमरे में जाती थी तो वह देखती थी कि गणित की सभी पुस्तकें, उच्च गणित की भी पुस्तकें चीनी भाषा में उसके कमरे में मौजूद हैं। चीनी भाषा का एक और रोग और दोष आप जानना। एक समय था जब चीनी भाषा में ४ हज़ार अक्षर थे, वे घटते-घटते ४०० हो पाये हैं। ४ सौ से कम अभी भी नहीं हुए हैं। कन्नड़, तमिल, हिन्दी में कितने अक्षर होते हैं? उस चीनी भाषा में उच्च से उच्च गणित, आरम्भ से आरम्भ वाली गणित की सभी पुस्तकें मौजूद हैं, क्योंकि चीनी सरकार का संकल्प था कि हम सब अपनी भाषा में पढ़ेंगे। और हमारी सरकार का संकल्प था, नहीं तुम अंग्रेज़ी में पढ़ोगे। अंग्रेज़ी के माध्यम से ज्ञान निश्चित रूप से सीमित रहेगा। समझ लो ३ करोड़ तमिल हैं। उनको ऊँचा ज्ञान अंग्रेज़ी के माध्यम से हासिल करना है।

कितने हासिल करेंगे ? यदि तमिल के माध्यम से हासिल करें तो कितने हासिल करेंगे ? वही आप कन्नड के बारे में सोचो। वही आप हिन्दी के बारे में सोचो। १५ बरस से चीनी सरकार और राष्ट्र ने अपने देश की भाषाओं का प्रयोग करके अपने ज्ञान का विस्तार किया है, और दोनों अर्थ में विस्तार किया है।

चीन में सौ में से ९१ आदमी को अक्षर ज्ञान है। हमारे यहाँ २३ आदमी को। यह तो मैंने साक्षरता की बात कही, जो व्यापक, विशाल जनता की बात हुई। विशेष ज्ञान की बात सोचना। गणित, इंजीनरिंग, विज्ञान, नक्षत्र-ज्ञान—ये सब विशेष ज्ञान—उसमें भी चीनी लोग अपनी मातृभाषा के माध्यय के द्वारा ज्ञान को विस्तृत बनाते हैं और हम भारतवर्ष में इस ऊँचे ज्ञान को अंग्रेज़ी के द्वारा सीमित बनाते हैं, लोगों के पास नहीं पहुँचाते। लोग दिन-रात हल्ला मचाते हैं कि चीन के पास अणुबम हो गया, चीन में वैज्ञानिक उन्नति ज़्यादा हो गयी। क्यों नहीं होगी ? चीन के ऊपर एक अल्पसंख्यक भाषा का श्राप नहीं है। इस समय आप इस प्रश्न को अच्छी तरह समझना, क्योंकि मेरे बारे में ऊँचे लोगों ने, बड़े लोगों ने, निजी क्षेत्र के धनियों ने और सार्वजनिक क्षेत्र के नेताओं ने बहुत झूठ, भ्रम फैलाया है। लोगों ने एक झूठ फैलायी है कि मैं हिन्दी को सारे भारतवर्ष पर लादना चाहता हूँ। मैं बतलाना चाहता हूँ कि मुझे इससे कोई मतलब नहीं कि हिन्दी का क्या होता है, अच्छा होता है या बुरा होता है। मुझे मतलब केवल इस बात से है कि अंग्रेज़ी हटनी चाहिए। अंग्रेज़ी हटे और मातृभाषा आए, यही मेरा संकल्प है। मातृभाषा में यदि आप चाहें तो सम्पूर्ण काम कर सकते हो; राज्य का भी काम कर सकते हो और केन्द्र का भी काम कर सकते हो। अब एक बात बिलकुल अच्छी तरह पकड़ लेनी चाहिए कि अंग्रेज़ी राक्षसी को तत्काल भारत से निकालना चाहिए यदि हम चीन के साथ मुक़ाबला करना चाहते हैं। ४४ करोड़ की मातृभाषा कन्नड़, तमिल, हिन्दी, बंगाली की प्रतिष्ठा करना है और ५० लाख की मातृभाषा अंग्रेज़ी को निकालना है। तमिलनाड़ में, अथवा करनाटक में उच्च न्यायालय, विश्वविद्यालय, सरकारी दफ़तर, विधानसभा इत्यादि का सम्पूर्ण काम मातृभाषा में करो, यह समाजवादी दल का निश्चित मत है।

केन्द्र के बारे में लोग भ्रम फैलाते हैं कि मेरे जैसा आदमी और समाजवादी दल दिल्ली में हिन्दी की प्रतिष्ठा करना चाहते है। समाजवादी दल ने अपने घोषणापत्र में तीन ढंग बताये है जिनमें से किसी एक को अपना कर देश आगे बढ़ सकता है। पहला ढंग है कि दिल्ली को बहुभाषी केन्द्र बनाओ। दूसरा ढंग है कि दिल्ली को हिन्दी केन्द्र बनाओ और अहिन्दी लोगों को संरक्षण दो। तीसरा ढंग है कि दिल्ली को २ शाखाओं में बाँट दो, एक शाखा ऐसी रहे कि जो प्रदेश अंग्रेज़ी में अभी अपना काम चलाना चाहते हैं, वे अंग्रेज़ी शाखा के साथ जुड़ जाएँ। केन्द्र में कितनी अधिक स्वतंत्रता है कि तट प्रदेश के लोग जिस ढंग को चाहें, चुन लें।

उत्तर प्रदेश हिन्दी भाषा-भाषी प्रदेश है। किन्तु वहाँ का राज्यपाल इस समय उड़ियाभाषी है इसलिए वहाँ की विधानसभा के समाजवादी संयुक्त दल के सदस्यों ने राज्यपाल से कहा, आप उड़िया में बोलो, अंग्रेज़ी में मत बोलो। इसी तरह से बिहार विधान सभा में चर्चा चली तो वहाँ के कुछ लोगों ने कहा, विधान इस बात की अनुमति देता है कि अंग्रेज़ी में भी भाषण हो सकता है। बिहार विधान सभा में, वहाँ की स्वतंत्र पार्टी का नेता बोला कि विधान के अनुसार अंग्रेज़ी में भी बोल सकते हो, अंग्रेज़ी अथवा हिन्दी। समाजवादी दल बोलता है कि वहाँ का गवर्नर तेलुगु है तो हिन्दी अथवा तेलुगु। स्वयं हिन्दी भाषी बिहार में और उत्तर प्रदेश में समाजवादी दल कहेगा, हिन्दी बोल सकते हो, बोलो, नहीं तो उड़िया बोलो, तेलुगु बोलो, भारत की भाषा बोलो, जनता की भाषा बोलो, ज्ञान का विस्तार करो।

विधान की भी एक बहुत बड़ी बात पर ध्यान जाना चाहिए। विधान में लिखा है कि अंग्रेज़ी का उत्तरोत्तर ह्रास हो। यह विधान, नेहरू महाराज का विधान, राज-गोपालाचारी साहब का विधान है, मेरा नहीं। मैं यह समझ सकता हूँ कि पूरे शासन में, केवल तर्क के लिए समझ सकता हूँ कि वास्तव में नहीं, बात तो है ग़लत—पूरे शासन को एक भाषा से दूसरी भाषा में हटाने में हमें देर लगती है किन्तु एक व्यक्ति को कोई भाषा सीखने में कितनी देर लगती है? एक व्यक्ति को कोई भाषा सीखने मे, यदि वह ७२-७५ वर्ष का बूढ़ा हो गया हो तो भी छह महीने या साल भर से ज़्यादा नहीं लगना चाहिए। भारत के राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, राजदूत सभी संविधान की पुस्तक पर शपथ खाते हैं जिसमें लिखा है, अंग्रेज़ी को उत्तरोत्तर कम करो। उनमें से हर एक चाहे तो ६ महीने, साल भर के अन्दर भारत की दूसरी भाषा सीख सकता है। किन्तु भारतीय संविधान की शपथ को तोड़ करके अंग्रेज़ी का व्यवहार चला रहे हैं। मैं तो इस संविधान से और आगे जाता हूँ। मैं उन लोगों को हिन्दी नहीं सिखाना चाहता जो हिन्दी नहीं सीखना चाहते। जिसकी इच्छा हो हिन्दी सीखने की, वह हिन्दी सीखे। जिसकी इच्छा नहीं है, वह हिन्दी न सीखे। इसलिए मेरा प्रस्ताव आज यह नहीं है कि दिल्ली केन्द्र में अंग्रेज़ी हटाओ और हिन्दी लाओ। मेरा प्रस्ताव केवल यह है कि अंग्रेज़ी हटाओ और उसकी जगह पहले बतलाये गये ३ में से कोई भी ढंग अपना सकते हो। इसलिए मेरा मूलमंत्र है, मातृभाषा और यदि इच्छा हो तो हिन्दी, और जो और सब पार्टियाँ हैं उनका मंत्र है अंग्रेज़ी अथवा हिन्दी। बहुत झूठ फैलायी है मेरे बारे में क्योकि मैं ग़रीब लोगों का आदमी हूँ, क्योंकि मेरे पास अखबार नही है और मेरे पास पैसा बाँटने को नहीं है नेता लोगों को, और हम लोगों ने एक ही साथ कई क्रान्तिकारी कार्यक्रम उठा लिये है।

हम लोगों ने यह भी कार्यक्रम उठा लिया है कि जो लोग दबे हुए हैं उन लोगों को विशेष अवसर दे-कर ऊँचा उठाओ। भारत की जितनी पार्टियाँ हैं सब समान अवसर के सिद्धान्त की उपासक हैं। सुनने में समान अवसर का सिद्धान्त बड़ा अच्छा लगता है।

सब के लिए, चाहे कोई भंगी हो, और चाहे कोई बैरिस्टर हो, डाक्टर हो, कोई खेतिमज़दूर हो, सबको समान अवसर मिले। हमारा कहना है कि जिन लोगों को २ हज़ार बरस से दबा करके रखा गया है, उनको विशेष अवसर मिलना चाहिए, तभी वे बराबरी पर आ सकेंगे नहीं तो नहीं।

इस समय भारत में घूसखोर और नक़ली वामपंथ की सरकार है जो बोलने के लिए समाजवादी है और सार्वजनिक क्षेत्र के सिद्धांत को अपनाती है। मुंह से सार्वजनिक क्षेत्र और समाजवाद और वास्तव में बिड़ला साहब, नेहरू साहब और मुखर्जी साहब। जो भारत के धनी लोग हैं, ऊँचे वर्ग के लोग हैं, उनकी राजकीय पार्टियाँ असहाय हैं, निर्बल हैं, आत्मसम्मान विहीन हैं और इस नक़ली वामपंथ को घूस दे कर अपना अस्तित्व क़ायम रखना चाहते हैं। वह अमरीका और इंगलिस्तान की तरह शक्तिशाली दक्षिण पंथ नहीं है। इस समय हमारे देश पर बड़ा संकट है। एक तरफ़ है यह नक़ली वामपंथ और दूसरी तरफ़ है नपुंसक दक्षिण पंथ। एक शक्तिशाली, स्वाभिमानी, ईमानदार वामपंथ का निर्माण किये बिना अब आप अपने देश को नहीं बचा सकते। ऐसा वामपंथ जो जनता की अनुभूतियों, इच्छाओं, और संकल्पों से चलता है, जो ऊपर से दान के स्वरूप में नहीं आता। आप अपेक्षा करते हो कि भारत में वामपंथ सरकार की ओर से दान के स्वरूप में आपको मिल जाए, तो ऐसा नहीं होगा। हम लोग दान की बड़ी आशा करते हैं, करुणा का दान। गज और ग्राह जल में लड़े थे। विष्णु, विष्णु, चिल्लाओ विष्णु को, आओ, बचाओ हमको किसी तरह से। यह जो गज-ग्राह वाला न्याय है, हमेशा अपने से दूर किसी से आशा करना कि वह हमको बचाएगा। जहाँगीर, मुग़ल बादशाह भी अपने क़िले के सामने एक घंटा लगाये हुए था, और जो कोई न्याय चाहता था, वह किसी भी समय जा कर घंटा बजाता था तो बादशाह जहाँगीर उसकी बात सुनता था। विष्णु के गजेन्द्रमोक्ष से, जहाँगीर के घंटे तक, वहाँ से लगा कर नेहरू महाराज के समाजवाद दान तक, हम सबका यही है कि कहीं ऊपर से कुछ मिल जाए। इस तरह समाजवाद और न्याय नक़ली और घूसखोर होगा, उससे देश की शक्ति नहीं बढ़ेगी और हम चीन का प्रतिकार नहीं कर सकेंगे।

और वे पूंजीपति लोग, ज़मींदार, दक्षिणपंथी, ऊँचे वर्ग के लोग, उनको तो मैं बिल्कुल नपुंसक समझता हूँ। वे इस सरकार के सामने खड़े हो कर लड़ाई कर ही नहीं सकते। अब तो केवल एक आशा रह गयी है। साधारण जनता हो, मज़दूर हो, विद्यार्थी हो, छोटा दुकानदार हो, साधारण जनता यदि अपनी थोड़ी-सी शक्ति को बाहर निकाल कर एक ईमानदार वामपक्ष का संगठन करे, तब तो भारत बच सकता है, नहीं तो बड़ा कठिन है। जो १५ अगस्त, १९४७ की सीमा को छोड़ कर ८ सितम्बर १९६२ की सीमा पर आ गये हैं वे लोग हैं कांग्रेसी, नक़ली वामपंथी और कम्युनिस्टी दक्षिण पंथी अथवा रूसी कम्युनिस्ट। सब एक हैं। कोई अन्तर नहीं है, सब ८ सितम्बर वाले हैं। ८ सितम्बर वाले बेंगलूर में आ करके एक हवाई जहाज़ खाली नाटक दिखाने के लिए अच्छी तरह से

उड़ा दें जो आवाज से ज्यादा तेज जाता है। उस विमान को भारतीय सेना के प्रयोग में लाने के लिए कितने बरस चाहिए। उसका नाटक तो बहुत अच्छा दिखाया था। बेंगलुर की जनता को बड़ा प्रसन्न किया था। ये ८ सितम्बर वाले नक़ली वामपंथी कांग्रेसी और रूसपंथी दक्षिणपंथी कम्युनिस्ट मिल कर भारत को ऐसे निर्बलता और स्वाभिमान-विहीनता के युग में ले जा रहे हैं कि मैं आपको क्या बताऊँ? इनके विरोध में दक्षिण पंथियों का कोई उत्तर नहीं। कोई कोई एक छोटा-मोटा उत्तर दे देते हैं जैसे अमरीकी शस्त्र ले लो, जैसे पश्चिमी गुट के साथ मित्रता कर लो। लेकिन देश के अन्दर वाला वास्तविक उत्तर दक्षिण पंथियों के पास नहीं है। मैं मानता हूँ कि जब विदेशी सेना देश के अन्दर प्रवेश कर रही हो और बढ़ रही हो, उस समय जहाँ कहीं से जो अस्त्र मिलें, लेना चाहिए किन्तु केवल उसी पर निर्भर नहीं करना चाहिए। अपने देश का परिवर्तन करना जरूरी है। १५ बरस से जो अर्थनीति, समरनीति, विदेशनीति का भ्रष्टाचार हुआ है, उसको खतम करना चाहिए और आज आधुनिकता और विलासिता में भारत की राष्ट्रीय आमदनी का जो बहुत बड़ा अंश बरबाद किया जाता है उसमें से काफ़ी बड़ा हिस्सा ले कर खेती कार-खाने आदि सुधारने चाहिए।

—१९६३, फ़रवरी ६, बेंगलूर; भाषण।

स्वस्थ, ईमानदार, राष्ट्रीय वामपंथ

पन्द्रह बरस से मैं कह रहा हूँ कि भारत बिगड़ रहा है। कुछ लोगों ने मेरी बात सुनी। अधिकतर लोगों ने नहीं सुनी, क्योंकि समाचारपत्र, रेडियो, बड़े लोग, प्रायः सभी राजनीतिक दल कह रहे थे कि भारत बन रहा है। १५ बरस में भारत बना या बिगड़ा इसका तो सुबूत हिन्दुस्तान-चीन के युद्ध में मिल गया। अगर बना था तो हम लोग इतनी बुरी तरह हार कैसे गये ? चीन इतनी साधारण तौर से विजयी कैसे हुआ ? ौर, चीन के विजयी होने का एक प्रमाण मैं आपको देता हूँ। सेला, हिमालय के उत्तर में एक द्वार है—सेला से बमडिला और वलांग और फुटहिल्स, ये प्रायः १५० मील से अधिक का रास्ता है, पहाड़ी रास्ता, ऊँचा-नीचा और ५ दिन में चीनी सेना सेला से लगा कर बमडिला और फ़ुटहिल्स तक चली आयी। एक दिन में ३० मील। भारत की तरफ़ मुंह रख करके भारतीय सेना और चीनी सेना दौड़ी है।

हम तो बिलकुल नष्ट हो गये, भ्रष्ट हो गये, सम्मान ख़तम हो गया। अभी भी आपको बहुत-से लोग कहेंगे, कुछ नहीं हुआ, वे तो वापस चले गये हैं। हमने क्या खोया, इसे आप जान लेना। एक, जो हमने भूमि खोयी, उसका पूरा हिसाब याद रखना। पहले तो हमने तिब्बत में जो हमारी प्रायः ८० हज़ार वर्गमील की भूमि थी, उसे खोया। यदि तिब्बत स्वतंत्र रहता है तो कैलाश, मानसरोवर, पूर्ववाहिनी ब्रह्मपुत्र इत्यादि की भूमि तिब्बत के पास रह सकती है। यदि तिब्बत स्वतंत्र नहीं तो वह भूमि हमको वापस मिलनी चाहिए, क्योंकि वह हमारी भूमि है। दूसरे, आज से कोई सात-आठ बरस पहले लद्दाख में चीनी ने प्रायः १३-१४ हज़ार वर्गमील ज़मीन ले ली और अबकी दफ़े, यह जो तीसरा आक्रमण हुआ—अब तक चीन के ३ आक्रमण हुए हैं, पहले दो आक्रमण बिना युद्ध के थे, इसलिए आप लोगों को मालूम नहीं—उसमें ऐसा मालूम होता है कि ३-४ हज़ार वर्गमील भूमि तो गयी ही, लेकिन अभी सन्देह है कि शायद और ज़्यादा जाए। अतः प्रायः १ लाख वर्गमील भूमि हमारी, भारत की, चीन के पास गयी। उतना तो खो ही दिया, और इसके अतिरिक्त एक बात खोयी। चीनी हमारे घर में घुस आया, और हमको उसने ऐसा मारा

जैसे समझो कोई गड़रिया हो जो गाय, बैल, बकरी पड़ोसी की चराते हुए उसको पसन्द नहीं आयी और मार करके दाँयें, बाँयें, थप्पड़ मार वापस चला गया। तो, हमारा आत्म-सम्मान भी गया। राष्ट्रीय लज्जा और मर्यादा सब खतम हुई। किन्तु इसे दूसरे लोग तो समझेंगे नहीं कि भूमि गयी और राष्ट्रीय मान गया।

मैं नहीं चाहता कि आज पुरानी बातों का मैं कोई वर्णन करूँ। यहाँ पर मैंने सुना है कि कांग्रस वाले भी हैं, उनका दिल दुखाने से क्या फ़ायदा? इसलिए पुराना अपराध, अपराध तो बहुत है, इतना अपराध है कि मैं आपसे क्या बताऊँ, तो उसकी मैं चर्चा नहीं करूँगा। अभी जो नया अपराध हो रहा है, खाली उसकी चर्चा करूँगा जो भविष्य में हमको नुक़सान पहुँचाता है। अब सब से पहले, क्या चीज़ है जो हमको नुक़सान पहुँचाती है? एक बात याद रखना, हम क्यों हारे? चीन हमसे शक्तिशाली क्यों निकला? साधारण तौर पर लोग कहते हैं कि चीन ने सेना शक्तिशाली बनायी और हम खेती, कारखाना, आर्थिक योजना में लगे रहे, हम तो शांति के काम में लगे रहे और चीन युद्ध के काम में लगा रहा। यह बात बिलकुल झूठ है। यह ऐसे ही है, जैसे यदि कोई चोर पकड़ा जाए और साबित करे कि जहाँ चोरी हुई थी वह वहाँ पर नहीं था, मैं तो दूसरी जगह था और झूठी गवाही ला करके बता दे कि मैं तो दूसरी जगह था। वास्तव में, इधर १५ बरस में जितना शान्ति का काम, शान्ति यानी खेती, कारखाना, आर्थिक योजना का काम हिन्दुस्तान ने किया, उससे अधिक काम चीन ने किया। एक बात याद रखना कि आर्थिक शक्ति तो है भुजा और सेना की शक्ति है मुट्ठी। कौन मूर्ख है जो इस बात को कहता है कि भुजा की शक्ति हम बना रहे थे और इसीलिए मुट्ठी की शक्ति हम बना नहीं पाये। भुजा की शक्ति जब बनाओगे तो मुठ्ठी बाँधने में कितनी देर लगती है, २ महीना, ४ महीना, ६ महीना लगता है। भुजा की शक्ति थी ही नहीं। वास्तव में इस समय भारत आर्थिक दृष्टि से संसार का एक निकृष्ट देश है, और महान् परिवर्तन की आवश्यकता है। तुम कुछ नहीं कर रहे थे। १५ बरस तक तुम केवल भारत की शक्ति बरबाद कर रहे थे। कोई इधर-उधर फ़ेन्सी मकान बना लिया, कोई सिनेमा बना लिया, कोई नाचने-गाने का थिएटर बना लिया, कोई २६ जनवरी को परेड कर दिया, करनाटक से ले गये लड़कों की नाचने वाली टोली और उर्वसीअम् से ले आये लड़कियों की टोली और केरल से ले आये बजाने वालों की टोली। इससे कहीं कोई शक्ति होती है? यह शक्ति नहीं है। भारत की आर्थिक शक्ति आज बड़ी खराब है। दूसरे देश हमसे अधिक उन्नति कर रहे हैं। और हम उन्नति यदि करना चाहते हैं तो हमको अपनी योजना का आधार बदलना पड़ेगा।

मैं रूस का एक उदाहरण दूंगा। रूस कम्युनिस्ट है, राक्षस। मुझे वह पसंद नहीं, और, वास्तव में, चीन भी कम्युनिस्ट है जो और बड़ा राक्षस है, क्योंकि यूरोप के कम्युनिज्म में और एशिया के साम्यवाद में एक बड़ा अन्तर है। मैं प्रयत्न कर रहा हूँ कि

यह बात सब लोग समझें, एशिया के सब समझें, लेकिन आप जानते हैं, लोग हमारी बात तो फैलाते नहीं। कोई समाचारपत्र और रेडियो तो हमारे पास है नहीं। सच्ची बात को फैलने में १५ बरस लगे, १५-२० बरस नहीं, १०० बरस लगते हैं। ऐसी खराब हालत है। सच पूछो तो आज के सभापति जी जब अंग्रेज़ी में बोले तो हम चाहते थे कि आप लोग कोई खड़े हो कर कहते कि बैठ जाओ, बैठ जाओ, कन्नड़ बोलो, कन्नड़ बोलो, यह क्या आदमी है? बनारस विश्वविद्यालय में पढ़े हुए, सारा हिन्दुस्तान देखा है और फिर यहाँ पर अंग्रेज़ी में बोले। खैर। जो भी एशिया का साम्यवाद और यूरोप का साम्यवाद है, दोनों में बड़ा अन्तर है। रूस में जब कम्युनिस्ट शासन हुआ तो रूस के सामने भी यह प्रश्न था कि रूस के पश्चिम में इस्टोनिया, लटाविया, लिथुआनिया इत्यादि देश हैं और रूस कहता था कि ये हमारे अंग हैं, हममें मिलने चाहिए। चीन हिमालय को अपने देश का अंग नहीं कहता, गोलमोल बात कहता है। कभी सखा देश कहता है, कभी किसी हिस्से को अपने देश का अंग कहता है। किन्तु रूस तो लिथुआनिया, लटाविया, इस्टोनिया को अपने देश का अंग कहता था फिर भी रूस ने कभी आक्रमण नहीं किया। चीन ने आक्रमण कर दिया। चीन है एशिया का कम्युनिस्ट, रूस था यूरोप का कम्युनिस्ट। चीन ने क्यों आक्रमण किया? इसका कारण बिलकुल साफ़ है कि यूरोप में साम्यवाद के विरोध में जो शक्ति थी पूँजीशाही की, वह शक्तिशाली थी। अगर रूस शक्तिशाली था, तो जर्मनी, फ्रांस, इंगलिस्तान, ये भी शक्तिशाली थे। दोनों शक्तिशाली एक दूसरे से भिड न जाएँ, इसलिए रूस डरा।

हिन्दुस्तान, हिमालय इत्यादि चीन की तुलना में कमज़ोर हैं इसलिए चीन को लालच आ जाता है। चीन सोचता है, सामने वाला तो कमज़ोर है, छीन लो उससे जो कुछ लेना है। और, संसार में सभ्यता, संस्कृति, सदाचार, इन सबका आधार क्या है? सामने वाले में यदि शक्ति होती है तो सदाचार होता है। दो आदमी हैं दोनों में बराबर की शक्ति है तो दोनों में बहुत अच्छी तरह से बातचीत होगी, भलाई से होगी, ख़ूब सुसंस्कार से होगी। लेकिन उनमें से यदि एक ज्यादा शक्तिशाली है और दूसरा कम है, तो फिर सदाचार, सभ्यता, संस्कृति खतम, और वह ऊपर चढ़ बैठेगा और शायद गाली भी दे देगा। तो एशिया का साम्यवाद भिड़ा है एशिया के कमज़ोर पूँजीवाद से अथवा नक़ली वामपंथ से। आज जो हिन्दुस्तान में शासन पद्धति चल रही है, उसको मैं नक़ली और घूसखोर वामपंथ कहता हूँ। नक़ली और घूसख़ोर वामपंथ और पूँजीवाद और करोड़पंथ इत्यादि एशिया की जो शक्तियाँ हैं, वे बड़ी निर्बल हैं। चीन सबल है, थोड़ा तुलनात्मक। ये दुर्बल हैं इसलिए चीन जंगली होगा। जब सामने वाला दुर्बल होता है, तब आदमी जंगली हो जाता है, असभ्य हो जाता है। इससे एशिया का साम्यवाद तो जंगली और असभ्य हो कर ही रहेगा।

अब मैं उनकी तारीफ़ बताना चाहता हूँ, क्योंकि अपने शत्रु को पहचानना चाहिए। जो आदमी अपने शत्रु को नहीं पहचानता, वह बड़ा मूर्ख है।

आज यह साम्यवाद क्यों शक्तिशाली है ? एक ही उदाहरण मैं देता हूं। रूस में औसत आमदनी एक महीने में एक आदमी के पीछे साधारण तौर से कोई ३००–४०० रुपये महीने की होती है। दूसरे, वहां मोस्कोवा शहर में, एक कमरे के मकान का किराया क़रीब २५–३० रुपया पड़ेगा, और एक मकान का मतलब समझ लेना। शिमोगा के मकान जैसा मकान नहीं। एक कमरा यानी एक ही कमरा मिलेगा, लेकिन वह आधुनिक होगा। पाखाना इत्यादि साफ़ रहेगा, जंजीर वाला रहेगा। तीसरे, एक चीज़ याद रखना। औरतें यूरोप में पूरी ओढ़नी नहीं ओढ़तीं। कभी ओढ़ती हैं तो २ गज़ वाली १।। गज़ वाली, खाली सिर के ऊपर। उस ओढ़नी का दाम क़रीब १२ रुपया लगेगा। चौथे, अद्‌भुत बात है कि छोटे बच्चों के खिलौने रूस-चीन में अद्‌भुत प्रकार के बन रहे हैं। हमारे देश में या यूरोप में खेलने के लिए क्या देते हैं ? घोड़ा, हाथी, सिपाही दे दिया। रूस में १० बरस के बच्चे के लिए खेलने के लिए, जो और सब खिलौने होते हैं, उनके साथ २ कांच होते हैं। एक के ज़रिये कोई चीज़ देखो तो वह खूब बड़ी चीज़ दिखाई देती है और दूसरे के द्वारा दूर की चीज़ देखो तो वह बिलकुल नज़दीक दिखाई देती है। इन्हें टेलिस्कोप और माइस्कोप बोलते हैं। रूस में इस तरह के खिलौनों का सब सामान १५ रुपये में मिल जाता है। अपने देश में इन चारों का हिसाब लगाना चाहिए। कलकत्ता, बम्बई में मकानों का वही हाल है जो मास्कोवा में है। भारत में एक आदमी की औसत आमदनी होती है ३० रुपया महीना। कलकत्ता, बम्बई में कमरा मिलेगा ४०–५०–६० रुपया महीना। जो ओढ़नी वहां १२ रुपये में मिलेगी वह यहां मिल जाएगी ५ रुपये में। बच्चों के खेलने के लिए जो दूर देखने का और नज़दीक देखने वाला शीशा है, वह कम से कम ७०–८० रुपये में मिलेगा। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि आवश्यक वस्तुओं का दाम रूस में कम है, भारत में ज़्यादा है। विलासिता, फ़ैशन की वस्तु का दाम हिन्दुस्तान में कम है और रूस में ज़्यादा।

इससे कुछ थोड़ा-सा आपको समझ में आया होगा कि आर्थिक जीवन कैसे बदलना पड़ेगा। मेरा निश्चित मत है कि भारत की योजना को अब बिलकुल बदलना पड़ेगा। जो बड़े लोग हैं उनकी विलासिता, फ़ैशन, इनकी फ़िज़ूलखर्ची कम करना पड़ेगा। मैं नहीं बोलता कि उसे खतम करो। जो बड़ा आदमी है, उसको थोड़ा आराम से रहने दो, लेकिन कितना ? मर्यादा बांध दो और आज जो १५ हज़ार करोड़ में से ५ हज़ार करोड़ रुपया साल भर में इनको मिल जाता है, उसे २–२।। हज़ार करोड़ रहने दो, और बाक़ी २–२।। हज़ार करोड़ रुपया साल का बड़े लोगों की विलासिता के खर्चे से निकाल कर खेती, कारखाने सुधारने में लगाओ। तब जा कर हिन्दुस्तान को शक्तिशाली बना सकते हो। आज क्या है ? आज तो जिसे देखो, उसके मन में क्या भावना है ? जो थोड़ा-सा पैसे वाला है, जो थोड़ा-सा पढ़ा-लिखा है, उसकी क्या इच्छा है ? यही कि हमारे एक मकान हो जाए। हर एक आदमी के लिए सर्वोपरि चीज़ है व्यक्तिगत सुधार, व्यक्तिगत स्वार्थ

की भावना कि अपना कोई मकान हो जाए, अपना कोई कारखाना हो जाए, अपना धंधा बढ़ जाए, कुछ पैसा इकट्ठा कर लें, चाहे वह व्यापारी हो, चाहे वह डाक्टर हो, चाहे वकील, चाहे और कुछ। उसके दिमाग़ में सारे देश की आर्थिक योजना की तरक्क़ी करने की बात नहीं आती। हो कैसे? १५ बरस में सब आधार भ्रष्ट हो गया, नींव भ्रष्ट हो गयी। ऐसा मत समझना कि हम कोई परमार्थी हैं। यह बात नहीं। मैं सिर्फ़ यह बताना चाहता हूँ कि आज के भारत में यदि आप अपना स्वार्थ सिद्ध करना चाहते हो तो पहले परमार्थ सिद्ध करो, क्योंकि परमार्थ में स्वार्थ है। स्वार्थ में परमार्थ नहीं है। आज का भारत इतना नष्ट हो गया है कि जो मनुष्य अपना स्वार्थ सिद्ध करना चाहेगा उससे वह भी नहीं हो पाएगा।

जैसे, शिमोगा का कलक्टर है। वह बड़ा आदमी है। उसको कितना वेतन मिलता है? अगर बेईमानी नहीं करता है तो उसकी तनख्वाह ज़्यादा से ज़्यादा हज़ार बारह-सौ रुपया महीना होगी। हाँ, बेईमानी करे तब तो बात दूसरी है। पाँच, दस, बीस हज़ार, चाहे जितना बना सकता है। उसे बहुत बढ़िया और बड़ा मकान मिलता है। इसके बारे में मैं अपनी निश्चित राय बता देना चाहता हूँ क्योंकि हमारे देश में, खास तौर से नगरों में, भूमि का जो प्रश्न है, वह बड़ा विकराल है। सरकारी दफ़तरों और सरकारी अफ़सरों ने नगर के अच्छे-अच्छे इलाक़ों को खूब घेर लिया है। फिर क्लब बना लिये हैं बड़े लोगों ने, फिर कलक्टर साहब का मकान बन गया, फिर सरकिट हाऊस बन गया। पैसा नहीं दिया है, मुफ्त ले लिया है, क्योंकि सब सरकार के काम के लिए लिया है। एक कलक्टर के मकान में कितनी ज़मीन होगी। मैंने तो शिमोगा के कलक्टर का मकान नहीं देखा लेकिन मैं समझता हूँ काफ़ी बड़ी ज़मीन होगी, बग़ीचा होगा। आगरा के कलक्टर का बंगला तो मैंने देखा है। वहाँ कोई १५–२० एकड़ ज़मीन है और वहाँ के सरकिट हाऊस में तो कोई ४००–५०० एकड़ ज़मीन है। यह सब बहुत ही व्यर्थ है। मेरी निश्चित राय है कि यदि नगर की भूमि-समस्या को ठीक करना है, तो इन सब ज़मीनों को ले लेना पड़ेगा। कलक्टर आदि के लिए छोटा-सा सुविधाजनक मकान होना चाहिए। बाक़ी जितनी ज़मीन है उस पर साधारण जनता के निवास के लिए मकान बनाने पड़ेंगे या साधारण जनता के बच्चों इत्यादि की उन्नति के लिए जो संस्था बनाना ज़रूरी है, वह बनानी पड़ेंगी। तब जा कर देश बनेगा।

अब कांग्रेस पर तो मैं नहीं बोलूँगा पर प्रधान मंत्री पर बोलना ज़रूरी हो जाता है। प्रधान मंत्री पर एक दिन में २५,००० रुपया खर्च होता है। हमने जब यह कहा तो वे बोले कि तुम झूठ बोलते हो। ऐसे गाली देने से फ़ायदा क्या? हम भी सकते थे कि तुम महाझूठ बोलते हो। इससे तो कोई परिणाम नहीं निकलता। और फिर, वैसे वे बहुत बोलते हैं कि पैसे वालों के मकानों का मूल्य बढ़ रहा है, ज़मीन का मूल्य बढ़ रहा है तो उनका अपना मकान है, उसको भी तो देखना चाहिए। इलाहाबाद में उनका जो मकान है,

उसकी ४-६ एकड़ ज़मीन है। १५-२०-२५ बरस पहले उस मकान और ज़मीन का मूल्य रहा होगा, अधिक से अधिक, ५०-६० या ७० हज़ार रुपया, आज उसका मूल्य कम से कम ३-४ लाख रुपया है। क्यों नहीं उस के ऊपर टैक्स लगाते ? जब यह प्रश्न उठाया हमने, तो उत्तर देते हैं, इलाहाबाद में कोई दाम ज़्यादा थोड़े ही बढ़े हैं, वहाँ मकान के दाम कमती हैं। यह बिलकुल झूठ बात है। अभी तो किताब भी हमारी छप गयी है जिसमें कि एक-एक चीज़ से साफ़ साबित हुआ है कि आज भारत के शासक लोग झूठ के ऊपर अपना सब काम-काज चला रहे हैं। मान लो कोई ज़मीन है जिसका दाम १५-२० बरस पहले २) गज़ होगा, वह आज हो गया होगा कम से कम १०)। इस बढ़ोतरी का कारण है कि बढ़िया से बढ़िया ज़मीन पर तो सरकारी लोग क़ब्ज़ा कर लेते हैं, फिर कमती ज़मीन रह जाती है, उसके ऊपर जनता फैलती है और उसका दाम बढ़ जाता है। व्यापारी लोग दाम बढ़ाते हैं और सरकारी लोग उसमें से हिस्सा लेते हैं। सब प्रश्न इतने जटिल हो गये हैं कि कम्युनिस्टों की राक्षसी ताक़त को ध्यान में रखना चाहिए : ३०० से ४०० की मासिक औसत आमदनी, २५) महीने का कमरा, १२), १३) की ओढ़नी और १५ रुपये के खिलौने। रूस में १०-१२ बरस का हर एक बच्चा पहले से ही ज्ञान का आधार पा जाता है। बच्चा जब छोटा होता है, तभी से वह देखने लगता है क्षितिज में हवाई-जहाज़ उड़ रहे हैं, चन्द्रमा, तारे, वह उस शीशे से देखने लगता है।

अब ख़ाली एक चीज़। वह यह कि जहाँ पर हम लोग हारे हैं वह हिमालय का क्षेत्र क्या है ? एक तो हम लोग हारे उर्वसीअम् में, जिसे ये लोग 'नेफ़ा' कहते हैं। अंग्रेज़ी नाम के पहले अक्षरों को ले कर संक्षिप्त किया—नेफ़ा। चीन तरक्क़ी कर रहा है जापान तरक्क़ी कर रहा है क्योंकि जापान जापानी भाषा में अपना काम चलाता है, चीन चीनी भाषा में चलाता है। ज्ञान का विस्तार है। हमारे यहाँ क्या होता है ? एक इंजीनर है, एक वैज्ञानिक है, वह अपना समय अंग्रेज़ी सीखने में बरबाद कर देता है, विषय ज्ञान उसे नहीं हो पाता। वह तो देखेगा कि हमारा उच्चारण ठीक हो रहा है या नहीं, हमारा व्याकरण ठीक है या नहीं। वह शैली में, व्याकरण में, उच्चारण में अपना सारा समय बरबाद कर देता है। विषय ज्ञान नहीं सीख पाएगा। ख़ैर। उर्वसीअम् में ६-७ लाख आदमी रहते हैं। वहाँ कई जातियाँ हैं, दाफला, अभोर, मोनपा, मिशमी इस तरह से कोई २०-२५ बड़ी-बड़ी जातियाँ। क्षेत्रफल है कोई ३५ हज़ार वर्ग मील। जब चीन ने आक्रमण किया तो इन ६ लाख आदमियों से उसका कोई मतलब नहीं था। न ६ लाख आदमी सेना में हैं, न उनका भारतवर्ष से कोई मतलब रखा गया। १५ बरस तक सरकार ने उर्वसीअम् के इन ६ लाख निवासियों को आपसे बिलकुल अलग रखा। मैंने दो बार वहाँ जाने का प्रयत्न किया कि मैं वहाँ जाऊँ और लोगों से मिलूँ ताकि दोनों में संबंध क़ायम हो। आखिर आने-जाने से ही भारतीयता का उद्भव होता है। लेकिन नहीं जाने दिया और दो दफ़े मुझे गिरफ़्तार किया, जेलखाने में भेजा। महात्मा गांधी की तसवीर रखने के

लिए उर्वसीअम् में एक बार दूकानदार को गिरफ़तार किया गया था। यह सुन कर आपको आश्चर्य होगा। यह ठीक है कि उसे ज्यादा दिन नहीं रहना पड़ा। एक दिन के क़रीब रहना पड़ा। और, अभी कोई प्रश्न उठाए तो झट से नेहरू महाराज जवाब देंगे, क्या हुआ, १ दिन में तो छोड़ ही दिया। गांधी जी की तसवीर रखने के लिए वह आदमी १ दिन भी क्यों जेल में गया, तेजो शहर में। पुराने ज़माने में एक पादरी और सरकारी लोगों ने एक नियम बनाया था कि उ`सीअम् के लोगों को भारत के सम्पर्क में मत आने दो, अलग रखो। और ऐसा नियम बनाया कि जब चीनी आक्रमण करके आये तो कुछ भी विरोध नहीं हुआ। सिर्फ़ पंजाब की, राजस्थान की, करनाटक की सेना थी, जो वहाँ चीन से लड़ी। उर्वसीअम् की जनता ने लड़ाई नहीं की क्योंकि उर्वसीअम् की जनता को भारत का अंग नहीं बनाया गया था। अगर चीन से लड़ना है तब वहाँ की जनता में भी राष्ट्रीय भावना लानी पड़ेगी।

वे लोग भी मैदान में आएँ, न केवल सेना में आएँ बल्कि जैसा स्टेलिनग्राड, लेनिनग्राड में हुआ कि जब कभी कोई दुश्मन सेना नगर में आती थी तो नगर में १-१ घर से लड़ाई होती थी। एक-एक घर से कब लड़ाई होगी? जब आदमी लड़ना चाहेगा। तो, उर्वसीअम् में लड़ाई का कोई प्रश्न ही नहीं था। वहाँ के ७ लाख आदमियों को दिल्ली सरकार ने भारत से काट करके रखा, और मुझे लगता है कि कभी झंझट हो तो सारी साधारण जनता का भी कोई संबंध नहीं रहेगा, क्योंकि आज भी, दिल्ली में भी, और कलकत्ता में भी, साधारण जनता कई दफ़े बोलती सुनी गयी है कि हम क्या करेंगे लड़ कर? हम लड़ेंगे भी तो क्या लड़ेंगे? पहले जा कर वे कांग्रेस वाले लड़ें जो खा-खा करके खूब मोटे हुए हैं। यह हमारे देश की अधोगति को बताती है, पतन। जब कोई देश पराजित होता है तो पराजय के पूर्व की यह मनोवृत्ति है। जब जनता के मुंह से ऐसी बोली निकले, तो समझ लेना, देश सड़ गया है और देश का अब नाश होने वाला है।

पहले वह जाकर लड़ें जो खा-खा कर मोटा होता है। वह कभी काहे के लिए लड़ेगा। वह तो अंग्रेज़ के ज़माने में भी मोटा हुआ, वह कांग्रेस के ज़माने में भी मोटा होगा। वह कोई और भी आएगा, तो उसमें भी मोटा होगा। लड़ना तो उसको है जो दुबला है क्योंकि लड़ते-कड़ते कभी शक्ति आ जाए तो वह भी मोटा बन सकता है। आज चीन से यदि किसी को विरोध करना है तो किसे करना है? साधारण जनता को करना है कि जिसमें साधारण जनता स्वतंत्र रहे, उसका राज्य बना हुआ रहे। मामूली दूकानदार, मामूली मज़दूर, मामूली किसान, खेत-मज़दूर, विद्यार्थी, साधारण जनता अपने बल और कौशल को संगठित करे और चीन से मुक़ाबला करे। चीन अभी रुक गया है। क्या जाने ४-५ बरस में फिर से वह आ जाए। और, आखिर कभी न कभी दिल्ली की सरकार में कोई परिवर्तन आएगा ही, तो जो ज़मीन चली गयी, उसको वापस लेने का भी सवाल उठेगा। जब तक नपुंसक लोग हैं तब तक तो यह प्रश्न उठता नहीं है। साधारण जनता के मन में

यह बात आनी चाहिए कि हम अपने राष्ट्रीय गौरव और राज्य के आधार को सुरक्षित रखेंगे; कमज़ोर, शरीर के कृपण हैं पर लड़ेंगे, चीन से लड़ेंगे और चीन से लड़ते-लड़ते उनमें इतनी शक्ति आएगी कि जब युद्ध खतम होगा, शान्ति होगी तो जिस शक्ति से वे चीन को हराएँगे उसी शक्ति से हिन्दुस्तान के बड़े लोगों को खतम करके छोटे लोगों का राज भी क़ायम कर सकेंगे। यदि ५० लाख बड़े लोगों का राज्य खतम करके ४४ करोड़ छोटे लोगों का राज्य क़ायम करना है तो फिर चीन के विरोध में जो बातें हैं, उन्हें पूरी तरह से जान लेना चाहिए।

और भी बातें कहनी थीं, लेकिन अब यहीं मैं खतम कर देता हूँ। जितना मैंने बताया है, उस पर आप सोच-विचार करना। यह प्रश्न मुझे तो ऐसा लगता है कि जल्दी हल होने वाला है नहीं क्योंकि दिल्ली सरकार में कोई हिम्मत नहीं—न तो संधि करने की हिम्मत है, न ही युद्ध करने की हिम्मत है। संधि करने के लिए भी हिम्मत होनी चाहिए, बेशर्म हिम्मत जिसको बोलते हैं। ज़मीन चीन वाला माँग रहा है, तो, अगर बेशर्म हिम्मत हो तो कहें, भई, ठीक है, अब जो भी माँगता है; ८० हज़ार तो तिब्बत वाली ज़मीन ले ही गया, उसका तो प्रश्न है ही नहीं, लद्दाख वाली १५ हज़ार वर्ग मील ले गया था ६-७ बरस पहले उसका भी प्रश्न नहीं है, अभी तो खाली तीन एक हज़ार वर्ग मील का प्रश्न है जिसे अभी ३-४ महीने में लिया, तो थोड़ा लेन-देन कर लो। वह ४ हज़ार माँगता है तो दो हज़ार दे दो, किसी तरह से पिंड छुड़ाओ और किसी तरह से संधि करो। तो उसमें एक बेशर्मी होनी चाहिए। उतनी बेशर्मी नेहरू महाराज में नहीं है। तो फिर, शरमदार हिम्मत होनी चाहिए कि जो ले गया है उसे वापस लें। उनमें वह भी नहीं है। उनमें न तो बेशर्म हिम्मत है और न शरम वाली हिम्मत है। इसलिए, अब मुझे ऐसा लगता है कि भारत में यह प्रश्न हल होने वाला है नहीं और अभी लम्बा चलेगा। तो आप लोगों को क्या करना है? आज जो राजनीतिक पार्टियाँ हैं, उनसे आप विशेष आशा मत रखना। यह तो आपको स्वयं सोचना है और भारत में एक स्वस्थ वामपंथी दल का संगठन या निर्माण करना है। तभी काम चल सकता है, नहीं तो नहीं। स्वस्थ, ईमानदार और राष्ट्रीय वामपंथी दल अगर बन जाए जो क्रान्तिकारी भी हो, राष्ट्रीय भी हो और स्वस्थ वामपंथी हो तब तो हिन्दुस्तान की उन्नति हो सकती है, नहीं तो उसके पहले नहीं।

—१९६३, फ़रवरी ९; शिमोगा; भाषण।

हिमालय की रक्षा : भारत की रक्षा

भारत-पाकिस्तान वार्ता में कुछ गड़बड़ हो रही है, ऐसी खबर आयी। इस वार्ता के सम्बन्ध में जनता की राय क्या होनी चाहिए? कई बरस से भारत का सम्बन्ध पाकिस्तान और चीन, दोनों से एक साथ बिगड़ा हुआ है। देश की उत्तरी सीमा के दोनों द्वार एक साथ कई बरस से खुले हुए हैं। बुद्धिमानी का काम तो तब होता जब दो में से एक द्वार को बन्द करने का प्रयत्न किया जाता। सीमा के दोनों द्वार खुले रहने पर देश को भयंकर भय उत्पन्न हुआ। हिन्द सरकार और प्रधानमंत्री को चाहिए था कि जिस दरवाज़े को वे अधिक खतरनाक समझते, उसके लिए दूसरे दरवाज़े को बन्द कर देते। अगर पाकिस्तान ज्यादा खतरनाक था तो चीन के साथ लेन-देन कर लेना था। अगर चीन ज्यादा खतरनाक था, तो पाकिस्तान के साथ लेन-देन कर लेना था। ८-१० बरस से ऐसा काम नहीं किया तो दिल्ली सरकार ने बड़ा भारी पाप किया है।

सरकार अब स्वेच्छा से पाकिस्तान से बात नहीं कर रही है, बल्कि अंग्रेज़ का और अमरीका का डंडा पड़ा है कि जाओ पाकिस्तान से बात करो। मुझे बहुत बुरा लगता है कि स्वतंत्र भारत अपनी स्वेच्छा से नीति नहीं चलाता। वह दूसरो के दबाव और भय से नीतियाँ चलाता है। यह भी मैं कह देना चाहता हूँ कि काश्मीर के ऊपर किसी भी तरह के लेन-देन को मैं तभी पसंद करूँगा जब भारत और पाकिस्तान के व्यापक सम्बन्ध पर एक दफ़े फिर से विचार किया जाएगा। आज भारत व पाकिस्तान अलग-अलग हैं; पहले नहीं थे और मैं आशा करता हूँ कि कभी भविष्य में फिर शायद एक होंगे। उस एकता को आरम्भ करने के लिए भारत-पाकिस्तान का महासंघ बनाने के लिए, मैं काश्मीर का लेन-देन करने को तैयार हूँ। यदि बिना महासंघ के आरम्भ किये हुए कोई लेन-देन होता है तो मैं उसको निरर्थक कहूँगा, केवल सामयिक समझौता कहूँगा, और उसका कोई लम्बा परिणाम अच्छा नहीं निकलेगा। महासंघ की बात आज बड़ी कठिन मालूम पड़ती है क्योंकि हिन्द सरकार और पाकिस्तान सरकार, दोनों ही बड़ी मूर्ख और भ्रष्ट हो

गयी हैं। दोनों सरकारें अपने पुराने दौर में फँसी हुई हैं और किसी भी प्रश्न को, उसके आधार को नहीं देख पातीं।

हिन्दू और मुसलमान का भी सम्बन्ध इतना अच्छा नहीं है जितना होना चाहिए। भारत सरकार ने उस सम्बन्ध में कुछ नहीं किया। केवल ऊपर से शान्ति है एवम् मन का मेल नहीं है, और जब तक हिन्दू और मुसलमान के मन का मेल नहीं होता, तब तक न तो खुद हिन्दुस्तान में आप शान्ति और शक्ति पा सकते हो और न हिन्दुस्तान और पाकिस्तान के महासंघ की शुरूआत हो हो सकती है। ऐसा मन का मेल हो सकता है क्योंकि भारत के आधुनिक इतिहास के इधर के ६००-७०० बरस में लड़ाई हिन्दू-मुसलमान की नहीं हुई बल्कि देशी-परदेशी की हुई है। इस सम्बन्ध में अपना दिमाग़ साफ़ रखना चाहिए। मैं एक ही उदाहरण देता हूँ। बाबर, जिसने मुग़ल राज्य आरम्भ किया और उसका भी पुरखा तैमूरलंग परदेशी था। बहादुरशाह या टीपू देशी थे। यह हमारा दुर्भाग्य रहा है कि इस आधुनिक इतिहास में परदेशी शक्तिशाली रहा है और देशी नपुंसक। यह हिन्दू और मुसलमान दोनों के लिए लज्जा की बात रही है। इस आधार को अब बदलना चाहिए। हिन्दू-मुसलमान और भारत-पाकिस्त के सम्बन्ध में एकदम नये रूप से सोचना होगा। दोनों सरकारें नहीं सोचेंगी। आपको, हमको और जनता को और भारत और पाकिस्तान की जनता को सोचना है। आज चीन वाले छाती फुला कर कहते हैं कि वे ६० करोड़ हैं। अगर देश के विभाजन का दुर्भाग्य नहीं हुआ होता और भारत-पाकिस्तान के महासंघ का आरम्भ फिर से होता है तो हम भी कह सकेंगे कि हम भी ६० करोड़ हैं।

भारत-पाकिस्तान महासंघ शायद जल्दी नहीं बनेगा। अभी समझौता नहीं हुआ तो सामयिक लेन-देन पर रह जाएगा।

नहर का पानी दिया या लिया, श्रीनगर घाटी का हिस्सा दिया या लिया, इतना समझौता होगा तो उससे लाभ नहीं होगा। इसलिए आप और हम भारत-पाकिस्तान के महासंघ की बात सोचें, एक नागरिकता की बात सोचें और कम से कम विदेश नीति, सेना नीति और टकसाल नीति दोनों देशों को एक या थोड़ी-बहुत एक बनाने का प्रयत्न करें। मुझे मालूम है कि प्रधानमंत्री ने एक बार नक़ल करते हुए हिन्द-पाक महासंघ को बात कही। इस पर पाकिस्तान के मंत्री बहुत नाराज़ हुए। इस पर मैं केवल इतना ही कहूँगा कि भारत और पाक के मंत्रियों का मुँह इस योग्य नहीं है कि वे हिन्द-पाकिस्तान महासंघ की बात करें। यह बात जनता और उसके ऐसे प्रतिनिधि कर सकते हैं जिन्होंने इधर दस बरस में भारत-पाक सम्बन्ध को नहीं बिगाड़ा है।

इसी खबर के साथ-साथ एक खबर एशिया-अफ्रीका मैत्री संघ के बारे में छपी है। इस सम्मेलन में प्रायः ६० देश इकट्ठा हुए। वहाँ पर चीन भी था। हिन्द-चीन झगड़े का

जब प्रस्ताव आया तो उसमें पहले से लिखा गया था कि कोलम्बो-प्रस्ताव बिना किसी बात के मन में रखे हुए, मान लें, और फिर बाद में लिखा गया कि कोलम्बो प्रस्ताव मान लो। बिना मन में रखे हुए वाक्यांश को निकाल दिया गया। इससे एक बार हिन्दुस्तान का प्रतिनिधि मंडल सम्मेलन के बाहर निकल आया। ६० देश थे। हिन्दुस्तान के साथ कोई और बाहर नहीं निकला। केवल एक प्रतिनिधि-मंडल, वह भी कौन, दक्षिण अफ्रीका के हिन्दुस्तानी लोग बाहर निकले। और वह भी किसलिए ? हिन्दुस्तानी प्रतिनिधि मंडल को मनाने के लिए कि नहीं भाई, इसका मतलब है, रूठो मत, भीतर चलो। जब कोलम्बो प्रस्ताव सम्बन्धी वह बात पास हुई तो सारे सम्मेलन में बड़े ज़ोर से मैत्री का नारा लगा और हिन्दुस्तानी और चीनी प्रतिनिधि मंडल ने इधर हाथ भी मिला लिये। ये कौन लोग हैं ? ये भारत के कौन से प्रतिनिधि मंडल हैं, किसने चुना, कब भेजा, क्या है ? अभी से हाथ मिलाना आरम्भ हो गया। कितनी ज़मीन हम लोगों की चीन ने ले ली है जो अभी वापस नहीं हुई। कोलम्बो-प्रस्ताव के अनुसार वापसी नहीं है. फिर भी ऐसे प्रस्ताव को, ऐसे अधकचरे प्रस्ताव को विजय समझने वाला यह कैसा भारत का प्रतिनिधि मंडल है ?

हमें सावधान रहना चाहिए कि हमारे देश मे बड़े मिथ्याचारी लोग है जो हार को जीत समझते हैं। सरकार में भी ऐसे लोग है, जो अपनी गद्दी को बरक़रार रखने के लिए हार कर भी कह सकते हैं, हम तो जीत गये। एक बात तो चल पड़ी है कि सेना की जीत तो चीन की हुई लेकिन कूटनीति की जीत भारत की हो रही है। हमारे देश पर तीन बार चीन का आक्रमण हुआ। पहले आक्रमण में युद्ध नहीं हुआ लेकिन चीन ने भारत की ८० हज़ार वर्गमील जमीन अपने क़ब्ज़े में ले ली। दूसरा आक्रमण ७-८ बरस पहले लद्दाख में हुआ जब कि चीन ने बिना कोई बड़ी लड़ाई किये हुए १२-१३-१४ हज़ार वर्गमील ज़मीन हमारी ले ली। तीसरा आक्रमण ४-५ महीने पहले हुआ और उसमें चीन ने एक दफ़े तो प्राय: २० हज़ार वर्गमील ज़मीन अपने क़ब्जे में ले ली थी लेकिन वापस चला गया और अब कोई ३-४ हज़ार वर्गमील का सवाल है। इस पर पंडित नेहरू और दीवान चमनलाल जैसे लोग कहने लगते हैं कि चीन वापस चला गया हिन्दुस्तान की जीत हो गयी। दूसरे आक्रमण में चीन और आगे चला आएगा और फिर थोड़ा पीछे हट जाएगा और फिर विवाद होगा और झंझट मचेगी कि देखो हमारा कितना नुक़सान हुआ, हमको ज़मीन छोड़नी पड़ रही है। बस, इसी तरह भारत और चीन का मामला चल रहा है और इसको आज विजय की संज्ञा दी जा रही है।

पूर्व अफ्रीका के एक देश टांगानिका मे अफ्रीका-एशियाई मैत्री सम्मेलन हुआ है, उससे सब लोगों की आँख खुल जानी चाहिए कि अफ्रीका और एशिया के देशों की कोई भी सक्रिय सहानुभूति भारत के साथ नहीं है। उसका एक ऐसा कारण है कि जो भारत की चालाक नीति और चीन की उग्र नीति से संबंध रखता है। बर्मा में और श्रीलंका में यूरोपी लोगों की, अमरीका या अंग्रेज की, तेल कम्पनियाँ हैं। बर्मा और लंका दोनों इन पेट्रोल

कम्पनियों का राष्ट्रीयकरण कर रहे हैं। चीन इस कर्म को चिल्ला-चिल्ला करके अच्छा कह रहा है। भारत इधर-उधर की बात करता है, चुप रहता है, टेढ़ा-मेढ़ा बोलता है। सोचता है, चालाकी से हम राजनीति चलाएँगे। अलजीरिया, जो उत्तर अफ्रीका का एक देश है, कई बरस तक स्वतंत्रता के लिए लड़ता रहा और जब अफ्रीका की राष्ट्रीय शक्तियों ने सरकार बनायी तो भारत ने डेढ़ बरस तक उस सरकार को मान्यता नहीं दी, और चीन ने दी, पाकिस्तान तक ने दी। हिन्दुस्तान की यह विदेशी नीति में झूठी चालाकी चली। यह चालाकी अच्छी नहीं।

भारत की तटस्थ और निरपेक्ष नीति की बड़ी स्तुति हो रही है। भारत की विदेशी नीति, सोवियत घर और अटलांटिक घर के बीच में तटस्थ है किसी के साथ नहीं है, निरपेक्ष है, ऐसा कहा जाता है। और प्रधान मंत्री ने तटस्थता को कैसे हासिल किया? मेनन महाराज से कहा कि जाओ, तुम रूस से दोस्ती करो और मोरार जी महाराज से कहा कि जाओ, तुम अमरीका से दोस्ती करो। प्रधान मंत्री ने सोचा कि यह राष्ट्रनीति और विदेश नीति, कूटनीति तो केवल एक दूकानदार के तराजू जैसी है एक पल्ला इधर, एक पल्ला उधर। मैं अगर श्रीमेनन का मालिक होता, श्रीमोरारजी देसाई का मालिक होता तो मैं उनसे कहता, ठीक है, मेनन महाराज, आप जाओ, रूस से दोस्ती करो लेकिन ७० प्रतिशत तो रूस से दोस्ती करो औ बाक़ी ३० प्रतिशत अमरीका और इंगलिस्तान की भी बात अपने दिमाग़ में रखो। इसी तरह से मैं पाटिल साहब से और श्री मोरार जी देसाई से कहता कि आप ७० प्रतिशत दोस्ती अमरीका से रखो, पर अपने दिमाग़ में ३० प्रतिशत रूस से। यह केवल श्री मेनन और श्री पाटिल के मस्तिष्क का प्रश्न नहीं, दिल्ली सरकार के प्रत्येक मंत्री के मस्तिष्क का प्रश्न है, और भारत के ४४ करोड़ बच्चे इत्यादि को छोड़ दो, प्रत्येक नागरिक के मस्तिष्क का प्रश्न है। निरपेक्ष नीति उसी देश में होगी जहाँ के नागरिक का मस्तिष्क अमरीका और रूस की विचार-धाराओं के संघर्ष का रणस्थल बनेगा।

ऐसा नहीं हुआ। इसीलिए, १० बरस से प्रधान मंत्री परस्पर विरोधी विचार को ले कर चीन के सम्बन्ध में बात कर रहे हैं। जो लोग प्रधान मंत्री के भाषण पढ़ते हैं, चिट्ठी पढ़ते हैं जो उन्होंने चीन को लिखी, तो उसमें देखेंगे कि प्रधान मंत्री दो मुँह से बोलते हैं। एक मुँह से तो वे चीन की वकालत करते हैं और दूसरे मुँह से वे भारत राज्य और भारत की वकालत करते हैं। इसीलिए विदेशी लोग समझ ही नहीं पाते कि भारत-चीन का झगड़ा क्या है, क्योंकि प्रधान मंत्री ने स्वयं ऐसी-ऐसी बातें कही हैं कि जो चीन के पक्ष में जाती हैं। ६–७ बरस पहले जब लद्दाख के ऊपर चीन ने अधिकार जमाया, तब प्रधान मंत्री बोले कि थोड़ी ज़मीन चली गयी है, उसमें कुछ ज़मीन तो ऐसी है, पत्थर है, जो निरर्थक है, वहाँ तो घास तक नहीं उगती। ऐसी ज़मीन चीन ने ले ली है। इसी पर बहुत से विदेशी लोग कहते हैं कि ऐसी निरर्थक ज़मीन के लिए क्यों लड़ता है यह प्रधान मंत्री? फिर, प्रश्न उठा, कई बार लोकसभा में भी। आसाम के उत्तर-पूर्व में लोंगजू एक इलाक़ा

है, और दूसरा इलाक़ा है बद्रीनाथ के पास बाराहोती और तीसरा अक्साई चिन है। जब कभी प्रश्न उठा तो प्रधान मंत्री झट से जवाब दे देते थे कि उसका सवाल मत उठाओ क्योंकि उसके बारे में विवाद है। विवाद तो सभी बातों के बारे में है। चीन ने पूरे आसाम को विवाद बना लिया, पूरे उर्वसीअम् को विवाद बना लिया, पूरे हिमालय को विवाद बना लिया। चीन तो जब चाहेगा विवाद बना लेगा और प्रधान मंत्री साहब कहेंगे, यह तो विवादास्पद ज़मीन है।

वास्तव में, १०–१२ बरस मे प्रधान मंत्री के सामने एक कठोर समस्या है। एक तरफ़ तो हिन्दुस्तान की जनता को उन्हें समझाना है कि देखो, क्रोधित मत होओ, चीन के साथ जो काम हम कर रहे हैं वह ठीक कर रहे हैं, चीन भी थोड़ा-बहुत उचित ढंग से काम कर रहा है इसलिए हिन्दुस्तान की जनता ज़रा शान्त रहो, और दूसरी तरफ़, उन्होंने हिन्दुस्तान के हित को बचाने का भी प्रयत्न किया है। इन दो परस्पर विरोधी विचारों के कारण सारा मामला बिगड़ गया। अब हिन्द सरकार को केवल एक विचार अपनाना चाहिए। चीन की वकालत छोड़ देनी चाहिए लेकिन साफ़ करना चाहिए कि हम १० बरस से चीन से मैत्री का अर्जन करने के लिए बहुत झूठ बात बोले, अब हम सब झूठ को छोड़ देते हैं और अब हम सच्चे आधार पर भारत और चीन की समस्या को हल करने की कोशिश करेंगे।

आजकल तारीख़ की लड़ाई चल गयी है। चीन की तरफ़ से ७ नवम्बर, १९५९ और भारत सरकार की तरफ़ से ८ सितम्बर १९६२। गोलीबारी तो बन्द है और शायद २–४ बरस तक अभी बन्द रहेगी। हम किस तारीख़ को अपने राष्ट्र की रक्षा और राष्ट्र-सम्मान की तारीख़ मानते हैं? जिस दिन हम स्वतन्त्र हुए, १५ अगस्त १९४७ को जो कुछ भूमि हिन्दुस्तान के राज्य को मिली वह सब भूमि हिन्दुस्तान की रहनी चाहिए। हम चीन की कोई ज़मीन नहीं चाहते, लेकिन हम अपनी ज़मीन भी नहीं देना चाहते। यह सही है कि ज़मीन को वापस लेने के लिए बहुत-कुछ करना पड़ेगा। या तो इस नपुंसक सरकार को हटा कर एक शक्तिशाली सरकार लाना होगा और नहीं तो इस सरकार की भावनाओ और विचारों को, नीतियों को बदल कर इस सरकार को ही शक्तिशाली बनाना पड़ेगा।

सर्वप्रथम हमें अपनी आर्थिक योजना, खेती कारखाने की बात सोचनी चाहिए। सरकार बोलती है कि हमारी सेना कमज़ोर रही क्योंकि हम खेती, कल, कारखाने सुधार रहे थे। क्या चीन खेती कारखाने नहीं सुधार रहा था? वह घास छील रहा था? आर्थिक-शक्ति है भुजा और सेना की शक्ति है मुट्ठी। बाँह अगर मज़बूत हैं तो मुट्ठी मज़बूत होने में २-४ महीने से ज़्यादा देर नहीं लगती है। सरकारी सेठ और व्यापारी सेठ मिल कर हिन्दुस्तान की वार्षिक पैदा होने वाली १५ हज़ार करोड़ रुपये की दौलत में से

५ हज़ार करोड़ रुपया ले लेते हैं। इसमें से दो-ढ़ाई हज़ार उनके पास रहने दो। मेरी जीभ में इतनी ताक़त नहीं है कि मैं कहूंगा कि उनका आराम, ऐश्वर्य, वैभव सब छीन लो। केवल दो-ढ़ाई हज़ार करोड़ बचा कर खेती कारखाने के सुधार में पूंजी लगानी चाहिए। बात तो सही है पर यह काम कैसे हो ? लोकसभा में तो कांग्रेस वाले बहुत हैं और जो विरोधी हैं वे भी एक तरह से आधे कांग्रेसी ही हैं। इसी से आप समझना कि जब हिन्दुस्तान, चीन और कोलम्बो प्रस्ताव का इतना बड़ा प्रसंग लोकसभा में आया तब क्या हुआ। हमारा दल तो बहुत छोटा है, हमारे ५-६ आदमी हैं। और दूसरी पार्टियाँ हैं जिनके किसी के १५, किसी के २० किसी के १० हैं। बम्बई में एक चूहा होता है जो रात में सोते हुए आदमी को थोड़ा काटता है, थोड़ा फूंक मारता है; दोनों काम साथ करता है। उसी तरह से हिन्दुस्तान का जो विरोधी दल है, वह कांग्रेस सरकार को थोड़ा फूंक भी मारता है, थोड़ा काटता भी है। और ज़रा-सा उसको खाने-पीने को दे दो तो वह काटना बन्द भी कर देता है। क्या बात है कि समाजवादी दल, ५-६ आदमियों वाला, लोकसभा में संशोधन रखता है, प्रस्ताव रखता है और दूसरे नहीं रखते। दूसरे विरोधी दलों को तो प्रधान मंत्री साहब का थोड़ा-सा सोच-समझ करके काम करना है। वे हमारे प्रस्ताव पर हाथ नहीं उठाते। हाथ उठाने में भी डर जाते हैं। कई बार समाजवादी दल ने पहले भी अविश्वास प्रस्ताव रखा कांग्रेस सरकार पर, तो दूसरे विरोधी दलों ने हाथ भी नहीं उठाया। अब की बार कम से कम हाथ उठाया। उसका कारण था कि प्रधान मंत्री नेहरू ने वाद-विवाद के दूसरे दिन कह दिया कि वह कोलम्बो प्रस्ताव को सिद्धान्ततः मानते हैं। इसके पहले नहीं कहा था। यही करते थे कि मानते हैं, नहीं मानते हैं, और सोचा इसी तरह से बात हो जाएगी खतम। जब उन्होंने कह दिया कि सिद्धान्ततः मानते हैं तब विरोधी दलों ने फ़ैसला किया कि समाजवादी दल के साथ वोट दो।

मुझे इस लोकसभा में विशेष विश्वास नहीं है। एक कारण तो यह है कि कांग्रेस दल को जनता का वोट तो कोई ४५ प्रतिशत है लेकिन लोकसभा में सदस्य कोई ७५ प्रतिशत हैं। वोट पद्धति बदलनी चाहिए। बहुत से वोट बिलकुल ख़राब चले जाते हैं क्योंकि १०-१५-२०-५० का भी फ़र्क़ होता हैं तो कांग्रेसी जीत जाता है और बाक़ी लोग हार जाते हैं। एक और कारण है कि हिन्दुस्तान के विधायक; लोकसभा और विधानसभा के सदस्य तनख्वाह और सुविधा अच्छी पाते हैं। इंगलिस्तान की लोकसभा के सदस्य को क़रीब १५००) महीने की तनख्वाह और सुविधा मिलती है और इंगलिस्तान की साधारण जनता की आमदनी कोई ५०० रुपया महीना है। हिन्दुस्तान की लोकसभा के सदस्य को नौकरी मिलती है ४००), लेकिन फिर भत्ता मिलता है, कम किराये का मकान मिलता है, मुफ़्त में इलाज व दवा मिलती है, मुफ़्त में रेलवई का टिकट मिलता है ये सब मिला कर इनको कोई १४००-१५०० रुपया महीना हो जाता है। लेकिन भारत की साधारण जनता की औसत आमदनी ३०) महीना है। दोनों की आमदनी में ५० गुने का फ़र्क़ है। अंग्रेज़ देश

३ गुने का फ़र्क़ है। और, जिस तरह से सेना को बारक में रखते हैं, जनता से अलग; उसी तरह हिन्दुस्तान में लोकसभा और विधानसभा सदस्यों को जनता से अलग बारक में रखे हुए हैं। बहुत-से ग़रीब कार्यकर्त्ता जो समझो ४०-५० या १०० रुपया महीना के ऊपर जीवन नि हि करते हैं, चाहे कांग्रेस के क्यों न हों, जब एकदम से १५००) महीना दिल्ली में पा जाते हैं तो उनके दिमाग़ का स्वरूप और गठन बदलने लगता है।

इस पर भी लोक सभा को रखना होगा, इसके अलावा कोई दूसरा उपाय नहीं। लेकिन इसके साथ-साथ जनता की क्रान्तिकारी शक्ति का भी कभी न कभी, कहीं न कहीं प्रयोग करना चाहिए। मेरा मतलब गोली. तलवार और पिस्तोल से नहीं; अहिंसक क्रांतिकारी शक्ति से है। आपने सुना होगा, जापान सरकार ने एक बार अमरीका के राष्ट्रपति आईज़नहावर को निमंत्रण दिया था। जापान की. जनता के एक अंश को यह बात पसंद नहीं आयी। उसने प्रदर्शन किया। ४-५ दिन तक लगातार प्रदर्शन किया, ४० हज़ार, ५० हज़ार आदमी टोकियो की सड़क पर दिन और रात जमे रहे, प्रदर्शन करते रहे कि आईज़नहावर नहीं चाहिए, आईज़नहावर नहीं चाहिए। हिन्दुस्तान-चीन का युद्ध चल रहा था—अब तो २-४ बरस तक मामला खतम है, उसको छोड़ो पर शायद चीन के दिमाग़ में फिर से हमला करने की बात आयी तो और बात है—तो हिन्दुस्तान की जनता ने भी अपनी क्रांतिकारिता और क्रियाशीलता का प्रदर्शन किया होता दिल्ली की सड़कों पर, ४-५ दिन लगातार, तो लोकसभा जैसी भी निकृष्ट है, जनता की शक्ति का कुछ परिणाम निकला होता।

अब मैं केवल हिमालय की आपसे कुछ बात करूँगा जिसको ले कर झगड़ा है। वास्तव मे तो दिल्ली को भी ले कर थोड़ा झगड़ा है। मुख्य कौन-सा है यह मालूम नहीं। चीन ने क्यों आक्रमण किया, चीन क्यों वापस चला गया, इसके बारे में बहुत से लोग लेख लिखते हैं। लेख लिखने मे तो हम लोग बहुत ही कुशल हैं। आशा लगाते हैं कभी रूस से, कभी अमरीका से आशा, कभी स्वयं चीन से आशा। जैसे गज और ग्राह का युद्ध हुआ, तो गज ने आशा लगायी कि विष्णु आ कर हम को बचाएगा। ऐसे ही मुग़ल राजा जहाँगीर ने अपने महल, क़िले के सामने एक घंटा लगा रखा था कि किसी को कोई तक़लीफ़ हो, अन्याय हो तो घंटा बजा दो तो जहाँगीर महाराज सुन लेंगे और फिर आ करके न्याय करेंगे, फ़ैसला करेंगे। हम भारतीय जनता हमेशा आश्रित रहे हैं। डेढ़-दो हज़ार बरस पहले स्वावलम्बी थे, लेकिन इधर हज़ार बरस से बहुत आश्रित हैं; कभी जहाँगीर के आश्रित, कभी विष्णु के आश्रित। अपने ऊपर विश्वास नहीं रहता चीन रूस के, अमरीका के कारण वापस चला गया या जो भी हो, लेकिन एक कारण और है। जब चीन धीरे-धीरे आगे बढ़ रहा था, तो भारत की जनता का मन भी धीरे-धीरे बिगड़ रहा था। एकदम उत्तर में जब तवांग गिरा, तब मेनन महाराज भी गिर गये। फिर जब बमडिला और वलांग गिरे और चीनी लोग फुटहिल तक पहुँचने लगे तब नेहरू महाराज

के ऊपर भी जनता की आँखें लगने लग गयीं। और चीनी राजदूत नहीं तो जो भी कोई उसका अफ़सर है, वह दिल्ली में है। यह तो बड़ा विचित्र युद्ध है—सब समय चीन का राजदूत या उसका कोई अफ़सर दिल्ली में रहा है। उनके पास दूर-भाषक यंत्र भी है। वे अपनी गुप्त डाक चीन भेज सकते हैं। दिल्ली में बैठे-बैठे चीनी ने देखा होगा कि अरे भई, जब तवांग, वलांग और बमडिला गया तो अगर नेहरू महाराज भी चले गये, तब तो बड़ी झंझट होगी। चीन तभी युद्ध जीत सकता है जब कि दिल्ली की गद्दी पर एक दुविधा वाली सरकार रहे। दिल्ली की गद्दी पर जब निर्णय और निश्चय वाली सरकार आ जाएगी, तब चीन युद्ध नहीं जीत सकता। इसीलिए चीन वाला हटा। उसका एक कारण शायद यह भी है कि उनको मालूम था कि अगर तेजपुर और गोहाटी गया तो उनका यह दुविधा वाला मित्र भी चला जाएगा। मुझे बडा खेद है कि भारत की जनता को बहुत धीरे-धीरे गरमी आती है और उसमें बहुत कुछ अपनी जमीन और सम्मान और लोक लज्जा चली जाती है।

हिमालय में प्रायः ३ करोड़ आदमी रहते हैं। इनमें से १ करोड़ तो भारतीय हिमालय में रहते हैं। भारतीय हिमालय मतलब, दार्जिलिंग, बद्रीनाथ उर्वसीअम, लद्दाख इत्यादि। भारतीय। बाक़ी २ करोड़ नेपाल, तिब्बत जैसे क्षेत्र में रहते हैं, जिसे मैं भाई हिमालय कहता हूँ। भाई हिमालय मैंने नाम इसलिए दिया कि कुछ समय को छोड़ करके, इतिहास में कोई १००-१५० बरस की गड़बड़ रही, यह सदा स'दा स्वतंत्र रहा है। और भारत का भाई रहा है। अधिकतर लोग समझते हैं कि तिब्बत के ऊपर चीन की सार्वभौम सत्ता रही है। अंग्रेज़ो राज्य ने भी चीन की सत्ता को स्वीकार किया था। कब स्वीकार किया था, जब भारत स्वयं परतंत्र था। और, अंग्रेज की एक चाल रही है कि जब वह किसी देश के ऊपर राज्य चलाता है तो आरम्भ में अपने नाम से नहीं, किसी किसी दूसरे के नाम से। १९वी सदी मे चीन का राजा कमजोर था। अंग्रेज ने उसके नाम पर तिब्बत में अपनी सार्वभौम सत्ता चलायी, अपना राज्य चलाया। इसलिए मैं स्पष्ट कहना चाहता हूँ कि इधर पाँच सौ, हज़ार बरस मे जब हिन्दुस्तान निर्बल रहा है, हिमालय के बारे में किसी भी बात को मैं स्थायी और स्थिर बात नहीं मानता।

एक और भूल को अपने दिमाग़ से दूर करना चाहिए। कवि लोग हिमालय को भारत का रक्षक कहते हैं। हिमालय ने भारत की कभी भी रक्षा नहीं की। जब कभी भारत सबल रहा है, तो उसने हिमालय की रक्षा की है। जब भारत दुर्बल रहा है तो हिमालय के उस पार से लोग हमेशा आये हैं, आक्रमण किये हैं। कभी खैबर से, कभी बोलन से, कभी नाथूला से और अबकी दफ़े सेला से। हिमालय और भारत के बीच में सैकड़ों द्वार हैं। जब भारत सबल रहा है। सशक्त रहा है, तो उसने तिब्बत, नेपाल, सभी भाई हिमालय के इलाक़ों की स्वतंत्रता की रक्षा की है। तिब्बत का चीन से संबंध बहुत कम है। तिब्बत का संबंध भारत से अधिक है। मैं केवल गिना देता हूँ। एक, भाषा; दूसरे, लिपि;

तीसरे धर्म; चौथे, पानी का बहाव, जमीन का ढलाव, पाँचवें, रहन-सहन, छठे, संधि और करार, और सातवें, लोक-इच्छा। इन सब के आधार पर तिब्बत का संबंध जितना हिन्दुस्तान से है, उतना चीन से नहीं। आज संसार इस बात को नहीं मानता। किससे लड़ाई करें ? भारत सरकार से लड़ाई करें या चीन से लड़ाई करें। भारत सरकार तो हिन्दुस्तान का जो कुछ भी अधिकार है, हित है, जो उसकी भूमि का हित है, उसे चीन को समर्पण कर चुकी है। मैं मानता हूँ कि आज भारत में न तो इतनी सेना शक्ति है और न इतनी कूटनीति की शक्ति है कि वह तिब्बत को स्वतंत्र करा दे। लेकिन हमें अपने दिमाग़ में तो तिब्बत की स्वतंत्रता की बात रखनी चाहिए और उसे अपने मुँह पर लानी चाहिए। कभी न कभी भाई हिमालय स्वतंत्र होगा, तभी भारत की सुरक्षा होगी, उसके पहले नहीं होगी।

अब मैं कवि कालिदास के हिमालय संबंधी दो श्लोक आपको सुनाऊँगा। ये कुमार-सम्भव से हैं। संस्कृत साहित्य में कुमारसम्भव सबसे अधिक ललित ग्रंथ है। मैं तो कई दफ़े कहता हूँ कि हिमालय का यदि चीन से इतना निकट संबंध है तो उसको कविता में भी उस ढंग की कुछ चीज़ होनी चाहिए। हमारा कितना निकट संबध है कि हमारे दो महान् देवता—छोटे-मोटे देवता नहीं, बड़े देवता—शिव और पार्वती का घर मध्य हिमालय में हैं, कैलाश मानसरोवर में। मैं मानता हूँ कि शिव ने हिन्दुस्तानी को नहीं बनाया, हिन्दुस्तानी ने शिव को अपनी कल्पना से बनाया। कभी भी बनाया, २ हज़ार बरस, ४ हज़ार बरस पहले बनाया, और जब बनाया तो शिव का घर कहाँ बनाया ? कोई भी जाति और राष्ट्र अपने देवता को परदेश में निवास देगा ? यह बात नेहरू महाराज नहीं समझ सकते। उनको किंवदन्ती का ज्ञान नहीं। और आज जो हमारे देश में पढ़े-लिखे लोग हैं, उनको भारतीय संस्कृति का भी पता नहीं। भारतीस संस्कृति का कहीं ग़लत मतलब नहीं समझ लेना। यह सब चोटी जनेऊ वाली संस्कृति को मैं भारतीय संस्कृति नहीं मानता।

एक बात और। जब संस्कृति की बात चल रही है तो बता दूँ कि मुझे पद्मिनी आज के ज़माने में पसंद नहीं, कभी नहीं पसंद, और ये लोग बड़ा गर्व करते हैं, देखो हमारी पद्मिनी। जवान लोग सब लड़ाई हार गये तो पद्मिनी तो अग्नि में जल करके मर गयी। रूस की एक औरत का मैं आपको एक क़िस्सा सुनाऊँ। जब जर्मनी और रूस की लड़ाई हो रही थी तो यह औरत, नटाली इसका नाम था, एक परिचारिका, दासी बन करके एक जर्मन अफ़सर के ग़ुसलखाने में काम करने गयी। वह कई भाषाएँ जानती थी और जब झाड़ू देती थी, तब सुन लेती थी कि कौन पलटन कहाँ से कब जाएगी। ग़ुसलखाने की लकड़ी के फ़र्श के नीचे दूर संदेश भेजने के लिए उसने एक मशीन लगा रखी थी। कोई सा– भर तक उसने संदेश भेजे। जर्मन सेना के घर में, केन्द्रीय दफ़्तर में बैठ कर उसने जासूसी की। उस अकेली औरत ने कोई ६० हज़ार जर्मन सैनिकों को मरवाया। हमें तो नटाली चाहिए, पद्मिनी नहीं चाहिए। लेकिन नटाली ऐसे तो हो नहीं

जाएगी। अपने दिमाग़ में स्त्री के सम्बन्ध में सब झूठी पवित्रता का कूड़ा भरा है, तो नटाली बनने वाली है नहीं। नटाली तो तभी बनती है जब स्त्री स्वतंत्र बनायी जाती है। परतंत्र स्त्री नटाली नहीं बन सकती। परतंत्र स्त्री तो केवल पद्मिनी बन सकती है। मैं शिव-पार्वती की बात कह रहा था। पार्वती भी स्वतंत्र स्त्री थी। हमारे राष्ट्र ने शिव-पार्वती का घर कैलाश में बनाया था। जब बनाया था तो कैलाश जरूर भारत का हिस्सा रहा होगा। और, आज से कोई १,२०० बरस पहले राजशेखर नाम का एक कवि कन्नौज में हुआ है। उसने चक्रवर्ती राजा की परिभाषा लिखी है कि जो बिन्दसार से ले कर कन्या कुमारी तक राज करे, वह चक्रवर्ती और बिन्दसार का मतलब मानसरोवर।

अब मैं कालिदास के वे दो श्लोक आपको सुना देता हूँ। पहले अर्थ बता दूं। उत्तर दिशा में एक पर्वतराज है, जिसका नाम हिमालय है। वह पूर्व और पश्चिम के समुद्र में गोता लगाये ऐसा बैठा है, जैसे पृथ्वी को नाप रहा हो।

> अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवात्मा हिमालयो नाम नगाधिराजः।
> पूर्वापरौ तोयनिधि वगाह्य स्थितः पृथिव्या इव मानदण्डः॥
> अनन्तरत्नप्रभवस्य यस्य हिमं न सौभाग्यविलोपि जातम्।
> एको हि दोषो गुणसंनिपाते निमज्जतीन्दोःकिरणेष्विवांकः॥

यह है हिमालय। इसकी रक्षा करना है। हिमालय आपकी रक्षा नहीं करेगा। वे मूर्ख लोग हैं, जिन्होंने कहा कि हिमालय रक्षा करेगा। १५ बरस तक हिन्दुस्तान को बरबाद किया। हमारे खेती कारखाने खराब किये हमारी विदेश नीति को बरबाद किया, हमें झूठ और धोखे में रखा कि हिमालय हमारी रक्षा करेगा। मेरे जैसा एक मामूली आदमी ८-१० बरस पहले बोला था कि हिमालय को ठंडा मत समझना, हिमालय में बरफ़ नहीं है, हिमालय गरम हो रहा है। इससे सावधान हो जाओ, और आज मैं फिर कह रहा हूँ कि आप लोग सावधान हो जाओ और सशक्त बन कर इस हियालय की रक्षा करो, नहीं तो भारत की फिर कोई रक्षा है नहीं।

—१९६३, फ़रवरी ११; मैसूर; भाषण।

सैनिक सहायता

मदद देने के लिए श्री मैकमिलन ने जिस तत्परता से और सीधा प्रस्ताव रखा उसके लिए मैं उनको निःसन्देह चूम लेना चाहता था, लेकिन समाचारपत्रों ने मेरी रपट नहीं छापी, क्योंकि मैंने कैनेडी साहब का भी नाम लिया था, और दरअसल कुछ अधिक अनुराग से। ग़ैरवैयक्तिक कारणों की वजह से वह अनुराग कम मात्रा में नहीं था। जबकि हर एक देश में एक चीन पार्टी है, अमरीका नहीं है या वास्तविकता में नहीं है। हिन्दुस्तान की तरह अमरीका भी चीन को पूरी तौर पर नापसन्द करता है, और कम से कम चीन के सम्बन्ध में, यही हिन्द-अमरीकी सहयोग के लिए एक बड़ा तर्क होना चाहिए।

जब एक बार सेना रखने और उसको इस्तेमाल करने का फ़ैसला हो गया है, तो हथियारों को मँगाने के बारे में सरकार की लज्जा समझ सकना कठिन हो जाता है। आंग्ल-अमरीकी हथियारों के बारे में पूरी तरह इनकार करने से ले कर ख़रीदने तक, उधार लेने तक तकनीकी और सिखाने वालों को बुलाने तक, जहाँ फ़िलवक़्त मामला रुक गया है, हिन्दुस्तान का रुख़ प्रत्यक्ष हुआ है। पैदल फ़ौज की ज़रूरत न थी और न ही उसे बुलाने का इरादा था—ऐसी जानकारी देने वाली एक और सूची निकली। अगर चीनी और आगे बढ़ आते, तो उस रुकावट को भी लाँघ जाते। ऐसा लगता है वह नाज़नीन इंच-इंच सरकती जा रही है और दिमाग़ में ज़बरदस्त ऊहापोह है। इस तरह भावुकता में काम करने के बजाय, सरकारों को ज़्यादा जानना चाहिए। उनकी नीति होनी चाहिए।

फ़ौजी तैयारी के इन्डोनेशिया, संयुक्त अरब गणतंत्र और क्यूबा, ये तीन बड़े केन्द्र हैं। ख़ुद की शक्ति से कहीं ज़्यादा उधार शक्ति उनके पास है। सोवियत रूस ने उन्हें तैयार किया। अनाप-शनाप हवाई बेड़े की बात तो अलग, क्यूबा के पास निःसन्देह मिसाइल हैं और कई हज़ार रूसी सैनिक। बिनलगाव के मौजूदा दो बड़े मसीहा, इन्डोनेशिया और संयुक्त अरब गणतंत्र के पास सम्भवतः रूसी मिसाइल न हों पर उनके

पास बाक़ी सब चीज़ें जो हैं। कहा जाता है कि इन्डोनेशिया और मिस्र के हवाई बेड़े में कई हज़ार हवाई जहाज़ हैं। यह याद कर लेना अच्छा होगा कि कल तक इन्डोनेशिया के हवाबाज़ हिन्दुस्तानी अड्डों पर प्रशिक्षण ले रहे थे। लेकिन हिन्दुस्तान बहुत शेखी बघारता है जबकि दूसरे काम करते हैं।

इन्डोनेशिया या मिस्र ने बदले में रूस को क्या दिया? वे सब ढके हुए समाज हैं और, अगर गुप्त समझौते हुए हैं तो, उनकी शर्तों को जान लेना कठिन होगा। परन्तु, बिन-लगाव की उनकी चीख़-चिल्लाहट को दृष्टिगत रखते हुए यह मान लेना चाहिए कि वे रूस से बँधे हुए नहीं हैं।

उसी तरह हिन्दुस्तान भी अमरीकी सहायता क्यों नहीं ले सकता, और शायद ज़्यादा बड़े पैमाने पर, क्योंकि सामना ज़्यादा बड़े दुश्मन से है, और फिर भी तटस्थ रह सकता है। मैं बेशक यह मान कर चलता हूँ कि अमरीका भी सहायता करना चाहेगा। अगर साम्यवाद के विरुद्ध उसकी जद्दोजहद में कुछ मानी हैं, तो वह इस आधार पर कि लड़ाई को बढ़ाना नहीं चाहता, ऐसे देश की मदद करने से इनकार नहीं करेगा जो कि चीनी साम्यवाद से अपने को बचाना चाहता है। इसलिए, लेन-देन वाली कोई भी सनिक संधि करना आवश्यक नहीं है।

एक बडी दिक़्क़त इसमें हो जाती है कि हिन्दुस्तान और अमरीका दोनों जनतांत्रिक हैं और इसीलिए वे काम करने के बजाय बात ज़्यादा करते हैं। फिर, हिन्दुस्तान छिन्न-भिन्न अवस्था में है, उसकी सरकार भी उतनी ही जितनी कि उसकी जनता। उसकी तटस्थता में सोवियतवाद और अतलान्तिकवाद की दोनों दिशाओं में ज़्यादा लगाव है। हिन्दुस्तान की बात पर निर्भर करना मुशकिल हो जाता है, सिर्फ़ इसलिए नहीं कि बात देने वाला बदल जाएगा बल्कि बात भी बदल जाएगी। इसलिए पूरा मामला एक सीधी-सादी चीज़ पर आ कर टिक जाता है; क्या हम, हिन्दुस्तान की जनता, कुछ करना चाहते हैं और सचमुच तटस्थ हैं और क्या हमने चीनी राक्षस के चरित्र को समझ लिया है? कम्युनिस्ट चीन की सदस्यता के बारे में संयुक्त राष्ट्र संघ में हमारा जो रवैया रहा है, उस कसौटी पर कसा जाए तो सिद्धान्तहीन झूठों के गिरोह के बन्दी बन जाने के अलावा हमने सारी शर्म को घोल कर पी लिया है। कोई भी गम्भीर देश अपने आक्रमणकारी की अन्तर्राष्ट्रीय मान्यता के लिए चेष्टा नहीं करता, जब कि वह स्पेन अथवा च्यांग चीन जैसे उसके दुश्मनों के बारे में तटस्थ रहता है या उनका विरोध करता है।

मुझे अब भी शक है, हालाँकि वे व्यक्तिगत हैं और, जब वे तेज़ी से उठते हैं, तो उनमें भटकने की शक्ति नहीं होती। क्या हम अपने संकल्प से ऐसी सैनिक तैयारी की सूई लगाने में न्यायसंगत हैं? हम इन्डोनेशिया नहीं हैं और न ही मिस्र हैं, क्योंकि हमारा अतीत अहिंसा का रहा है। लेकिन जब तक अहिंसा हमें हमारी सीमाओं और मातृभूमि

का अतिक्रमण करने वालों का प्रतिरोध करने का रास्ता नहीं बतलाती, तब तक वह अहिंसा किस काम की। अब तक, और किसी समूह की बनिस्बत उसके उपासकों ने ज्यादा गरम बातें बनायी हैं। आज, हमारे पास और कोई चारा नहीं है। कल हो सकता है। एक देश अगर सशस्त्र सेना रखता है और उसका इस्तेमाल करता है और जब उसकी मातृभूमि पर खतरा आ खड़ा होता है, तो उसे जहाँ कहीं से मिल सके हर तरह की सैनिक सहायता लेनी ही चाहिए।

—१९६३, फ़रवरी १६; बेंगलूर; भाषण से।

संकटकालीन स्थिति

"समाजवादी दल की राष्ट्रीय समिति की राय है कि चीनी हमले का सामना करने के लिए सुरक्षा क़ानून का लागू करना और अब जब कि युद्ध बन्द है, उसको जारी रखना जनतांत्रिक प्रणाली के विरुद्ध है। समाजवादी दल मानता है कि संकटकालीन परिस्थिति में यदि नागरिक अधिकारों को सीमित किया जाए, तो त्याग की भी समानता होनी चाहिए। इसके विपरीत देश में शासक वर्ग की फ़िज़ूलखर्ची एवं ऐयाशी बढ़ती ही जा रही है। सरकार ने संकटकालीन स्थिति का बहाना बना कर उपचुनाव तक स्थगित कर दिये थे। अब उपचुनाव भी हो रहे हैं और सभी दृष्टियों से सरकार स्थिति को साधारण समझ कर शासन चला रही है, तो उसे सुरक्षा क़ानून भी खतम कर देना चाहिए।

जिस क़ानून के अन्तर्गत जार्ज फर्नांडिस, किशन पटनायक, संसद सदस्य, गणनाथ प्रधान, सदस्य, उड़ीसा विधानसभा, एवं कफ़ील अहमद तथा अन्य साथी, जिन्होंने देश की स्वाधीनता के संग्राम में अपना योग दिया और जो राष्ट्र की सीमाओं को १५ अगस्त १९४७ जैसी रखना चाहते हैं, उनकी गिरफ़तारियाँ इस बात की सबूत हैं कि कांग्रेस पार्टी इस क़ानून के ज़रिये अपने विरोधी तत्वों को दबाने की नाकाम कोशिश कर रही है। इन गिरफ़तारियों के बारे में सरकार ने जो दलीलें दी हैं, वे निहायत लचर हैं। मिसाल के लिए, बम्बई टैक्सी यूनियन की जो माँगें पेश की गयी थीं, उनका बहाना ले कर जार्ज फर्नांडिस को गिरफ़तार किया था और अब, जब कि उनकी माँगें क़बूल कर ली हैं, जार्ज फर्नांडिस को जेल में रखना सरकार के कुटिल इरादों को प्रमाणित करता है।

अतएव यह समिति सरकार से माँग करती है कि वह इस क़ानून को तत्काल खतम करे और उन सबको फ़ौरन रिहा करे जो इस क़ानून के अन्तर्गत जेलों में बन्द हैं।"

—१९६३, जून १४-१६; बम्बई; समाजवादी दल की राष्ट्रीय समिति का प्रस्ताव।

कांग्रेस सरकार हटाओ

"कांग्रेस सरकार अयोग्य है इस बात को समाजवादी दल बराबर मानता रहा है' मगर अब यह भावना जनता में व्यापक रूप ग्रहण कर रही है।

चीन ने युद्ध में हमें इतना पीटा है कि सरकार का निकम्मापन, उसकी कृषि नीति, उद्योग नीति, विदेश नीति और रणनीति में, जितना सोचा गया था, उससे अधिक प्रकट हुआ है।

आठ-दस महीने व्यतीत होने के बाद भी क़ौम को लज्जित करने वाली सरकार ने तनिक भी पश्चात्ताप नहीं किया।

ऐसी स्थिति में, राष्ट्रीय समिति कांग्रेस को हटाना अपना कर्तव्य समझती है, इसलिए, समिति की राय में समाजवादी दल कांग्रेस के विरोध में अपनी इच्छा के उम्मीदवार का समर्थन कर सकता है।"

—१९६३, जून १४–१६; बम्बई; समाजवादी दल की राष्ट्रीय समिति का प्रस्ताव।

हिन्दुस्तान की चीन-नीति के कुछ पहलू

अगर कोई राष्ट्र बिना लीक में पड़े नये सिरे से शुरूआत करे निहित स्वार्थ न हों और ढर्रे में न पड़ जाए और नीति बनाने वाले ज़्यादा न हों तो उसकी नीति की अन्तरंगता को समझ लेना बहुत कठिन नहीं है। इस आधार पर चीन के प्रति हिन्दुस्तान की की अहमक़ाना नीति की अन्तरंगता को समझ लेना अपेक्षाकृत सरल है। नीति बनाने वालों की कुल संख्या थी एकआदमी। मोटी तौर पर उस एक व्यक्ति में क्रान्ति की खामियाँ और सैकड़ों बरसों से चली आयी जनता की बीमारियाँ झलकती हैं।

आज़ाद हिन्दुस्तान के सामने जल्दी ही दो चीन की संभावना उपस्थित हो गयी। एक था कोमितांग वाला चीन-भ्रष्ट, पूँजीवादी और सामन्तवादी। दूसरा था कम्युनिस्टों बाला चीन—क्रान्तिकारी, आततायी और जल्दी ही हस्तक्षेप करने वाला। बिना किसी हिचकिचाहट के हिन्दुस्तान ने एकदम और मुकम्मिल पसन्द कर ली। उसने कम्युनिस्टों के चीन को मान्यता दी। इस तरह की पूरी मान्यता इतिहास की शिक्षा, देश की आवश्यकता और मानव-कल्याण के विपरीत थी। वह कुछ-कुछ असभ्य भी थी।

अश्लीलता और अकृतज्ञता पर आधारित तर्क सबसे कम महत्त्वपूर्ण है, हालांकि नीति बनाने वाले के मन को खोल कर बतलाने के लिए वह अकेला महत्त्वपूर्ण है। हिन्दुस्तान जब कि अपनी आज़ादी के लिए लड़ रहा था, तो सारी दुनिया में श्री च्यांग-काई-शेक ही अकेले ऐसे राजनीतिज्ञ थे जिन्होंने खुलेआम उसका समर्थन किया। इस तथ्य को कभी नहीं भुलाना चाहिए था। इसका यह मतलब नहीं कि हिन्दुस्तान को उनका और उनकी सरकार का बराबर समर्थन करते रहना चाहिए था। कृतज्ञता अथवा कृपा के आधार पर राष्ट्र नही चलते। हिन्दुस्तान को, निःसन्देह, अपनी नीति बदलनी चाहिए थी। इस प्रश्न को छोड़ दें कि कैसा बदलाव होना चाहिए था, पर उस बदलाव का तरीक़ा अत्यन्त महत्त्वपूर्ण था। "फ़ारमोसा वाले महाशय" के बारे में कोई भी सभ्य सरकार ग़ुस्से और ओछे व्यंग्य को शब्दावली का प्रयोग नहीं करती, जैसा कि श्री नेहरू ने किया। एक बार जब मैत्री-सम्बन्ध टूट जाते हैं और जब तक कोई वास्तविक दुश्मनी

नहीं हो जाती, संयम रखना आवश्यक होता है। अगर दूसरे के प्रति कृतज्ञ होने का कारण हो, तो संयम रखना और भी आवश्यक हो जाता है। हिन्दुस्तान की नीति बनाने वाला आदमी केवल ऊपरी शिष्टाचार में परिष्कृत है, और वह भी बराबरी अथवा ऊँचे दर्जे वाले के साथ। आन्तरिक परिष्कृति के बिना किसी भी देश की नीति हमेशा अपूर्ण रहती है।

इतिहास का कोई भी सामान्य विद्यार्थी यह जानता है कि कमज़ोर हिन्दुस्तान हिमालय का कभी भी रक्षक नहीं रहा, बल्कि शक्तिशाली हिन्दुस्तान ने ही हमेशा हिमालय की रक्षा की है। परन्तु, हिन्दुस्तान की नीति इस ऐतिहासिक सत्य पर नहीं बनी, बल्कि कविता के आधार पर बनी कि हिमालय उसका रक्षक है। एक और भ्रान्ति फैलने दी गयी। कुछ सदियों से, चूँकि हिन्दुस्तान और चीन की किसी युद्ध क्षेत्र में सीधी टक्कर नहीं हुई इसलिए दोनों के बीच अनन्तकालीन शान्ति के ढकोसले को ऐतिहासिक सिद्धान्त के रूप में प्रचलित किया गया। यह आसानी से भुला दिया गया कि चीन और हिन्दुस्तान, पुराने ज़माने में भी जब वह स्वतन्त्र था, प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से लड़े थे, और बीच के इस बड़े इलाक़े में भी, जिसके कुछ हिस्सों को हिन्द-चीन तक कहा गया। स्वतंत्र और पुराना हिन्दुस्तान भौतिक और आध्यात्मिक तौर पर इस झगड़े में प्राय: नहीं जीता, क्योंकि उसके शस्त्र अधिक स्वच्छ थे और उसने, कम से कम भद्दे ढंग से, साम्राज्यशाही का खेल नहीं खेला। पिछले हज़ार बरस का हिन्दुस्तान एक के बाद दूसरी ग़ुलामी में बहुत ज़्यादा झोंका गया इसलिए वह इस इलाक़े के प्रति पैत्रिक अथवा पौत्रिक दायित्व से अनभिज्ञ है। ग़ुलामी में से जो पैदा हुआ उसका रिवाज़ आज़ादी में भी चल पड़ा।

परिणाम स्वरूप समूचे संसार में और ख़ास कर हिन्दुस्तान और चीन के बीच वाले इलाक़े में आज़ादी को नुक़सान पहुँचा। भारतीय राज्य की आवश्यकताओं को भी आघात लगा। हिन्दुस्तान के नज़दीकी इलाक़ों में आक्रमणकारी फ़ौजों को सुदृढ बनने दिया गया। इतिहास की ग़लत समझबूझ अथवा वर्तमान राजनीति की ग़ैरजानकारी के कारण ही ऐसा नहीं हुआ। ऐसा लगता है, कोई और गहरा अन्तरंग कारण भी रहा होगा।

प्रिंसटन या आक्सफ़ोर्ड के ग़ैर स्नातकों के बारे में सुनने को मिलता है कि वे गरमपंथी दिखना चाहते हैं। वास्तव में वे गरमपंथी हैं नहीं। अगर अपने निज के मामले में अथवा अपने देश में उन्हें गरमपंथ चलाने के लिए बाध्य होना पड़े तो उनमें से अधिकांश हैबत खा जाएँगे। वे सिर्फ़ आधुनिक और छबीले बनना चाहते हैं। बौद्धिक क्षेत्र में कभी-कभी साम्यवाद अत्यधिक छबीला रहा। इस सदी के तीसरे दशक से क्योंकि तभी यह फ़ैशन बना और चला इसलिए कभी कम कभी ज़्यादा संख्या में औरतों और मर्दों की एक जाति-सी बन गयी। ज़्यादा से ज़्यादा हम इन लोगों को नक़ली गरमपंथी या नक़ली वामपंथी कह सकते हैं। नक़ली वामपंथ का एक विशिष्ट गुण है अन्दरूनी नीति में हाथ-

पैर नहीं डुलाना और बाहर उछल-कूद करना। जिस काम को घर में करने से वह भीति खाता है, उसी को वह योग्य विदेशी तत्त्वों से मिल कर प्राप्त करने की कोशिश करता है। मिल कर, स्पर्श से वह कीर्ति प्राप्त करना चाहता है। कम्युनिस्ट रूस अथवा कम्युनिस्ट चीन से संबद्ध होने और उनके स्पर्श से बढ़ कर गरमपंथीपन या वामपंथीपन क्या हो सकता है।

हिन्दुस्तानी क्रान्ति आर्थिक और सामाजिक क्षेत्रों में प्रवेश कर ही रही थी कि उसका सिरजनहार मर गया, और कटी-फटी आज़ादी आयी। इसलिए क्रान्ति को जकड़ दिया गया। सतही तौर पर जो राजनीतिक आज़ादी आयी, उसके अलावा जो स्थायी लाभ हुआ, वह था एक ढंग का, एक तरीक़े का। क्रान्ति की विषय-वस्तु लगभग ढुल गयी, लेकिन क्रान्ति ने अहिंसक आन्दोलन का एक नया ढंग अपनाया। क्रांति को रोकने के पहले उसमें से जो ढंग, जो तरीक़ा निकला था, उसी को वह जकड़ी हुई क्रान्ति खतम करने का वस्तुतः प्रयत्न कर रही है।

देश के एतिहासिक आचार और विचार में क्रान्ति को जकड़ लेना बहुत फिट बठता है। हिन्दुस्तान की जनता १०० में ९० बार सुप्त १०० में १ बार क्रियाशील और १०० में ९ बार अर्ध-जीवित रहती है। इस स्थिति का कारण क्या है, यह एक भयानक क़िस्सा है किन्तु यहाँ उसे कहने का अवसर नहीं है। यहाँ तो यह कहने की आवश्यकता है कि कोई क्रांतिकारी उफान ही इस स्थिति को बदल सकता है। सामाजिक और आर्थिक स्थिति उफन जानी चाहिए, ताकि कमज़ोर और सड़ती हुई हड्डियों में गरमी का स्पन्दन हो। हिन्दुस्तान के ढाँचे में प्रायः हर एक चीज़ ऐसी क्रान्ति के विरुद्ध है। जिन्हें क्रान्ति करने की सबसे ज़्यादा ज़रूरत है, वे सबसे कम उसके योग्य हैं। जिनके क्रान्ति करने की सम्भावना थी, वे या तो हास्यास्पद संकुचित स्वार्थों में अन्धे बन गये हैं या फिर बहुत ही ज़्यादा कमज़ोर बनाने वाली विचार प्रणाली के शिकार बन गये हैं। यहाँ पर सगुण और निर्गुण का जैसा अलगाव हुआ है वैसा और कहीं नहीं हुआ, ऐसा कि खुद को भी क्रान्ति ने निर्गुण बना लिया।

हिन्दुस्तान की नीति बनाने वाला आदमी इस स्थिति का ठीक प्रतिनिधि रहा। घर में जकड़ी हुई क्रान्ति का प्रतिनिधि, इस आदमी को अपने साथ जनता को ले चलने में अब तक कोई खास मुशकिल नहीं आयी। विचार में आधुनिक और छबीला रहने की जिज्ञासा के कारण ही वह आदमी नक़ली वामपंथ और नक़ली गरमपंथ की गलियों में भटक गया। साथ रहने से, स्पर्श से क्रान्तिकारी कीर्ति मिल जाए, इसी से वह संतुष्ट रहा। इसमें चालाक चीनियों ने, और इस बार वहाँ के कम्युनिस्टों से साबक़ा पड़ा था, उसके घमंड को इस्तेमाल कर लिया। शुरूआत के दिनों में, अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों के मौक़ों पर, वे उसके साथ रहने से सन्तुष्ट रहे, जैसे छोटी बहन के साथ बड़ी आया-जाया करती

है। ऐसा लगा कि हिन्दुस्तान की नीति बनाने वाला यह आदमी कम्युनिस्ट चीन के साथ संघटन बनाने की हद तक गिर जाएगा। इससे उसे क्रान्तिकारी कीर्ति मिल गयी और लगा कि वह उसके पीछे नहीं दौड़ रहा है।

यह हिन्दुस्तान के लिए ही नहीं, बल्कि सारी दुनिया के लिए भारी दुर्घटना हुई। अन्दरूनी क्रान्ति के अभाव में हिन्दुस्तान कमज़ोर रहा, जबकि आर्थिक और सैनिक शक्ति में चीन बढ़ता गया। इस तेज़ी से बिगड़ते हुए शक्ति के संतुलन पर स्पर्श-क्रान्तिकारिता को धुंधला कर देने वाला परदा पड़ गया। दुनिया ने एक अवसर खो दिया, क्योंकि हिन्दुस्तान ही उस अवसर को पकड़ सकता था। जैसे कि लाज़मी तौर पर सभी साम्य-वादों को, साम्यवादी न रहने के पहले बनना पड़ता है, चीनी साम्यवाद भी शुरू से ही अन्दरूनी मामलों में आततायी रहा। वैयक्तिक अधिकार सामूहिक अधिकारों द्वारा हड़प लिये जाते हैं। वैयक्तिक आज़ादी लगभग खतम हो गयी। समूह के सामने वैयक्तिक अधिकार जैसी कोई चीज़ ही नहीं होती। ये सब बातें यूरोपी को तो मालूम थीं। उसके पास आधुनिक क़िस्म की निस्बतन गहरी सांस्कृतिक परम्परा थी। इसलिए, वैयक्तिकता के के लिए यूरोपी कामना के पूरे प्रकाश में रूस को अपनी क्रान्ति चलानी पड़ी। अफ्रीकी-एशियाई दिलों में वैयक्तिकता के लिए उस तरह की कामना सिर्फ़ हिन्दुस्तान ही जगा सकता था। कम्युनिस्ट चीन की निःसीम मान्यता करने से उसने अवसर खो दिया। भारत सरकार इससे भी कहीं अधिक बड़े जुर्म की अपराधिनी बनी।

रूसी साम्यवाद हस्तक्षेप करने वाला साम्यवाद नहीं था। ऐसा रूसियों के चरित्र अथवा उनकी स्थितियों के कारण हो सकता है, या न भी हुआ हो। पर ऐसा निःसन्देह उनके पड़ोसियों की स्थिति के कारण हुआ। पूँजीवादी यूरोप न तो भ्रष्ट था न ही सामन्ती, कम से कम इतना भ्रष्ट नहीं कि वह आर्थिक और सैन्यशक्ति में रूस से कमज़ोर पड़ जाता। इसलिए, सोवियत रूसी हस्तक्षेप की बहुत कम सम्भावना थी। दूसरी तरफ़, चीन बराबर घात में रहता है। वह कमज़ोर पड़ोसियों से घिरा हुआ है। इसीलिए, वह शुरू से ही हस्तक्षेपकारी रहा, और अब भी है। उसने तिब्बत में हस्तक्षेप किया और सफल हुआ, क्योंकि तिब्बत का मित्र अथवा रक्षक कोई नहीं था। फिर उसने कोरिया में हस्तक्षेप किया और पागलपन में आ कर फ़ारमोसा में भी, पर उसके दाँत खट्टे हो गये, क्योंकि उसके शिकारों की मज़बती से हिफ़ाज़त की गयी। फ़ारमोसा अथवा हांगकांग पर हमला करने की वह क्रान्तिकारी हिम्मत नहीं करता। जो मुमकिन है उसी के लिए वह कोशिश करता है। हिन्दुस्तान के नादान से नादान राजनीतिज्ञ को यह पहले से ही समझ लेना चाहिए था। वास्तव में, पहले से ही समझ लेने की बहुत आवश्यकता न थी, क्योंकि पीकिंग पर कम्युनिस्टों का क़ब्ज़ा होने के कुछ ही महीनों में यह साफ़ दिखाई पड़ रहा था। तिब्बत की शिशु-हत्या हुई। शुरूआत में ही चीन के हस्तक्षेपवादी वामपंथ की पोल खोली जा सकती थी। यह काम सिर्फ़ हिन्दुस्तान ही कर सकता था। उसने अवसर

खो दिया। अफ्रीकी-एशियाइयों के सामने चीन का अन्दरूनी मामलों में आततायीपन और बाहरी मामलों में हस्तक्षेप क्रान्तिकारी कीर्ति के बुर्के से ढँका रहा गया।

अगर हिन्दुस्तान दोनों चीन के बारे में कोई सिद्धान्तयुक्त और दूर दृष्टि का रुख अपनाता, तो अफ्रीकी-एशियाई भाईचारे का विचार, जो कि उतना ही अहमक़ाना है जितना कि खतरनाक, इस मात्रा में न बढ़ पाता। हिन्दुस्तान ने दो चीन में से सिर्फ़ एक को क्यों मान्यता दी और संयुक्त राष्ट्र संघ में उसकी सदस्यता के लिए क्यों इसरार किया, इसका कारण न तो विश्व-हित था न राष्ट्र-हित और न ही सिद्धान्त अथवा उपयोगिता। विश्व-हित में तो यह आवश्यक था कि कम्युनिस्ट चीन के अन्दरूनी ज़ुल्म और बाहरी हस्तक्षेप के बारे में हिन्दुस्तान कलंकित न हो। राष्ट्र-हित में यह आवश्यक था कि देश की सीमा से लगा हुआ एक पड़ोसी, जिसका चरित्र उस प्रकार का था, उसकी वकालत वस्तुपरक होनी चाहिए न कि भावुकतापूर्ण, क्योंकि वह आसानी से शत्रु बन सकता है। फिर, कम्युनिस्ट चीन ने भी तो दो हिन्दुस्तान को मान्यता दी थी, यानी हिन्दुस्तान और पाकिस्तान। और दूसरे अनेक राष्ट्रों ने भी ऐसा ही किया। यह कहा जा सकता है कि ये दोनों हिन्दुस्तान दोस्ती और आपसी रज़ामन्दी से पैदा हुए, हालाँकि वह क़िस्सा भी उतना ही जघन्य है जितना कि दुःखान्त। ये दोनों चीन दुश्मनी में पैदा हुए और उसी हालत में हैं। परन्तु, ये समस्याएँ प्रासंगिक हैं। मूल समस्या है सरकारों की वास्तविकता। क्या कोई सरकार साफ़ तौर पर एक ऐसे इलाक़े पर क़ाबिज़ है जिसे वास्तव में राष्ट्र कहा जा सकता है। ठीक इसी सिद्धान्त को प्रधानमंत्री ने एक दर्जन बार दुहराया है और उसी के अनुसार संयुक्त राष्ट्र संघ में सदस्यता और मान्यता के बारे में आचरण किया है। इसी सिद्धान्त के अनुसार चीन और तैवान के दोनों राष्ट्रों के बारे में हिन्दुस्तान को सोचना चाहिए था। ऐसी नीति से, ज़ाहिर है, दोनों राष्ट्र खुश न होते। हिन्दुस्तान दोनों के साथ राजनयिक सम्बन्धों से शायद वंचित हो जाता। हिन्दुस्तान के लिए वही एक बड़ा मौक़ा होता। चीन का आततायीपन और हस्तक्षेपवाद, जो कि तिब्बत को लेकर शुरू हुआ, दुनिया के सामने चौड़े आ जाता। ऐसा करके हिन्दुस्तान उसका मुख्य वाहन बनता। उस पर इतनी आसानी से या अनर्थकारी ढंग से हमला न हो पाता जैसा कि हुआ।

एक तरफ़ बर्मा और लाओस जैसे देश और दूसरी तरफ़ फ़िलिपीन जैसे देश शायद प्रगति का दूसरा रास्ता पकड़ते। श्रीलंका तो निश्चय ही, शायद इन्डोनेशिया भी। सारी दुनिया में मामला ही कुछ दूसरा होता तब हिन्दुस्तान ऐसे अधिकांश देशों की अन्दरूनी राजनीति में उत्प्रेरक का काम करता। चीन के अन्दरूनी आततायीपन और बाहरी हस्तक्षेपवाद से तब वे गहराई से और लगातार, चेतना के तल में और सतह पर भी, जागरूक रहते। लेकिन इसके लिए एक अलग क़िस्म के ही हिन्दुस्तान की ज़रूरत थी,

पचास और उसके बाद के नक़ली वामपंथी हिन्दुस्तान की नहीं, बल्कि एक सच्चे समाजवादी हिन्दुस्तान की, कम से कम ऐसा जो उस तरफ़ बढ़ रहा हो।

आज तो तीन अफ्रीकी-एशिया हैं : सामन्ती-पूंजीवादी अफ्रीकी-एशिया, साम्यवादी अफ्रीकी-एशिया, नक़ली गरमपंथी अफ्रीकी-एशिया। मैं स्वीकार करता हूं कि इसका विश्लेषण करने में पहले मैंने ग़लती की थी। मैं समझता था कि समाजवादी अफ्रीकी-एशिया भी मौजूद था, जब कि वास्तव में उसका सिर्फ़ सपना था और इरादा था, और वह भी कुछ-कुछ बच्चों जैसा इरादा। साथ ही, सरकार में नक़ली गरमपंथी अफ्रीकी-एशिया की मौजूदगी की, असल चीज़ सरकार में मौजूदगी ही होती है, मैं जान नहीं पाया। हिन्दुस्तान की सरकार मुझे सामन्ती-पूंजीवादी प्रतीत हुई न कि नक़ली वामपंथी। विश्लेषण की इस ग़लती से कुछ बुरी सम्भावनाएं छिप गयीं, जो बाद में प्रकट हुईं। नक़ली वामपंथी काफ़ी आबादी को काफ़ी अरसे तक बेवक़ूफ़ बनाये रख सकते हैं। किसी देश को वे अन्दर तक कमजोर बना देते हैं। लेकिन वे मजबूती और ख़ुशहाली का आभास दे सकते हैं।

नक़ली गरमपंथी का बारीकी से विश्लेषण करना जितना मजेदार है, उतना ही फ़ायदेमंद भी है। क्या वह दुहरी चाल समझ-बूझ कर चलता है। मैं समझता हूं, नहीं; हालांकि कभी-कभी लगता है कि एक सच्चे अभिनेता की तरह उसे अपने अभिनय के बारे में सचेत और अचेत दोनों होना चाहिए। नक़ली गरमपंथी शायद अपने-आप को समझा लेता है कि वह अंडा फोड़े बिना भी उससे खागीना बना सकता है। वह सोचता है कि उत्पादन के साधनों में मिलकियत को खतम किये बिना ही वह योजना बना सकता है। वह सोचता है कि आदमियों के साथ भी वह वैसा ही व्यवहार कर सकता है जैसे कि वे खेत के जानवर हों जिन्हें भाषा को और क्या करना है उसे समझने-बूझने की आवश्यकता नहीं है। वह सोचता है कि वह सब को ख़ुश कर सकता है। बस, उसको जरूरत है सिर्फ़ चालाक होने की। इसकी परवाह किये बिना कि वह जो ख़ुद हड़प लेता है उससे जनता को वंचित रखता है, वह यूरोपी-अमरीकी उद्योग-विद्या और जीवन स्तर की नक़ल करता है। यह नक़ली गरमपंथी अपने लिए "दुनिया के मजदूर एक हो" वाला मार्क्स का लक्ष्य नहीं अपनाता, न ही "दुनिया की जनता एक हो" वाला गांधी का लक्ष्य, बल्कि एक ऐसा लक्ष्य बनाता है जो कि उसी के अनुरूप हो सकता है, कि "दुनिया के बड़े लोगो, नौकरशाहो और नेताओ एक हो"। वह शायद सोचता है दुनिया के नेताओं और नौकरशाहों, विशेषतः कम्युनिस्ट देशों के नेताओं और नौकरशाहों के साथ शिखर एकता करने से एक ऐसा संगठनात्मक और भावनात्मक चौखटा बन जाएगा कि जिसका परिणाम होगा समाजवाद। बिना आन्दोलन किये और शान्ति से और किसी स्वतः घटने वाली घटना की सरलता से। क्रांति हो जाने के उसके विचार में उद्योग-विद्या की बहुतायत का भ्रम उसे जीवित रखता है। इसमें, माने हुए क्रान्तिकारियों के साथ संबद्ध होने से उसे सहायता मिलती है। तो, इसलिए साथियो, हाथ मिलाओ - शुरू से ही हिन्दुस्तान की नक़ली वाम-

पंथी सरकार चीन की कम्युनिस्ट सरकार से हाथ मिलाये रही। हिन्दुस्तान के नक़ली वाम-पंथी को शायद शुरू से ही यह शक सालता रहा कि वह सच्चा क्रान्तिकारी नहीं है। चीन के सच्चे क्रान्तिकारियों से हाथ मिला लेने से उसे सहारा मिलने की प्रतीति हुई। चीनी कम्युनिस्ट सच्चा क्रान्तिकारी है, पर, निःसंदेह, दुष्ट क्रान्तिकारी। अपने क्रान्तिकारी आचरण की कमियों को ढकने के लिए सच्चे क्रान्तिकारी की तलाश करने में, उसने तब तक चीनी क्रान्तियों के दुष्ट पहलुओं को देखना मुनासिब नहीं समझा जब तक कि मामला बहुत बिगड़ न गया और, देखा तो वह भी बिखरे हुए ढंग से देखा। अगर अफ्रीकी-एशिया और हिन्दुस्तान को जुल्म और हस्तक्षेपवाद की मुसीबत से मुक्त करना हो, तो नक़ली नरमपंथ के सिद्धान्त को आमूल नष्ट करना होगा। उग्र देशी वामपंथ विकसित होना चाहिए। तब, उसे चीनी क्रान्ति जैसी दुष्ट बैसाखी का सहारा लेने की आवश्यकता न होगी।

II **जनता की दुहरी इच्छा शक्ति** : चीन की वकालत करने और हिन्दुस्तान के रक्षक बनने के सरकार के दुहरे 'रोल' के साथ-साथ दुहरी इच्छा शक्ति भी विद्यमान थी। इसमें जनता भी लगभग उतने ही पाप की भागी है जितनी कि सरकार। हिन्दुस्तान साफ़-साफ़ नहीं जानता था कि उसे क्या चाहिए। कभी तो लगता था कि वह युद्ध के लिए तत्पर था, किन्तु अपनी ज़मीन छोड़ देने के लिए नहीं। परन्तु, पहली करारी चोट पर, लगता है, उसके मन में परिवर्तन हुआ, जिससे यह झलकता था कि वह गोलोबन्दी और रहो और रहने दो की आकांक्षा से अभिभूत हो गया। इसको पीछे हटने की रेखा खुली रखने से घालमेल नहीं करना चाहिए। अगर और कोई चारा न हो, तो हर फ़ौज पीछे हटने की गुंजाइश रखती है, ताकि फिर एकत्रित हो कर लड़े। ऐसी हालत में, युद्ध की इच्छा शक्ति से प्रेरित हो कर ही, शारीरिक रूप में पीछे हटा जाता है। हिन्दुस्तान के बारे में, अक्सर ऐसा लगा कि पीछे हटना शारीरिक नहीं, मानसिक था, बल्कि आध्यात्मिक। ऐसा प्रतीत होता है कि युद्ध की इच्छाशक्ति और जितनी जल्दी हो सके उससे छुटकारा पाने की, फिर से हस्बे मामूल मौज उड़ाने की और हानि और चिन्ता की पीडा से बचने की इच्छाशक्ति साथ-साथ रही।

एक लम्बे प्रयास के बाद और जीत की जब आशा नहीं रह जाती और युद्ध की इच्छाशक्ति अपने-आप खतम हो जाती है, तब जा कर जनता थकने लगती है। लेकिन हिन्दुस्तानी जनता तो हर एक प्रयास करने के साथ ही साथ थकती दिखाई दी। हर एक बार पीछे खदेड़ दिये जाने पर और परेशान होने पर वह दुशमन से बातचीत करने को तैयार बैठी थी। वास्तव में, उसने कभी भी गम्भीरता से लड़ाई नहीं लड़ी। कुछ विरोधी संसद-सदस्यों को, हिन्दुस्तान द्वारा चीन के विरुद्ध युद्ध-घोषणा न करने की सफ़ाई प्रधान-मंत्री ने इस तर्क से दी कि तब चीन दिल्ली और दूसरे शहरों पर बमबारी करता, और ज़ाहिर है ये सदस्य संतुष्ट हो गये। ऐसी एक मनुष्य-जाति जो बमबारी से डरती है, सीमा

की सुरक्षा करने की कामना रखती है। हवाई हमले का यह मामला कई बार सामने आया। इस माँग का कि हिन्दुस्तानी फ़ौजें चीनियों के कमज़ोर हिस्सों पर हमला करें, जवाब था बमबारी का डर। इस माँग का कि हिन्दुस्तान की वायु-सेना हिन्दुस्तानी इलाक़े में आगे बढ़ने वाली चीनी फ़ौजों पर बम गिराए, जवाब था बमबारी का डर। अगर हिन्दुस्तान के मन की यह हालत थी, तो, किसी भी समय, आखिर क्यों उसने चीनियों का मुक़ाबला करने का निश्चय किया ? अगर हिन्दुस्तानी फ़ौज चीनी फ़ौजों का सफलता-पूर्वक ही सामना कर पाती, तो चोन के लिए उतना ही काफ़ी था और वह हवाई हमला करता और बमबारी करता।

उद्जन बमों से सर्वनाश को रोकने की बात छोड़ कर, १. सीमित युद्ध की बात दो मानी में समझी जा सकती है। दुश्मन-सरकार के बिना-शर्त आत्मसमर्पण की बात लक्ष्य न हो, २. आगे बढ़ती हुई दुश्मन-फ़ौजों के जमात और वेग को नष्ट करने की हद से आगे दुश्मन-इलाक़े में बढ़ने का इरादा न हो। अगर देश की सीमाओं की रक्षा करने का इरादा सच्चा होता, तो जिस तरह चीन ने हिन्दुस्तानी इलाक़ों में कमज़ोर जगहों पर हमला किया, उसी तरह हिन्दुस्तान भी तिब्बती इलाक़ों में दुश्मन की कमज़ोर जगहों पर हमला करता। किसी ने भी नहीं, कम से कम समाजवादियों ने, यह नहीं कहा कि तिब्बत को आज़ाद करने के लिए हिन्दुस्तानी फ़ौजें तिब्बत में घुसें। वह तो बिलकुल ही अलग मसला है और उचित ढंग से उसका हल निकलना चाहिए। हिन्दुस्तान में चीन के आगे बढ़ने को रोकने के लिए तिब्बत में उसकी फ़ौजों और रसद के जमाव पर हमला करना और उनमें से जो अकस्मात मिल जाएँ उनसे लड़ना और उन्हें नष्ट करना आवश्यक था। और जब किसी देश पर आक्रमण हो, यानी अगर आक्रमण का शक्ति से सामना करने का निश्चय हो, तो उसकी सेना के सभी अंगों का इस्तेमाल करना चाहिए।

कहा जा सकता है कि दोष नेतृत्व का था, न कि जनता का। यह पूरा तौर पर सही नहीं है, न ही बुनियादी तौर पर सही है। जनता के मन, उसकी तैयारी और उपलब्धि की उसकी क्षमता के अनुरूप ही उसका नेतृत्व था। हिन्दुस्तान के प्रधानमंत्री ने कभी-कभी शारीरिक जौहर तो खूब दिखलाया, पर नैतिक साहस का उनमें लगभग पूरा अभाव रहा। मज़बूत फ़ैसले लेने की और ओहदा और जान जोखिम में पड़ने पर भी उस पर टिक रहने की क्षमता तो किसी हिम्मत वाले का ही काम है। जनता में भी उसका अभाव है, आम और अस्पष्ट ढंग की हिम्मत का भी जो कि जनता में ही होती है। ऐतिहासिक संकल्प के कमज़ोर क्षणों में, मैं सोचता हूँ कि सियार को छोड़ कर, जो दूसरों के सहारे शिकार मारता है या दूसरों का शिकार खाता है और जो पहली मार पर ही आत्मसमर्पण कर देता है, क्या कोई और जनता की सेवा कर सकता था।

हिन्दुस्तान दो प्रकार के रोगों से पीड़ित है। एक तो हज़ाराधिक बरसों पुराना है और दूसरा हिन्दुस्तान की आज़ादी जितना पुराना है। दोनों को हमेशा अलग-अलग

करना आसान नहीं। वास्तव में वे एक-दूसरे के अन्दर घुसते हैं। इलाज भी एक-दूसरे में घुसने वाले होने चाहिए। कोई भी यह नहीं कहता कि आर्थिक, सैनिक या विदेश नीति में परिवर्तन से ही काम बन जाएगा। जनता के स्वभाव और मन में भी परिवर्तन करने के काम को बढ़ावा मिलना चाहिए।

ईसा की सातवीं सदी के बाद हिन्दुस्तान बिखरने लगा। सफल आक्रमण का घंटा पहली बार दसवीं सदी के अन्त में बजा। तब से लगातार वह विजेताओं का शिकार बनता रहा। उसने एक के बाद एक देशी ताक़तों को खड़ा किया, पठान, मेवाड़ी, बाद में मुग़ल, मराठा और सिख, किन्तु आखरी जीत हासिल करने में हर एक असफल रहा। आखरी प्रयास की अव्यक्त सफलता के बारे में बहुत ज्यादा कांव-कांव नहीं करना चाहिए। पहले तो, वह सफलता सिर्फ़ आंशिक थी, और दूसरे, वह उन देशों को भी मिली जिन्होंने कोई बहुत ज्यादा प्रयास नहीं किया था।

पिछले हजार-पन्द्रह सौ बरसों में हिन्दुस्तान समस्याएँ खड़ी करने में पारंगत रहा, पर किसी एक का भी हल वह नहीं निकाल पाया। वह समस्याओं का संग्रहालय बन गया है और डर है कि बाक़ी दुनिया के लिए कहीं वह नृतत्वीय संग्रहालय न बन जाए।

सातवीं और दसवीं सदी से, निश्चय ही, वह किसी आन्तरिक दुर्बलता से पीडित है, हालांकि उसकी शुरूआत पहले से हुई होगी। पहले की हारों को हथियार, पागल हाथी, गाय, देश-द्रोहिता, विदेशी बर्बरता इत्यादि के मत्थे मढ़ा गया। और हिन्दुस्तान को और संश्लेषण करने को उसकी बुद्धि को और आध्यात्मिकता को और विभिन्नता में एकता को शर्म आनी चाहिए कि अपनी खुद की औलाद या रक्षक को नीचा दिखाने के लिए वह उनमें से हर एक के खिलाफ़ खड़ा हुआ और विदेशियों की दूसरी लहर को बुलावा दिया। कुछ-कुछ वैसा ही आज भी हो रहा है, वही बाहरी कारणों पर बल देना। वही झूठी शान का ढकोसला। हिन्दुस्तान की आत्मा में कहीं घुन लग गया है, जिसकी अभिव्यक्ति है दिल्ली की यह उत्कृष्ट रूपाजीवा।

सातवीं सदी से और खास कर दसवीं सदी से महापुरुषों ने जानबूझ कर अथवा अनजाने ही हिन्दुस्तान की आत्मा का इलाज किया, पर वे सब प्रायः असफल हुए। परिणाम हुआ कि उनमें से प्रत्येक एक सम्प्रदाय बन गया और रोग को बढ़ाया। एक भी पूरी आबादी को नहीं छू सका। बहुमत तक को भी कोई नहीं बदल सका। रामानन्द, महादेवी बस्वन्ना, चैतन्य, कबीर, दादू, दयानन्द, सब के सब अद्भुत तेजस्वी थे और जाति और औरतों की गिरी हुई हालत के बारे में कुछ करना चाहते थे। जाति और औरत, आन्तरिक दुर्बलता के ये दो मुख्य स्रोत हैं, किन्तु, राष्ट्रीय उत्थान की दृष्टि से कुछ-कुछ बनावटी हैं। अगर गांधीवाद की वर्तमान उपलब्धियाँ कोई संकेत हैं, तो डर है कि गांधी जी भी इस अत्युत्कृष्ट समूह में शामिल हो जाएँगे।

महान धर्मों के भी जन्मदाताओं ने सिर्फ़ धार्मिक विभेद की समस्या को बढ़ावा दिया है। बौद्ध, जैन, इसलाम और ईसाई धर्म, प्रत्येक पूरी तौर पर धर्म परिवर्तन न कर सका या हिन्दुओं के साथ मिल कर कोई सार्थक देश न बना सका।

हिन्दुस्तान की परिस्थिति का कोई तर्कनापरक बोध नहीं होता। फिर भी उसमें हिस्सा लेने वाले हर छोटे समूह को उसका बोध होता है, जो कि जातिप्रथा के कारण पैदा हुई है। दूसरे देशों में, किसी परिस्थिति में हिस्सा लेने वाली जनता को जब उस परिस्थिति-विशेष का कोई बोध नहीं होता तो क्रान्ति हो जाती है। हज़ार-एक बरसों से हिन्दुस्तानी परिस्थिति से बोध बिलकुल ग़ायब हो गया और फिर वह बोध कभी प्राप्त नहीं हुआ। लेकिन फिर भी, हिस्सा लेने वाले सभी समूहों को उससे पूरा बोध होता है। क्रान्ति करने की इतनी ज़्यादा ज़रूरत कभी नहीं थी; कोई क्रान्ति कभी इतनी असम्भव नहीं थी।

पिछले हज़ार बरसों के हिन्दुस्तान की महानता की बकबक बन्द होनी चाहिए, क्योंकि रोग को पहचानना स्वस्थ होने का पहला क़दम होता है। अगर एक प्रताप या शिवाजी या शेरशाह हुए, तो एक हज़ार मानसिंह या मीरजाफ़र हुए, और एक लाख दुविधा में रहे कि वे आदमी हैं या चौपाये। हमेशा कर्म के अथवा मन के इन महापुरुषों के बारे में उन्माद में रहना द्रोह है. क्योंकि उनमें तथा उनकी जनता में किसी चीज़ की कमी थी।

विपरीत प्रवृत्तियाँ भी नि.सन्देह क्रियाशील रहीं। लेकिन इन असफल संशोधनों को मुख्य प्रस्ताव मान बैठना भारी भूल होगी। चीनी आक्रमण का सामना करने के लिए देश की एकता और उसके पुनर्जागरण से उन्मादित हो जाना सबसे हाल की भूल थी। गंदे लोगों ने तो इस अच्छी बात के लिए चीनी आक्रमण की प्रशंसा भी की। हिन्दुस्तान के बड़े लोग अपने खुद के और अपने देश के बारे में इतने अनिश्चित हैं कि हर काली घटा में उन्हें चमक नज़र आती है। वास्तव में, खुद वह चमक दृष्टि-भ्रम है। वह पुनर्जागरण और एकता फेनिल थी और शहरी इलाक़ों और मध्यमवर्ग तक सीमित थी। असल परीक्षण निःसन्देह कड़ा है। क्या इस चीनी दुर्घटना से हज़ारों समूहों और जातियों के, जिनको मिलाने पर कहा जाता है कि हिन्दुस्तानी जनता बनती है, सोचने और काम करने के ढंग में कुछ परिवर्तन हुआ है?

आज हिन्दुस्तानी जनता कोई चीज है ही नहीं, यानी अपने राज्यत्व की रक्षा करने के लिए जीवन्त जनता। हज़ारों समूह और जातियाँ हैं; अपने स्वार्थ साधने के लिए हर एक अपने राज्य को हमेशा के लिए धोखा देने और कभी-कभी मझधार में छोड़ देने को तैयार रहता है। जब तक इन समूहों को तेज़ी से समाप्त करने का कोई रास्ता नहीं निकाला जाता, हिन्दुस्तान समृद्ध नहीं हो सकता। आज़ादी, अपने सकुचित अर्थ में निःसन्देह खतरे में नहीं है। अगर हिन्दुस्तान में चीनी आगे ही बढ़ते जाते तो राष्ट्रीय अथवा कम्युनिस्टी इरादों की कोई सरकार वर्तमान सरकार की जगह ले लेती। चीनियों

को आगे बढ़ने से राष्ट्रीय इरादों वाली सरकार ताक़त से, माँगी हुई ताक़त से भी, रोकती और कम्युनिस्टी इरादों वाली सरकार रज़ामन्दी से। देशों की शारीरिक ग़ुलामी अब सम्भव नहीं प्रतीत होती। जो सम्भव है, और हिन्दुस्तानी जनता के मामले में सम्भाव्य है, वह है आध्यात्मिक मुक्ति अथवा गन्दगी और आर्थिक दैन्य।

हमारी आन्तरिक दुर्बलता कौन समाप्त करे? कोई भी परम्परागत दर्शन नहीं कर सकता। साम्यवाद कभी-कभी मुग़ालता पैदा करता है। वह पंथ वैयक्तिकता और व्यक्ति के विरुद्ध है और, इसीलिए, वह जल्दी ही खतम होने वाला है। इसके अलावा, समूहों और जातियों को समाप्त करने की उसकी क्षमता कम है और आर्थिक उत्थान की उसकी क्षमता सिर्फ़ कुछ ही ज़्यादा है। कोई चमत्कारी व्यक्ति भी उसे नहीं कर सकता। ऐसे लोग पहले बहुत हो चुके हैं। किसी एक विचार अथवा एकत्ववाद का चमत्कार उसे नहीं कर सकता। ऐसे विचार भी पहले बहुत हो चुके हैं। हिन्दुस्तान की विशिष्टता की चाशनी वाली बकवास बन्द होनी चाहिए, क्योंकि हमारी विशिष्टता ग़रीब और ग़ुलाम होने में रही। अगर हमारी आध्यात्मिकता या संस्कृति में कुछ था, तो उनकी अभिव्यक्ति आध्यात्मिक दिखने वाले और अध्यात्म बघारने वाले जंजाल द्वारा नहीं, बल्कि उन्हें और भी दयाशील बना कर तर्कनापरक समाधानों में होनी चाहिए। पूरा और चौतरफ़ा हमला होना चाहिए। १. धार्मिक : व्यक्ति को गिराने और जनता को तोड़ने वाली धार्मिक मान्यताओं और रूढियों पर। २. सामाजिक : सामूहिक सहभोज करना और अन्तर्जातीय विवाहों को प्रोत्साहन और समूहों, चिह्नों और दिखावे को सख़्ती से ख़तम करना। ३. आर्थिक : बँटे हुए समूहों को, जिनमें से कुछ सभ्य दीखने वाले, कुछ आधे आदमी और आधे जानवर हैं, एक जनता बनाने की दृष्टि से मिलकियत और आमदनी के ढाँचों के साथ-साथ सरकारी उच्चवर्ग में बुनियादी परिवर्तन। ४. राजनीतिक : पिछड़े हुए समूहों को विशेष अवसर और बालिग़ वोट का ईमानदाराना इस्तेमाल और उस पर बल।

लड़ाई की ज़रा-सी चकमक से अवसर मिला था। मन गरमा रहे थे। राष्ट्र तपने के लिए तैयार हो रहा था। लेकिन नेतृत्व था ही नहीं, न सरकारी न ही विरोधी। आन्तरिक दुर्बलताओं को दूर करने के लिए एक भी क़दम नहीं उठाया गया। अब भी एक ऐसा दिन तय किया जा सकता है कि जिस दिन गाँव और शहर में सभी समूहों, जातियों के लोग और औरतें किसी एक रसोईघर पर अपना-अपना अनाज लाएँ और सामूहिक भोज करें। यह सिर्फ़ एक तरीक़ा है। दूसरे और भी होने चाहिए।

III. **सरकार का दुहरा रोल :** हिन्द-चीन झगड़ा लगभग उतना ही पुराना है जितनी कि हिन्दुस्तान की आज़ादी अथवा चीन का कम्युनिस्ट राज। शुरूआत के दिनों में, हिन्दुस्तान की सरकार उस झगड़े से अवगत नहीं थी। जब वह और आँख नहीं चुरा

सकी, तो वह चीनियों के प्रति सद्भावना और उनके सामने ज़िद और कुछ चालाकी के मिश्रण पर निर्भर करने लगी। इसीलिए, शुरू से आख़ीर तक प्रधान मंत्री को दो रोल लेने पड़े। एक तरफ़ तो वे खुद अपनी जनता के सामने चीन की वकालत करते थे ताकि वह लगातार लल्लोचप्पो अथवा निष्क्रियता से भड़क न जाए। दूसरी तरफ़ वे अपनी ओर से अच्छी तरह चीन और दुनिया के सामने हिन्दुस्तान के दावे और अधिकार पेश करते थे। अक्सर इन दो रोलों का टकराव हुआ। हर हालत में, भारत सरकार के अनेक नोटों और वक्तव्यों से, जो, कुल मिला कर, पढ़ने में बड़े गन्दे लगते हैं, उद्धरण दे कर चीन आसानी से अपने मामले को न्यायसंगत ठहरा सकता है और ठहराता है। मिसाल के लिए उनमें ये शब्द "विवादास्पद क्षेत्र" अक्सर मिल जाएँगे। जब कभी भारत सरकार अपनी जनता को समझा लेना मुशकिल नहीं पाती, वह लांगजू, बाराहोती और अक्साई चिन जैसे इलाक़ों को विवादास्पद कह कर चीनियों को लगभग दे देती है। जब जनता यह माँग करती है कि ये इलाक़े वापस लिये जाएँ या कम से कम उन पर हम दावा न छोड़ें, तो प्रधान मंत्री तर्क का जवाब देने के लिए आंशिक रूप में चीन के वकील बन जाते हैं, अपनी अस्थिरता को वाजिब ठहराते हैं या चीन को उम्मीद दिलाते रहते हैं। विवादास्पद क्षेत्र वास्तव में है क्या? जब वह पैर पसार सकता था, चीन ने हिमालय के एक और टुकड़े को विवादास्पद क्षेत्र बना दिया। क्या किसी हिन्दुस्तानी प्रधान मंत्री को अपना तर्क उसी तरह अनवरत दुहराते रहना चाहिए?

बहुत ही कम मौक़ों पर अपनी जनता के साथ तर्क की आन्तरिक कठिनाई के कारण किसी सरकार को बाहरी रूप में अपनी ज़मीन पड़ोसियों को देने के लिए बाध्य होना पड़ा। ऐसा शायद दूसरे देशों में सम्भव न हो। देशी और विदेशी, आज़ादी और ग़ुलामी की सीमाएँ अपने देश मे जनता के मन पर अच्छी तरह से नहीं खिची हुई हैं। अपने पद या अपनी चमड़ी बचाने के लिए देशी शासक इतने बेहिचक या देशद्रोही हैं कि वे हर तर्क का इस्तेमाल कर लेते हैं, ऐसे भी तर्क जो राज्य की अखण्डता के विपरीत जाएँ। लद्दाख़ के बारे में जो तर्क दिये गये उनका अभूतपूर्व कलंक और किसी तरह नहीं समझाया जा सकता। इतिहास में कभी भी किसी भी प्रधान मत्री ने विदेशियों द्वारा हड़प ली गयी अपनी ज़मीन का ऐसा वर्णन नहीं किया कि वह पथरीली है, बंजर है, जहाँ दूब तक नहीं उगती, किन्तु इस बेशर्मी का ताज हिन्दुस्तान के प्रधान मंत्री के सिर है। तिब्बत पर चीनियों के क़ब्ज़े को भारत सरकार द्वारा न्यायसंगत ठहराने के साथ ही गिरावट शुरू हुई। यह हिन्दुस्तान-चीन सम्बन्धों के बारे में एक ऐसा पहला काम था जिसके अन्तर्गत भारत सरकार ने जनता के सन्देह को ग़लत ढंग पर दबाया।

और अधिक नीचे न गिरें इसलिए भारत सरकार को अब साफ़ बात कहनी चाहिए। उसे घोषणा करनी चाहिए कि चीन को नरम बनाने के लिए और उसकी दोस्ती हासिल करने के लिए उसने संदिग्ध वक्तव्य दिये। उसने जो सबक़ सीखा उसे स्वीकार

करना चाहिए कि संदिग्ध अथवा झूठे बयानों से कोई फ़ायदा नहीं होता, चाहे उन बयानों का लक्ष्य सद्भावना और शान्ति ही क्यों न हो। वह ऐलान कर सकती है कि वह अब अपनी ही ज़मीन के विरुद्ध चीन की वकालत नहीं करेगी और पहले की गयी सारी वकालत को असत्य और बेमतलब माना जाए और खुश करने की अहमक़ाना ख़ाहिश से प्रेरित माना जाए।

IV. हिमालय : मोटी तौर पर हिमालय के दो खंड हैं, एक हिन्दुस्तानी हिमालय और दूसरा भाई हिमालय। हिन्दुस्तानी हिमालय में उर्वसीअम्, लद्दाख, बदरीनाथ और दार्जिलिंग जैसे इलाक़े आते हैं। तिब्बत और नेपाल जैसे इलाक़े भाई हिमालय हैं। हिमालय में रहने वाले ३ करोड़ लोगों में, क़रीब एक करोड़ हिन्दुस्तानी हिमालय में रहते हैं और दो करोड़ भाई हिमालय में।

इधर की सदियों में दोनों इलाक़ों और लोगों की अवहेलना की गयी। इसी काल में हिन्दुस्तान का पतन हुआ। बुरी कविता के विकार राज्य की नीति के सूत्र बन गये। बेवक़ूफ़ लोगों ने हिमालय की ऊँचाई को सन्तरी और रक्षक के रूप में देखा, जब कि हिन्दुस्तान और हिमालय के पार उत्तर के बीच भूगोल ने सैकड़ों हिमालयी दर्रे बना रखे हैं और इतिहास ने हमलों के अनेक दस्तावेज़। हिमालय हिन्दुस्तान का कभी भी सन्तरी नहीं रहा। जिस युग में हिमालय को सन्तरी समझा गया, उस युग में हिमालय के पार से हमले हुए हैं। जो सम्भव था उसके अनुसार वहाँ के लोगों की सुरक्षा और कल्याण के लिए प्रयास करते हुए, स्वतन्त्र और मज़बूत हिन्दुस्तान ने ही हमेशा हिमालय की, अपने हिमालय की और भाई हिमालय की रक्षा की। गिरावट के ज़माने में सोचने और काम करने के जो तरीक़े थे, वही आज़ाद हिन्दुस्तान में भी जारी हैं, कम से कम हिमालय के बारे में। पहले से ही काफ़ी चेताया गया था, पर उसकी परवाह नहीं की गयी।

हिमालय और वहाँ के लोगों के बारे में, सभी जानते थे कि कम्युनिस्ट चीन, क्षेत्रीय और सैद्धान्तिक दोनों मामलों में, लाज़मी तौर पर आगे देखू नीतियों पर चलेगा। हिन्दुस्तान अगर, निःसन्देह क्षेत्रीय नहीं, एक अलग क़िस्म की बुनियादी तौर पर जनतांत्रिक और वामपंथी आगे देखू नीतियों पर चलता तो चीन का तोड़ मिल जाता। इससे हिमालयी लोगों में आधुनिक युग की भावना आती और वे शक्ति और शान्ति से चीनी वहशीपन का सामना करते। इसके बदले, हिन्दुस्तान ने हिमालयी इलाक़ों और लोगों को संग्रहालय में रखने जैसी चीज़ समझा और उनमें से एक को भेड़िये के मुँह में डाल दिया।

हिमालयी विपत्तियों के पूरे सिलसिले में हिन्दुस्तान द्वारा तिब्बत के ऊपर चीन का अधिराजत्व स्वीकार कर लेना पहली भूल थी। कोई भी यह सोच सकता था कि आज के युग में अधिराजत्व और प्रभुता के बीच स्कूल के बच्चों जैसा विभेद नहीं किया जाएगा किन्तु शैक्षिक भविष्यवाणी और वास्तविक निरर्थकता वाले हिन्दुस्तान ने ऐसा किया।

हिन्दुस्तान की गिरावट के ज़माने में कुछ अल्प समय को छोड़ कर, तिब्बत स्वतंत्र ही रहा और वह चीन का एक भाग तो कभी भी नहीं था। १. भाषा; २. लिपि; ३. धर्म; ४. रहने-सहने का ढंग; ५. ज़मीन का ढलाव; ६. एक-दूसरे को समझने और संधियों के बारे में तो तिब्बत, चीन की बनिस्बत हिन्दुस्तान के साथ रहा, और ७. जनता की इच्छा के कारण, जो सबसे बड़ा निकष है, तिब्बत आज़ाद था और आज़ाद होना चाहिए। कैलाश, मानसरोवर और पूर्ववाहिनी ब्रह्मपुत्र एक समय में हिन्दुस्तान के क्षेत्र थे और जब तक तिब्बत स्वतन्त्र था, उसे भेंट स्वरूप दिये गये थे। कैलाश-मानसरोवर की मेंड से लगी रेखा का पानी हिन्दुस्तान की तरफ़ बहता है। पार्वती और शंकर जैसे बड़े देवी-देवताओं को कोई क़ौम विदेशी क्षेत्र में कभी नहीं बसाती। और फिर भी आज तिब्बत अथवा उसके किसी हिस्से को हिन्दुस्तान नहीं लेना चाहता और लेना नहीं चाहिए। उसको सिर्फ़ यह चाहिए कि तिब्बत स्वतन्त्र हो।

१९वीं सदी में और बाद में अंग्रेज़ों द्वारा तिब्बत के ऊपर चीनी अधिराजत्व की मान्यता कोई बहुत मतलब नहीं रखती। ब्रिटिश साम्राज्यवाद की यह आदत रही है कि वह और किसी की तरफ़ से, कम से कम शुरूआत में, हुकूमत करता है। उन्होंने जीर्ण चीनी सम्राट के अधिकार को माना, क्योंकि उसका कोई अधिकार ही नहीं था, और उसके नाम पर काम करते रहे। इसके अतिरिक्त, हिन्दुस्तान की पतनावस्था की सदियों में की गयी हिमालय सम्बन्धी व्यवस्थाएँ प्रकृति, इतिहास और जनता की इच्छा से मेल नहीं खातीं। ऐसा भी हुआ था कि कुछ बरसों तक चीन के ऊपर तिब्बत ने राज किया।

उदार प्रतीत होने की प्रवृत्ति और ज़रूरत से ज़्यादा चालाक बनने के साथ-साथ उसकी अस्पष्ट नीतियों के कारण भारत सरकार ने तिब्बत में चीन के हक़ मान और अपने अधिकार छोड़ दिये। शुरू से ही, चीन के मामले में उसने अन्धों का खेल खेला। वह शुरू के कम्युनिस्ट चीन की धर्म-माता बनी, इस आशा में कि वह उसे और तथाकथित प्रगतिशील राय को भी खुश कर लेगी और इसका भी खयाल नहीं किया कि वह श्री च्यांग-काई-शेक और तैवान के साथ बहुत बदतमीज़ी कर रही है। यह भी हो सकता है कि भारत सरकार अथवा प्रधान मंत्री ने टेढ़े तरीक़ों से काम लिया। काश्मीर के मामले में अमरीका और पाकिस्तान से नाराज़ हो कर, प्रधान मंत्री को पता ही नहीं था कि वे भारत भूमि पर सिकियांग और तिब्बत के बीच चीन द्वारा बनायी गयी सड़क पर ध्यान नहीं दे कर अपने देश और तिब्बत को कितना स्थायी नुक़सान पहुँचा रहे हैं।

तिब्बत के समर्पण को पूरा करने के लिए चीनी जनरलों को हिन्दुस्तान के अन्दर से रास्ता दिया गया। कई बरसों तक, चीन के चाँदी के पुराने डालरों की लालच में हिन्दुस्तान की सरकार और बेपारियों ने गंगटोक के द्वारा हिन्दुस्तान-तिब्बती बेपार खूब चलाया, जिससे कि चीन को अपनी पुरानी मुसीबतों पर हावी होने में मदद मिली।

तिब्बत की शिशु-हत्या करने में हिन्दुस्तान ने चीन की मदद की। जैसा भी उससे बन पड़े, उसका प्रायश्चित करना चाहिए। इतिहास से एक पूरे देश के ग़ायब हो जाने को रोकने का उसे प्रयत्न करना चाहिए। अगर हिन्दुस्तान की सरकार दलाई लामा और अन्य शरणार्थियों को यहाँ तिब्बत की आरज़ी हुकूमत नहीं चलाने देती, तो अच्छा होगा कि दलाई लामा और उनके साथी किसी और वीर धरती पर जा कर शरण लें। कुछ बरसों पहले, किसी ने तिब्बती विद्रोहियों के लिए हवाई जहाज़ से सामान गिराया था। हिन्दुस्तान में तिब्बती शरणार्थियों के प्रति आगे देखू नीति अपनानी चाहिए। उनकी देख-भाल करनी चाहिए और उन्हें आधुनिक बनाना चाहिए। सारा हिन्दुस्तान बेशक दरिद्रता में रहता है, किन्तु छोटी-छोटी चीज़ें भी मदद करती हैं; तिब्बती जलवायु में पहनने लायक़ मोटे और तह दे कर पहने जाने वाले कपड़ों को फ़ौरन बदल कर पतले कपड़े देने चाहिए।

हिन्दुस्तान के भाई हिमालय के साथ चीन बड़ा व्यवहार-कुशल रहा; या तो हत्यारा जैसे कि तिब्बत में या फिर चापलूस जसे कि नेपाल में। नेपाल हिन्दुस्तान का न सिर्फ़ दोस्त है, बल्कि नज़दीकी रिश्तेदार। अपने उत्तरी पड़ोसियों की नाराज़ी अथवा ख़ामोशी, हिन्दुस्तान की भयंकर असफलता का प्रमाण है। वे अजनबी चीन की तरफ़ हैं या कम से कम उसके विरुद्ध नहीं हैं।

हिन्दुस्तान ने ब्रिटिश अथवा जीसूइट राजनयिकता की बारीकियों से काम लेने की कोशिश की पर उसके पास उनके जैसी शक्ति या परम्परा न थी। इतिहास के ज्ञान में प्रधान मंत्री नौसिखिये हैं। नेपाल के राजा और वहाँ के पहले वाले प्रधानमंत्री के सा किसी बात या मुद्दे को सिर्फ़ थोड़ा-सा हेर-फेर करके, वे दो बोलियों में बोले। रिश्तेदारों के बीच उस प्रकार की राजनयिकता कभी भी अच्छी नहीं होती। चीन की तरह की उग्र सैद्धान्तिक नीति के सामने उसका कोई भी मतलब नहीं होता। इसके अलावा, पड़ोसियों के लिए प्रधान मंत्री की मिसाल बहुत ही बुरी रही। अगर हिन्दुस्तान के प्रधान मंत्री श्री पाटिल के अतलान्तिक-लगाव को श्री मेनन के सोवियत-लगाव से काट कर बिना-लगाव की आशा कर सकते हैं, तो नेपाल के कोइराला श्री तुलसीगिरि द्वारा सोवियत अथवा चीन से और श्री सुवर्ण शमशेर द्वारा या वे खुद अतलान्तिक से लगाव क्यों नहीं कर सकते। ज़रूरत से ज़्यादा चालाकी के कारण श्री नेहरू का बंटाढार हो गया। उनके अनुयायिओं की तो और भी बुरी हालत हो सकती थी। उगते हुए राष्ट्रों के लिए आवश्यक हैं सीधी-सादी मान्यताएँ और साफ़-सीधे रास्ते पर चलना और जहाँ भी सम्भव हो सत्य और मानवी सम्मान।

हिन्दुस्तानी हिमालय के भूटान और सिक्किम में नेपाली वंश-परम्परा के लोगों का बहुमत है। हिन्दुस्तानी हिमालय के बाक़ी हिस्सों में भी वे फैले हुए हैं। शायद हमेशा के

लिए हमने अवसर नहीं खोया है। जनतंत्र और प्रगति के बुर्ज बनने के लिए इन लोगों को प्रेरित करना चाहिए, सहायता और उससे मिलने वाली लालच के द्वारा नहीं, बल्कि उस चीज़ के द्वारा जो मन में होती है।

V. भाषा : भाषा की समस्या हज़ार बरस और पन्द्रह बरस पुराने रोगों से निकली है। किन्तु, इस बारे में, चीनी विपत्ति के कारण हिन्दुस्तान के सरकारी नेतृत्व के और विरोधी नेतृत्व के भी सोचने के ढंग में कोई फ़र्क़ नहीं पड़ा। बेवक़ूफ़ लोग अब भी अंग्रेज़ी के माध्यम को ले कर चीन से लड़ना चाहते हैं। उसमें उन्हें ज्ञान, शक्ति और एकता के सोते नज़र आते हैं जो कि हैं नहीं। चीन का ज्ञान और उद्योग-विद्या संबंधी योग्यता व्यापक है। हिन्दुस्तान का ज्ञान और उद्योग-विद्या संबंधी योग्यता सीमित हैं। जापान की तरह चीन जनता की भाषा में काम करता है; हिन्दुस्तान अल्पमत के आधिपत्य और शोषण के हथियार से काम लेता है। सब चीज़ों से जनता के बहुत बड़े हिस्से को अलग रखा जाता है और इसीलिए वे अज्ञान और ग़रीबी में पड़े हुए हैं और अल्पमत बाहरी हुनर हासिल कर लेता है।

उच्च वर्गों की सड़ती हुई आत्मा कोई हल नहीं निकालती और जब दूसरे लोग हल निकालते हैं, तो उन पर कीचड़ उछालती है। आज की लगभग पूरी ग़लतफ़हमी की स्थिति में भी, "मातृभाषा और वैकल्पिक हिन्दी" वाला सुझाव लगभग पूरी तौर पर सन्तोष-जनक है। इस सुझाव के तहत प्रदेश के सभी कामकाज में मातृभाषा फ़ौरन अंग्रेज़ी की जगह ले लेगी। केन्द्र में, तीन विकल्प हो सकते हैं : बहुभाषा केन्द्र, केन्द्र को दो विभागों में बाँट दिया जाए और तटीय प्रदेशों को छूट हो कि वे चाहें तो अंग्रेज़ी विभाग में जा सकते हैं, और संरक्षण देते हुए एक हिन्दी केन्द्र; यह साफ़ समझ लेना चाहिए कि इन तीन विकल्पों में मिश्रण नहीं किया जा सकता।

वर्तमान सरकार और विशेष रूप से शासक दल पर इस जुर्म का आरोप लगाना चाहिए कि उसने लगातार ऐसी भाषा का इस्तेमाल करके, जिसे जनता समझती नहीं, जनता को कमज़ोर बनाया और कि उसने व्याकरण और उच्चारण की विचित्रताओं में बुद्धि को खपा कर ज्ञान और उद्योग-विद्या के हुनर को नुक़सान पहुँचाया है।

हालाँकि कूट भी खोले जा सकते हैं और अंग्रेज़ी भाषा-भाषी लोग अपना काम अंग्रेज़ी के माध्यम से ही चलाते हैं, कमज़ोर राष्ट्र, जिनके पास जासूसी और प्रति-जासूसी के साधन कम हैं, उनकी अपनी भाषा के इस्तेमाल करने पर ज़्यादा सुरक्षित रहेंगे।

I. चीनी आक्रमण का घटनाक्रम

१९४७

१५ अगस्त : भारत ने स्वाधीनता प्राप्त की। पहली स्वतंत्र सरकार ने ब्रिटेन से शासन-सूत्र अपने हाथ में लिया और उसे तिब्बत में कुछ विशेष अधिकार प्राप्त हुए। भारतीय व्यापार एजेण्टों को अपनी तथा ब्रिटिश नागरिकों की रक्षा के लिए सैनिक रखने का भी अधिकार मिला। व्यापार एजेण्टों को गंगतोक से यांतुंग व ग्यांत्से तक तार एवं टेलीफ़ोन व्यवस्था का संचालन करने का काम सौंपा गया। वे यांतुंग, फाड़ी तथा ग्यांत्से में डाक-तार घरों का संचालन करते रहे। भारत सरकार का तिब्बत में ग्यारह रेस्ट हाऊसों पर भी स्वामित्व था।

१९४९

१ अक्तूबर : जनवादी चीनी गणतंत्र की घोषणा की गयी।

३० दिसम्बर : भारत सरकार ने जनवादी चीनी गणतंत्र को औपचारिक रूप से मान्यता प्रदान की। भारत, चीन को मान्यता देने वाले पहले देशों में था।

१९५०

१३ अगस्त : भारत सरकार ने चीन सरकार को लिखा कि वह सीमांतक-पार अनिश्चित स्थिति की सम्भावना पर चिंतित है। भारत सरकार ने चीन-तिब्बत संबंधों के बारे में भी शान्तिपूर्वक बातचीत का अनुरोध किया।

२१ अगस्त : चीन सरकार ने घोषणा की कि वह तिब्बत की समस्या शान्ति तथा मैत्रीपूर्ण ढंग से हल करने को तैयार है। चीन ने भारत-चीन सीमान्त के निर्धारण की की भी इच्छा प्रकट की।

२४ अगस्त : भारत सरकार ने तिब्बत के बारे में चीन के इरादों की सराहना की तथा कहा कि भारत तथा तिब्बत में स्वीकृत सीमान्त है, उसका किसी को उल्लंघन नहीं करना चाहिए।

१९ सितम्बर : संयुक्त राष्ट्रसंघ की वृहत्सभा मे भारतीय प्रतिनिधि मंडल ने अनुरोध किया कि जनवादी सरकार को राष्ट्रसंघ में चीन का प्रतिनिधित्व करना चाहिए। वह प्रस्ताव गत वर्षों में लगभग दस बार दोह-

राया गया।

७ अक्तूबर : चीनी सेना ने तिब्बत में प्रवेश किया।

२१ अक्तूबर : भारत सरकार ने चीन सरकार का ध्यान इस बात की ओर दिलाया कि उसकी सैनिक कार्रवाई से चीन को राष्ट्रसंघ का सदस्य बनाने का निश्चय स्थगित होने की आशंका है और भारत के सीमांत पर भी अशान्ति पैदा होगी।

३० अक्तूबर : चीन सरकार ने भारत सरकार की यह कह कर आलोचना की कि भारत सरकार चीन विरोधी देशों से प्रभावित हो गयी है।

१ नवम्बर : भारत सरकार ने चीन के आरोप पर आश्चर्य प्रकट किया और कहा कि वह केवल इतना चाहती है कि समस्या का हल शान्तिपूर्वक हो।

१९५१

१ फ़रवरी : भारत ने राष्ट्र सघ की वृहत्-सभा में चीन को कोरिया में आक्रमणकर्त्ता बताने के प्रस्ताव के विरुद्ध मत दिया।

१९५३

३१ दिसम्बर : भारत तथा तिब्बत के संबंधों के विषय में पीकिंग में बातचीत शुरू हुई।

१९५४

२९ अप्रैल : तिब्बत तथा भारत में व्यापार संबंधी समझौते पर हस्ताक्षर हुए। भारत ने तिब्बत में अपने विशेष अधिकार छोड़ दिये और स्वीकार कर लिया कि तिब्बत चीन का क्षेत्र है। यह समझौता आठ वर्ष के लिए था। इसके साथ ही दोनों देशों ने इन पाँच सिद्धान्तों पर चलना स्वीकार किया—एक-दूसरे की क्षेत्रीय अखंडता तथा प्रभुसत्ता का आदर, अनाक्रमण, एक-दूसरे के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप न करना, समानता तथा सह-अस्तित्व।

२५ जून : श्री चाऊ एन-लाई राजकीय यात्रा पर नयी दिल्ली आये।

२८ जून : भारत तथा चीन के प्रधानमंत्रियों का संयुक्त वक्तव्य जारी किया गया। उन्होंने पंचशील के पाँच सिद्धान्तों को दोहराते हुए भारत तथा चीन की मित्रता में विश्वास प्रकट किया।

१७ जुलाई : चीन सरकार ने बड़ाहोती में भारतीय सैनिको की मौजूदगी पर विरोध प्रकट किया। यह पहला अवसर था कि चीन सरकार ने भारतीय क्षेत्र पर दावा किया।

२७ अगस्त : भारत सरकार ने चीन सरकार को एक पत्र भेजा, जिसमें चीन के इस आरोप का खण्डन किया गया कि भारतीय सैनिकों ने तिब्बत में घुसपैठ की। भारत ने चीनी अधिकारियों के बडाहोती में प्रवेश के प्रयास के विरुद्ध विरोध प्रकट किया।

१४ अक्तूबर : एक व्यापार समझौते पर हस्ताक्षर किये गये।

१८ अक्तूबर : श्री नेहरू ने मित्रता बढ़ाने के उद्देश्य से चीन की यात्रा की। उन्होंने चीनी नेताओं के साथ चीन में प्रकाशित कुछ मानचित्रों के बारे मे भी बातचात की जिनमें पचास हज़ार वर्ग मील भातीय क्षेत्र को चीनी क्षेत्र दिखाया गया था। श्री चाऊ एन-लाई ने कहा कि इन चीनी मानचित्रों का विशेष महत्त्व नहीं। वे पुराने कुमिन-तांग मानचित्रों के आधार पर तैयार किये

गये हैं, और कि चीन सरकार को उनमें संशोधन का समय नहीं मिला।

१९५५

१८ अप्रैल : बर्मा, श्रीलंका, भारत, इन्डोनेशिया तथा पाकिस्तान द्वारा आयोजित अफ्रेशियाई सम्मेलन में चीन भी शामिल हुआ।

११ मई : फ़ारमोसा की समस्या का हल ढूंढ़ने के प्रयास में चीन सरकार की प्रार्थना पर श्री कृष्ण मेनन पीकिंग गये।

२८ जून : बड़ाहोती में एक चीनी दल की अनधिकृत उपस्थिति के विरुद्ध भारत सरकार ने चीन सरकार को विरोध पत्र भेजा।

१५ सितम्बर : चीनी सैनिकों के एक दल ने सीमांत से दस मील दूर इधर उत्तरप्रदेश के दमचान में प्रवेश किया।

५ नवम्बर : भारत सरकार ने दमचान में चीनी सैनिकों की घुसपैठ के संबंध में चीन सरकार को विरोध-पत्र भेजा।

१९५६

२८ अप्रैल : एक सशस्त्र चीनी दल ने उत्तर प्रदेश में निलंग के पूर्व में आध मील पर शिविर स्थापित किया।

२ मई : भारत सरकार ने निलंग क्षेत्र में चीनी सैनिकों की घुसपैठ के विरुद्ध चीन सरकार को विरोध पत्र भेजा।

२६ जुलाई : चीन सरकार ने दावा किया कि बड़ाहोती चीनी क्षेत्र है तथा इस बात से इनकार किया कि तुनजुनला सीमांत दर्रा है।

१ सितम्बर : चीनी सैनिकों के एक दल ने शिपकी दर्रा पार करके भारतीय क्षेत्र में प्रवेश किय.।

८ सितम्बर : भारत सरकार ने चीनी दल द्वारा शिपकी दर्रा पार करने के विरुद्ध चीन सरकार को विरोध पत्र भेजा।

१० सितम्बर : एक चीनी दल ने पुनः शिपकी दर्रा पार करके भारतीय क्षेत्र में प्रवेश किया।

२० सितम्बर : एक चीनी गश्ती दल शिपकी दर्रा पार करके हुपसांग खंड तक आ गया। एक भारतीय गश्ती दल से सामना होने पर चीनी दल ने शस्त्रास्त्र प्रयोग करने की धमकी दी।

२८ नवम्बर : श्री चाऊ एन-लाई भारत आये। उन्होंने कहा कि बर्मा के मामले में चीन सरकार ने १९१४ के सीमांत (मैकमोहन रेखा) को स्वीकार कर लिया है। उन्होंने भारत के सामने भी इस सीमांत रेखा को स्वीकार कर लेने का प्रस्ताव रखा। उन्होंने कहा कि मैं इस मामले में तिब्बती अधिकारियों से विचार करूँगा।

१९५७

अक्तूबर : एक चीनी दल भारत के उपूसी (नेफ़ा) क्षेत्र की लोहित सीमांत डिवीज़न में प्रवेश करके वलांग तक आया।

१९५८

अप्रैल-मई : बड़ाहोती के प्रश्न पर भारत व चीन सरकारों के प्रतिनिधियों के बाच बातचीत हुई। भारत सरकार ने सुझाव दिया कि समझौता होने तक दोनों देशों को सैनिक अथवा असैनिक कर्मचारी उक्त क्षेत्र में न भेजने चाहिए। चीन ने केवल सशस्त्र सैनिक न भेजने की बात स्वीकार की। बातचीत से यह भा स्पष्ट हो गया कि चीन जिस क्षेत्र पर दावा कर रहा था, उसका

उसे सही तौर पर पता नहीं था।

२ जुलाई : भारत सरकार ने लद्दाख में खुर्नाक क़िले पर चीनी सैनिकों के क़ब्जे के विरुद्ध चीन सरकार को विरोध पत्र भेजा।

सितम्बर : चीनी सैनिकों ने अक्षय चिन के उत्तरी भाग में गश्त लगा रहे भारतीय दल को गिरफ़्तार कर लिया। उन्होंने इन भारतियो को लगभग पाँच सप्ताह तक अपनी हिरासत में रखा और उनसे दुर्व्यवहार किया।

२७ सितम्बर : एक बडे चीनी दल ने निर्माण सामग्री के साथ लोहित सीमान्त डिवीज़न में प्रवेश किया और बाद में बर्मा की ओर चला गया।

१८ अक्तूबर : भारत सरकार ने लद्दाख के अक्षय चिन क्षेत्र में चीन स कार द्वारा मोटर मार्ग के निर्माण के विरुद्ध विरोध प्रकट किया।

अक्तूबर : चीनी सैनिकों ने उत्तरप्रदेश में लपथाल तथा सांगचामल्ला में चौकियाँ बना लीं।

२७ अक्तूबर : तिब्बत की ओर से आये विमान ने स्पीति घाटी (पंजाब) तथा हिमाचल प्रदेश पर उड़ान की। २९ अक्तूबर से १ नवम्बर के दौरान भी तिब्बत की ओर से आने वाले विमानों ने चिनी (हिमाचल प्रदेश) पर उड़ानें कीं।

८ नवम्बर : भारत सरकार ने लद्दाख के अक्षय चिन क्षेत्र पर चीनियों के दावे तथा भारतीय गश्ती दल से दुर्व्यवहार के विरुद्ध विरोध प्रकट किया।

१० दिसम्बर : भारत सरकार ने चीन सरकार से बड़ाहोती लपथाल तथा सांगचामल्ला से अपने सैनिक वापस बुलाने को कहा।

१४ दिसम्बर : श्री नेहरू ने श्री चाऊ एन-लाई को पत्र लिख कर उनका ध्यान एक सरकारी चीनी पत्रिका में प्रकाशित मानचित्र में भारत-चीन सीमांत को ग़लत रूप से दिखाने की ओर दिलाया।

१९५९

१७ जनवरी : भारत सरकार ने चीनियों की अक्तूबर १९५७ में वलांग में तथा सितम्बर १९५८ में लोहित सर डिविज़न में घुसपैठ के विरुद्ध चीन सरकार को विरोध-पत्र भेजा।

२३ जनवरी : श्री चाऊ एन-लाई ने श्री नेहरू के पत्र के उत्तर में कहा कि भारत-चीन सीमांत औपचारिक रूप से कभी निर्धारित नहीं किया गया। चीन सरकार ने यह मामला १९५४ में इसलिए नहीं उठाया क्योंकि तब समझौते के लिए परिस्थितियाँ अनुकूल नहीं थीं। उन्होंने कहा कि चीन सरकार ने मेकमोहन रेखा को भी कभी स्वीकार नहीं किया। दूसरे शब्दो में चीन सरकार दोनों देशों द्वारा शताब्दियों से स्वीकृत परम्परागत तथा निर्धारित सीमांत को मानने से इनकार कर दिया। सभी आश्वासनों से मुकर कर तथा १९५४ के समझौते का उल्लंघन करते हुए चीनियों ने भारत के लगभग ५० हज़ार वर्ग मील क्षेत्र पर अपना दावा किया।

३१ मार्च : दलाईलामा ने सीमांत पार करके भारत में प्रवेश किया। उन्हें राजनीतिक आश्रय दिया गया।

१६ मई : चीन सरकार ने भारत को

दोतरफ़ा नीति अपनाने के विरुद्ध चेतावनी दी तथा कहा कि पंचशील के सिद्धान्तों का पालन सुविधानुसार किया जाएगा।

२३ मई : भारत सरकार ने चीन सरकार के रुख पर खेद प्रकट किया तथा कहा कि भारत का पंचशील के सिद्धान्तों में विश्वास उसकी आधारभूत नीति के अनुसार है न कि अवसरवादिता के अनुसार।

११ जुलाई—भारत सरकार ने तिब्बत में भारतीय व्यापारियों तथा यात्रियों के कार्य में पैदा की गयी कठिनाइयों की ओर चीन सरकार का ध्यान दिलाया।

२८ जुलाई—एक सशस्त्र चीनी दस्ते ने लद्दाख में पश्चिमी पैंगोंग झील के क्षेत्र में घुस कर छह भारतीय सिपाहियों को गिरफ़्तार कर लिया तथा स्पांगुर में शिविर स्थापित किया।

३० जुलाई—भारत सरकार ने चीनी घुसपैठ के विरुद्ध विरोध प्रकट किया।

७ अगस्त—एक सशस्त्र चीनी गश्ती दल ने पूर्वी क्षेत्र में खिंजनमेन में प्रवेश करके भारतीय गश्ती दल को पीछे धकेल दिया।

२५ अगस्त—एक बड़े चीनी दल ने नेफा के सुवनसरी डिवीज़न में प्रवेश करके भारतीय सैनिको पर गोली चलायी और लांगजू में भारतीय सीमान्त चौकी पर अधिकार कर लिया।

२० अक्तूबर—चीनी सैनिक दक्षिणी लद्दाख में चांग चेन्मो घाटी में भारतीव क्षेत्र में ४० मील आगे तक घुस आये उन्होंने कांगका दर्रे के निकट भारतीय गश्ती दल से सामना होने पर उस पर गोली चला कर नौ भारतीयों की हत्या कर दी। गश्ती दल के दस अन्य सदस्यों को बन्दी बना लिया गया और मुक्त करने से पूर्व उनसे कठोर एवं अमानुषिक व्यवहार किया गया।

२३ अक्तूबर—भारत सरकार ने भारतीय गश्ती दल पर चीनियों के हमले के विरुद्ध विरोध प्रकट किया तथा बन्दी भारतीयों की रिहाई की माँग की।

१६ नवम्बर—भारत सरकार ने समझौते की आशा से प्रस्ताव रखा कि लद्दाख क्षेत्र में अन्तरिम पग के रूप में, भारत सरकार अपने सैनिकों को उस क्षेत्र तक पीछे हटा ले, जहाँ तक चीन का दावा है, तथा चीनी सैनिक भारतीय मानचित्रों में दिखाये गये परम्परागत सीमान्त से पीछे हट जाएँ। इससे सीमान्त पर मुठभेड़ होने की आशंका न रहेगी।

१७ दिसम्बर—चीन सरकार ने भारत का यह प्रस्ताव रद्द कर दिया कि पश्चिमी क्षेत्र मे दोनों देशों की सेनाएँ पीछे हट जाएँ। इसके बजाय, वे अक्षय चिन क्षेत्र के पश्चिम तथा दक्षिण में और आगे बढ़ जाएँ और उन्होंने इस इलाक़े में सड़को का निर्माण किया।

१९६०

१९ अप्रैल—श्री चाऊ एन-लाई दिल्ली आये तथा उन्होने श्री नेहरू से छह दिन तक बातचीत की। वार्ता समाप्त होने पर दोनों प्रधानमंत्रियों ने घोषणा की कि हम दोनो देशों मे मतभेद दूर नहीं कर सके। यह स्वीकार किया गया कि दोनों सरकारों के दावों के सम्बन्ध में दस्तावेज़ की जाँच के लिए दोनों सरकारों के अधिकारियों का सम्मेलन हो। उस दौरान सीमान्त क्षेत्र में

मुठभेड़ रोकने के लिए भरसक प्रयास किया जाएगा।

३ जून—'उपूसी' क्षेत्र में भारतीय सीमान्त से लगभग पाँच मील इधर स्थित तक्तसांग गोम्पा में एक बड़ा चीनी दल घुस आया।

२५ जून : एक चीनी सर्वेक्षण दल सुरियामें आया।

२९ जुलाई : भारत सरकार ने तक्तसांग गोम्पा में चीनियों की घुसपैठ के विरुद्ध विरोध प्रकट किया।

२२ अगस्त : भारत सरकार ने मार्च १९६० से तिब्बत की ओर से आने वाले विमानों द्वारा भारतीय वायु सीमा के ५२ बार उल्लंघन की ओर चीन सरकार का ध्यान दिलाया

२२ सितम्बर : चीनी सशस्त्र गश्ती दल जलेपला दर्रे के निकट सिक्किम में घुस आया।

२७ सितम्बर : भारत सरकार ने सिक्किम में चीनी घुसपैठ के विरुद्ध विरोध प्रकट किया।

१३ अक्तूबर : एक सशस्त्र चीनी दल पश्चिमी क्षेत्र में हाट स्प्रिंग के क्षेत्र में आया।

१९६१

१४ फरवरी : भारत सरकार ने सीमान्त सम्बन्धी दोनों देशों के अधिकारियों की रिपोर्ट प्रकाशित कर दी। रिपोर्ट से कई प्रमाणों के आधार पर स्पष्ट किया गया कि भारत द्वारा बताया गया सीमान्त ही परम्परागत एवं निर्धारित है और कि चीन का लगभग ५० हज़ार वर्गमील भारतीय क्षेत्र पर दावा ग़लत है। इसमें लगभग १२ हज़ार वर्गमील क्षेत्र पर चीन का अवैध क़ब्ज़ा था। चीन ने काफ़ी देर तक रिपोर्ट की कोई चर्चा नहीं की। अन्ततः मई १९६२ में तोड़ मोड़ कर रिपोर्ट का चीनी विवरण प्रकाशित कर दिया।

२० अप्रैल : चीनी सैनिक जलेपला दर्रे के निकट सिक्किम में घुस आये।

मई : चीनी पश्चिमी क्षेत्र में चुशूल के निकट भारतीय क्षेत्र में घुस आये।

१३ जुलाई : परराष्ट्र मंत्रालय में महासचिव श्री आर. के. नेहरू मंगोलिया से दिल्ली लौटते हुए पीकिंग रुके। उन्होंने चीन सरकार के नेताओं से बातचीत की।

जुलाई : एक चीनी गश्ती दल पूर्वी क्षेत्र की कामेंग सीमान्त डिवीजन में चेमोकरपोला के पश्चिम में भारतीय सीमान्त से एक मील इधर तक आ गया।

अगस्त : चीनी सैनिकों ने लद्दाख में तीन नयी सीमान्त चौकियाँ स्थापित कर ली। चौकियो से पीछे अड्डो तक मार्गों का निर्माण भी किया गया।

१२ सितम्बर : सशस्त्र चीनी जलेपला दर्रे से सिक्किम में घुस आये।

३१ अक्तूबर : भारत सरकार ने सीमोल्लंघन तथा भारतीय क्षेत्र के बड़े भाग पर चीनियों के अवैध क़ब्ज़े की ओर चीन सरकार का ध्यान दिलाया। भारत सरकार ने चीन सरकार से कहा कि वह भारतीय क्षेत्र से पीछे हट जाए तथा आक्रामक कार्रवाइयाँ न करे।

१९६२

जनवरी : कुछ सैनिक एवं असैनिक चीनी अधिकारियों ने पूर्वी क्षेत्र में लांगजू के

निकट सीमान्त पार किया तथा सीमान्त से इधर आध मील दूर भारतीय गाँव टो रोई की ओर चले गये ।

२२ फ़रवरी : भारत सरकार ने चीन सरकार को लद्दाख में आगे बढ़ कर गश्त करने के विरुद्ध विरोध-पत्र भेजा ।

१५ अप्रैल : भारत सरकार ने लद्दाख में सुमदो से छह मील पश्चिम में सैनिक चौकी स्थापित करने के विरुद्ध चीन सरकार को विरोध-पत्र भेजा ।

१८ अप्रैल : भारत सरकार ने पूर्वी क्षेत्र में टोई गाँव में घुसपैठ के विरुद्ध चीन सरकार को विरोध पत्र भेजा ।

अप्रैल, मई : लद्दाख के चिपचैप क्षेत्र में चीनी निरन्तर आगे बढ़ कर गश्त लगाते रहे ।

३० अप्रैल : चीन सरकार ने घोषणा की कि उसने काराकोरम दर्रे से कोंग्का ला दर्रे तक सारे क्षेत्र में गश्त का आदेश दिया है । चीन ने यह भी माँग की कि भारत अपने क्षेत्र की दो चौकियाँ हटा ले । भारत ने यह माँग स्वीकार न की तो चीन सीमान्त पर गश्त शुरू कर देगा ।

३ मई : पाकिस्तान तथा चीन की सरकारों ने घोषणा की कि उन्होंने काराकोरम दर्रे के पश्चिम में भारत-चीन सीमान्त के भाग के बारे में बातचीत करना स्वीकार कर लिया है । सीमान्त का यह भाग पाकिस्तान के अवैध क़ब्ज़े में है ।

१० मई : भारत सरकार ने चीन सरकार का ध्यान इस बात की ओर दिलाया कि सारे जम्मू काश्मीर राज्य पर केवल भारत की ही प्रभुसत्ता है । अतः काश्मीर के सीमान्त के बारे में पाकिस्तान से किया गया समझौता वैध न होगा ।

मई : स्पांगुर के दक्षिण पूर्व में लगभग दस मील दूर भारतीय क्षेत्र में चीन ने नयी चौकी स्थापित कर ली ।

२१ मई : भारत सरकार ने स्पांगुर के निकट नयी चौकी स्थापित करने के सम्बन्ध में चीन सरकार को विरोध-पत्र भेजा ।

२ जून : १९५४ के समझौते की, जिसका चीन ने तिब्बत में भारतीय यात्रियों तथा व्यापारियों को परेशान करके तथा भारतीय क्षेत्र पर, अतिक्रमण करके उल्लंघन किया, अवधि समाप्त हो गयी ।

२८ जून : भारत सरकार ने चिपचैप नदी के निकट अवैध रूप से निर्मित चौकी से छह मील दूर एक और चौकी निर्मित करने के विरुद्ध चीन सरकार को विरोध-पत्र भेजा ।

१० जुलाई : भारत सरकार ने गलवान नदी के किनारे भारतीय चौकी के गिर्द चीनियों के घेरे के विरुद्ध चीन सरकार को विरोध-पत्र भेजा ।

१२ जुलाई : भारत सरकार ने चिपचैप, चांग चेन्यो तथा पैंगोंग क्षेत्र में नयी चीनी चौकियाँ स्थापित करने के विरुद्ध चीन सरकार को विरोध-पत्र भेजा ।

[यहाँ तक की सामग्री हिन्दी दैनिक 'नवभारत टाइम्स' के ७ अगस्त '६२ के अंक से ली गयी है ।]

सितम्बर ८ : उर्वसीअम् (नेफ़ा) के कामेंग विभाग में मैकमोहन रेखा के दक्षिण ढोला चौकी के पास चीनी सैनिक जमते देखे गये ।

सितम्बर १२ : चीनी सैनिक तवांग के पास

उर्वसीअम् में घुसे।

सितम्बर २१ : चीनी जवान भारतीय प्रदेश में घुस आये और हथगोले फेंके। चौकी पर तैनात भारतीय जवानों ने घुसते आ रहे चीनियों पर चौकी से कुछ सौ गज़ की दूरी पर गोली चलायी। छिटफुट गोलीबारी १० अक्तूबर तक चलती रही।

अक्तूबर १० : भारतीय चौकियों पर चीनियों का भारी हमला; काफ़ी संख्या में चीनी हताहत।

अक्तूबर ११ : दोनों तरफ़ से गोलीबारी चलती रही। प्रबलित चीनी सैनिकों ने थागला रिज पर, भारत और तिब्बत की परम्परागत सीमा-रेखा पर, अधिकार कर लिया।

अक्तूबर २० : चीन ने उर्वसीअम् और लद्दाख मोर्चों पर भारी हमला शुरू किया।

अक्तूबर २१ : मैकमोहन रेखा के ४ मील दक्षिण नामका-चू नदी को चीनी पार कर गये। ढोला और खिजमाने चौकियाँ खाली कर दी गयीं। लद्दाख में दो चौकियो पर चीनियों का अधिकार। उर्वसीअम् में, हताहतो को ले जाता हुआ, एक हेलीकोप्टर मार गिराया गया।

अक्तूबर २२ : लद्दाख में सब की सब, सात चौकियाँ, हाथ से गयीं। उर्वसीअम् में असांग धार की भारतीय चौकी भारी चीनी हमले के कारण खाली करनी पड़ी।

अक्तूबर २३—पीकिंग ने अपने सैनिकों को मैकमोहन रेखा की सीमा तक ही नहीं रुक जाने का आदेश दिया।

अक्तूबर २४—उर्वसीअम् में तवांग पर दो-तरफ़ा चीनी हमला। मैकमोहन रेखा से १० मील दक्षिण लाम्पू पर चीनियों का अधिकार। ब्रोकेनथांग और ज़नीनथांग की चौकियाँ हाथ से गयीं, लोहित विभाग में किबेतू खाली कर दिया गया। लद्दाख में गलवान घाटी पर चीनियों का अधिकार। उर्वसीअम् और लद्दाख में घमासान।

अक्तूबर २५—भीषण लड़ाई के बाद भारतीय सैनिकों ने तवांग छोड़ दिया। उर्वसीअम् के सियांग विभाग में घमासान। लद्दाख में एक और चौकी पर चीनियों का अधिकार।

अक्तूबर २६ : बरमी सीमा के पास लोहित विभाग में वलांग लेने के लिए चीनियों ने मैकमोहन रेखा के पूरब बड़ा हमला किया। तवांग क्षेत्र में जांग गाँव तक चीनी पहुँच गये। यह बमडिला और तेजपुर के रास्ते पर चार-पाँच मील और दक्षिण है। लांगजू के पूरब सियांग विभाग की चौकी को खतम करने के लिए चीनियों ने सैकड़ों सैनिक झोंक दिये। लद्दाख में छिटफुट लड़ाई चलती रही लेकिन दौलत बेग ओल्दी और चुशूल, पर जो कि भारत के दो मज़बूत अड्डे हैं, कोई सीधे हमला नहीं हुआ।

संकट-कालीन स्थिति की घोषणा; राष्ट्र युद्ध के लिए सन्नद्ध हो गया।

राष्ट्रीय सुरक्षा निधि की स्थापना; खुले दिल से इस निधि में पैसा देने की जनता से सरकार की अपील।

संयुक्त अरब गणराज्य के राष्ट्रपति नसर ने भारत-चीन सीमा युद्ध को समाप्त करने के लिए चार-सूत्री प्रस्ताव भेजा। वे चार सूत्र इस प्रकार हैं—

१. लड़ाई तुरन्त बन्द हो जाए।

२. दोनों पक्ष वापस ८ सितम्बर के पहले

की स्थिति में चले जाएँ।

३. दोनों देशों की सेनाओ को छुटाने के लिए एक विसैन्यीकृत प्रदेश बने और दोनों देशों के बीच बातचीत चले।

४. अफ़गानिस्तान, हिन्देशिया, अल्जीरिया, सूडान, मोरक्को, लंका, घाना, गायना कम्बोडिया और माली की सरकारें मिल कर भारत-चीन सीमा पर शान्ति स्थापित करने का प्रयत्न करें।

अक्तूबर २७ : स्थिति थोड़ी भारत के अनुकूल हुई। वलांग के अतराफ़ हुए दो हमले नाकाम कर दिये गये। एक ग़ैर-कमीशन सैनिक अफ़सर की वीरता का समाचार मिला, जिसमें बताया गया है कि वह अकेला मुक़ाबला करता रहा, और स्वयं को गोली मार लेने के पहले उसने आठ चीनियों को मार गिराया। जांग के आस-पास लड़ाई रुक गयी। भारतीय सैनिक इसके पहले थोड़ी दूर पीछे हट कर गाँव के पिछवाड़े एक ऊँची जगह पर आ गये थे।

प्रधानमंत्री नेहरू ने घोषणा की कि जवानों के लिए कुछ देशों से आधुनिक हथियार और अन्य सामान लेने की व्यवस्था की गयी है। सुरक्षा के कामों में योग देने लिए नागरिक समितियाँ बनीं।

अक्तूबर २८ : जम्मू और काश्मीर मिलीशिया के सैनिकों ने दमचौक मे जवाबी हमला किया और चीनियों को पीछे खदेड़ दिया जब कि वे दमचौक और जडला के बीच घुसे।

उर्वसीअम् क्षेत्र में सियांग विभाग की एक अगली चौकी के भारतीय लोगों पर २०० चीनी सैनिकों की एक टुकड़ी ने हमला किया। भारतीय सैनिकों ने उन्हें खदेड़ दिया और २० चीनियों का सफ़ाया कर दिया। इस तरफ़ सिर्फ़ दो भारतीय हताहत हुए।

भारत-चीन सीमा पर लड़ाई बन्द कराने के लिए श्री नसर ने अफ्रीकी-एशियाई देशों से सुझाव आमंत्रित करने की पहल की।

अक्तूबर २९ : भारतीय सैनिकों ने चीनी आक्रमणकारियों के दबाव के कारण दमचौक को, जो चुशूल के सामरिक हवाई अड्डे से ९०-१०० मील दक्षिण-पूर्व है, और जडला को, जो दमचौक से ८ मील उत्तर-पूर्व है, खाली कर दिया। खाली करने के पहले, जो सामान वे नहीं ला सकते थे उसको नष्ट कर दिया। इन सभी क्षेत्रों में हताहत भारतीयों की संख्या के बारे में दो-ढाई हज़ार के बीच का अनुमान है।

चीनी आक्रमण का मुक़ाबला करने के लिए कैनेडी और मैकमिलन ने सहायता की घोषणा की।

अक्तूबर ३० : काफ़ी संख्या में तोपखाने और मोर्टर की सहायता से भारतीय सैनिकों ने जांग पर फिर अधिकार कर लिया, जो २६ अक्तूबर को चीनियो के हाथ चला गया था। लोहित घाटी में वलांग की, चीनियों के लगातार हमलो के बावजूद, डट कर रक्षा की गयी। तवांग के पास ढोला क्षेत्र मे, संचार साधनों के कारण, चीनियों का दबाव बढ़ गया।

रानी एलिज़ाबेथ ने घोषणा की कि उनकी सरकार, भारत जो मांगे, देने को तैयार है। भारत को पश्चिमी देशों की हथियारी सहायता के प्रति पाकिस्तान की विद्वेषपूर्ण

नीति की अमरीका ने निन्दा की।

अक्तूबर ३१ : उर्वसीअम् और लद्दाख में निस्बतन खामोशी रही : जांग क्षेत्र में चीनियों ने जो अपनी चौकी बना ली थी, उस पर भारतीय सैनिक भिड़े रहे, इस प्रयत्न में कि वे मठों वाले तवांग शहर को चीनियों से छीन लें जो २५ अक्तूबर को उनके हाथ चला गया था।

नवम्बर १ : तवांग के पूर्व जांग क्षेत्र में भारतीय गश्ती दल पर चीनियों ने मोर्टर के साथ हमला किया कोई हताहत नहीं हुआ। उर्वसीअम् के दूसरे छोर पर स्थित वलांग के पास स्थिति पूर्ववत् है। लद्दाख मे स्थिति ज्यो की त्यों है।

नसर ने भारत-चीन सीमा-युद्ध को बन्द कराने के लिए एक चार-सूत्री प्रस्ताव प्रेषित किया है।

नवम्बर २ : उर्वसीअम् के लोहित विभाग में वलांग के आसपास कुछ छिटफुट सवाल-जवाब की गोलीबारी के सिवाय, उर्वसीअम् और लद्दाख की लड़ाई में बेसुकून खामोशी बनी रही।

बड़ी तादाद में अमरीकी हथियारों से लदे हवाई जहाज भारत में उतरने शुरू हुए। अमरीकी दूत प्रो. गालब्रेथ ने घोषित किया कि हथियार लदे ये हवाई जहाज नियमित अवान्तर से आते रहेंगे। अमरीका के सबसे तेज चलने वाले नवीनतम जेट इन हथियारों की ढुलाई कर रहे हैं।

पीकिंग ने नसर का यह सुझाव मानने से इनकार कर दिया कि भारत-चीन सीमा पर वह अपनी सेना को ८ सितम्बर से पूर्व की स्थिति में वापस लौटा ले।

नवम्बर ३ : पैदल सेना के काम आने वाले हल्के अमरीकी हथियार कलकत्ते पहुँचने शुरू हो गये।

नवम्बर ४ : जांग और तवांग के बीच तीन छोटे गाँवों पर भारतीय सैनिकों के फिर अधिकार कर लेने की रपटें। लद्दाख के चुशूल क्षेत्र में भारत के एक मालवाही हवाई जहाज पर चीनियों ने हल्के हथियारों से गोलीबारी की।

टर्की के भारत को शस्त्रास्त्र बेचने के प्रस्ताव का पाकिस्तान ने तीव्र विरोध किया।

प्रधान मंत्री ने राष्ट्रीय सुरक्षा परिषद् बनाने के निर्णय की घोषणा की।

नवम्बर ५—काराकोरम दर्रे के पास दौलत बेग ओल्दी पर, और १९६० मे उन्होंने जिस सीमा रेखा का दावा किया था, उसके दो मील पश्चिम तक चीनियो ने अधिकार कर लिया। दौलत बेग ओल्दी पर अधिकार हो जाने से लद्दाख का वह सारा क्षेत्र चीनी अधिकार में चला गया, जिस पर उसने दावा किया था।

नवम्बर ६ : चुशूल से कुछ मील दूर चीनियों का बड़ा भारी जमाव। इसके कारण लद्दाख का यह सामरिक हवाई अड्डा, जो दुनिया में सबसे ऊँचा हवाई अड्डा है, खतरे मे पड़ गया है।

उर्वसीअम् के सुबनसिरी विभाग में चीनी और भारतीय गश्ती दलो के बीच गोलीबारी।

उर्वसीअम् का पूर्वी कोना, वलांग मे चीनियों ने एक भारतीय चौकी को हथियाने की कोशिश की लेकिन भारतीयों की तेज गोली-बारी के कारण उन्हें पीछे हटना पड़ा।

भारत सरकार ने ३० सदस्यों की एक

राष्ट्रीय सुरक्षा परिषद् बनायी। प्रधान मंत्री परिषद् के अध्यक्ष होंगे।

नवम्बर ७ : एक हजार चीनी सैनिक, जिन्हें मृत मान लिया गया था, अपने मूल अड्डे पर वापस लौटे। उर्वसीअम् में लोहित विभाग के वलांग पर, और लद्दाख में चुशूल पर चीनियों का दबाव बना रहा।

प्रधान मंत्री द्वारा त्यागपत्र स्वीकार कर लिये जाने से श्री कृष्ण मेनन जनता की माँग पर मंत्रिमंडल से बाहर हो गये।

प्रधान मंत्री चाउ ने पूर्वी क्षेत्र में मैकमोहन रेखा से २० किलोमीटर उत्तर अपनी सेनाएँ वापस कर लेने का नया प्रस्ताव किया। लद्दाख क्षेत्र में, चाउ एन-लाई का कहना है, वास्तविक नियन्त्रण-रेखा मुख्यत: वही है जो परम्परागत सीमा-रेखा रही है।

इस बीच, चीनियों का जमाव चुशूल के पास बना हुआ है। उर्वसीअम् में, वलांग क्षेत्र म, चीनियों ने अपनी स्थिति और सबल बना ली।

नवम्बर ८ : मोर्टर और स्वचालित हथियारों से संबलित चीनियों ने उत्तर और उत्तर-पूर्व की पहाड़ियों से वलांग शहर पर आक्रमण को तेज कर दिया जिससे वे सामरिक महत्त्व वाली लोहित नदी घाटी तक पहुँच सकें। ऐसे एक संघर्ष में १५ चीनी मारे गये। भारतीयों में एक मरा, दो घायल हुए।

लद्दाख क्षेत्र में सैनिक, टैंक आदि भारी युद्ध-सामग्री का चीनी लोग इस्तेमाल कर रहे हैं।

नवम्बर ९ : उर्वसीअम् के तवांग क्षेत्र में मराल पर भारतीय सैनिकों ने गोलीबारी की। चीनी लोग तीन क्षेत्रों में अपनी शक्ति लगा रहे हैं : लद्दाख में चुशूल, उर्वसीअम् के पश्चिम में तवांग घाटी और बरमी सीमा के निकट लोहित विभाग के वलांग के आस-पास।

भारत को फ्रांस से हथियार मिलने के आश्वासन प्राप्त हुए।

नवम्बर १३–१४ : हिमालय में बरफ़ानी मौसम के कारण लड़ाई ठंडी पड़ गयी। लद्दाख में चुशूल के पास तापमान शून्य से ३० डिग्री नीचे चले जाने की रपट है। उर्वसीअम् में तापमान शून्य से कुछ डिग्री कम है।

श्री वाई. बी. चोह्वान के रक्षा मंत्री नियुक्त होने की घोषणा।

—**'युनाइटेड एशिया', दिसम्बर, १९६२**

II. चीन द्वारा इकतरफ़ा युद्धबन्दी

[चीन सरकार का वक्तव्य, २१ नवम्बर, १९६२]

"पिछले दो सालों में, पहले चीन-भारत सीमा के पश्चिमी क्षेत्र में और फिर पूर्वी क्षेत्र में, भारतीय सैनिकों ने चीन और भारत के बीच वास्तविक नियंत्रण-रेखा का अतिक्रमण किया, चीनी प्रदेश पर झपट्टे मारे, आक्रमण के लिए मजबूत अड्डे बनाये और कई बार सीमा संघर्षों को उकसाया। सैनिक दृष्टि से सुविधा की जो जगहें उन्होंने हड़प ली थीं उनका, और अपनी पूरी तैयारी का फ़ायदा उठा कर

अन्ततः भारतीय सैनिकों ने २० अक्तूबर को पूरी सीमा-रेखा पर तैनात चीनी सीमा-रक्षकों पर बड़े पैमाने पर फ़ौजी हमला कर दिया। जान-बूझ कर भारत द्वारा उकसाया गया यह सीमा-संघर्ष एक महीने से चल रहा है।

चीन सरकार ने लगातार, निरन्तर बढ़ते हुए भारतीय अतिक्रमण और उकसावों के विरुद्ध चेतावनी दी और इनके परिणामों की गम्भीरता की ओर ध्यान दिलाया। सीमा-संघर्ष बचाने के लिए चीनी सीमा-रक्षकों ने हमेशा अधिक से अधिक आत्म-संयम और सहनशीलता से काम लिया। किन्तु चीन के ये सब प्रयत्न निष्फल प्रमाणित हुए, और भारत की हमलावर कार्रवाई बढ़ती ही गयी। सहनशीलता की जब हद हो गयी और पलटने की कोई गुंजायश नहीं रही, तो चीनी सीमा-रक्षकों के सामने आत्म-रक्षा के लिए करारा जवाबी वार करने के अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं रह गया। यह सीमा-संघर्ष बड़े पैमाने पर छिड़ जाने के बाद, चीन सरकार ने तुरन्त उसकी ज्वालाओं को बुझाने की दिशा में प्रयत्न शुरू किये। वर्तमान सीमा-संघर्ष छिड़ने के चार दिन बाद, २४ अक्तूबर को चीन सरकार ने सीमा-संघर्ष बन्द करने, शान्तिपूर्ण वार्ता फिर से शुरू करने, और चीन-भारत सीमा के प्रश्न को निटबाने के लिए तीन तर्कसंगत प्रस्ताव रखे। ये तीन प्रस्ताव इस प्रकार हैं :

१. दोनों पक्ष वचन-बद्ध हों कि चीन-भारत सीमा का प्रश्न बातचीत द्वारा शान्तिपूर्ण ढंग से ही सुलझाया जाए। शान्तिपूर्ण निबटारा होने तक, चीन सरकार यह आशा करती है कि भारत सरकार इस बात से सहमत हो जाएगी कि दोनों पक्ष दोनों देशों के बीच पूरी सीमा पर वास्तविक नियंत्रण रेखा को मानें और दोनों देशों की फ़ौजें इस रेखा से २० किलोमीटर अपनी-अपनी तरफ़ हट आएँ और लड़ाई बन्द कर दें।

२. भारत सरकार अगर ऊपर का प्रस्ताव मान ले तो चीन दोनों पक्षों की बातचीत के आधार पर, पूर्वी सीमा-क्षेत्र में अपने सीमा-रक्षकों को वास्तविक नियंत्रण-रेखा के उत्तर वापस बुला लेने को राजी है; भारत वचन दे कि वह सीमा के मध्य और पश्चिमी क्षेत्रों में वास्तविक नियंत्रण-रेखा, अर्थात् परम्परागत प्रचलित सीमा-रेखा का अतिक्रमण नहीं करेगा।

दोनों पक्षों के हथियारबंद सैनिकों की गुत्थम-गुत्थी खत्म करने और हथियार की लड़ाई बन्द करने सम्बन्धी बातों पर दोनों देशों द्वारा मनोनीत अधिकारी बातचीत करेंगे।

३. चीन सरकार का विचार है कि चीन-भारत सीमा के मैत्रीपूर्ण निबटारे के लिए एक बार फिर चीन और भारत के प्रधान-मंत्रियों की वार्ता होनी चाहिए। दोनों पक्षों को जो समय उपयुक्त लगे, चीन सरकार भारतीय प्रधान मंत्री का पीकिंग में स्वागत करेगी। भारत सरकार को इसमें सुविधा न हो तो चीनी प्रधान मन्त्री वार्ता के लिए दिल्ली जाने को तैयार हैं।

जिस दिन ये मिले, उसी दिन भारत सरकार ने जल्दबाज़ी में चीन सरकार के तीन प्रस्ताव अस्वीकार कर दिये और अड़ी रही

कि चीन सरकार ८ सितम्बर, १९६२ के पहले की स्थिति क़ायम करने को राज़ी हो, मतलब कि भारत चीन के बड़े भू-प्रदेशों पर फिर क़ाबिज़ हो जाए ताकि भारतीय सैनिक फिर इस स्थिति में आ जाएँ कि किसी भी समय चीनी सीमा-रक्षकों पर बड़े हमले कर सकें। प्रधान मंत्री चाउ एन-लाई को अपने १४ नवम्बर के जवाब में प्रधान मंत्री नेहरू ने एक और भी अनुचित माँग रखी है जिसके अनुसार वे चाहते हैं कि चीन सरकार ८ सितम्बर के पूर्व की स्थिति में जाने को राज़ी हो और दूसरी तरफ़ चीनी सीमा-रक्षक न सिर्फ़ ८ सितम्बर के पूर्व की स्थिति में, बल्कि पूर्वी क्षेत्र में तथाकथित ७ नवम्बर १९५९ की स्थिति में, वापिस चले जाएँ। इस ७ नवम्बर, १९५९ वाली स्थिति की व्याख्या भारत ने इकतरफ़ा कर दी है, जिसके अनुसार चीन को ५-६ हज़ार वर्गमील (१३-१४ हज़ार किलोमीटर) अपना भू-प्रदेश छोड़ना पड़ेगा। इस बीच भारी अमरीकी सैनिक सहायता का संबल पा कर भारत सरकार ने चीन-भारत सीमा के पूर्वी और पश्चिमी क्षेत्रों में फिर से ज़ोरदार हमले शुरू करके सीमा-संघर्ष को और व्यापक बनाने का हठी प्रयत्न किया है।

भारत सरकार ने यह जो एकदम अनुचित रुख़ अपनाया है, कोई आकस्मिक घटना नहीं है। अपनी अन्दरूनी और बाहरी राजनीति के मतलब पूरे करने के लिए भारत सरकार बहुत दिनों से इस नीति पर अमल करती आयी है—जान-बूझ कर चीन-भारत की सीमा के प्रश्न को अनिर्णीत रखना, दोनों देशों की फ़ौजों को गुथाए रखना और सीमा पर तनाव बनाए रखना। जब कभी मौक़ा उपयुक्त समझती है, भारत सरकार इस स्थिति का फ़ायदा उठा कर चीन-भारत सीमा पर सशस्त्र हमले करती और उकसाती है यहाँ तक कि सशस्त्र संघर्ष तक को उकसाती है। या फिर चीन के विरुद्ध शीत-युद्ध के लिए इस स्थिति का इस्तेमाल करती है। अनेक वर्षों का अनुभव बताता है कि भारत सरकार निरन्तर किसी न किसी तरह, चीन सरकार ने चीन-भारत सीमा के शान्तिपूर्ण निबटारे के लिए जो वार्तालाप का मार्ग अपनाया था, उसमें रोड़े अटकाती रही है। भारत सरकार की यह नीति चीन और भारत दोनों राष्ट्रों के हित और दुनिया के सभी राष्ट्रों की समान आकांक्षा के विपरीत है, और इससे सिर्फ़ साम्राज्यवादी हितों को लाभ पहुँचता है।

चीन सरकार के तीन प्रस्ताव बिलकुल न्यायपूर्ण और तर्कसंगत हैं; ये ही प्रस्ताव हैं, जो सीमा-संघर्ष को टाल सकते हैं, सीमा पर शान्ति बनाये रख सकते हैं, और चीन-भारत की सीमा-रेखा के प्रश्न को शान्तिपूर्ण ढंग से सुलझा सकते हैं। चीन सरकार इन तीन प्रस्तावों के लिए निरंतर प्रयत्नशील है। किन्तु भारत सरकार ने अब तक इन प्रस्तावों को मानने से इनकार किया है, और वह सीमा-संघर्ष को फैलाती रही है, और इस तरह रोज़-ब-रोज़ चीन-भारत सीमा पर स्थिति को उत्तेजित कर रही है। इस प्रवृत्ति को पलटने के लिए चीन सरकार ने इन तीन प्रस्तावों के उद्देश्य की प्राप्ति की दिशा में आगे बढ़ने की दृष्टि

से क़दम उठाने की पहल करने का निर्णय किया है।

चीन सरकार निम्नलिखित घोषणा करती है :

१. इस वक्तव्य के निकलने के दूसरे दिन से, अर्थात् २२ नवम्बर १९६२ की आधी रात से, चीनी सीमा-रक्षक पूरी चीन-भारत सीमा पर गोलीबन्दी (लड़ाई बन्द) कर देंगे।

२. १ दिसम्बर १९६२ से चीनी सीमा-रक्षक वास्तविक नियन्त्रण-रेखा से जो ७ नवम्बर, १९५९ को चीन और भारत के बीच थी, २० किलोमीटर पीछे हट आएँगे। पूर्वी क्षेत्र में, यद्यपि चीनी सीमा-रक्षक परम्परागत प्रचलित सीमा-रेखा के उत्तर चीनी प्रदेश में बचाव की लड़ाई लड़ रहे हैं, फिर भी वे अपनी वर्तमान जगह से हट कर वास्तविक नियन्त्रण-रेखा जो कि ग़ैर-क़ानूनी मैकमोहन रेखा है, के उत्तर तक आ जाने, और उससे भी २० किलोमीटर पीछे चले जाने को तैयार हैं।

मध्य और पश्चिमी क्षेत्रों मे चीनी सीमा-रक्षक वास्तविक नियन्त्रण रेखा से २० किलोमीटर पीछे हट आएँगे।

३. चीन-भारत सीमा क्षेत्र के निवासियों के दैनंदिन संचरण को निरापद बनाने और तोड़-फोड़ करने वालों की कार्रवाइयों की टोह लेने के लिए चीन चौकियाँ स्थापित करेगा। इन चीनी चौकियों की स्थिति की सूचना चीन सरकार दूतावास के माध्यम से भारत सरकार को दे देगी।

चीन सरकार ने पहल करके ये जो क़दम उठाये हैं, इनसे सीमा-संघर्ष को बन्द करने और चीन-भारत सीमा के सवाल को शांति-पूर्वक हल करने में चीन की ईमानदारी का पता लगता है। खास तौर से ध्यान देना चाहिए कि पीछे हटने के बाद चीनी सीमा-रक्षक ८ सितम्बर, १९६२ वाली अपनी जगहों से बहुत पीछे हो जाएँगे। चीन सरकार आशा करती है कि ऊपर बतायी गयी चीन की पहल-क़दमी के परिणाम-स्वरूप, भारत सरकार भारतीय जनता और दुनिया की जनता की इच्छाओं का ख़याल करके नयी शुरूआत करेगी और सकारात्मक उत्तर देगी। अगर भारत सरकार तदनुरूपी क़दम उठाने को राज़ी हो जाए, चीन और भारत की सरकारें तत्काल अधिकारियों को नियुक्त कर सकती हैं जो दोनों पक्षों को स्वीकार्य चीन-भारत सीमा के विभिन्न स्थानों पर मिल कर प्रत्येक पक्ष के २० किलोमीटर पीछे हटने से सम्बन्धित बातों, विसैन्यीकृत प्रदेश बनाने, प्रत्येक पक्ष द्वारा वास्तविक नियन्त्रण-रेखा के अपनी ओर चौकियाँ स्थापित करने और गिरफ़्तार व्यक्तियों की वापसी के बारे में विचार करें। जब दोनों पक्षों के अधिकारियों की बातचीत के परिणाम निकल आएँ और उन पर अमल हो जाए, तब चीन-भारत सीमा के सवाल के मैत्रीपूर्ण हल के लिए दोनों देशों के प्रधान मंत्रियों की बातचीत हो सकती है। चीन सरकार भारतीय प्रधान मंत्री का पीकिंग में स्वागत करेगी। अगर भारत सरकार के लिए यह असुविधाजनक हो तो चीन के प्रधान मन्त्री बातचीत के लिए दिल्ली जाने को तैयार हैं।

चीन सरकार को बड़ी आशा है कि भारत सरकार सकारात्मक उत्तर देगी। भारत सरकार उचित अवधि के अन्दर जवाब देने में असफल रही तो भी चीन सरकार ऊपर बताये गये उपायों पर पूर्व-निश्चित ढंग से अमल करेगी।

बहरहाल, चीन सरकार को तीन सम्भावित बातों का ध्यान रखना ही होगा: (१) कि जब चीनी सीमा-रक्षक गोलीबन्दी करें और पीछे वापस होने लगें, तो भारतीय सेना अपना हमला जारी रखे; (२) कि सम्पूर्ण वास्तविक नियन्त्रण रेखा से चीनी सीमा-रक्षकों के २० किलोमीटर पीछे हट आने के बाद, पूर्वी क्षेत्र में भारतीय सेना फिर वास्तविक नियन्त्रण-रेखा, अर्थात् ग़ैरक़ानूनी मैकमोहन रेखा की तरफ़ बढ़े और या मध्य और पश्चिमी क्षेत्रों मे वास्तविक नियन्त्रण रेखा से हटने से इनकार करे और वहां बनी रहे; और (३) कि सम्पूर्ण वास्तविक नियन्त्रण-रेखा से चीनी सीमा-रक्षकों के २० किलोमीटर हट आने के बाद भारतीय सेना वास्तविक नियन्त्रण-रेखा को पार करे और ८ सितम्बर से पहले की स्थिति को प्राप्त करना चाहे, मतलब कि, पूर्वी क्षेत्र में ग़ैरक़ानूनी मैकमोहन रेखा को फिर से पार करके उत्तर में केचिलांग नदी क्षेत्र पर पुन: अधिकार करे; मध्य क्षेत्र में वुगी पर फिर अधिकार करे; और पश्चिमी क्षेत्र में, चिपचैप नदी घाटी, गलवान नदी घाटी, पैंगोंग झील क्षेत्र और दमचौक क्षेत्र में अपने ४३ सामरिक अड्डों को पुन: हासिल करे, या पश्चिमी क्षेत्र में चीनी प्रदेश पर हमले के लिए और भी सामरिक अड्डे स्थापित करे। अगर ये संभावित घटनाएं सचमुच घटीं तो, चीन सरकार निष्ठापूर्वक घोषित करती है कि चीन अपने बचाव के लिए जवाबी हमला करने का अधिकार सुरक्षित रखता है। इसके जो भी गम्भीर परिणाम होंगे उसकी ज़िम्मेदारी भारत सरकार पर होगी। दुनिया की जनता तब और भी साफ़ तौर पर देख सकेगी कि कौन शान्ति-प्रेमी है और कौन लड़ाकू; कौन चीन और भारत की जनता के बीच मैत्री और एशियाई-अफ्रीकी एकता को बनाये रखता और कौन उसे पलीता लगाता है; कौन साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद के विरुद्ध संघर्ष मे एशियाई-अफ्रीकी देशों के समान हितों की रक्षा करता है, और कौन उन्हें भंग करता है और नुक़सान पहुँचाता है।

चीन-भारत सीमा का प्रश्न दो एशियाई देशों के बीच का प्रश्न है। चीन और भारत को उसे शान्तिपूर्वक हल करना चाहिए, इसको ले कर तलवार चमकाने की ज़रूरत नहीं; अमरीकी साम्राज्यवाद को इसमें हाथ डालने दे कर इस दुर्भाग्यपूर्ण सीमा-विवाद को युद्ध की शक़ल देने का अवसर देने की तो और भी ज़रूरत नहीं है जिसमे एशियाई-एशियाई लड़ें। चीनी और भारतीय जनता के मौलिक अधिकारों को सुरक्षित रखने, एशियाई-अफ्रीकी एकता को मज़बूत बनाने और विश्वशान्ति को बनाए रखने की दृष्टि से, खूब सोच-विचार कर चीन सरकार ने ये क़दम उठाने का निर्णय किया है। चीन सरकार सभी एशियाई और अफ्रीकी देशों, अन्य शान्ति-प्रेमी देशों और जनता से अपील

करती है कि वे भारत सरकार से तदनुरूपी क़दम उठाने के लिए कहें, जिससे कि सीमा-संघर्ष बन्द हो, शान्तिपूर्ण वार्ता फिर से शुरू हो और चीन-भारत सीमा का सवाल सुलझे।"

—भारत सरकार का श्वेत पत्र नं. ८

III. कोलम्बो प्रस्ताव

[कोलम्बो में १०-१२ दिसम्बर १९६२ को हुए ६ तटस्थ देशों के सम्मेलन के प्रस्तावों का मज़मून]

१. सम्मेलन के विचार में वर्तमान वस्तुतः युद्ध-बन्दी की अवधि भारत-चीन विवाद के शान्तिपूर्ण निबटारे की बात शुरू करने के लिए अच्छा समय है।

२. (अ) सम्मेलन चीन सरकार से अपील करना चाहेगा कि पश्चिमी क्षेत्र में, जैसा कि प्रधान मंत्री चाउ एन-लाई ने प्रधान मंत्री नेहरू को लिखे अपने २१ और २८ नवम्बर, १९६२ के पत्रों में प्रस्तावित किया था, वह अपने सैनिक अड्डों से २० किलोमीटर पीछे हट आने की बात को पूरा करे।

(आ) सम्मेलन भारत सरकार से अपील करेगा कि वह अपनी सेना को वहीं रखे जहाँ अभी वह है।

(इ) सीमा विवाद के अंतिम हल निकलने तक, चीनी सैनिकों द्वारा खाली किया गया क्षेत्र एक विसैन्यीकृत प्रदेश रहेगा जिसका प्रशासन दोनों पक्षों को सहमति से स्थापित दोनों देशों की सिविलियन चौकियों द्वारा होगा, इससे उस क्षेत्र में भारत और चीन दोनों की उपस्थिति के अधिकारों (पहले वाले) पर कोई विपरीत प्रभाव नहीं पड़ेगा।

३. सम्मेलन के विचार से, पूर्वी क्षेत्र में, दोनों देशों द्वारा मान्यता प्राप्त क्षेत्रों में वास्तविक नियंत्रण रेखा दोनों के लिए युद्ध-बन्दी रेखा हो सकती है। इस खंड के बाक़ी क्षेत्रों का निबटारा उनकी आगे की बातचीत मे हो सकता है।

४. मध्य-क्षेत्र की समस्याएँ, सम्मेलन का सुझाव है कि बग़ैर शक्ति प्रयोग के शान्ति-पूर्ण ढंग से सुलझायी जाएँगी।

५. सम्मेलन को विश्वास है कि अगर इन प्रस्तावों को क्रियान्वित किया जाए तो इससे युद्ध-बन्दी पोख्ता होगी और युद्ध-बन्दी की अवस्था से संबंधित प्रश्नों को हल करने के लिए दोनों पक्षों के प्रतिनिधियों की बातचीत का मार्ग खुल जाएगा।

६. सम्मेलन यह स्पष्ट करना चाहेगा कि प्रस्तावित अपील की सकारात्मक अनुक्रिया का, अंतिम सीमा निर्धारण सम्बन्धी दोनों सरकारों में से किसी की भी धारणा पर, प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा।

स्पष्टीकरण :

[भारत सरकार के निवेदन पर कोलम्बो सम्मेलन प्रस्तावों के पैरा २, ३, और ४ के लंका, संयुक्त अरब गणराज्य और घाना द्वारा दिये गये स्पष्टीकरणों का मज़मून]

पश्चिमी क्षेत्र : (i) कोलम्बो सम्मेलन द्वारा प्रस्तावित चीनी सेनाओं की वापसी २० किलोमीटर होगी, जैसा कि प्रधान मंत्री चाउ-एन-लाई ने चीन सरकार के २१ नवम्बर वाले वक्तव्य और प्रधान मंत्री नेहरू को लिखे अपने २८ नवम्बर के पत्र में प्रस्तावित किया था, यानी ७ नवम्बर १९५९ को दोनों पक्षों के बीच की वास्तविक नियंत्रण रेखा थी, जिसकी व्याख्या चीन सरकार द्वारा प्रसारित नक़शा नं. ३ और ४ में की गयी है।

(ii) भारत सरकार की वर्तमान सैनिक चौकियाँ, जिन पर वह बनी रहेगी, उपर्युक्त (i) में बतायी गयी रेखा तक और रेखा पर होंगी।

(iii) चीनी सेना के हट जाने से २० किलोमीटर का जो विसैन्यीकृत प्रदेश बनेगा, उसका प्रशासन दोनों पक्षों की सिविलियन चौकियाँ करेंगी। यह कोलम्बो सम्मेलन प्रस्तावों का सार अंश है। चौकियों के स्थान, संख्या और निर्माण के सम्बन्ध में ही भारत और चीन सरकारों के बीच सहमति होना है।

पूर्वी क्षेत्र : कोलम्बो सम्मेलन प्रस्तावों के अनुसार भारतीय सेना वास्तविक नियंत्रण रेखा, अर्थात् मैकमोहन रेखा के दक्षिण तक जा सकती है, सिवाय दो क्षेत्रों के जिनके बारे में भारत और चीन की सरकारों में मतभेद है। उसी तरह चीनी सेना मैक-मोहन रेखा के उत्तर तक जा सकती है, सिवाय इन दो क्षेत्रों के। कोलम्बो सम्मेलन प्रस्तावों में जो दो बाक़ी क्षेत्र बताये गये हैं, उनके बारे में भारत और चीन की सरकारों के बीच सहमति होना है। ये दो क्षेत्र हैं : चिडांग या थागला रिज क्षेत्र और लांगजू क्षेत्र। इन दो क्षेत्रों में वास्तविक नियंत्रण-रेखा के बारे में दोनों सरकारों में मतभेद है।

मध्य क्षेत्र : कोलम्बो सम्मेलन की ख्वाहिश थी कि इस क्षेत्र में अभी जो स्थिति है, उसे बरकरार रखा जाए और कोई ऐसा काम न किया जाए जिससे आज की स्थिति भंग होती हो।"

—भारत सरकार का श्वेत पत्र नं. ९
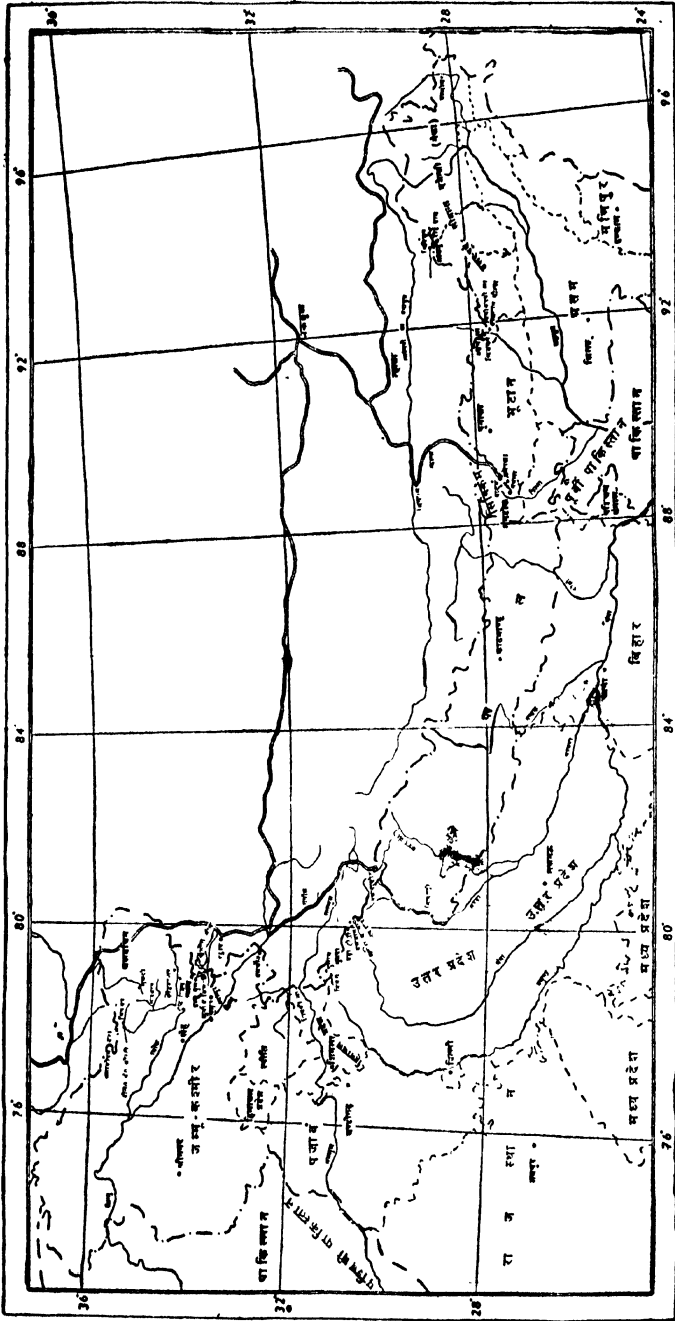
नक्शा २

७ सितम्बर, १९६२ को पश्चिमी भाग में भारतीय और चीनी सेनाओं को अलग करनेवाली रेखा
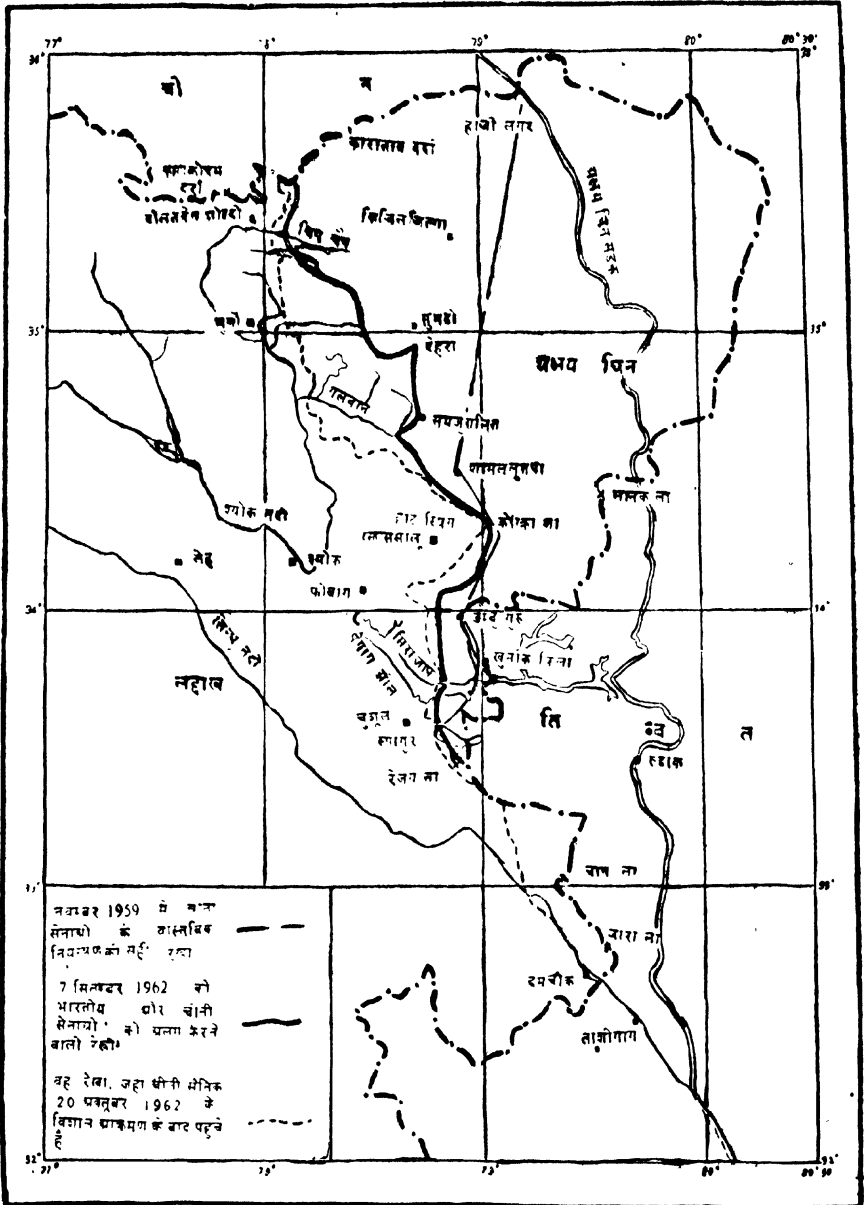
नक़्शा ३

पश्चिमी भाग में १९५६ और १९६० में चीनी दावे की रेखाएँ
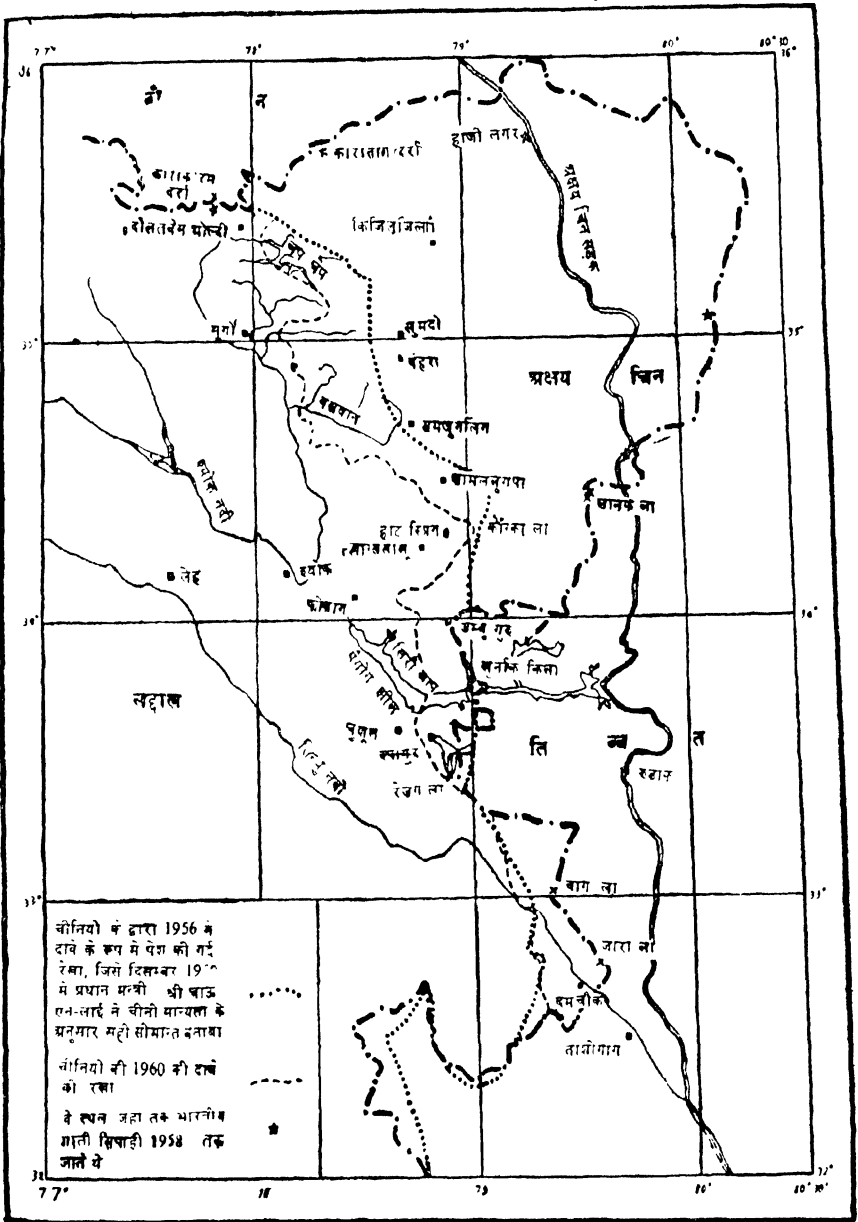
नक्शा ४

नवम्बर १९५९ में और उसके बाद पश्चिमी भाग में चीनियों द्वारा अवैध रूप से तैयार की गयी सड़कें तथा स्थापित की गयी चौकियाँ
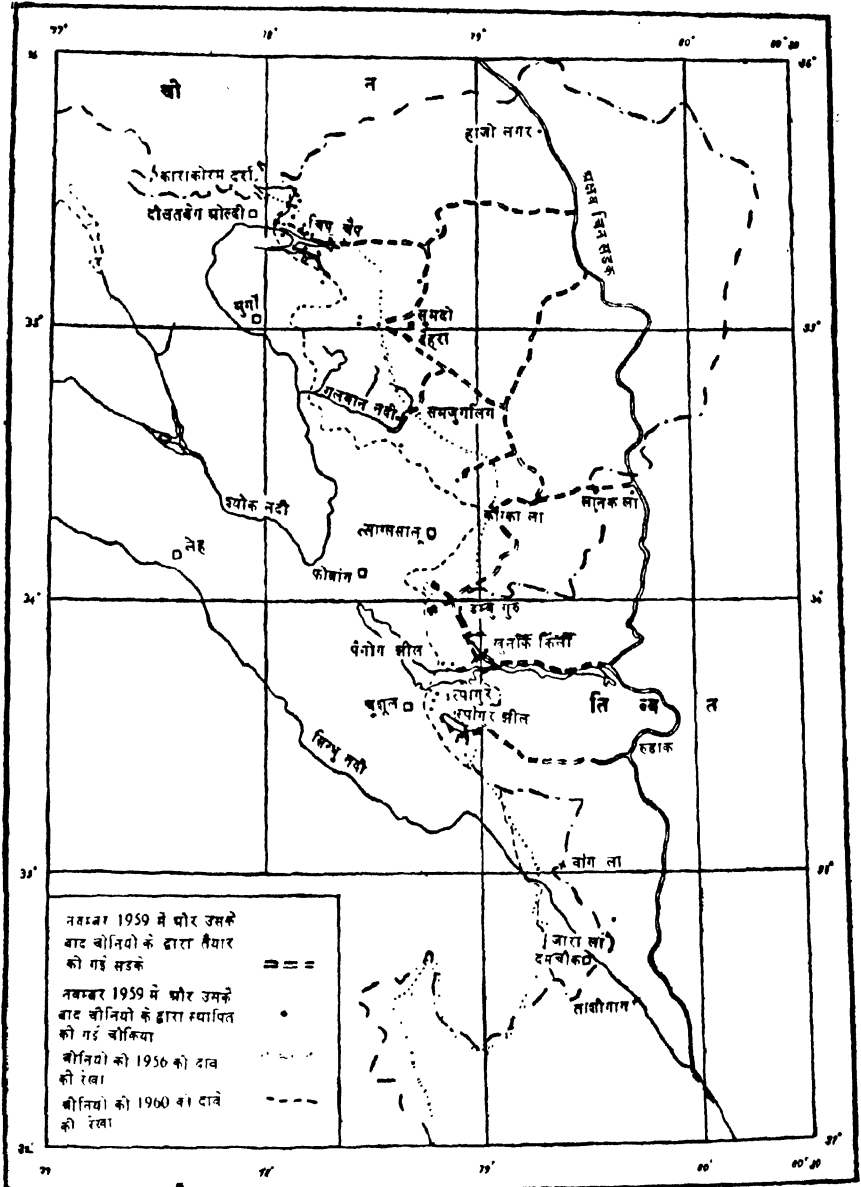
नक़्शा ५

नवम्बर १९५९ और सितम्बर १९६२ में पश्चिमी भाग में वास्तविक नियन्त्रण की रेखा
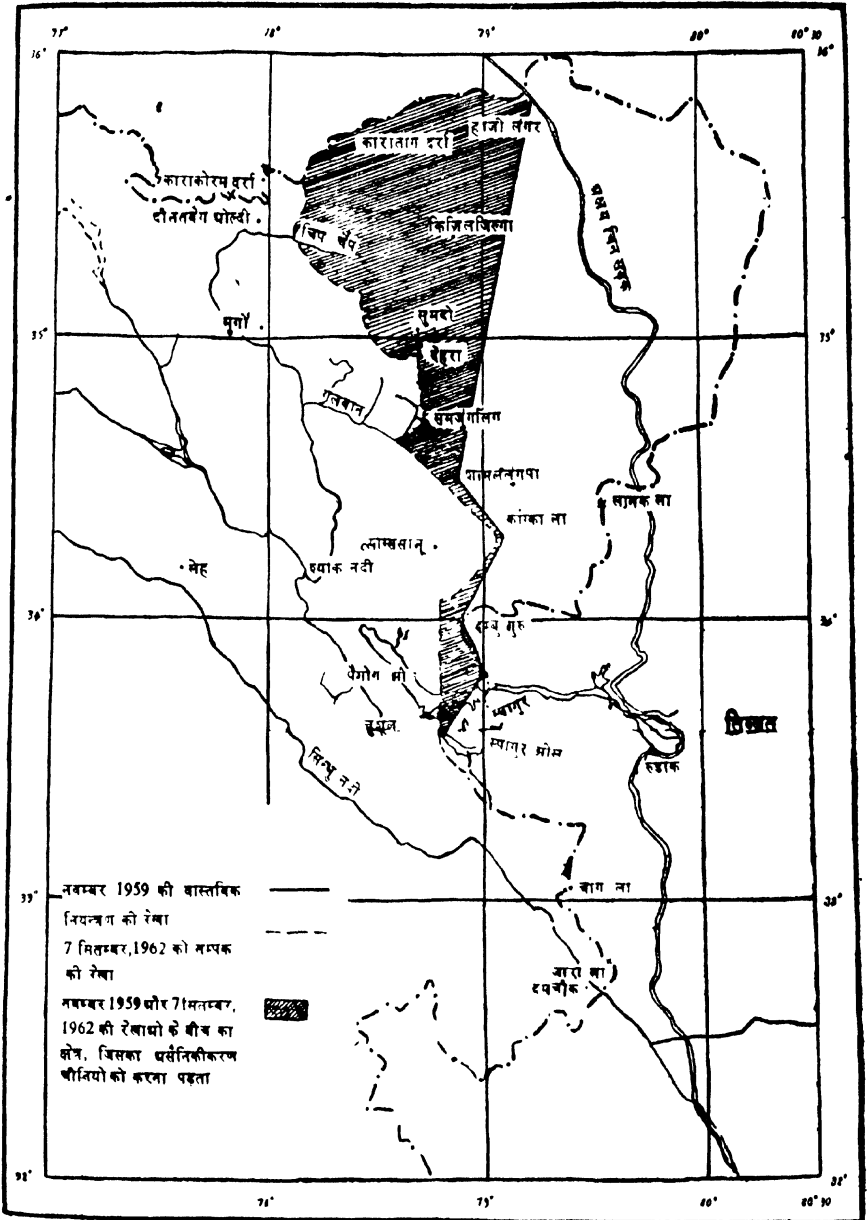
नक़्शा ६

पश्चिमी भाग में ८ सितम्बर, १९६३ से पहले और उसके बाद चीनियों की अग्रगति तथा वह क्षेत्र, जिसके असैनिकीकरण के लिए वे तैयार हैं
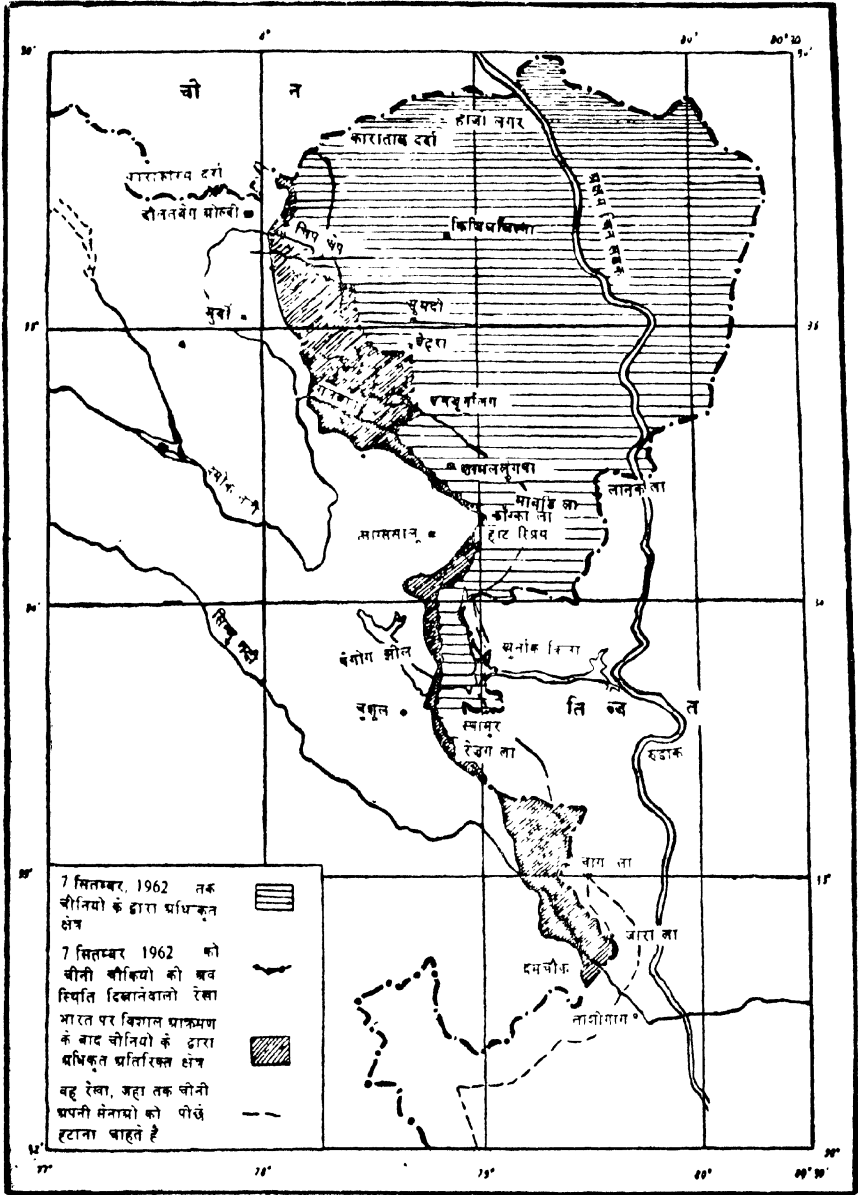
नक्शा ७

पश्चिमी और मध्य-भागों के वे भारतीय प्रदेश तथा भारतीय चौकियाँ, जिन्हें चीन तीन-सूत्री प्रस्ताव के अन्तर्गत भारतीय सेनाओं को खाली करना होगा

नक्शा ८

७ सितम्बर, १९६२ को पूर्वी भाग में भारतीय और चीनी सेनाओं को अलग करने वाली रेखा